ॐ

वृत्तिप्रभाकर.

अनेकानेक उदाहरणोद्वारा वृत्तियोंकरके वेदान्त
शास्त्रका सिद्धांत प्रतिपादन किया है।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

(खेतवाडी ७ वीं गली खबाटा लैन)

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९६८, शके १८३३.

प्रस्तावना।

दोहा-तावत गर्जत शास्त्र सब, जम्बुक इव वनमाहिं।
महाशक्ति वेदान्त हरि, यावत नादत नाहिं॥

जबतक पुरुषको ब्रह्मात्माका अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तबतक पुरुषका जन्म मरण संसारसे निवृत्त नहीं होता। वह अपरोक्ष ज्ञान भी मुमुक्षुजनको वेदान्तशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासनसे होवे है. इसवास्ते पुरुषको साधनचतुष्टय सपन्न होकर वेदान्तशास्त्रका श्रवण अवश्य करना चाहिये. वेदान्तशास्त्रके सस्कृतमे अनेक ग्रन्थहे, जैसे शारीरकभाष्य, उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य इत्यादि. परतु वे सस्कृतमे हैं. व्याकरण न्यायशास्त्रादिकोके अध्ययन विना वे समझमे नहीं आते। जिन मुमुक्षुओंका सस्कृतमें प्रवेश नहीं उनके वास्ते साधु निश्चलदासजीने उन वेदान्तके सस्कृत ग्रन्थोके अनुसार दो ग्रन्थ बनाये है एक "विचारसागर" और दूसरा यह "वृत्तिप्रभाकर" है। विचारसागर बहुत सरलहै मदबुद्धिवाले मुमुक्षुभी उसको पठन करसक्तेहैं और उन मंदबुद्धिवालोके लियेही बनायाहै इसवास्ते उसमें प्रत्यक्षादि प्रमाण और अख्याति आदि विषय बहुत सक्षेपसे निरूपण कियेहे, इसवास्ते उनमे मुमुक्षुजनोके कई सदेह रहजातेहैं। परन्तु इस "वृत्तिप्रभाकर" ग्रन्थमे साधुनिश्चलदासजीने उन प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा अख्याति आदि पदार्थोंको विस्तारसे निरूपण कियाहै, इसवास्ते बडे बडे सदेहों को दूर करनेवाला यह ग्रन्थहै और यही ग्रन्थ ब्रह्मज्ञानद्वारा असारससारसे मुक्त करनेहाराहै। इसको प्रथम नारायणजी त्रिकमजीने शिला अक्षरोमे छपवाया था इसलिये उसके अक्षर सुदर न हुए और पाठकों को पढने पढानेमे भी सुलभ न हुआ। अतएव हमने श्रीयुत प० देवचरण अवस्थीजीसे शुद्ध कराकर प्रकाशित किया था सो हाथोहाथ बिकगया मुमुक्षुओंकी विशेष रुचि होसेने अबकीबार श्रीयुत पं० नन्दलालजी शास्त्रीजीसे भलीभाँति शोधन कराय सपुष्ट कागजपर मुद्रितकर प्रसिद्ध कियाहै आशाहै कि मुमुक्षुजन इसे सादर ग्रहण करेगे॥

कवित्त-वृत्तिप्रभाकर ग्रंथ रच्योहै ललितपंथ, अतिशय बुध स्वामि निश्चल अनूपही। अष्टहैं प्रकाश भ्रम तमको करत नाश, आवरि सुभाव होत आनन्द स्वरूपही॥ सूरदास तुलसीदास केशवदास आदिभले, छंदनके रचवेमें भये कविभूपही। याहिके समान भाषा ग्रंथनमें अर्थ नाहिं, जासुके मननकरे मिटै भवकूपही॥ १॥ प्रत्यक्षानुमान पुनि शब्दउपमान मान, अर्थापत्ति अरु अनुपलब्धि प्रमानही। प्रथम औ दूजे तीजे चतुरथ पंच छठे, क्रमहूंते इनहूंकू मनमाहिं आनही॥ सप्तमप्रकाशहूमें वृत्तिको स्वरूप भन्यो, अष्टम प्रकाशमाहिं फलवृत्ति गानही। बुधजन द्वारे याको करत विचार जोई, बुद्धिहूकी मंदता करैगो सब हानही॥ २॥

आपका कृपाभिलाषी-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालयाध्यक्ष मुंबई.

अथ श्रीवृत्तिप्रभाकरविषयानुक्रमणिका।

अथ शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयः प्रकाशः ३.

अथोपमाननिरूपणं नाम चतुर्थः प्रकाशः ४.

अथ अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमः प्रकाशः ५.

अथानुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठः प्रकाशः ६.

वृत्तिभेद अनिर्वचनीयख्याति मंडनख्यातिखंडन औ स्वतः प्रमात्वप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमः प्रकाशः ७.

अथ जीवेश्वरस्वरूपवृत्तिप्रयोजनसहित कल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमः प्रकाशः ८.

इति वृत्तिप्रभाकरविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

श्रीगणेशाय नमः

अथ

वृत्तिप्रभाकरप्रारम्भः ।

दोहा ॥

अस्ति भाति प्रिय सिंधुमें, नाम रूप जंजाल ॥
लखितिहिं आत्मस्वरूप निज, ह्वै तत्काल निहाल ॥ १ ॥

वृत्तिके सामान्य लक्षण और भेद ॥ १ ॥

अहं ब्रह्मास्मि या वृत्तिमें कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति होवैहै, । यह वेदांतका सिद्धांतहै । तहां यह जिज्ञासा होवैहै वृत्ति किसकूं कहेंहैं औ वृत्तिका कारण कौनहै और वृत्तिका प्रयोजन कौनहै, यातें वृत्तिप्रभाकर नाम ग्रंथ लिखेंहै । अंतःकरणका और अज्ञानका जो परिणाम सो वृत्ति कहियेहै ॥ यद्यपि क्रोधसुखादिकभी अंतःकरणके परिणामहैं ॥ और आकाशादिक अज्ञानके परिणाम हैं तिनकूं वृत्ति नहीं कहेंहैं । तथापि विषयका प्रकाशक जो अंतःकरणका और अज्ञानका परिणाम सो वृत्ति कहियेहै । क्रोध सुखादिरूप जो अंतःकरणके परिणाम तिनतें किसी पदार्थका प्रकाश होवै नहीं तैसेंही आकाशादिकाभी नहीं प्रकाश होवै ॥ यातें वृत्ति नहीं किंतु ज्ञानरूप परिणामतें प्रकाश होवैहै ताहीको वृत्ति कहेंहैं । यद्यपि सुख, दुःख काम, तृप्ति, क्रोध, क्षमा, धृति, अधृति लज्जा और भयादिक जितने अंतःकरणके परिणाम हैं तिन सबकूं अनेकस्थानोंमें वृत्तिशब्दसे व्यवहार लिखा है । तथापि तत्त्वानुसंधान अद्वैत कौस्तुभादिक ग्रंथनमें प्रकाशक परिणामही वृत्ति कहाहै । यातें माया और अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणामही वृत्ति शब्दका अद्वैतमतमें पारिभाषिक अर्थहै । सो वृत्तिज्ञान दो प्रकारका है एक प्रमारूप और दूसरा अप्रमारूप है ।

प्रमाणजन्य ज्ञानको प्रमा कहैहैं तासैं भिन्नको अप्रमा कहैहैं ॥ प्रमाज्ञान यथार्थही होवैहै ॥ औ अप्रमा ज्ञान दो प्रकारकाहै ॥ एक यथार्थहै ॥ और दूसरा भ्रमहै ॥ दोषजन्यको भ्रम कहैहैं ॥ और दोषजन्य न होवै किंतु इंद्रिय अनुमानादि प्रमाणतैं अथवा और किसी कारणतैं होवै सो यथार्थ कहियेहै ॥ जैसे शुक्तिमैं रजतका ज्ञान सादृश्य दोषजन्य है यातैं भ्रम है । मिश्रीमैं कटुताका ज्ञान पित्तदोषजन्यहै ॥ चंद्रमैं लघुताका ज्ञान और अनेक वृक्षोंमैं एकताका ज्ञान दूरतारूप दोषजन्य है यातैं भ्रम है । औ विचारसागरमैं दोषको अध्यासकी हेतुता खंडन करीहै ॥ ताका यह अभिप्रायहै ॥ प्रमाता प्रमाण प्रमेयके तीनि दोष अध्यासके हेतु नहीं कोई दोष होवै तो अध्यास होवैहै ॥ और सर्व दोषके अभावतैं जो अध्यास कहाहै सो प्रौढिवादसे कहाहै । जहां और कोई दोष न होवै तो अविद्याही दोषहै यातैं दोषजन्यको भ्रम कहैहैं ॥

और स्मृति ज्ञान सुख दुःखका प्रत्यक्ष ज्ञान ईश्वरवृत्ति ज्ञान दोषजन्य नहीं यातैं भ्रम नहीं और प्रमाणजन्य नहीं यातैं प्रमा नहीं किंतु भ्रम प्रमासैं विलक्षणहै परंतु यथार्थहै काहेतैं जा ज्ञानके विषयका संसारदशा मैं बाध न होवै सो यथार्थ कहियेहै ॥

स्मृतिज्ञानका हेतु संस्कारद्वारा पूर्व अनुभव है ॥ जहां यथार्थ अनुभवसैं स्मृति होवै तहां स्मृति यथार्थ ॥ औ भ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं स्मृति होवे सो अयथार्थ है ॥

धर्मादिक निमित्तसै अनुकूल प्रतिकूल पदार्थके संबंध होनेतैं अंतःकरणके सत्वगुणका औ रजोगुणका परिणामरूप सुख दुःख होवैहैं ॥ जो सुख दुःखका निमित्तहै ॥ ताही निमित्तसे सुख दुःखको विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवैहै ॥ ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी सुख दुःखकूं प्रकाशैहै ॥ सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति प्रमाणजन्य नहीं ॥ यातैं प्रमा नहीं ॥

और ईश्वरका ज्ञान इच्छाप्रयत्न न्यायमतमैं तो नित्यहै परंतु

श्रुतिमें ईश्वरके ज्ञानादिकनकी उत्पत्ति कहीहै ॥ यातैं नित्य नहीं किंतु प्राणियोंके कर्मनके अनुसार सृष्टिके आदिकालमें सर्व पदार्थको विषय करनेवाला ईश्वरका ज्ञान उपजैहै ॥ सो ज्ञान भूत भविष्यत् वर्तमान सकल पदार्थनके सामान्य विशेष भावको विषय करैहै ॥ और प्रलयपर्यंत स्थायीहै ॥ यातैं एक औ नित्य कहैहैं ॥ तैसें इच्छा औ प्रयत्नभी उत्पत्तिवालेहैं औ स्थायीहैं ॥ यातै प्रलयपर्यंत एक एक व्यक्तिहैं ॥ याके विषय ऐसी शंका करैहैं ॥ ईश्वरकी इच्छा प्रलयपर्यंत स्थायी होवै तौ वर्षा आतप शीत ईश्वरकी इच्छातैं होवैहैं ॥ यातैं प्रलयपर्यंत वर्षा तथा आतप वा शीत हुवा चाहिये सो शंका बनै नहीं ॥ काहेतैं ॥ ईश्वरकी इच्छा व्यक्ति नाना होवैं औ नित्यहोवैं तब यह दोष होवै सो ईश्वरकी प्रलयपर्यंत स्थायी इच्छाव्यक्ति नाना नहीं किंतु एक है ता एक इच्छातैं सारे पदार्थ जिस रीतिसे विषय करैहैं उस रीतिसे होवैहैं ॥ इतने काल वर्षा होवै इतने काल शीत होवै इतने काल आतप होवै इस रीतिसे ईश्वरकी इच्छा पदार्थनकूं विषय करैहै ॥ यातैं सारे पदार्थ किसी कालमें होवैहैं ॥ प्रलयपर्यंत स्थायी इच्छा एक है ॥ या पक्षमें दोष नहीं ॥ श्रुतिमें ज्ञान इच्छाकृतिकी उत्पत्ति कहीहै ॥ यातैं ज्ञानादिक उत्पत्तिवालेहैं ॥ औ आकाशकी नांई महाप्रलयपर्यंत स्थायीहैं औ ईश्वरके ज्ञानके प्रपंच स्थितिकालमें अनंतवार उत्पत्ति नाश मानै ताको यह पूछैं हैं ईश्वरमैं कोई एक ज्ञानव्यक्ति प्रपंचकी स्थितिकालमैं सदा बनी रहैहै ॥ अथवा प्रपंच होतैं किसी कालमैं ज्ञानहीन ईश्वर रहैहै ॥ जो ऐसे कहै ज्ञानहीन ईश्वर किसी कालमें रहैहै ॥ तौ उस कालमें ईश्वर अज्ञ होवैगा ॥ और जो ऐसे कहै कोई ज्ञानव्यक्ति ईश्वरमैं सदा रहैहै ॥ तौ अनंत ज्ञानकी अनंत उत्पत्ति अनंत नाश माननै निष्फल है ॥ एकही ज्ञान सृष्टिके आदिकालमें उत्पन्न हुवा महाप्रलयपर्यंत स्थायी है ॥ सो ईश्वरके ज्ञान इच्छाकृति विसंवादी नहीं किन्तु संवादी हैं

निष्फलप्रवृत्तिके जनक ज्ञानादिक **विसंवादि** कहियेहैं ॥ तासैं भिन्न **संवादी** कहियेहैं ॥ जीवके ज्ञान इच्छाकृति संवादि औ विसंवादि भेदसे दो प्रकारकेहैं ॥ ईश्वरके ज्ञान इच्छाकृति निष्फल प्रवृत्तिके जनक नहीं ॥ यातें विसंवादी नहीं किंतु संवादीहैं । विसंवादी ज्ञानको **भ्रम** कहैहैं ॥ संवादीको **यथार्थ** कहैहैं ॥ प्रमाणजन्य यथार्थ ज्ञानको **प्रमा** कहैहैं ॥ जैसे जीवका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूपहै ॥ तैसेही ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूपहै ॥ जीवनके अदृष्टजन्यहै प्रमाणजन्य नहीं ॥ यातें प्रमा नहीं ॥ दोषजन्य नहीं ॥ औ निष्फलप्रवृत्तिका जनक नहीं ॥ यातें भ्रमभी नहीं ॥ किंतु यथार्थ हैं ॥ प्रमाणजन्य ज्ञानके प्रमा कहैहैं ॥

प्रमाणके भेदका कथन ॥ २ ॥

प्रमाणके षट् भेदहैं प्रत्यक्ष १ अनुमान २ शब्द ३ उपमान ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ ॥ प्रत्यक्षप्रमाका जो करण सो **प्रत्यक्षप्रमाण** कहियेहैं ॥ अनुमितिप्रमाके करणको **अनुमानप्रमाण** कहैहैं ॥ शाब्दी प्रमाके करणको **शब्दप्रमाण** कहैहैं ॥ उपमितिप्रमाके करणको **उपमानप्रमाण** कहैहैं ॥ अर्थापत्तिप्रमाके करणको **अर्थापत्तिप्रमाण** कहैहैं ॥ अभावप्रमाके करणको **अनुपलब्धिप्रमाण** कहैहैं ॥ प्रत्यक्ष औ अर्थापत्तिप्रमाणके औ प्रमाके एकही नामहैं । भट्टके मतमें षट् प्रमाण मानेहैं॥औ वेदांतग्रंथनमेंभी षट्प्रमाणही लिखेहैं । यद्यपि सूत्रकार भाष्यकारने प्रमाणसंख्या नहीं लिखी तथापि सिद्धांतका अविरोधी जो भट्टका मतहै ताको अद्वैतवादमें मानेहैं ॥ यातें वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें षट् प्रमाणही लिखेहैं ॥

करणका लक्षण ॥ ३ ॥

औ न्यायशास्त्रमें चारि प्रमाण मानैहैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिको नहीं मानैहैं । तहां यह न्यायशास्त्रका मत है ॥ जो प्रमाका करण होवै सो **प्रमाण** कहियेहै । प्रत्यक्ष प्रमाके करण नेत्रादिक इंद्रियहैं ॥ यातैं नेत्रादिक

इंद्रियनको **प्रत्यक्षप्रमाण** कहैहैं । व्यापारवाला जो असाधारण कारण होवै सो **करण** कहियेहै । ईश्वर औ ताके ज्ञान इच्छा कृति दिशा काल अदृष्ट प्रागभाव प्रतिबंधकाभाव ये **नव साधारण कारण**हैं ॥ इनमैं भिन्न जो कारण सो **असाधारण कारण** कहियेहै ॥ असाधारण कारणभी दो प्रकारका होवै है ॥ एकतो व्यापरवाला होवैहै दूसरा व्यापररहित होवैहै ॥ कारणतैं उपजिके कार्यको उपजावै सो **व्यापार** कहियेहै ॥ जैसे कपाल घटका कारण है औ दोकपालोंका संयोगभी घटका कारणहै ॥ तहां कपालकी कारणतामैं **संयोग व्यापार**है ॥ काहेतें कपालसंयोग कपालतें उपजैहै औ कपालके कार्य घटको उपजावैहै ॥ यातें संयोगरूप व्यापारवाला कारण कपालहै ॥ औ जो कार्यको किसी द्वारा उपजावै नहीं किंतु आपही उपजावै सो **व्यापरहीन कारण** कहियेहै । ईश्वर आदि जो नव साधारण कारण तिनसैं भिन्न व्यापारवाला कारण **करण** कहियेहै ऐसा कपालहै ॥ यातें घटका कपाल **करण** कहियेहै ॥ औ कपालका संयोग असाधारण तो है व्यापारवाला नहीं ॥ यातें करण नहीं कहियेहै ॥ केवल घटका कारणही कहियेहै ॥

प्रत्यक्षप्रमाणके भेदको कथन ॥ ४ ॥

तैसें प्रत्यक्षप्रमाके नेत्रादिक इंद्रिय करणहैं ॥ काहेतें नेत्रादिक इंद्रियनका अपने अपने विषयतैं संबंध नहीं होवै तो प्रत्यक्ष प्रमा होवै नहीं इंद्रिय विषयका संबंध होवै तब होवैहै ॥ यातें इंद्रिय विषयका संबंध इंद्रियते उपजिके प्रत्यक्षप्रमाको उपजावैहै ॥ सो **व्यापार**है । संबंधरूप व्यापारवाले प्रत्यक्षप्रमाके असाधारण कारण इंद्रियहै यातें इंद्रियनको **प्रत्यक्षप्रमाण** कहैहैं ॥ इंद्रियजन्य यथार्थ ज्ञानको न्यायमतमें **प्रत्यक्षप्रमा** कहैहैं ॥ प्रत्यक्षप्रमाके करण इंद्रिय षट् हैं यातें **प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं** ॥ श्रोत्र १ त्वक् २ नेत्र ३ रसन ४ घ्राण ५ मन ६ ये **षट् इंद्रियहैं** ॥ श्रोत्रजन्य यथार्थ ज्ञान **श्रोत्रप्रमा**

कहियेहै ॥ १ ॥ त्वक्इंद्रियजन्य यथार्थज्ञान **त्वाचप्रमा** कहियेहै ॥ २ ॥ नेत्रइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान **चाक्षुषप्रमा** कहियेहै ॥ ३ ॥ रसनइंद्रिय-जन्य यथार्थज्ञान **रासनप्रमा** कहियेहै ॥ ४ ॥ घ्राणइंद्रियजन्य यथार्थ ज्ञान **घ्राणजप्रमा** कहियेहै ॥ ५ ॥ मनइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान **मानस-प्रमा** कहियेहै ॥ ६ ॥ न्यायमतमें शुक्तिरजतादिक भ्रमभी इंद्रियज-न्यहै ॥ परंतु केवल इंद्रियजन्य नहीं; किंतु दोषसहित इंद्रियजन्यहै । बिसंवादीहै यथार्थ नहीं यातैं शुक्तिमें रजतका ज्ञान चाक्षुष ज्ञान तो है; चाक्षुषप्रमा नहीं ॥ ऐसेही अन्य इंद्रियतैंभी जो भ्रम होवै सो प्रमा नहीं ॥

प्रत्यक्षप्रमाके श्रोत्रजप्रमाका निरूपण ॥ ८ ॥

श्रोत्रइंद्रियतैं शब्दका ज्ञान होवैहै ॥ औंर शब्दमें जो शब्दत्व जाति ताका भी ज्ञान होवैहै ॥ तैसें शब्दत्वके व्यापकत्वादिकनका औ तारत्वादिकनका ज्ञान होवैहै ॥ तैसें शब्दाभाव औ शब्दमें तारत्वादिकनके अभावका ज्ञान होवैहै ॥ जाका श्रोत्रइंद्रियसें ज्ञान होवै ताविषयमैं श्रोत्रइंद्रियका संबंध कह्या चाहिये ॥ यातैं संबंध कहियेहै ॥ न्यायमतमें चार इंद्रिय तो वायु अग्नि जल पृथिवीतैं क्रमसे उपजैंहैं ॥ औ श्रोत्र मन नित्यहैं ॥ कर्णगोलकमें स्थित आकाश-को श्रोत्र कहैहैं ॥ जैसें वायु आदिकनतें त्वक् आदिक इंद्रिय उपजैहैं; तैसें आकाशतैं श्रोत्र उपजैहै । यह नैयायिक नहीं मानैहैं ॥ किंतु कर्णमें जो आकाश ताहीको श्रोत्र कहैहैं ॥ औ गुणका गुणीमे समवायसंबंध कहैहैं ॥ शब्द आकाशका गुणहै ॥ यातैं आकाशरूप श्रोत्रमे शब्दका **समवायसंबंधहै** ॥ यद्यपि भेरीआदिक देशमें जो आकाश तामैं शब्द उपजैहै औ कर्णउपहित आकाशको श्रोत्र कहैहैं ॥ यातैं भेरी आदिक उपहित आकाशमैं शब्दका संबंधहै; कर्णउपहित आकाशमैं नहीं ॥ तथापि भेरी दंडके संयोगतैं भेरीउपहित आकाशमैं शब्द उपजैहै ॥ ताका कर्णउपहित आकाशतैं संबंध नहीं ॥ यातैं प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥

परंतु ता शब्दसे और शब्द दश दिशा उपहित आकाशमें उपजैंहैं तिनतैं और उपजैंहैं ॥ कर्णउपहित आकाशमें जो शब्द उपजैहै ॥ ताका प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै औरका नहीं ॥ शब्दकी प्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ श्रोत्रइंद्रिय करणहै ॥ औ त्वाच आदिक प्रत्यक्षज्ञानमें तो सारे विषयनका इंद्रियनसैं संबंधही व्यापार है औ श्रोत्रप्रमामें विषयसे इंद्रियका व्यापार संबंध बनै नहीं ॥ काहेतें और स्थानोंमें विषयनका इंद्रियनतें संयोग संबंध है ॥ औ शब्दका श्रोत्रमे समवायसंबंध है ॥ न्यायमतमें संयोग जन्य है समवाय नित्यहै ॥ त्वक्आदिक इंद्रियनका घटादिकनतें संयोग संबंध त्वक्आदिक इंद्रियनतें उपजैहै ॥ औ प्रमाको उपजावैहै ॥ यातें व्यापारहै तैसे शब्दका श्रोत्रसे समवायसंबंध श्रोत्रजन्य नहीं ॥ यातें व्यापार बनै नहीं ॥ किंतु श्रोत्रमनका संयोग व्यापार है । संयोग दोके आश्रित होवैहै ॥ जिनके आश्रित संयोग होवैहै सो दोनों संयोगके उपादान कारण होवैहैं ॥ श्रोत्रमनके संयोगके उपादान कारण श्रोत्र मन दोनोंहैं ॥ यातैं श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रजन्यहै, औ श्रोत्रजन्य ज्ञानका जनकहै ॥ यातें व्यापारहै ॥

याके विषे ऐसी शंका होवैहै ॥ श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रजन्य तो है ॥ परंतु श्रोत्रजन्यप्रमाका जनक किस रीतिमेंहै ॥

ताका यह समाधानहैः—आत्ममनका संयोग तो सर्वज्ञानका साधारण कारणहै ॥ यातें ज्ञानकी सामान्य सामग्री आत्ममनका संयोगहै ॥ औ प्रत्यक्षआदिक ज्ञानकी विशेष सामग्री इंद्रियादिकहैं ॥ यातें श्रोत्रजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानके पूर्वभी आत्ममनका संयोग होवैहै तैसे मनका औ श्रोत्रका संयोग होवैहै ॥ मनका औ श्रोत्रका संयोग हुये विना श्रोत्रजन्य ज्ञान होवै नहीं काहेतें अनेक इंद्रियनका अपने अपने विषयनतें एक कालमें संबंध हुये भी एककालमें तिन सर्व विषयनके इंद्रियनतें ज्ञान होते नहीं ॥ ताके विषै यह हेतुहै ॥ मनके संयोगवाले इंद्रियका विषयतैं संबंध

होवै तब ज्ञान होवैहै ॥ मनसे असंयुक्त इंद्रियका अपने विषयके साथ संबंध हुयेभी ज्ञान होवै नहीं ॥ न्यायमतमें परम अणु मन है ॥ यातें एक कालमें अनेक इंद्रियनतें मनका संयोग संभवै नहीं ॥ इस हेतुतें अनेक विषयनका अनेक इंद्रियनतें एक कालमें ज्ञान होवै नहीं ॥ जो ज्ञानका हेतु इंद्रियमनका संयोग नहीं होवै तौ एककालमें अनेक इंद्रियनका विषयनतें संबंध हुये एककालमें अनेक ज्ञान हुये चाहिये ॥ इस रीतिसे चक्षुरादि इंद्रियनका मनसे संयोग चाक्षुषादि ज्ञानका असाधारण कारणहै ॥ त्वाचज्ञानमें त्वक्मनका संयोग कारण है ॥ औ रासनज्ञानमें रसनामनका संयोग कारणहै तैसे चाक्षुष ज्ञानमें नेत्रमनका संयोग कारणहै ॥ औ घ्राणजज्ञानविषे घ्राणमनका संयोग कारणहै श्रोत्रज ज्ञानमें श्रोत्रमनका संयोग कारणहै ॥ इस रीतिसे श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रसे उपजिकै श्रोत्रज ज्ञानका जनकहै ॥ यातें व्यापार है ॥ आत्ममनका संयोग सर्वज्ञानमें हेतुहै ॥ यातें पहले आत्ममनका संयोग होवै तिसते अनंतर जो इंद्रियजन्य ज्ञान उपजैगा ता इंद्रियसे आत्मसंयुक्त मनका संयोग होवैहै ॥ फेरि मनसंयुक्त इंद्रियका विषयतें संबंध होवै तब बाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै ॥ इंद्रिय विषयके संबंध बिना बाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं ॥

विषयका इंद्रियसे संबंध अनेक प्रकारकाहै ॥ जहांशब्दका श्रोत्रसे प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तहां केवल शब्दही श्रोत्रजन्य ज्ञानका विषय नहींहै ॥ किंतु शब्दके धर्म शब्दत्वादिकभी ता ज्ञानके विषयहैं ॥ शब्दका तो श्रोत्रमें समवायसंबंध है ॥औ शब्दके धर्म जो शब्दत्वादिक तिनसें श्रोत्रका समवेत समवायसंबंध है ॥ काहेतें गुणगुणीकी नाई जातिका अपने आश्रयमें समवाय संबंध होवैहै ॥ यातैं शब्दत्व जातिका शब्दमें समवाय संबंधहै ॥ समवाय-संबंधसे जो रहै ताको समवेत कहैहैं ॥ श्रोत्रमें समवाय संबंधसे रहै जो शब्द सो श्रोत्रसमवेतहै ॥ ता श्रोत्रसमवेत शब्दमें शब्दत्वका समवाय

होनेतें श्रोत्रका शब्दत्वसे **समवेत समवाय संबंध** है ॥ तैसें श्रोत्रमें शब्दकी प्रतीति नहीं होवै तब शब्दाभावका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां शब्दाभावका श्रोत्रसे **विशेषणता संबंध** है ॥ जिस अधिकरणमें पदार्थका अभाव होवै तिस अधिकरणमें पदार्थके अभावका विशेषणता संबंध कहियेहै ॥ जैसें वायुमें रूप नहींहै ॥ यातें वायुमें रूपाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ जहां पृथिवीमें घट नहींहै तहां पृथिवीमें घटाभावका विशेषणता संबंध है ॥ इस रीतिसे शब्दशून्य श्रोत्रमें शब्दाभावका **विशेषणता संबंध** है ॥ यातें श्रोत्रमे शब्दाभावका विशेषणता संबंध शब्दाभावके प्रत्यक्ष ज्ञानका हेतुहै जैसें श्रोत्रमे ककारादिक शब्दका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां समवायसंबंधहै तैसे ककरादिकनमें कत्वादिक जो जाति तिनका समवेतसमवाय संबंधसे प्रत्यक्ष होवैहै ॥ औ श्रोत्रमें शब्दाभावका विशेषणतासंबंधसे प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसें श्रोत्रसमवेत ककारमें खत्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां श्रोत्रका खत्वाभावमें **समवेत विशेषणता संबंध** है ॥ काहेतें श्रोत्र में **समवेत** कहिये समवाय संबंधसे रहै ॥ जो ककारतामें खत्वाभावका विशेषणता संबंधहै । इसतें आदि लेके अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रमें अनेक संबंधहैं ॥ परंतु विशेषणतापना सर्व अभावनके संबंधनमेंहै । यातें अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रका एकही विशेषणता संबंधहै ॥ इस रीतिसे श्रोत्रजन्य प्रमाके हेतु तीन संबंधहैं ॥ शब्दके ज्ञानका हेतु **समवाय संबंध** है ॥ औ शब्दके धर्म शब्दत्वकत्वादिकनके ज्ञानका हेतु **समवेत समवाय संबध** है औ अभावके श्रोत्रजन्य ज्ञानविषें **विशेषणता संबंध** है ॥ सो विशेषणता नानाप्रकारकी है ॥ शब्दाभावके प्रत्यक्षमें शुद्ध विशेषणता संबंधहै ॥ ककारविषे खत्वाभावके प्रत्यक्षमें **समवेत विशेषणता** है ॥ विशेषणता संबंधके अनंत भेदहैं तौभी विशेषणतापना सारहै यातें विशेषणता एकही कहियेहैं ॥ **शब्दके दो भेद हैं** ॥ एक तो भेरी आदिक देशमें ध्वनिरूप शब्द होवैहै ॥ औ दूसरा कंठादिक देशमें वायुके संयोगते वर्णरूप शब्द

होवैहै ॥ श्रोत्रइंद्रियतैं दोनों प्रकारके शब्दका प्रत्यक्ष होवैहै । औ वर्णरूप शब्दमें जो कत्वादिक जातिहैं तिन्हका जैसें समवेत समवाय संबंधसे प्रत्यक्ष होवैहै। तैसें ध्वनिरूप शब्दमें जो तारत्वमंदत्वादिक धर्महैं ॥ तिन्हकाभी श्रोत्रमें प्रत्यक्ष होवैहै । परंतु कत्वादिक तो वर्णनके धर्म जातिरूप हैं ॥ यातें कत्वादिकनका ककारादिरूप शब्दसें समवाय संबंधहै ॥ औ ध्वनि शब्दके तारत्वादिक धर्म जातिरूप नहीं न्यायमतमें उपाधिरूप है ॥ याते तारत्वादिकनका ध्वनिरूप शब्दमें समवाय संबंध नहीं **स्वरूपसंबंध** है ॥ काहेतें न्यायमतमें जातिरूपधर्मका गुणका क्रियाका अपनें आश्रयमें **समवायसंबंध** कहैहैं ॥ जातिगुणक्रियासें भिन्न धर्मकूं **उपाधि** कहैहैं ॥ उपाधिका औ अभावका जो अपनें आश्रयतें संबंध ताकूं **स्वरूपसंबंध** कहैहैं ॥ स्वरूपकूंही **विशेषणता** कहैहैं ॥ यातें जातिसैं भिन्न जो तारत्वादिक धर्म तिन्हका ध्वनिरूप शब्दसें स्वरूपसंबंधहै ॥ ताहीकूं विशेषणता कहैहैं ॥ यातें श्रोत्रमें समवेत जो ध्वनि तामें तारत्व मंदत्वका विशेषणता संबंध होनेतें श्रोत्रका औ तारत्व मंदत्वका **श्रोत्रसमवेतविशेषणता संबंध** है इस रीतिसें श्रोत्रइंद्रिय श्रोत्रप्रत्यक्षप्रमाका करणहै ॥ श्रोत्रमनका संयोग व्यापारहै शब्दादिकनका प्रत्यक्षप्रमारूप ज्ञान फलहै ॥

प्रत्यक्षप्रमाके भेद त्वाचप्रमाका निरूपण ॥ ६ ॥

त्वक् इंद्रियतें स्पर्शका ज्ञान होवैहै तथा स्पर्शके आश्रयका ज्ञान होवैहै ॥ औ स्पर्शके आश्रित जो स्पर्शत्व जाति ताका औ स्पर्शाभावका बी त्वक्इंद्रियतें प्रत्यक्ष होवैहै ॥ काहेतें जा इंद्रियतें जिस पदार्थका ज्ञान होवै ता पदार्थके अभावका औ ता पदार्थकी जातिका तिस इंद्रियतें ज्ञान होवैहै ॥ पृथिवी जल तेज इन तीन द्रव्यनका त्वक्इंद्रियतें प्रत्यक्षज्ञान होवैहै ॥ वायुका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं ॥ काहेतें प्रत्यक्ष योग्यरूप औ प्रत्यक्षयोग्यस्पर्श जा द्रव्यमें दोनूं होवैं ता द्रव्यका त्वाचप-

त्यक्ष होवैहै ॥ वायुमें स्पर्श तो है रूप नहीं ॥ यातैं वायुका त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ वायुके स्पर्शका त्वक् इंद्रियतैं प्रत्यक्ष होवैहै ॥ स्पर्शके प्रत्यक्षतैं वायुका अनुमितिज्ञान होवैहै ॥

मीमांसाके मतमें वायुका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ ताका यह अभिप्रायहै ॥ प्रत्यक्षयोग्य स्पर्श जा द्रव्यमैं होवै ता द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ त्वक् इंद्रियजन्य द्रव्यके प्रत्यक्षमैं रूपकी अपेक्षा नहीं केवल स्पर्शकी अपेक्षा है ॥ जैसें द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें उद्भूतरूपकी अपेक्षा है स्पर्शकी नहीं ॥ काहेतैं ॥ जो द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षमैं उद्भूतस्पर्शकी अपेक्षा होवै तो दीपकी तथा चंद्रकी प्रभामें उद्भूत स्पर्शहै नहीं ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होवैगा ॥ और होवैहै ॥ और अणुकमें स्पर्श तो है उद्भूतस्पर्श नहीहै ॥ यातैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं केवल चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं केवल उद्भूतरूपवाले द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसें केवल उद्भूतस्पर्शवाले द्रव्यका त्वाच प्रत्यक्ष होवैहै ॥ वायुमें रूपतो नहींहै उद्भूतस्पर्शहै ॥ यातैं चाक्षुषप्रत्यक्ष तो वायुका नहीं होवैहै ॥ त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ और सर्व लोकनकूं ऐसा अनुभव होवैहै ॥ वायुका मेरेकूं त्वचासें प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं वायुकाबी त्वक्इंद्रियतैं प्रत्यक्षहोवै है ॥ यह मीमांसाका मतहै ॥

परंतु ॥ न्यायसिद्धांतमैं वायुप्रत्यक्ष नहीं ॥ पृथिवी जल तेजमैंभी जहां उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्शहै ताका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ औरका नहीं प्रत्यक्ष योग्य जो रूप औ स्पर्श सो उद्भूत कहियेहै ॥ जैसें घ्राण रसन नेत्रमें रूप औ स्पर्श दोनूंहैं ॥ परंतु उद्भूत नहीं ॥ यातैं पृथिवी जल तेजरूपबी तिन इंद्रियनका त्वाचप्रत्यक्ष औ चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ औ झरोखेमैं जो परम सूक्ष्म रज प्रतीति होवै सो अणुकरूप पृथिवीहै तामैं उद्भूतरूपहै ॥ यातैं अणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष तो होवैहै ॥ उद्भूत स्पर्शके अभावतैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ अणुकमैं स्पर्शबी है । परंतु सो स्पर्श उद्भूत नहीं ॥ वायुमैं उद्भूतस्पर्श तो है रूप नहीं ॥ यातैं

वायुका त्वाचप्रत्यक्ष तथा चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ यातैं यह सिद्ध हुवा द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें उद्भूतरूप हेतुहै ॥ औ द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षमैं उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्श दोनूं हेतुहैं ॥ जा द्रव्यमैं उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्श होवैं ताकाही त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जा द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवै ता द्रव्यकी प्रत्यक्षयोग्य जातिका बी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जैसैं घटका त्वाचप्रत्यक्ष होवै तहां घटमें प्रत्यक्षयोग्य जाति घटत्वहै ताकाबी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसें द्रव्य में जो स्पर्श संख्या परिमाण संयोग विभागादिक **योग्यगुण** तिन्हका औ स्पर्शादिकनमें स्पर्शत्वादिक जाति तिनकाबी त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ औ कोमल द्रव्यमें कठिन स्पर्शका अभावहै शीतल जलमैं उष्णस्पर्शका अभावहै ताकाबी त्वाचप्रत्यक्ष होवै है तहां घट आदिक द्रव्यतें इंद्रियका संयोग संबंधहै॥ क्रियाजन्य संयोग होवैहै ॥ औ दो द्रव्यका संयोग होवैहै ॥ त्वक्इंद्रिय वायुके परमाणुजन्यहै ॥ यातें वायुरूप द्रव्यहै घटबी पृथिवीरूप द्रव्यहै ॥ कहूं तो त्वक् इंद्रियका गोलक जो शरीर ताकी क्रियातें त्वक् घटका संयोग होवैहै ॥ औ कहूं घटकी क्रियातैं त्वक्घटका संयोग होवैहै ॥ कहूं दोनूंमें क्रियातें संयोग होवैहै ॥ नेत्रमें तौ गोलकनें छोडिकै केवल इंद्रियमें क्रिया होवैहै ॥ औ त्वक्इंद्रियमें गोलकनें छोडिकै स्वतंत्रमैं क्रिया कदेबी होवै नहीं ॥ यातें त्वक्इंद्रियका गोलक जो शरीर ताकी क्रियातें वा घटादिक विषयकी क्रियातैं वा दोनूंकी क्रियातें त्वक्का घटादिक द्रव्यतें संयोग होवै तब त्वाचज्ञान होवैहै ॥ तहां त्वाचप्रत्यक्ष प्रमा फलहै ॥ त्वक्इंद्रिय करणहै त्वक्इंद्रियका घटसैं संयोग व्यापारहै ॥ काहेतें त्वक् औ घटके संयोगके उपादानकारण घट त्वक् दोनूंहैं ॥ यातें त्वक् इंद्रियजन्य वह संयोगहै ॥ औ त्वक्इंद्रियका कार्य जो त्वाच प्रमा ताका जनकहै इस कारणतैं त्वक्का घटसैं संयोग व्यापारहै ॥ जहां त्वक्सैं घटकी घटत्व जातिका औ स्पर्शादिक गुणनका त्वाचप्रत्यक्ष होवै तहां त्वक्इंद्रिय करणहै औ

प्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ औ संयुक्त समवायसंबंध व्यापारहै ॥ काहेतै त्वक्-इंद्रियतैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो घट तामैं घटत्व जातिका औ स्पर्शादिक गुणनका समवायहै ॥ तैसें घटादिकनके स्पर्शादिक गुण-नमैं जो स्पर्शत्वादिक जाति तिनकी त्वाच प्रत्यक्ष प्रमा होवै तहां त्वक्इंद्रिय करणहै स्पर्शत्वादिकनकी प्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ संयुक्त समवेत समवाय संबंधहै सो व्यापारहै ॥ काहेतैं ॥ त्वक्इंद्रियतैं संयुक्त जो घट तामैं समवेत कहिये समवाय संबंधतैं रहनेवाले स्पर्शादिक तिनमैं स्पर्शा-दिकजातिका समवायहै ॥ **संयुक्तसमवाय** औ **संयुक्तसमवेतसमवाय** इन दोनूं संबंधमैं समवाय भाग तो यद्यपि नित्यहै इंद्रियजन्य नहीं ॥ तथापि संयोगवालेकूं **संयुक्त**कहैहैं ॥ सो संयोगजन्यहै ॥ यातैं त्वक् इंद्रि-यका संयोग त्वक्जन्य होनेतैं त्वक्संयुक्त समवाय औ त्वक्संयुक्त सम-वेतसमवाय त्वक्इंद्रियजन्यहै ॥ औ त्वक् इंद्रियजन्य जो त्वाचप्रमा ताके जनकहै ॥ यातैं व्यापारहै ॥ जहां पुष्पादिक कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शके अभावका औ शीतल जलमैं उष्णस्पर्शके अभावका त्वाच प्र-त्यक्ष होवै तहां त्वक् इंद्रिय करणहै ॥ अभावकी त्वाचप्रमा फलहै औ इंद्रियसैं अभावका त्वक्संयुक्त विशेषणता संबंधहै सो **व्यापारहै** ॥ का-हेतै ॥ त्वक्इंद्रियका घटादिक द्रव्यतैं संयोगहै यातैं त्वक्संयुक्त कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ तैसैं त्वक्संयुक्त शीतल जलमैं उष्णस्पर्शाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ जहां घटस्पर्शमैं रूपत्वके अभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवै ॥ तहां त्वक्संयुक्त घटमैं समवेत जो स्पर्श ताके विषै रूपत्वाभावका विशेषणतासंबंध होनेतै त्वक्संयुक्त समवेत विशेषणता संबंधहै ॥ इस रीतिसैं ॥ **त्वाचप्रत्यक्षमैं च्यारि** संबंधहेतुहैं ॥ त्वक्संयोग १ ॥ त्वक्संयुक्तसमवाय ॥ २ ॥ त्वक्संयुक्तसमवेतसमवाय ॥ ३ ॥ त्वक्सं-बंधविशेषणता ॥ ४ ॥ त्वक्से संबंधवालेकूं त्वक्संबंध कहैहैं ॥

जहां कोमल द्रव्यमैं कठिन स्पर्शाभावहै ॥ तहां त्वक्के संयोग संबंधवाला कोमल द्रव्यहै ॥ ता त्वक्संबंध कोमलद्रव्यमैं कठिन स्पर्शाभावका विशेषणतासंबंध स्पष्टहीहै ॥ जहां स्पर्शमैं रूपत्वाभावका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां त्वक्का स्पर्शतैं संयुक्तसमवायसंबंधहै ॥ त्वक्सं संयुक्तसमवाय संबंधवाला होनेतैं त्वक्संबंध स्पर्शहै तामैं रूपत्वा-भावका विशेषणता संबंधहै ॥ इस रीतिसे त्वाच प्रमाके हेतु संयोगादिक च्यारि संबंधहैं ॥

तैसैं चाक्षुषप्रमाके हेतुभी नेत्रसंयोग १ ॥ नेत्रसंयुक्तसमवाय २ ॥ नेत्रसंयुक्तसमवेत समवाय ॥ ३ ॥ नेत्रसंबंधविशेषणता ॥ ४ ॥ ये च्यारिसंबंधहैं ॥ सोई व्यापार है जहां नेत्रमैं घटादिक द्रव्यका चाक्षुप प्रत्यक्षहोवै ॥ तहां नेत्रकी क्रियामैं द्रव्यके साथ संयोग-संबंधहै सो संयोग नेत्रजन्य है औ नेत्रजन्य जो चाक्षुष प्रमा ताका जनक है ॥ यातैं व्यापारहै ॥ जहां नेत्रसैं द्रव्यकी घटत्वादिक जातिका औ रूपसंख्यादिक गुणनका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां नेत्रसंयुक्त द्रव्यमैं घटत्वादिक जातिका औ रूपादिक गुणनका समवाय संबंधहै ॥ यातैं द्रव्यकी जाति औ गुणनके चाक्षुपप्रत्यक्षमैं नेत्रसंयुक्त समवायसंबंध है ॥ जहां गुणमैं रहनेवाली जातिका चाक्षुप प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां रूपत्वादिक जातिमैं नेत्रका संयुक्तसमवेतसमवाय संबं है ॥ काहेतैं नेत्रसैं संयुक्त घटादिकनमैं समवेत जो रूपादिक तिनमैं रूपत्वादिकनका समवायहै॥ यद्यपि नेत्रसैं संयोग सकल द्रव्यनका संभवैहै ॥ तथापि उद्भूतरूपवाले द्रव्यतैं नेत्रका संयोग चाक्षुषप्रत्यक्षका हेतुहै ॥ औ द्रव्यसैं नेत्रका संयोग चाक्षुष प्रत्यक्षका हेतु नहीं ॥ पृथिवी जल तेज ये तीनि द्रव्य रूपवालेहैं और नहीं ॥ यातैं पृथिवीजलतेजकाही चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ इनमैं भी जहां उद्भूतरूप होवै ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जामैं अनुद्भूतरूप होवै ताका चाक्षषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ जैसैं घ्राण रसन नेत्र ये तीनं इंद्रिय

क्रमतैं पृथिवी जल तेजरूपहै ॥ औ तीनूमैं रूपहै॥परंतु इनका रूप अनुद्भूतहै उद्भूत नहीं ॥ यातैं इनका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ यातैं यह सिद्ध हुआ ॥उद्भूतरूपवाले पृथिवी जल तेजही चाक्षुषप्रत्यक्षके विषयहैं ॥ तिनमें कोई गुण चाक्षुषप्रत्यक्ष योग्यहै ॥ कोई चाक्षुषप्रत्यक्ष योग्य नहीं ॥ जैसे पृथिवीमें रूप १ ॥ रस २ ॥ गंध ३ ॥ स्पर्श ४ ॥ संख्या ५ ॥ परिमाण ६ ॥ पृथक्त्व ७ ॥ संयोग ८ ॥ विभाग ९ ॥ परत्व १० ॥ अपरत्व ११ ॥ गुरुत्व १२ ॥ द्रवत्व १३ ॥ संस्कार १४ ॥ ये चतुर्दश गुणहैं ॥ इनमें गंधकूं छोडिके स्नेहकूं मिलावै तो चतुर्दश जलके हैं ॥ इनमें रसगंधगुरुत्व स्नेहकूं छोडिके एकादश तेजकेहैं ॥ इनमें रूप संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोगविभाग परत्व अपरत्व द्रवत्वइतने गुण चाक्षुषप्रत्यक्ष योग्यहैं ॥ और नहीं ॥ यातैं नेत्रसंयुक्त समवायरूप संबंध तो सर्वगुणोंसें है ॥ नेत्रके योग्य सारे नहीं जितने नेत्रके योग्यहैं उतने गगनस्पाही नेत्रसंयुक्त समवाय संबंधमें प्रत्यक्ष होवैहैं ॥ स्पर्शमें त्वक् इंद्रियकी योग्यताहै नेत्रकी नहीं ॥ रूपमें नेत्रकी योग्यताहै त्वक्की योग्यता नहीं ॥ संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व द्रवत्वमें त्वक् औ नेत्र दोनूंकी योग्यताहै यातें त्वक्संयुक्तसमवाय औ नेत्रसंयुक्तसमवाय दोनूं संबंध संख्यादिकनके त्वाचप्रत्यक्ष औ चाक्षुषप्रत्यक्षके हेतुहैं ॥ रसमें केवल रसनकी योग्यताहै ॥ अन्य इंद्रियकी नहीं गंधमें घ्राणकी योग्यताहै ॥ अन्यकी नहीं ॥ जिस इंद्रियकी योग्यता जिसगुणमें है तिस इंद्रियतैं ता गुणका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ अन्यके साथि इंद्रियके संबंध हुयेबी प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ तैसैं घटादिकनमें जो रूपादिक चाक्षुषज्ञानके विषयहैं ॥ तिनकी रूपत्वादिक जातिका नेत्रसंयुक्तसमवेतसमवायतैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहैं ॥ और जो रसादिक चाक्षुषज्ञानके विषय नहीं तिनमैं रसत्वादिक जातिसैं नेत्रका संयुक्तसमवेतसमवाय संबंधहै तौ बी चाक्षषप्रत्यक्ष होवै

नहीं ॥ यातैं यह सिद्ध हुवा उद्भूतरूपवाले द्रव्यका नेत्रकै संयोगतैं चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ उद्भूतरूपवाले द्रव्यकी नेत्रयोग्य जातिका औ नेत्रयोग्य गुणका संयुक्तसमवायसंबंधतैं चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसें नेत्रयोग्य गुणकी रूपत्वादिक जातिका नेत्रसंयुक्त समवेतसमवाय संबंधतैं चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै तैसें अभावका नेत्रसंबंधसे चाषक्षुप्रत्यक्ष होवैहै ॥ जहां भूतलमैं घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्षहोवै ॥ तहां भूतलमें नेत्रका संयोगसंबंधहै ॥ यातैं नेत्रसंबंध भूतलमैं घटाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ तैसें नील घटमैं पीतरूपके अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै ॥ तहां नेत्रसें संयोग होनेतें नेत्रसंबंध नीलघटमें पीतरूपाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ तैसें घटके नीलरूपमें पीतत्व जातिके अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां नेत्रसें संयुक्तसमवायसंबंधवाला नीलरूपहै ॥ यातें नेत्रसंबंध जो नीलरूप तामें पीतत्वाभावका विशेषणता संबंध होनेतें नेत्रसंबद्ध विशेषणतासंबंध है इस रीतिसें ॥ नेत्रसंयोग १ ॥ औ नेत्रसंयुक्तसमवाय २ ॥ तथा नेत्रसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ ॥ तैसें नेत्रसंबद्धविशेषणता ४ ॥ ये च्यारिसंबंध चाक्षुषप्रमाके हेतुहैं ॥ सो तो व्यापारहै ॥ औ नेत्र करणहै चाक्षुषप्रमा फलहै ॥ जैसें त्वक् औ नेत्रसे द्रव्यका प्रत्यक्ष होवैहै ॥

प्रत्यक्षप्रमाके भेद रासनप्रमाका निरूपण ॥ ८ ॥

तैसें रसनइंद्रियसें द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ किंतु रसका औ रसत्व मधुरत्वादिक रसकी जातिका तथा रसाभावका मधुरादि रसमें अम्लत्वादिक जातिके अभावका रासन प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातें रासन प्रत्यक्षके हेतु रसनइंद्रियतें विषयनके तीनि संबंध हैं ॥ रसनसंयुक्त समवाय १ ॥ रसनसंयुक्तसमवेतसमवाय २ ॥ रसनसंबंधविशेषणता ॥ ३ ॥ जहां फलके मधुर रसका रसन इंद्रियतें रासन प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां फल औ रसनका संयोगसंबंधहै ॥ यातैं रसनसंयुक्त फलहै तामें रस गुणका समवाय होनेतें रसके रासनप्रत्यक्षमें संयुक्तसमवायसंबंधहै सो व्यापारहै ॥ काहेतें ॥ संयुक्तसमवायसंबंधमें जो समवाय अंशहै सो तो

नित्यहै रसनजन्य नहीं ॥ परंतु संयोगअंश रसनजन्यहै ॥ औ रसनइंद्रियजन्य जो रसका रासन साक्षातकार ताका जनक है यातें व्यापारहै ॥ तिस व्यापारवाला रासनप्रत्यक्षका असाधारण कारण रसनइंद्रियहै ॥ यातें करण होनेतें प्रमाणहै ॥ औ रासनप्रमा फलहै ॥ तैसें रसमें रसत्व जातिका औ मधुरत्व अम्लत्व लवणत्व कटुत्व कषायत्व तिक्तत्व रूप पट् धर्मनका रसनइंद्रियतें रासन साक्षात्कार होवैहै ॥ तहां रसनमें फलादिक द्रव्यका संयोगहै ॥ ता द्रव्यमें रस समवेत होवैहै ॥ यातें रसनसंयुक्त जो द्रव्य तामें समवेत कहिये समवायसंबंधसें रहनैवाला रस है तामें रसत्वका औ रसत्वके व्याप्य जो मधुरत्वादिक तिनका समवाय होनेतें रसनसंयुक्तसमवेतसमवाय संबंधहै ॥ तैसें फलके मधुररसमैं अम्लत्वाभावका रासन प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां रसनइंद्रियका अम्लत्वाभावसें स्वसंबद्ध विशेषणता संबंधहै ॥ काहेतें संयुक्तसमवायसंबंधसें रासनसंबद्ध मधुर रसहै तामें अम्लत्वाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ यातें रसनइंद्रियका अम्लत्वाभावमें संयुक्तसमवेतविशेषणता संबंधहै रसनाइंद्रियजन्य रासनप्रत्यक्षके हेतु तीनि संबंध हैं ॥

प्रत्यक्षप्रमाके भेद घ्राणजप्रमाका निरूपण ॥ ९ ॥

तैसें घ्राणजप्रत्यक्ष प्रमा होवै ॥ तहांबी घ्राणके विषयनतें तीनि संबंध हेतुहैं ॥ घ्राणसंयुक्त समवाय १ ॥ घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवाय २ ॥ घ्राणसंबद्धविशेषणता ३ ॥ घ्राणइंद्रियतें द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ किंतु गंधगुणका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जो द्रव्यका प्रत्यक्ष होता तो घ्राणका संयोग संबंध प्रत्यक्षमें कारण होता द्रव्यका प्रत्यक्ष घ्राणसें होवै नहीं ॥ यातें घ्राणसंयोग प्रत्यक्षका हेतु नहीं ॥ औ गंध घ्राणसें साक्षात्संबंधहै नहीं ॥ किंतु पुष्पादिकनमें गंधका समवाय संबंधहै ॥ औ घ्राणके साथि पुष्पादिकनका संयोगसंबंधहै ॥ यातें घ्राणसंयुक्त समवाय संबंधतें गंधका घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ अन्य गुणका घ्राणतें प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ परंतु गंधमैं जो गंधत्व जाति ताका औ गंधत्वके व्याप्य

जो सुगंधत्व दुर्गंधत्व तिनकाबी घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसैं गंधाभावका बी घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ काहेतैं ॥ जा इंद्रियतैं जिस पदार्थका ज्ञान होवै ताकी जातिका औ ताके अभावकाबी तिस इंद्रियतैं ज्ञान होवैहै ॥ जहां गंधत्वका औ सुगंधत्व दुर्गंधत्वका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां घ्राणसंयुक्त-समवेतसमवायसंबंध घ्राणज प्रत्यक्षका हेतुहै ॥ काहेतैं घ्राणसंयुक्त जो पुष्पादिक तिनमैं समवेत गंधहै ॥ तामैं समवाय गंधत्वादिकनका है । तैसैं पुष्पके सुगंधमैं दुर्गंधत्वके अभावका घ्राणज प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां घ्राणका दुर्गंधत्वाभावसैं स्वसंबद्ध विशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं ॥ संयुक्त समवायसंबंधसैं घ्राणसंबद्ध जो सुगंध तामैं दुर्गंधत्वाभावका विशेषणता संबंध है ॥ जहां पुष्पादिक दूरी होवैं औ गंधका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां यद्यपि ॥ पुष्पमैं क्रिया दीखै नहीं ॥ यातैं पुष्पादिकनका घ्राणतैं संयो-गकै अभावतैं घ्राणसंयुक्त समवायसंबंध संभवै नहीं ॥ तथापि ॥ गंध तो गुणहै ॥ यातैं केवल गंधमैं क्रिया होवै नहीं किंतु गंधके आश्रय जो पुष्पादिकनके सूक्ष्म अवयव तिनमैं क्रियाहोयकै घ्राणतैं संयोग होवैहै ॥ यातैं घ्राणसंयुक्त जो पुष्पादिकनके अवयव तिनमैं गंधका समवाय होनेतैं ॥ घ्राणसंयुक्त समवाय संबंधही गंधके घ्राणजप्रत्यक्षका हेतुहै । इस रीतिसैं घ्राणजप्रत्यक्षके हेतु तीनि संबंधहैं ॥ सो व्यापारहैं ॥ घ्राणइंद्रिय कारण है घ्राणजप्रत्यक्षप्रमा फलहै ॥ इस रीतिसैं श्रोत्रादिक पंचइंद्रियनतैं बाह्य पदार्थनका ज्ञान होवैहै ॥

मानसप्रत्यक्षप्रमाका निरूपण ॥ १० ॥

आत्मा औ आत्माके सुखादि धर्म औ आत्मत्व जाति तथा सुख-त्वादिक जाति इनका प्रत्यक्ष श्रोत्रादिकनतैं होवै नहीं ॥ किंतु आत्मादिक जो आंतरपदार्थ तिनकै प्रत्यक्ष का हेतु मनइंद्रिय है ॥ आत्मा औ ताके सुखादिकधर्मनतैं भिन्नकूं बाह्य कहैहैं ॥ आत्मा औ ताके धर्मनकूं आंतर कहैहैं ॥ जैसैं बाह्य प्रत्यक्षप्रमाके करण श्रोत्रादिक इंद्रियहैं ॥ तैसैं आंतर जो आत्मादिक तिनकी प्रत्यक्षप्रमाका करण मनहै ॥ यातैं मनबी

प्रत्यक्षप्रमाणहै औ इंद्रियहै ॥ मनमैं क्रिया होयकै आत्मासैं संयोग होवै तब आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां आत्माका मानसप्रत्यक्षरूप फल वो प्रमाहै औ आत्ममनका संयोग व्यापारहै ॥ काहेतैं आत्ममन-का संयोग मनजन्य है औ मनजन्य जो आत्माकी प्रत्यक्षप्रमा ताका ज-नक है यातैं व्यापारहै ॥ तिस संयोगरूप व्यापारवाला आत्माकी प्रत्य-क्षप्रमाका असाधारण कारण मनहै ॥ सो प्रमाणहै ॥ ज्ञान इच्छा प्रयत्न सुख दुःख द्वेष ये आत्मा के गुण हैं ॥ तिनके साक्षात्कारका हेतुबी मन प्रमाणहै ॥ तहां मनकै साथि ज्ञानादिकनका साक्षात्संबंध तो है नहीं ॥ किंतु परंपरा संबंधहै ॥ अपने संबंधीका संबंध परंपरा संबंध कहियेहै ॥ ज्ञानादिकनका आत्मामैं समवाय संबंधहै यातैं ज्ञानादिकनका संबंधी आत्माहै तासैं मनका संयोग होनेतैं परंपरासंबंध मनसैं ज्ञाना-दिकनका है ॥ सो ज्ञानादिकनका मनतैं स्वसमवायि संयोगसंबंधहै । स्व कहिये ज्ञानादिक तिनका समवायी कहिये समवायवाला जो आत्मा ताका मनसैं संयोगहै तैसैं मनका ज्ञानादिकनतैंबी परंपरा संबंधहै ॥ सो मनःसंयुक्त समवायहै ॥ मनमैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं ज्ञानादिकनका समवाय संबंध है तैसैं ज्ञानत्व इच्छात्व प्रयत्नत्व सुखत्व दुः-खत्व द्वेषत्वका मनमैं प्रत्यक्ष होवै है ॥ तहां मनमैं ज्ञानत्वादिकनका स्वा-श्रयसमवायिसंयोगसंबंध है स्व कहिये ज्ञानत्वादिक तिनके आश्रय जो ज्ञानादिक तिनका समवायी आत्मा ताका मनमैं संयोगहै ॥ तैसैं मनका ज्ञानत्वादिकनतैं मनःसंयुक्त समवेत समवाय संबंध है ॥ काहेतैं मनः-संयुक्त आत्मामैं समवेत जो ज्ञानादिक तिनमैं ज्ञानत्वादिकनका समवाय संबंधहै ॥ तैसैं आत्मामैं सुखाभाव औ दुःखाभावका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां मनःसंबद्धविशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं मनसैं संबद्ध कहिये संयोग संबंधवाला जो आत्मा तामैं सुखाभाव औ दुःखाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ औ सुखमैं दुःखत्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां मनःसं-

युक्त समवाय संबंधसैं मनःसंबद्ध कहिये संबंधवाला जो सुख तामैं दुःखत्वाभावका विशेषणता संबंधहै ॥ काहेतैं मनसैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं सुखादिक गुणनका समवाय संबंधहै ॥ औ अभावका विशेषणता संबंधही होवैहै ॥ इस रीतिसैं अभावके मानस प्रत्यक्षका हेतु मनःसंबद्ध विशेषणतासंबंध एकहीहै ॥ जहां आत्मामैं सुखाभावादिकनका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां संयोगसंबंधसैं मनःसंबद्ध जो आत्मा तामैं सुखाभावादिकनका विशेषणता संबंधहै औ सुखादिकनमैं दुःखत्वाभावादिकनका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां संयुक्त समवायसंबंधसैं मनःसंबद्ध कहिये मनके संबंधवाले सुखादिकहै ॥ कहूं साक्षात्संबंधसैं मनःसंबद्धमैं कहूं परंपरासंबंधसैं मनःसंबद्धमैं अभावका विशेषणता संबंधहै इस रीतिसैं मानसप्रत्यक्षके हेतु च्यारि संबंधहैं ॥ मनःसंयोग १ ॥ मनःसंयुक्तसमवाय २ ॥ मनःसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ ॥ मनःसंबद्धविशेषणता ४ ॥ मानसप्रत्यक्षके हेतु च्यारूं संबंधरूप व्यापारहैं ॥ संबंधरूप व्यापारवाला असाधारण कारण मन करण है ॥ यातैं प्रमाणहै ॥ आत्मसुखादिकनका मानस साक्षात्काररूप प्रमा फलहै ॥ जैसैं आत्मगुण सुखादिकनके प्रत्यक्षका हेतु संयुक्तसमवायसंबंधहै ॥ तैसैं धर्म अधर्म संस्कारादिकबी आत्माके गुणहैं ॥ यातैं तिन्हतैं मनका संयुक्तसमवायसंबंध तो है ॥ परंतु धर्मादिक गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं ॥ यातैं धर्मादिकनका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ प्रत्यक्ष योग्यता जामैं नहीं ताका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ जहां आश्रयका प्रत्यक्ष होवै ॥ तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जैसैं दो अंगुली संयोगके आश्रयहैं ॥ अंगुली दोका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै तब संयोगका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै ॥ औ अंगुलीका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै तब अंगुलीके संयोगका त्वाचप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तैसैं आत्ममनके संयोगतैं आत्माका मानस प्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां संयोगका आश्रय आत्माहै ॥ यातैं संयोगकाबी मानसप्रत्यक्ष हुवा चाहिये ॥

तथापि संयोगके आश्रय दो होवैहैं ॥ जहां दोनुवोंका प्रत्यक्ष होवै तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जहां एकका प्रत्यक्ष होवै एकका नहीं होवै तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ जैसे दो घटका प्रत्यक्ष होवैहै ॥ यातैं तिन्हकै संयोगकाबी प्रत्यक्ष होवैहै ॥ औ घटकी क्रियातैं घट आ-काशका संयोग होवैहै ॥ तहां संयोगके आश्रय घट औ आकशहैं ति-नमैं घटतो प्रत्यक्षहै ॥ औ आकाश प्रत्यक्ष नहीं ॥ यातैं तिनका संयो-गबी प्रत्यक्ष नहीं ॥ इस रीतिसैं आत्ममनके संयोगके आश्रय आत्मा औ मनहैं तिनमैं आत्माका तो मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ मनका नहीं होवै-है ॥ यातैं आत्ममनके संयोगका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ आत्माका औ ज्ञान सुखादिकनका मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ तहां ज्ञानसुखादिकनकूं छोडिकै केवल आत्माका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ औ आत्माकूं छोडिकै केवल ज्ञान सुखादिकनका प्रत्यक्ष होवै नहीं ॥ किंतु ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःख द्वेष इन गुणोंमैं किसी एक गुणका औ आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवैहै ॥ मैं जानूंहूं इच्छावालाहूं प्रयत्नवालाहूं सुखीहूं दुःखीहूं द्वेषवालाहूं ॥ इस रीतिसैं किसी गुणकूं विषय करता हुआ आत्माका मानसप्रत्यक्षहो-वैहै ॥ इस रीतिसैं इंद्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमाके हेतु इंद्रियके संबंधहैं सो व्यापा-रहैं ॥ इंद्रिय प्रत्यक्षप्रमाणहैं ॥ इंद्रियजन्य साक्षात्कार प्रत्यक्षप्रमा फल हैं ॥ यह न्यायशास्त्रका सिद्धांत है ॥

प्रत्यक्षप्रमाके करणका विचार ॥ ११ ॥

औ गौरीकांत भट्टाचार्यनैं यह लिखाहै ॥ प्रत्यक्षप्रमाका इंद्रिय करण नहीं ॥ किंतु जो इंद्रियके संबंध व्यापार कहेहैं ॥ सो करणहैं औ इंद्रिय कारणहैं करण नहीं ॥ ताका यह अभिप्रायहै ॥ व्यापारवाला कारण करण नहीं कहियेहै ॥ किंतु जाके हुयेतैं कार्यमैं विलंब न होवै ॥ किंतु अव्यवहित उत्तरक्षणमैं कार्य होवै ॥ ऐसा कारण करण कहियेहै ॥ इंद्रियका संबंध हुयेतैं प्रत्यक्षप्रमारूप कार्यमैं विलंब नहीं होवैहै ॥ किंतु

इंद्रियसंबंधतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं प्रत्यक्षप्रमारूप कार्य अवश्य होवैहै ॥ यातैं इंद्रियका संबंधही करण होनेतैं प्रत्यक्ष प्रमाणहै ॥ इंद्रिय नहीं इस मतमैं घटका करण कपाल नहीं ॥ किंतु कपालका संयोग करणहै ॥ औ कपाल कारणतो घटका है करण नहीं ॥ तैसैं पटके करण तंतु नहीं ॥ किंतु तंतुसंयोग है पटके कारण तो तंतुहैं करण नहीं ॥ इस रीतिसैं प्रथम-पक्षमैं जो व्यापाररूप कारण मानेहैं सो इस पक्षमैं करणहैं ॥ और जो करण मानेहैं सो **केवल कारण** हैं ॥

ज्ञानके आश्रयका कथन ॥ १२ ॥

प्रत्यक्ष ज्ञानका आश्रय आत्माहै सो कर्त्ताहै ॥ ताहीकूं **प्रमाता** औ **ज्ञाता** कहैहैं ॥ प्रमाज्ञानका कर्त्ता **प्रमाता** कहियेहै ॥ ज्ञानका कर्त्ता **ज्ञाता** कहियेहै सो ज्ञानभ्रम होवै अथवा प्रमा होवै न्यायसिद्धांतमैं जैसैं प्रमाज्ञान इंद्रियजन्यहै तैसैं भ्रमज्ञानबी इंद्रियजन्यहै ॥ परंतु भ्रमज्ञानका कारण जो इंद्रिय सो भ्रमज्ञानका कारण तो कहियेहै प्रमाण नहीं कहि-येहै ॥ काहेतैं प्रमाका असाधारणकारण **प्रमाण** कहिये है ॥

भ्रमज्ञानका विचार ॥ १३—१७ ॥

न्यायमतके अनुसार भ्रमकी रीति ॥ १३ ॥

जहां भ्रम होवै तहां न्यायमतमैं यह रीतिहै ॥ दोष सहित नेत्रका संयोग रज्जुमैं जब होवै तब रज्जुत्वधर्मसैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध तो है ॥ परंतु दोषके बलतैं रज्जुत्व भासै नहीं ॥ किंतु रज्जुमैं सर्पत्व भासैहै ॥ यद्यपि सर्पत्वसैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध नहींहै ॥ तथापि इंद्रियके संबंध विनाही दोष-बलतैं सर्पत्वका संबंध रज्जुमैं नेत्रसैं प्रतीत होवैहै ॥ परंतु जाकूं दंडत्वकी स्मृति पूर्व होवै ताकूं रज्जुमैं दंडत्व भासैहै ॥ जाकूं सर्पत्वकी पूर्व स्मृति होवै ताकूं रज्जुमैं सर्पत्व भासैहै ॥

वस्तुके ज्ञानमैं विशेषणके ज्ञानकूं हेतुता ॥ १४ ॥

जहां दोषरहित इंद्रियतैं यथार्थज्ञान होवै ॥ तहांबी विशेषणका ज्ञान

हेतुहै ॥ यातैं रज्जुज्ञानतैं पूर्व रज्जुत्वका ज्ञान होवैहै ॥ काहेतैं श्वेतउष्णीष श्वेतकंचुकवान् यष्टिधर ब्राह्मणसैं नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां कदाचित् मनुष्यहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् कंचुकवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् श्वेतकंचुकवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् उष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् श्वेतउष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित् श्वेतउष्णीषवाला श्वेतकंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ तहां नेत्रसंयोग तो सारे ज्ञानोंका साधारण कारणहै ॥ ज्ञानोंकी विलक्षणतामें यह हेतुहै ॥ जहां मनुष्यत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां मनुष्यहै ॥ ऐसा चाक्षुष ज्ञान होवैहै ॥ जहां ब्राह्मणत्वका ज्ञान औ नेत्रसंयोग होवै तहां ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां यष्टि औ ब्राह्मणत्वका ज्ञान औ नेत्रसंयोग होवै ॥ तहां यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुष ज्ञान होवैहै ॥ जहां कंचुक औ ब्राह्मणत्वरूप दो विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां कंचुकवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां श्वेतताविशिष्ट कंचुकरूप औ ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै॥ तहां श्वेतकंचुकवाला ब्राह्मणहै॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै ॥ जहां उष्णीष औ ब्राह्मणत्वरूप दो विशेषणका ज्ञान होवै ॥ तहां उष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां श्वेतताविशिष्ट उष्णीषरूप विशेषणका औ ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवैहै ॥ तहां श्वेतउष्णीषवाला ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ जहां उष्णीषकंचुक यष्टि ब्राह्मणत्व इन च्यारिविशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मणहै ॥ ऐसा चाक्षुष ज्ञान होवैहै ॥ जहां श्वेतताविशिष्ट उष्णीषविशेणका औ श्वेतता

विशिष्ट कंचुकविशेषणका तैसें यष्टि औ ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ नेत्रका संयोग होवै ॥ तहां श्वेतउष्णीष श्वेतकंचुक यष्टिधर ब्राह्मण है ॥ ऐसा चाक्षुषज्ञान होवैहै ॥ इसरीतिसें जिस विशेषणका पूर्वज्ञान होवै तिस विशेषणविशिष्टका इंद्रियतैं ज्ञान होवैहै ॥ तहां इंद्रियका संबंध तो सारे तुल्यहै विशिष्टप्रत्यक्षकी विलक्षणताका हेतु विलक्षण विशेषण ज्ञानहै ॥ जो विलक्षण विशेषण ज्ञानकूं कारण नहीं मानै तो नेत्र-संयोगतैं ब्राह्मणके सारे ज्ञान तुल्य हुये चाहिये ॥ जहां घटसें नेत्रका तथा त्वक्का संयोग होवै ॥ तहां कदाचित घट है ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै ॥ कदाचित् पृथिवी है ॥ ऐसा ज्ञान होवैहै ॥ कदाचित घट पृथिवी है ॥ऐसा ज्ञान होवैहै॥जहां घटत्वरूप विशेषणका ज्ञान औ इंद्रियका संयोग होवै ॥ तहां घटहै ॥ ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै ॥ जहां पृथिवीत्वरूपविशेषणका ज्ञान औ इंद्रियका घटसें संयोग होवै तहां पृथिवी है ॥ ऐसा प्रत्यक्ष होवै है ॥ जहां घटत्व पृथिवीत्व इन दोनूं विशेषणका ज्ञान औ इंद्रियका संयोग होवै ॥ तहां घट पृथिवीहै ॥ ऐसा प्रत्यक्ष होवै है ॥ इसरीतिसें घटसें इंद्रियका संयोगरूप कारण एक है ॥ औ विषय घटबी एकहै ॥ औ घटत्व पृथिवीत्वजाति घटमें सदा रहैहै ॥ तौबी कदाचित् घटत्व सहित घटमात्रकूं ज्ञानविषय करैहै॥द्रव्यत्व पृथिवीत्वआदिक जाति औ रूपादिक गुणकूं घटहै ॥ यह ज्ञान विषय करै नहीं ॥ कदाचित् पृथिवी है॥ ऐसा घटका ज्ञान घटमें घटत्वकूंबी विषयकरै नहीं ॥ किंतु पृथिवीत्व औ घट तथा पृथिवीत्वकै संबं-धकूं विषय करैहै ॥ कदाचित् पृथिवीत्व घटत्व जाति औ तिनका घटमें संबंध तथा घट इनकूं विषय करैहै ॥ इस रीतिसें ज्ञानका भेद सामग्रीभेद विना संभवै नहीं ॥ तहां विशेषण ज्ञानरूप सामग्रीका भेदही ज्ञानकी विलक्षणताका हेतुहै ॥ जहां घटहै ऐसा ज्ञान होवै ॥ तहां घट औ घटत्व औ घटमें घटत्वका समवाय संबंध भासैहै ॥ जहां पृथिवी है ॥ ऐसा घटका ज्ञान होवै ॥ तहां घट औ पृथिवीत्व औ घटमें पृथिवीत्वका समवाय संबंध भासैहै ॥

विशेषण औ विशेष्यका स्वरूप ॥ १८ ॥

तहां घटत्व पृथिवीत्व विशेषण है घट विशेष्य है ॥ काहेतें संबंधका प्रतियोगी **विशेषण** कहियेहै ॥ संबंधका अनुयोग **विशेष्य** कहिये है ॥ जाका संबंध होवै सो **संबंधका प्रतियोगी** ॥ औ जामें संबंध होवै सो **अनुयोगी** कहियेहै ॥ घटत्वका पृथिवीत्वका समवायसंबंध घटमें भासैहै ॥ यातें घटत्व पृथिवीत्व समवायसंबंधके प्रतियोगी होनेतें विशेषण हैं संबंधका अनुयोगी घटहै ॥ यातें विशेष्य है जहां दंडी पुरुषहै ॥ ऐसा ज्ञान होवै ॥ तहां दंडत्वविशिष्ट दंडसंयोगसंबंधतें पुरुषत्वविशिष्ट पुरुषमें भासैहै ॥ ताकाही काष्ठवाला मनुष्यहै ॥ ऐसा ज्ञान होवै ॥ तहां काष्ठत्वविशिष्ट दंड मनुष्यत्व विशिष्ट पुरुषमें संयोगसंबंधतें भासैहै ॥ प्रथम ज्ञानमें दंडत्वविशिष्ट दंडसंयोगका प्रतियोगी होनेतें विशेषणहै ॥ पुरुषत्वविशिष्ट पुरुषसंयोगका अनुयोगी होनेतें विशेष्यहै ॥ द्वितीय ज्ञानमें काष्ठत्वविशिष्ट दंड प्रतियोगीहै ॥ मनुष्यत्वविशिष्ट पुरुष अनुयोगीहै ॥ दोनों ज्ञानमें यद्यपि दंड विशेषणहै ॥ पुरुष विशेष्यहै ॥ तथापि प्रथम ज्ञानमें तो दंडविषै दंडत्व भासैहै ॥ काष्ठत्व भासै नहीं ॥ पुरुषमें पुरुषत्व भासै है ॥ मनुष्यत्व भासै नहीं ॥ तैसें द्वितीय ज्ञानमें दंडविषै काष्ठत्व भासैहै ॥ दंडत्व भासै नहीं ॥ औ पुरुषमें मनुष्यत्व भासैहै ॥ पुरुषत्व भासै नहीं ॥ दंडत्व औ काष्ठत्व दंडके विशेषणहैं ॥ काहेतें दंडत्वादिकनका दंडमें जो संबंध ताके प्रतियोगी दंडत्वादिक हैं ॥ औ दंडत्वादिकनका दंडमें संबंध है ॥ यातें संबंधका अनुयोगी होनेतें दंड विशेष्यहै ॥ इस रीतिसें दंडत्वका दंड विशेष्यहै ॥ औ पुरुषका दंड विशेषणहै ॥ काहेतें दंडका पुरुषमें जो संयोगसंबंध ताका प्रतियोगी दंडहै ॥ यातें पुरुषका विशेषणहै ता संयोगका पुरुष अनुयोगीहै ॥ यातें विशेष्यहै ॥ जैसें पुरुषका दंड विशेषणहै ॥ तैसें पुरुषत्व मनुष्यत्वबी पुरुषके विशेषणहैं ॥ काहेतें जैसें दंडका पुरुषमें संयोगसंबंध भासैहै ॥ तैसें पुरुषत्वादिक जातिका समवायसंबंध भासैहै ॥

वा संबंधके पुरुषत्वादिक प्रतियोगी होनेतैं विशेषणहैं ॥ औ अनुयोगी होनेतैं पुरुष विशेष्यहै ॥ परंतु इतना भेदहै ॥ पुरुषके धर्म जो पुरुषत्व मनुष्यत्वादिक वै तो केवल पुरुषव्यक्तिके विशेषणहैं ॥ औ पुरुषत्वादिक धर्मविशिष्ट पुरुषव्यक्तिमें दंडादिक विशेषणहैं ॥ दंडादिकबी दंडत्वादिक धर्मनके विशेष्यहै ॥ औ पुरुषत्वादिकनके विशेषणहैं ॥ परंतु दंडात्वादिक विशेषणके संबंधकूं धारिके पुरुषादिक विशेष्यके संबंधि उत्तरकालमें दंडादिक होवैहै ॥ इस रीतिसें केवल व्यक्तिमें पुरुषत्व मनुष्यत्व विशेषणहैं ॥ औ पुरुषत्व वा मनुष्यत्वविशिष्ट पुरुषव्यक्तिमें दंडत्व वा काष्ठत्व विशिष्ट दंड विशेषणहै औ केवल दंडव्यक्तिमें दंडत्व वा काष्ठत्व विशेषणहै ॥

इस रीतिसें ॥ ज्ञानके विषयताका विचार करै तौ बहुत सूक्ष्महै ॥ चक्रवर्त्तिगदाधरभट्टाचार्यनें **संगतिग्रंथमें** लिखाहै ॥ औ जयरामपंचाननभट्टाचार्यने तथा रघुनाथभट्टाचार्यनें **विषयताविचारग्रंथ** कियेहैं तिन्हमें लिखाहै ॥ सूक्ष्मपदार्थ संस्कृतवाणी विना लिखेजावै नहीं औ दुर्बोधहैं ॥ यातें अतिस्थूल रीतिमात्र जनाई है ॥

विशेषण औ विशेष्यके ज्ञानके भेदपूर्वक न्यायमतके भ्रमज्ञानकी समाप्ति ॥ १६ ॥

इस रीतिसें ॥ विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषण ज्ञानहै ॥ सो विशेषणका ज्ञान कहूं स्मृतिरूपहै ॥ कहूं निर्विकल्पहै ॥ कहूं विशिष्टज्ञानही विशेषण विशेष्यसें पहली विशेषणमात्रसें इंद्रियका संबंध होवै तहां विशेषणमात्रसें इंद्रियसंबंध जन्यहै ॥ सोबी विशिष्टप्रत्यक्षहीहै जहां पुरुषतें विना केवल दंडमें इंद्रियका संबंध होवै उत्तर क्षणमें पुरुषतें संबंध होवै तहां दंडरूप विशेषणका ज्ञान विशेषणमात्रके संबंधसें उपजैहै ॥ तासें उत्तरक्षणमें-"दंडीपुरुषहै" यह विशिष्टका ज्ञान उपजैहै घटहै यह प्रथम जो विशिष्टज्ञान तासें पूर्व घटत्वरूप विशेषणका इंद्रियसंबंधतें **निर्विकल्पज्ञान** होवैहै उत्तरक्षणमें "घटहै" यह घटत्व विशिष्ट घटज्ञान होवैहै जो इंद्रियसंबंध

धर्ते घटत्वका निर्विकल्पका ज्ञान होवै ता इंद्रियसंबंधतैंही घटत्वविशिष्ट घटका सविकल्पकज्ञान होवैहै ॥ घटत्वके निर्विकल्पक ज्ञानमैं इंद्रिय करणहै इंद्रियका संयुक्त समवायसंबंध व्यापारहै औ घटत्वविशिष्ट घटके सविकल्पकज्ञानमैं इंद्रियका संयुक्तसमवायसंबंध करणहै निर्विकल्पक ज्ञान व्यापारहै इसरीतिसैं किसी आधुनिक नैयायिकनै निर्विकल्पक ज्ञान औ सविकल्पक ज्ञानमें करणका भेद कहाहै ॥

सो संप्रदायसैं विरुद्धहै काहेतें व्यापारवाला असाधारण कारण करण कहियेहै ॥ या मतमें प्रत्यक्षज्ञानका करण होनेतें इंद्रियकूंही प्रत्यक्ष प्रमाण कहैहैं ॥ औ आधुनिक रीतिमैं सविकल्पक ज्ञानका करण होनेतें इंद्रियके संबंधकूंभी प्रमाण कह्या चाहिये औ संप्रदायवाले संबंधकूं प्रमाण कहैं नहीं ॥ यातें दोनूं प्रत्यक्षज्ञानके इंद्रियही करण यातें प्रत्यक्ष प्रमाणहै परंतु निर्विकल्पक ज्ञानमें इंद्रियका संबंधमात्र है व्यापारहै औ सविकल्पक ज्ञानमें इंद्रियका संबंध औ निर्विकल्पक ज्ञान दो व्यापारहै ॥ औ दोनूं प्रकारके प्रत्यक्षज्ञानके करण होनेतें इंद्रिय प्रत्यक्षप्रमाण है धर्म धर्मीके संबंधकूं विषय करनेवाला ज्ञान **सविकल्पकज्ञान** कहियेहै । घटहै या ज्ञानतें घटमैं घटत्वका समवाय भासैहै यातें सविकल्पक ज्ञानके धर्म धर्मी समवाय तीनूं विषयहै यातें घटहै यह विशिष्टज्ञान संबंधकूं विषय करनेतें सविकल्पक कहियेहै तामैं भिन्नज्ञानकूं **निर्विकल्पक ज्ञान** कहैहैं सविकल्पक निर्विकल्पक ज्ञानके लक्षण विस्तारमें **शितिकंठी** मैं लिखेहैं अथ सूक्ष्महै यातें विस्तारलिख्या नहीं इस रीतिमें प्रथम विशिष्ट ज्ञानका जनक विशेषण ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञानहै औ एकबेरी घट ऐसा विशिष्टज्ञान होयके फेरि घटका विशिष्टज्ञान होवै तहां घटसैं इंद्रियका संबंध होतेही पूर्वअनुभव करे घटत्वकी स्मृति होवैहै तिसतें उत्तर क्षणमैं घटहै यह विशिष्टज्ञान होवैहै इस रीतिसैं द्वितीयादिक विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषणज्ञान स्मृतिरूपहै जहां दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं अथवा

शुक्तिसैं संबंध होवै तहां दोषकै बलतैं सर्पत्वकी औ रजतत्वकी स्मृति होवैहै रज्जुत्व औ शुक्तित्वकी नहीं । विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषण-ज्ञान जा धर्मकूं विषय करै सोई धर्म विशिष्टज्ञानसैं विषयमैं भासैहै सर्पत्व औ रजतत्वका स्मृतिज्ञान रज्जुत्व औ शुक्तित्वकूं विषय करै नहीं किंतु सर्पत्व औ रजतत्वकूं विषय करैहै यातैं सर्पहै या रज्जुके विशिष्टज्ञानसैं रज्जुमें सर्पत्व भासैहै औ रजतहै या शुक्तिकै विशिष्ट ज्ञानतैं शुक्तिमैं रजतत्व भासैहै सर्पहै या विशिष्टभ्रममें विशेष्य रज्जु है सर्पत्व विशेषण है काहेतैं सर्पत्वका समवायसंबंध रज्जुमें भासैहै ता समवायका सर्पत्व प्रतियोगीहै औ रज्जु अनुयोगीहै तैसैं रूपा है या भ्रममें शुक्तिमें रजतत्व-का समवाय भासैहै ता समवायका प्रतियोगी रजतत्व है यातैं विशेषणहै औ शुक्ति अनुयोगीहै यातैं विशेष्यहै इस रीतिसैं सारे भ्रमज्ञानोंसैं विशेषणकै अभाववालैमैं विशेषण भासैहै ॥ यातैं न्यायमतमें विशेषणके अभाववालैमैं विशेषण प्रतीति भ्रम कहियेहै ताहीकूं **अयथार्थ ज्ञान** कहैहैं **अन्यथाख्याति** कहैहैं ॥ भ्रमज्ञानमें सूक्ष्मविचार **अन्यथा ख्यातिवादनामग्रंथमें** चक्रवर्तिगदाधरभट्टाचार्यने लिख्याहै सो दुर्बोधहै यातैं लिख्या नहीं इसरीतिसैं न्यायमतमें सर्पादि भ्रमके विषय रज्जु आदिक हैं सर्पादिक नहीं औ प्रत्यक्षरूप भ्रमज्ञानबी इंद्रियजन्यहै ॥

वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार इन्द्रिय अजन्य भ्रमज्ञानकी रीति ॥ १७ ॥

औ वेदांतसिद्धांतमें सर्पभ्रमका विषय रज्जु नहीं किंतु अनिर्वचनीय सर्प है औ भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं और न्यायमतमें सारे ज्ञानोंका आश्रय आत्माहै वेदांतमतमें ज्ञानका उपादानकारण अंतःकरणहै यातैं अंतःकरण आश्रयहै जो न्यायमतमें सुखादिक आत्माके गुण कहैहैं सो सारे अंतःकरणके **परिणाम** हैं यातैं अंतःकरणके धर्महैं आत्माके नहीं परंतु भ्रमज्ञान अंतःकरणका परिणाम नहीं किंतु अविद्याका परिणाम है यह विचारसागरमैं लिख्याहै यातैं इहां लिखनेका उपयोग नहीं ॥

भ्रमज्ञानका संक्षेपतैं यह प्रकार है—सर्प संस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध होवै तब रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासै नहीं औ रज्जुमैं जो मुंजरूप अवयवहैं सो भासैं नहीं किंतु रज्जुमैं सामान्यधर्म इदंता भासैहै तैसैं शुक्तिमैं शुक्तित्व औ नीलपृष्ठता त्रिकोणता भासैं नहीं किंतु सामान्यधर्म इदंता भासैहै ॥ यातैं नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होयकै इदमाकार परिणामकूं प्राप्त होवैहै तौ इदमाकारवृत्तिउपहित चेतननिष्ठ अविद्याके सर्पाकार औ ज्ञानाकार दोपरिणाम होवैहैं तैसैं दंडसंस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुके संबंधसैं जहां वृत्ति होवै तहां दंड औ ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम होवैहैं मालासंस्कार सहित पुरुषकै सदोष नेत्रका रज्जुमैं संबंध होयकै जाकै इदमाकारवृत्ति होवै ताकी वृत्ति उपहित चेतनमैं स्थित अविद्याका माला औ ताका ज्ञान परिणाम होवैहै जहां एक रज्जुमैं तीनि पुरुषनके सदोष नेत्रनका संबंध होयकै सर्पदंडमाला एक एकका तिन्हकूं भ्रम होवै तहां जाकी वृत्तिउपहितमैं जो विषय उपजाहै सो ताहीकूं प्रतीत होवैहै अन्यकूं नहीं इस रीतिसैं भ्रम ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं किंतु अविद्याकी वृत्तिरूपहै परंतु जा वृत्तिउपहित चेतनमैं स्थित अविद्याका परिणाम भ्रमहै सो इदमाकारवृत्ति नेत्रसैं रज्जु आदिक विषयकै संबंधतैं होवैहै यातैं भ्रमज्ञानमैं इंद्रियजन्यता प्रतीति होवैहै अनिर्वचनीय ख्यातिका निरूपण और अन्यथाख्याति आदिकनका खंडन गौडब्रह्मानंदकृत ख्यातिविचारमैं लिखाहै सो अतिकठिनहै यातैं लिखा नहीं इस रीतिसैं वेदांतसिद्धांतमैं भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं ॥

न्याय औ वेदांतकी अन्य विलक्षणता ॥ १८ ॥

औ वेदांतसिद्धांतमैं अभावका ज्ञानबी इंद्रियजन्य नहीं किंतु अनुपलब्धि नाम पृथक् प्रमाणतैं अभावका ज्ञान होवैहै यातैं अभावकै प्रत्यक्षका हेतु विशेषणता संबंधका अंगीकार निष्फलहै औ जातिव्यक्तिका समवायसंबंध नहीं किंतु तादात्म्यसंबंध है तैसैं गुण-

गुणीका क्रियाक्रियावानका कार्य उपादान कारणकाबी तादात्म्यसंबंध है यातें समवायके स्थानमैं **तादात्म्य** कहैहैं औ जैसें त्वक्आदिक इंद्रिय भूतजन्य हैं तैसें श्रोत्र इंद्रियबी आकाशजन्यहै आकाशरूप नहीं औ **मीमांसाके मतमैं** तो शब्द द्रव्यहै वेदांतमतमैं गुणहै परंतु न्यायमतमैं तो शब्द आकाशकाही गुणहै । वेदांतमतमैं विद्यारण्यस्वामीनें पांचभूतनका गुण कहाहै और वेदांतमतमैं वाचस्पतिमिश्रनें तो मन इंद्रिय माना है और ग्रंथकारोंनैं मन इंद्रिय नहीं मानाहै । जिनके मतमैं मन इंद्रिय नहीं तिनके मतमैं सुख दुःखका ज्ञान प्रमाणजन्य नहीं यातें प्रमानहीं सुखदुःखसाक्षीभास्यहै औ वाचस्पतिके मतमैं सुखादिकनका ज्ञान मनरूप किंतु प्रमाणजन्यहै यातें प्रमाहै औ ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान तो दोनूं मतमैं प्रमाहै वाचस्पतिके मतमैं मनरूप प्रमाणजन्यहै औरनके मतमैं शब्दरूप प्रमाणजन्यहै ॥

वाचस्पतिके मनका (मनकी इंद्रियताकी) सारग्राही दृष्टिसे अंगीकार ॥ १९ ॥

जिनके मतमैं मनइंद्रिय नहीं तिनके मतमैं इंद्रियजन्यता प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण नहीं किंतु विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेदही **प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण**है जैसें वृत्तिचेतनका विषयचेतनका अभेद होवैहै तैसें विचारसागरमें स्पष्टहै वाचस्पतिका मतबी समीचीन नहींहै काहेतें वाचस्पतिके मतमैं ये दोष कहैहैं एकतो मनका असाधारण विषय नहीं है यातें मन इंद्रिय नहीं ॥ औ गीतावचनका विरोधहै गीताके तीसरे अध्यायके बियालीसमें श्लोकमैं इंद्रियनतें मन परहै यह कहाहै जो मनबी इंद्रिय होवै तौ इंद्रियनतैं मन परहै यह कहना संभवै नहीं औ मानस ज्ञानका विषय ब्रह्म नहींहै यह श्रुतिस्मृतिमैं लिखाहै वाचस्पतिनें मनकूं इंद्रियता मानिके ब्रह्मसाक्षात्कारबी मनरूप इंद्रियजन्यहै यातें मानसहै यह कहाहै सो विरुद्धहै औ अंतःकरणकी अवस्थाकूं मन कहैहैं सो अंतःकरण प्रत्यक्षज्ञानका आश्रय होनेतैं कर्त्ताहै जो कर्त्ता होवै सो करण होवै नहीं यातें मन इंद्रिय नहीं ये दोष-

मनके इंद्रियपनैमें कहेहैं सो विचारिके देखैं तो दोष नहीं काहेतें मनका असाधारण विषय सुख दुःख इच्छादिक हैं औ अंतःकरणविशिष्ट जीव हैं औ गीतामैं इंद्रियनतैं पर मनहै यह कहाहै तहां इंद्रियशब्दसैं बाह्य इंद्रियनका ग्रहणहै यातैं बाह्य इंद्रियनतैं मनइंद्रिय पर है यह गीतावचनका अर्थहै विरोध नहीं ॥

औ मानसज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है या कहनेका यह अभिप्रायहै कि शमदमादि संस्काररहित विक्षिप्तमनसैं उपजे ज्ञानका विषय ब्रह्म नहींहैं औ मानसज्ञानकी फलव्याप्यता ब्रह्मविषे नहींहै वृत्तिमैं चिदाभास फल कहियेहै ताका विषय ब्रह्म नहींहै घटादिक अनात्म पदार्थनकूं वृत्तिप्राप्ति होवै तहां वृत्ति औ चिदाभास दोनूंके व्याप्य कहिये विषयपदार्थ होवैहैं औ ब्रह्माकार वृत्तिमैं जो चिदाभास ताका व्याप्य कहिये विषय ब्रह्म नहीं है वृत्तिमात्रका विषय ब्रह्महै यह विचारसागरके चतुर्थ तरंगमैं स्पष्टहै. जैसें मनकी विषयता ब्रह्मविषै निषेध करीहै तैसें शब्दकी विषयताभी निषेध करीहै 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' यह निषेधवचन है तहां शब्दजन्य ज्ञानका विषय ब्रह्म नहींहै ऐसा अर्थ अंगीकार होवै तो महावाक्यभी शब्दरूपही हैं तिनतैं उपजे ज्ञानकाभी विषय ब्रह्म नहीं होवैगा यातैं सिद्धांतकाही भंग होवैगा यातैं निषेधवचनका यह अर्थहै:—शब्दकी शक्ति वृत्तिजन्यज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं किंतु शब्दकी लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानका विषय ब्रह्महै तैसें लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानमैंभी चिदाभासरूप फलका विषय ब्रह्म नहींहै किंतु आवरणभंगरूप वृत्तिमात्रकी विषयताब्रह्म विषयहै जैसें शब्दजन्य ज्ञानकी विषयताका सर्वथा निषेध नहीं तैसें मानसज्ञानकी विषयताकाभी सर्वथा निषेध नहीं किंतु संस्काररहित मनकी ब्रह्मज्ञानमैं हेतुता नहीं औ मानसज्ञानमैं जो चिदाभास अंशहै ताकी विषयता नहीं और जो ऐसे कहैं ब्रह्मज्ञानमैं मनकूं करणता है तो दो प्रमाणजन्य ब्रह्मज्ञान कहना होवैगा काहेतैं महावाक्यनमैं ब्रह्मज्ञानकी करणता तो भाष्यकारादिकननैं सर्वत्र प्रतिपादन करीहै ताका तो निषेध बनैं नहीं मनकूंभी करण-

ता कहैं तौ प्रमाका करण **प्रमाण** कहियेहै यातैं ब्रह्मप्रमाके शब्द औ मन दो प्रमाण सिद्ध होवैंगे सो दृष्ट विरुद्धहै काहेतैं चाक्षुषादिक प्रमाके नेत्रादिक एकही एक प्रमाण हैं किसी प्रमाके हेतु दो प्रमाण देखे सुने नहीं नैयायिकभी चाक्षुषादिक प्रमामें मनकूं सहकारिता मानैहैं प्रमाणता नेत्रादिकनकूंही मानै हैं मनकूं नहीं सुखादिकनकै ज्ञानमें केवल मनकूं प्रमाणता मानैहैं अन्यकूं नहीं यातें एक प्रमाकी दोनोंकूं प्रमाणता कहना दृष्टविरुद्धहै जहां एक पदार्थमें दो इंद्रियकी योग्यता होवै जैसे घटमें नेत्रत्वक्‌की योग्यताहै तहांभी दो प्रमाणतें एक प्रमाहोवै नहीं किंतु नेत्रप्रमाणतैं घटकी चाक्षुषप्रमा होवैहै । त्वक्‌प्रमाणतें त्वाचप्रमा होवैहै दो प्रमाणतें एक प्रमाकी उत्पत्ति दृष्ट नहीं सो शंका बनै नहीं । काहेतैं प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष होवै तहां पूर्व अनुभव औ इंद्रिय दो प्रमाणतें एक प्रमा होवैहै यातैं दृष्टविरुद्ध नहीं जहां प्रत्यभिज्ञा होवै तहां पूर्व अनुभव संस्कारद्वारा हेतुहै औ संयोगादिक संबंधद्वारा इंद्रिय हेतु है यातें संस्काररूप व्यापारवाला कारण पूर्व अनुभवहै औ संबन्धरूप व्यापारवाला कारण इंद्रिय है यातैं प्रमाके करण होनेतें दोनूं प्रमाणहैं ॥

तैसैं ब्रह्मसाक्षात्काररूप प्रमाके शब्द औ मन दो प्रमाणहैं या कहनेमें दृष्टविरोध नहीं उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मनरूप इंद्रियजन्यता मानै प्रत्यक्षता निर्विवादसैं सिद्ध होवैहै ब्रह्मज्ञानकूं केवल शब्दजन्यता मानैं तो विवादमें प्रत्यक्षता सिद्ध करियेहै । दशमदृष्टांतविषैभी इंद्रियजन्यता औ शब्द-जन्यताका विवाद है इंद्रियजन्य ज्ञानकूं प्रत्यक्षतामें विवाद नहीं औ जो ऐसैं कहैं प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षमें पूर्व अनुभवजन्य संस्कार सहकारी है केवल इंद्रिय प्रमाणहै ताका यह समाधानहै ब्रह्मसाक्षात्काररूप प्रमामैंभी शब्द सहकारी है केवल मन प्रमाणहै औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं जो इंद्रिय जन्य ज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमें दोष कहेहैं तिन्हके सम्यक् समाधान न्याय**कौस्तुभआदि** ग्रंथनमैं लिखेहैं जाकूं जिज्ञासा होवै सो तिनमैं देखि लेवै औ जो मनकूं इंद्रियतामैं दोष कहा ज्ञानका आश्रय होनेतैं अंतः—

करण कर्ता है, यातैं ज्ञानका कारण बनै नहीं?यह दोषभी नहीं; काहेतैं?धर्मी अंतःकरण तौ ज्ञानका आश्रय होनेतैं कर्ता है, और अंतःकरणका परिणामरूप मन ज्ञानका करणहै;इस रीतिसैं मनभी प्रमाज्ञानका करणहै,यातैं प्रमाणहै.

न्याय औ वेदांतका प्रत्यक्ष विचारमैं भेद ॥ २० ॥

जहां इंद्रियतैं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै, तहां तौ न्याय औ वेदांत मतमैं विलक्षणता नहीं, किंतु द्रव्यका इंद्रियतैं संयोगही संबंध है औ इंद्रियतैं द्रव्यकी जातिका अथवा गुणका प्रत्यक्ष होवै, तहां न्यायमतमैं तौ **संयुक्तसमवाय संबंध** है औ वेदांत मतमैं **संयुक्ततादात्म्य संबंध** है, काहेतैं ? न्यायमतमैं जिनका समवाय संबंध है, तिनका वेदांतमतमैं **तादात्म्य संबंध** है औ गुणकी जातिके प्रत्यक्षमैं न्यायरीतिसैं संयुक्तसमवेतसमवाय संबंध है औ वेदांत मतमैं **संयुक्ततादात्म्यवत् तादात्म्य संबंध** है.याहीकूं **संयुक्ताभिन्नतादात्म्य** कहैहैं.इंद्रियतैं संयुक्त जो घटादिक तिन्हमैं तादात्म्यवत कहिये तादात्म्य संबन्धवाले रूपादिक हैं तिन्हमैं तादात्म्यसंबंध रूपत्वादिक जातिका है जैसैं घटादिकनमैं रूपादिक तादात्म्यवत है, तैसैं घटादिकनमैं अभिन्नभी कहिये है. अभिन्नकाही तादात्म्यसंबंध होवै है. जहां श्रोत्रमैं शब्दका साक्षात्कार होवै तहां न्यायमतमैं तौ समवायसंबंध है औ वेदांतमतमैं श्रोत्र-इंद्रिय आकाशका कार्य है यातैं जैसैं चक्षुआदिकनमैं क्रिया होवै है तैसैं श्रोत्रमैं क्रिया होयके शब्दवाले द्रव्यमैं श्रोत्रका संयोग होवै है. ता श्रोत्र संयुक्त द्रव्यमैं शब्दका तादात्म्य संबंध है. काहेतैं ? वेदांतमतमैं पंचभूतनका गुण शब्द होनेतैं भेर्यादिकनमैंभी शब्द है; यातैं श्रोत्रके संयुक्ततादात्म्य संबंधसैं शब्दका प्रत्यक्ष होवै है. औ शब्दत्वका प्रत्यक्ष होवै तहां श्रोत्रका **संयुक्ततादात्म्यवत् तादात्म्य संबंध** है. वेदांतमतमैं जैसैं शब्दत्वजातिहै तैसैं तारत्व मंदत्वभी जातिही है. **न्यायमतकी** न्याई जातिसैं भिन्न उपाधि नहीं, यातैं शब्दत्वजातिका जो श्रोत्रसैं संबंध सोई संबंध तारत्वमंदत्वका है; विशेषणतासंबंध नहीं. औ अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप-

माणतैं होवै है, किसी इंद्रियतैं अभावका ज्ञान होवै नहीं; यातैं अभावका इंद्रियतैं संबंध अपेक्षित नहीं. यह न्यायमत औ वेदान्तमतका प्रत्यक्ष-विचारमैं भेद है.

प्रत्यक्षप्रमाका उपसंहार ॥ २१ ॥

इसरीतिसैं प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद हैं, ताके करण षट् हैं, यातैं नेत्रादिक षट् इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण कहिये हैं न्यायमतमैं औ वाचस्पतिमतमैं छठा प्रत्यक्ष प्रमाण मन है. पंचपादिकाके कर्त्ता पद्मपादाचार्यके मतके अनुसारी मनकूं प्रमाण नहीं मानैं हैं,सुख दुःख तो साक्षिभास्य हैं; यातैं सुख दुःखका ज्ञान प्रमा नहीं औ विशिष्ट जीवमैं अंतःकरण भाग साक्षीभास्य है, चेतन भाग स्वयंप्रकाश है, यातैं जीवका ज्ञानभी मानस नहीं. ब्रह्मविद्यारूप अपरोक्षज्ञान यद्यपि प्रमारूप है, तथापि ताका करण शब्द है; यातैं मन प्रमाण नहीं, परंतु पंचपादिका अनुसारी जो सिद्धांत है तहांभी प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं. शब्दजन्यब्रह्मकी प्रत्यक्षप्रमा छठी है; औ अभावका ज्ञान यद्यपि अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है, तथापि प्रत्यक्ष है. यह वार्त्ता अनुपलब्धि प्रमाणके निरूपणमैं कहैंगे; यातैं प्रत्यक्षप्रमाके सप्त भेद संभवैं हैं, तथापि इस ग्रंथकी रीतिसैं अभावज्ञानमैं प्रत्यक्षता नहीं है, यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं, सप्त नहीं. यह संक्षेपतैं प्रत्यक्षप्रमाण कह्या ॥

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपणं नाम प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

अथानुमानप्रमाणनिरूपणं नाम द्वितीय-प्रकाशप्रारम्भः ।

अनुमितिकी सामग्रीका लक्षण औ स्वरूप ॥ १ ॥

अनुमिति प्रमाका जो करण होवै सो **अनुमानप्रमाण** कहियेहै लिंगज्ञान-जन्य जो ज्ञान सो **अनुमिति** कहिये है; जैसे पर्वतमें धूमका प्रत्यक्ष ज्ञान होयकै वह्निका ज्ञान होवै है. तहां धूमका प्रत्यक्षज्ञान **लिंगज्ञान** कहिये है तामें वह्निका ज्ञान उपजै है यातें पर्वतमें वह्निका ज्ञान **अनुमिति** है. जाके ज्ञानमें साध्यका ज्ञान होवै सो **लिंग** कहिये है. अनुमितिज्ञानका विषय **साध्य** कहिये है अनुमितिका विषय वह्नि है, यातें वह्नि **साध्य** है. धूम-ज्ञानतें वह्निरूपसाध्यका ज्ञान होवैहै, यातें धूम लिंग है. व्याप्यके ज्ञानतें व्यापकका ज्ञान होवै है, यातें व्याप्यकूं लिंग कहें हैं, व्यापककूं साध्य कहें हैं, व्याप्तिवालेकूं **व्याप्य** कहें हैं व्याप्तिनिरूपककूं **व्याप्यक** कहें हैं, अविनाभावरूप संबंधकूं **व्याप्ति** कहैंहै जैसे धूमविषे वह्निका अविना-भावरूप संबंध है, सोई धूमविषै वह्निकी व्याप्ति है, यातें धूम वह्निका **व्याप्य** है, ता व्याप्तिरूपसंबंधका निरूपक वह्नि है; यातें धूमका **व्यापक** वह्नि है. जाविना जो होवै नहीं ताका **अविनाभावरूप संबंध** तामें कहिये है. वह्नि विना धूम होवै नहीं यातें वह्निका अविनाभावरूप संबंध धूममें है. वह्निमें धूमका अविनाभाव नहीं. काहेतें ? तप्तलोहपिंडमें धूम विना वह्नि है. यातें धूमका व्याप्य वह्नि नहीं, वह्निका व्याप्य धूम है. तैसे रूपका व्याप्य रस है पृथिवी जल तेजमें रूप रहै है, पृथिवी जलमें रस रहै हैं, यातें रूपका अ-विनाभावरूप संबंध रसमें होनेतें रूपका व्याप्य रस है औरू पमें रसका विना-भाव है, तेजमें रस विनाभाव कहिये है सत्ता रूपकी है. यातें रसका व्याप्य रूप नहीं. जो जासें व्यभिचारी होवै सो ताका व्याप्य होवै नहीं. अधिक

देशमैं जो रहै सो व्यभिचारी कहिये है धूमसैं अधिकदेशमैं रहै जो वह्नि सो धूमका व्यभिचारी हैं. रसतैं अधिक देशमैं रूप रहै है यातैं रसका व्यभिचारी रूप है. जो न्यून देशमैं रहै ताकै विषै अविनाभाव संबंध है. सोई व्याप्य है. वह्नितैं न्यून देशमैं धूम है, यातैं वह्निकी धूमविषै अविनाभावरूप व्याप्ति है. सो धूम व्याप्य है, रूपतैं न्यूनदेशमैं रस है. यातैं रसमैं रूपकी व्याप्ति है. तिसवाला रस व्याप्य है. जैसैं न्यूनदेशमैं रहनेवालेमैं अधिक देशवालेकी व्याप्ति है, तैसैं दोय पदार्थ समान देशमैं रहनेवाले होवैं तिनकीभी परस्पर व्याप्ति होवै है. जैसैं गंध गुण औ पृथिवीत्वजाति केवल पृथिवीमैं रहनेवाले हैं. तहां गंधकी व्याप्ति पृथिवीत्वमैं है औ पृथिवीत्वकी व्याप्ति गंधमैं है; तैसैं स्नेह गुण औ जलत्वजाति जलमैं हैं, जल विना स्नेह औ जलत्व रहैं नहीं, यातैं समदेशवृत्ति होनेतैं दोनूं परस्पर व्याप्तिवाले होनेतैं व्याप्य हैं, काहेतैं? जैसैं न्यूनदेशवृत्तिमैं अविनाभावरूप संबंध है; तैसैं समानदेशवृत्ति पदार्थनकाभी परस्पर अविनाभाव है. यद्यपि पृथिवीत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति गंध है, औ जलत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति स्नेह है. काहेतैं? प्रथम क्षणमैं निर्गुण द्रव्य उपजै है, द्वितीय क्षणमैं गुण उपजै है, औ जाति प्रथम क्षणमैंभी द्रव्यविषै रहै है, यातैं घटके प्रथम क्षणमैं गंधका व्यभिचारी पृथिवीत्व होनेतैं ताकै विषै गंधका अविनाभावसंबंधरूप व्याप्तिका अभाव है. औ उत्पत्ति क्षणवर्ति जलमैं स्नेहका व्यभिचारी जलत्व होनेतैं ताकै विषै स्नेहका अविनाभावरूप संबंध नहीं, यातैं स्नेहकी व्याप्तिका जलत्वमैं अभाव होनेतैं स्नेहका व्याप्य जलत्व नहीं इस रीतिसैं पृथिवीत्वका व्याप्य गंध है, गंधका व्याप्य पृथिवीत्व नहीं. तैसैं जलत्वका व्याप्य स्नेह है, स्नेहका व्याप्य जलत्व नहीं तथापि गंधवत्त्व औ पृथिवीत्व परस्पर व्याप्तिवाले हैं. यातैं दोनूं परस्पर व्याप्य हैं. तैसैं स्नेहवत्त्व औ जलत्व दोनूं परस्पर व्याप्यहैं. काहेतैं? गंधकी अधिकरणताकूं गंधवत्त्व कहै है औ स्नेहकी अधिकरणताकूं स्नेहवत्त्व कहै है. जिसमैं जो पदार्थ कदाचित् होवै तिसमैं ता पदार्थकी अधिकरणता सदा रहै है. यह व्याप्तिनिरूपणमैं जगदीश भट्टाचार्य आदिकोंनैं लिख्या है.

तहां यह प्रसंग है:—अव्याप्यवृत्ति पदार्थकी अधिकरणता व्याप्यवृत्ति होवै है. अधिकरणता अव्याप्यवृत्ति नहीं होवै है. **अव्याप्यवृत्ति दोप्रकारका** होवैहै, देशकृत अव्याप्यवृत्ति होवैहै औ कालकृत अव्याप्यवृत्ति होवैहै, जो पदार्थके एक देशमैं होवै औ एक देशमैं न होवै सो **देशकृतअव्याप्यवृत्ति** कहिये है. जैसैं पदार्थके एकदेशमैं संयोग होवैहै सो **देशकृतअव्याप्यवृत्ति** है; परंतु संयोगकी अधिकरणता सारे पदार्थमैं होवैहै, एकदेशमैं नहीं; यातैं अव्याप्यवृत्ति संयोगकी अधिकरणता व्याप्यवृत्ति है, अव्याप्यवृत्ति नहीं; यह सिद्धांत है औ किसी कालमैं होवै किसी कालमैं नहीं होवै सो **कालिक अव्याप्यवृत्ति** कहिये है पूर्व कही रीतिसैं गंधादिक गुण **कालिक अव्याप्यवृत्ति** हैं.तिन्हकी अधिकरणता द्रव्यकी उत्पत्तिक्षणमैं भी रहैहै, यातैं गंधवत्त्व रसवत्त्व पृथिवीत्व जलत्वके समदेश समकालवृत्ति हैं,यह न्यायरीतिसैं समाधान है. औ वेदांतमतमैं तो निर्गुणद्रव्य उपजै नहीं, प्रथमही सगुण होवै है; यातैं गंधरसकेभी पृथिवीत्व जलत्व व्याप्यहैं

अनुमितिज्ञानमैं व्याप्तिके ज्ञानकी अपेक्षाप्रकार ॥ २ ॥

इसरीतिसैं अविनाभावरूप संबंध व्याप्ति है; तिसवाला व्याप्य है. व्याप्य जो धूम ताका पर्वतादिकनमैं जाकूं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै अथवा शब्दज्ञान होवै ताकूं पर्वतादिकनमैं अग्निका अनुमितिज्ञान होवै है; तैसैं रसके ज्ञानसैं रूपका ज्ञान होवैहै, परंतु जा पुरुषकूं धूम वह्निका व्याप्य है ऐसा ज्ञान पूर्व हुया होवै ताकूं धूमज्ञानतैं व्याप्यत्वका स्मरण होयकै वह्निकी अनुमिति होवै है; व्याप्तिकूं व्याप्यत्व कहैहैं. तैसैं रूपका व्याप्य रस है, ऐसा जाकूं ज्ञान हुवा होवै ताकूं रसके ज्ञानतैं रूपकी रसमैं व्याप्तिका स्मरण होयकै रूपकी अनुमिति होवै है. जाकूं व्याप्यत्वका ज्ञान पूर्व हुआ नहीं ताकूं धूमादिकनके ज्ञानतैं वह्नि आदिकनकी अनुमिति होवै नहीं; यातैं व्याप्तिका ज्ञान अनुमितिका **करण है, व्याप्तिवालेकूं व्याप्य कहैहैं औ व्याप्तिकूं व्याप्यता कहैहैं.** सो व्याप्तिका ज्ञानभी संदेहरूप कारण नहीं. काहेतैं ? "धूम वह्निकी व्या-

मिवाला है वा नहीं" ऐसा जाकूं पूर्व ज्ञान हुवा है ताकूं धूमज्ञानतैं वह्निका ज्ञान होवै नहीं; किंतु "धूम वह्निकी व्याप्तिवाला है" ऐसा जाकूं निश्चयरूप ज्ञान हुवा है ताकूं धूमज्ञानतैं वह्निका अनुमितिरूप ज्ञान होवैहै; यातैं व्याप्तिका निश्चय अनुमितिका हेतु है. सो व्याप्तिका निश्चय सहचार ज्ञानसैं होवै है. महानसादिकनमैं बारंबार धूमवह्निका सहचार देखिके "वह्निका व्याप्य धूम है" ऐसा ज्ञान होवै है औ "धूमका व्याप्य वह्नि है" ऐसा ज्ञान होवै नहीं; काहेतैं ? महानसादिकनमैं जैसा वह्निका सहचार धूममैं देखिये है, तैसा धूमका सहचार यद्यपि वह्निमैं देखिये है; तथापि धूमका व्यभिचारभी वह्निमैं देखिये है; यातैं यह सिद्ध हुवाः–जा पदार्थका जामैं व्यभिचार नहीं प्रतीत होवै औ सहचार प्रतीत होवै ता पदार्थकी व्याप्तिका तामैं निश्चय होवै है, वह्निका धूममैं व्यभिचार नहीं प्रतीत होवै है औ सहचार प्रतीत होवै है; यातैं वह्निकी व्याप्तिका धूममैं निश्चय होवै है. वह्निमैं धूमका सहचार प्रतीत होवै है औ व्यभिचारभी प्रतीत होवै है; यातैं "धूमका व्याप्य वह्नि है" यह निश्चय होवै नहीं. सहचार नाम साथ रहनेका है, व्यभिचार नाम जुदारहनेका है; यद्यपि जलके धूममैं वह्निका व्यभिचार है औ अग्नि शांत हुये जो महानसमैं धूम रहै ताकै विषै वह्निका व्यभिचार है. तथापि जाके मूलका उच्छेद नहीं हुवा ऐसी ऊंची धूमरेखामैं वह्निका व्यभिचार नहीं. यातैं विलक्षण धूमरेखामैं वह्निकी व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप निश्चय होवै है. तैसी विलक्षण धूमरेखाका पर्वतादिकनमैं प्रत्यक्ष होयके "धूम वह्निका व्याप्य है" इस अनुभवके संस्कारका उद्भव होवै है; तिसतैं अनंतर "वह्निमान पर्वत है" ऐसी अनुमिति होवै है.

सकल नैयायिकमतमैं अनुमितिका क्रम ॥ २ ॥

यद्यपि न्यायमतमैं अनुमान प्रसंगमैं अनेक पक्ष हैं, सो तिनके ग्रंथनमैं स्पष्ट हैं, परंतु सकल नैयायिक मतमैं अनुमितिका यह क्रम है:–प्रथम तौ महानसादिकनमैं हेतुसाध्यका सहचार दर्शन होवै है, तिसतैं हेतुमैं साध्यकी

व्याप्तिका निश्चय होवैहै, तिसतैं अनंतर पर्वतादिकनमैं हेतुका प्रत्यक्ष होवै है, तिसतैं अनंतर संस्कारका उद्भव होयकै व्याप्तिकी स्मृति होवै है, तिसतैं अनंतर साध्यकी व्याप्तिविशिष्ट हेतुका पक्षमैं प्रत्यक्ष होवै है, ताकूं **परामर्श** कहैहैं. "वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः" यह प्रसिद्धअनुमानमैं परामर्शका आकार है, "साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः" यह परामर्शका सामान्य रूप है, तिसतैं अनंतर "वह्निमान् पर्वतः" ऐसा अनुमिति ज्ञान होवै है. या क्रमतैं अनुमिति होवै है, परंतु प्राचीनमतमैं अनुमितिका करण **परामर्श** है, औ सकल ज्ञान अन्यथा सिद्ध है. ताके मतमैं परामर्शही अनुमान है. यद्यपि परामर्शका व्यापार मिलै नहीं तथापि तिसके मतमैं व्यापारहीन कारणकूं करण कहैहैं, यातैं परामर्शही अनुमितिका करण होनेतैं अनुमान है. और कोई नैयायिक ज्ञानहेतुकूं **अनुमान** कहै हैं. और कोई पक्षमैं हेतुके ज्ञानकूं **अनुमान** कहैहैं. व्याप्तिकी स्मृति औ परामर्शकूं **व्यापार** कहैहैं. और कोई व्याप्तिके स्मृतिज्ञानकूं **अनुमान** कहैहैं परामर्शकूं **व्यापार** कहैहैं. ऐसैं **नैयायिकनके अनेक मत** हैं, परंतु सर्वके मतमैं परामर्शका अंगीकार है, कोई परामर्शकूं **करण** कहैहैं, कोई व्यापार कहैहैं परामर्शविना अनुमिति होवै नहीं; यह **सकल नैयायिकनका मत** है.

अनुमितिविषै मीमांसाका मत ॥ ४ ॥

औ **मीमांसाका यह मत है**:—जहां पर्वतमैं धूमके प्रत्यक्षतैं व्याप्तिकी स्मृति होयकै वह्निकी अनुमिति होय जावै तहां परामर्शतैं विनाभी अनुमिति अनुभवसिद्ध है; यातैं जहां परामर्श होयकै अनुमिति होवै तहांभी परामर्श अनुमितिका कारण नहीं, किंतु परामर्श अन्यथासिद्ध कहिये है. जैसैं दैवतैं आया रासभ वा कुलालपत्नी घटमैं अन्यथासिद्ध हैं, कारणसामग्रीतैं बाह्य होवै सो **अन्यथासिद्ध** कहिये है. इसरीतिसैं मीमांसाके मतमैं परामर्श कारण नहीं ताके अनुसारीभी एक परामर्शकूं छोडिकै नैयायिकनकी नाईं अनेक पदार्थनकूं **अनुमान** कहै हैं. कोई व्याप्तिकी स्मृतिकूं,

कोई महानसादिकनमैं व्याप्तिके अनुभवकूं, कोई पक्षमैं हेतुके ज्ञानकूं अनुमान कहैं हैं.

अद्वैतमतानुसार अनुमितिकी रीति ॥ ५ ॥

औ अद्वैतग्रंथभी जहां विरोध न होवै तहां मीमांसाकी प्रक्रियाके अनुसार हैं; यातैं अद्वैतमतमैं भी परामर्श कारण नहीं; किंतु महानसादिकनमैं जो व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप अनुभव होवै है सो अनुमितिका करण है. सो व्याप्तिके अनुभवके उद्बुद्ध संस्कार व्यापार हैं, औ पर्वतमैं जो धूमका प्रत्यक्ष सो संस्कारका उद्बोधकहै, औ जहां व्याप्तिकी स्मृति होय जावै तहांभी स्मृतिकी उत्पत्तिसैं संस्कारनका नाश तौ होवै नहीं, यातैं स्मृति संस्कार दोनूंहैं; तहां भी अनुमितिके व्यापाररूप कारण संस्कार हैं, व्याप्तिकी स्मृति कारण नहीं. काहेतैं ? अनुमितिमैं व्याप्तिस्मृतिकूं व्यापाररूप कारण मानै तौ भी स्मृतिके कारण संस्कार माननें औ स्मृतिमैं अनुमितिकी करणता माननी यातैं दोनूंमैं कारणताकल्पना गौरव होवैगा, औ स्मृतिके कारण मानैं जो संस्कार तिनकूं अनुमिति कारणता मानैं तौ स्मृतिकी कारणताका त्याग लाघव है, इसरीतिसैं व्याप्तिका अनुभव करण है औ संस्कार व्यापार है, अनुमिति फल है, यह वेदांतपरिभाषादिक अद्वैतग्रंथनकी रीति है. नैयायिककी नाईं परामर्श अनुमितिका कारण नहीं.

व्याप्तिकी स्मृतिकी व्यापारता औ संस्कारकी अव्यापारता ॥ ६ ॥

औ जो संस्कारकूं अनुमिति व्यापार नहीं मानैं, स्मृतिकूं व्यापार मानैं, तौभी सिद्धांतकी हानि नहीं,यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं विरोध है, तथापि युक्तिसैं अर्थनिर्णय करनेतैं आधुनिक ग्रंथके विरोधसैं हानि नहीं; किंतु श्रुतिस्मृतिके विरोधसैं अथवा सिद्धांतविरोधसैं हानि होवै है. अनुमितिका व्यापाररूप कारण स्मृति है अथवा संस्कार है; इस अर्थमैं श्रुति स्मृति उदासीन हैं, औ सिद्धांतभी उदासीन है. यातैं व्याप्तिस्मृतिकूं व्यापारता कहनेमैं विरोध नहीं, उलटी साधक युक्ति है. काहेतैं ?

व्याप्तिसंस्कारकूं अनुमितिका कारण कहैं तौ अनुद्बुद्ध संस्कारसैं अनुमिति होवै तौ पर्वतमैं धूमके प्रत्यक्ष विनाभी सदाही अनुमिति हुयी चाहिये, यातैं उद्बुद्धसंस्कार अनुमितिके हेतु माननें होवैंगे औ उद्बुद्ध संस्कारनतैं ही स्मृति होवैहै. यातैं जहां अनुमितिकी सामग्री है, तहां नियमतैं स्मृतिकी सामग्री है. दोनूंकी सामग्री होनेंतें कौनसा ज्ञान होवै, यह धर्मराजकूं पूछना चाहिये. परस्पर प्रतिबध्यता औ प्रतिबंधकता मानें तौ गौरव दोष होवैगा, विनिगमनाविरह होवैगा औ अनुभवविरोध होवैगा. काहेतें ? पर्वतमैं धूमदर्शनतें धूममैं वह्निकी व्याप्तिका स्मरणतें उत्तरकालमैं अनुमिति होवैहै. यह बुद्धिमानोंके अनुभवसिद्ध है. अनुमितिसैं व्याप्तिस्मृतिका प्रतिबंध अनुभवविरुद्ध है. औ जहां दो ज्ञानोंकी सामग्री दो होवैं तहां एक सामग्रीका दूसरी सामग्री प्रतिबंधक होवैहै. इहां अनुमितिकी सामग्री औ स्मृतिकी सामग्री एक संस्कार है, ताका प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव बनै नहीं औ अनुमितिसैं स्मृतिका प्रतिबंध कहैं तौ अनुमिति भविष्यत् है सो उपजी नहीं,ताकूं प्रतिबंधकता संभवै नहीं. औ वेदांतपरिभाषामैं तथा तिसकी टीकामैं अनुमितिसैं स्मृतिका प्रतिबंध लिख्या नहीं. काहेतें ? टीकासहित वेदांतपरिभाषामैं यह लिख्याहैः—धूमदर्शनतैं संस्कार उद्बुद्ध होवैहै. तिनतैं कहूं स्मृति होवै है, कहूं नहीं होवै है. संस्कार स्मृति होवै है तहांभी संस्कारनका नाश तौ होवै नहीं. संस्कार स्मृति दोनूं हैं; परंतु स्मृतिशून्य स्थलमैं जैसैं संस्कार व्यापार है, तैसैं स्मृतिसद्भाव स्थलमैंभी संस्कारही व्यापार है स्मृति नहीं. यह धर्मराजका ग्रंथ है; तामैं बुद्धिमानकूं यह आश्चर्य होवै है, उद्बुद्ध संस्कार होतैं स्मृतिशून्य स्थल कैसे होवैहै. औ स्मृतिकी उत्पत्तिसैं संस्कारका नाश होवैहै, स्मृतिसैं अन्य संस्कार होवै है, यह सयुक्तिक पक्ष है; ता काउपपादन ग्रंथांतरमैं प्रसिद्ध है. यापक्षमैं स्मृति संस्कार दोनूंकी युक्ति सर्वथा विरुद्ध है.

स्वार्थानुमिति औ अनुमानका स्वरूप ॥ ७ ॥

यातैं व्याप्तिका अनुभव करण है, व्याप्तिकी स्मृति व्यापार है, यह पक्ष

निर्दोष है. इसरीतिसैं जहां अनुमिति होवै सो **स्वार्थानुमिति** कहियेहै; परंतु **न्यायमतमें** धूमका प्रत्यक्ष औ व्याप्तिका स्मरण हुयेभी वह्निकी अनुमिति होवै नहीं. दोनूं ज्ञानोंसै अनंतर परामर्श नाम तीसरा ज्ञान होवै है; तैसैं अनुमिति होवै है. "वह्निव्याप्य जो धूम तिसवाला पर्वत है" ऐसे ज्ञानकूं परामर्श कहैहैं, ताकूं **वेदांतमैं** अनुमितिका कारण नहीं मानैं हैं. इसरीतिसैं वाक्यप्रयोगविना व्याप्ति ज्ञानादिकनतैं जो अनुमिति होवै सो **स्वार्थानुमिति** कहियेहै.ताके करण व्याप्ति ज्ञानादिक **स्वार्थानुमान** कहिये है.

परार्थानुमान अनुमिति औ तर्कका स्वरूप ॥ ८ ॥

जहां दोका विवाद होवै एक पुरुष कहै पर्वतमैं वह्नि अनुमानप्रमाणसैं निर्णीत है एक कहै नहीं है; तहां वह्निनिश्चयवाला पुरुष अपने प्रतिवादीकी निवृत्तिवास्तै वाक्यप्रयोग करैहै; ताकूं **परार्थानुमान** कहैं हैं सो वाक्य वेदांतमतमैं **तीनि अवयवका** होवैहै. प्रतिज्ञा १ हेतु २ उदाहरण ३ ये वाक्यके अवयवनके नाम हैं. "पर्वतो वह्निमान् १ धूमात् २ योयो धूमवान् सोऽग्निमान् यथा महानसः३" इतना महावाक्य है. तामें तीनि अवांतरवाक्य हैं. तिन्हके प्रतिज्ञादिक क्रमतैं नाम हैं साध्यविशिष्ट पक्षका बोधक वाक्य **प्रतिज्ञावाक्य** कहियेहै, ऐसा "पर्वतो वह्निमान्" यह वाक्य है "वह्निविशिष्ट पर्वतहै" ऐसा बोध या वाक्यतैं होवैहै. तहां वह्नि साध्य है, पर्वत पक्ष है. काहेतैं ? अनुमितिका जो विषय सो **साध्य** कहियेहै; अनुमितिका विषय वह्नि है, यातैं **साध्य**है. यद्यपि "पर्वतो वह्निमान्" ऐसी अनुमिति होवै है, ताका विषय पर्वतभी है, सोभी साध्य कह्या चाहिये. तथापि **वेदांतमतमैं** "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान तौ एकही है; परंतु पर्वत अंशमैं इंद्रियजन्य है औ वह्नि अंशमैं धूमज्ञानरूप अनुमानजन्य है. यातैं एक ज्ञानमैं चाक्षुषता औ अनुमितिता दो धर्म हैं. चाक्षुषता अंशकी विषयता पर्वतमैं है, औ अनुमितिता अंशकी विषयता वह्निमैं है. यातैं अनुमितिका विषय पर्वत नहीं, केवल वह्नि है. जिस अधिकरणमैं साध्यकी

जिज्ञासा होयके साध्यका अनुमितिरूप निश्चय होवै सो पक्ष कहिये है. ऐसा पर्वत है. प्रतिज्ञावाक्यतैं उत्तर जो लिंगका बोधक वचन सो **हेतुवाक्य** कहिये है. ऐसा वाक्य "धूमात्" यह है. यद्यपि "धूमात, धूमेन" इन दोनूंका एकही अर्थहै, तथापि "धूमेन" ऐसा वाक्य संप्रदायसिद्ध नहीं. यह अवयवग्रंथमैं भट्टाचार्यनै लिख्या है. यातैं " धूमात् " इसरीतिका वाक्यही **हेतुवाक्य** कहियेहै हेतु साध्यका सहचारबोधक जो दृष्टांत-प्रतिपादक वचन सो **उदाहरण वाक्य** कहिये है. वादीप्रतिवादीका जहां विवाद न होवै; किंतु दोनूंका निर्णीत अर्थ जहां होवै सो दृष्टांत कहिये है. ऐसा महानस है. इसरीतिसैं प्रतिज्ञादिक तीनके समुदायरूप महावाक्यतैं विवादकी निवृत्ति होवै है. जो महावाक्य सुनिकेभी आग्रह करै महानसादिकनविषै तौ वह्निका सहचारी धूम है औ पर्वतमें वह्निका व्यभिचारी धूम है. यातैं पर्वतमें धूम है वह्नि नहीं है, ऐसा प्रतिवादी आग्रह करै, अथवा व्यभिचारकी शंका होवै, तौ तर्कसैं आग्रह औ शंकाकी निवृत्ति होवैहै. अनिष्टआपादनकूं तर्क कहैहैं. पर्वतविषै वह्नि विना धूम होवै तौ वह्निका धूम कार्य नहीं होवैगा; यह तर्क है. यातैं धूम विषै वह्निका व्यभिचार संदेह निवृत्त होवै है. वह्निधूमका कारणकार्यभाव इष्ट है. ताका अभाव अनिष्ट है; यातैं कारणकार्यभावका भंग आपादन करियेहै सो कारणकार्यभावका भंग अनिष्ट है; यातैं अनिष्टका आपादनरूप तर्क है या तर्कतैं प्रतिवादीकी औ शंकाकी निवृत्ति होवैहै. काहेतैं ? वह्निधूमका कारणकार्यभाव दोनूंकूं इष्ट है; ताका भंग दोनूंकूं अनिष्ट है. वह्निका व्यभिचार धूममैं कहैं तौ अनिष्टकी सिद्धि होवैगी, ताके भयतैं वह्निका व्यभिचारी धूम है यह वार्ता प्रतिवादी कहै नहीं इस रीतिसैं तीनि अवयवका समुदायरूप जो महावाक्य ताकूं **परार्थानुमान** कहैहैं. तिसतैं उत्तर जो अनुमिति होवै सो **परार्थानुमिति** कहिये है. अनुमानप्रमाणसैं निर्णय करतैं व्यभिचार शंका होवै तौ तर्कसैं निवृत्ति होवैहै;यातैं प्रमाणका सहकारी तर्क है.

वेदान्तमतमैं तर्कसहित परार्थानुमानका स्वरूप ॥ ९ ॥

वेदांतवाक्यनसैं जीवमैं ब्रह्मका अभेद निर्णीत है, सो अनुमानतैं भी इस रीतिसैं सिद्ध होवै है:-"जीवो ब्रह्माभिन्नः । चेतनत्वात । यत्रयत्र चेतनत्वं तत्रतत्र ब्रह्माभेदः । यथा ब्रह्मणि" । यह तीन अवयवका समुदायरूप महावाक्य है यातैं **परार्थानुमान** कहिये है. इहां जीव **पक्ष** है, ब्रह्माभेद **साध्य** है चेतनत्व हेतु है, ब्रह्म **दृष्टांत** है. इहां प्रतिवादी जो ऐसैं कहै:-जीवमैं चेतनत्व हेतु तौ है औ ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं है; इसरीतिसैं पक्षमैं चेतनत्व हेतुका ब्रह्माभेदरूप साध्यसैं व्यभिचारशंका करै, तौ तर्कसैं शंकाकी निवृत्ति करै. इहां **तर्कका यह स्वरूप** है:-जीवमैं चेतनत्व हेतु मानिकै ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानैं तौ चेतनकूं अद्वितीयताप्रतिपादक श्रुतिका विरोध होवैगा. अनिष्टका आपादन **तर्क** कहिये श्रुतिका विरोध सर्व आस्तिकनकूं अनिष्ट है; "व्यावहारिकः प्रपंचो मिथ्या । ज्ञाननिवर्त्यत्वात् । यत्रयत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्रतत्र मिथ्यात्वम् । यथाशुक्तिरजतादौ" । इहां व्यावहारिक प्रपंच **पक्ष** है, मिथ्यात्व **साध्य** है, ज्ञाननिवर्त्यता **हेतु** है, शुक्तिरजतादिक **दृष्टांत** है, "व्यावहारिकः प्रपंचो मिथ्या" यह **प्रतिज्ञावाक्य** है, "ज्ञाननिवर्त्यत्वात्" यह **हेतुवाक्य** है, "यत्रयत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्रतत्र मिथ्यात्वम् । यथा शुक्तिरजतादौ" यह **उदाहरणवाक्य** है. इहांभी प्रपंचकूं ज्ञाननिवर्त्यता मानिकै मिथ्यात्व नहीं मानैं तौ सत्‌की ज्ञानतैं निवृत्ति बनै नहीं यातैं ज्ञानसैं सकल प्रपंचकी निवृत्तिप्रतिपादक श्रुतिस्मृतिका विरोध होवैगा; या तर्कतैं व्यभिचार शंकाकी निवृत्ति होवै है.

वेदान्तमैं अनुमानका प्रयोजन ॥ १० ॥

इसरीतिसैं वेदांत अर्थके अनुसारी अनेक अनुमान हैं; परंतु वेदांतवाक्यनतैं अद्वितीय ब्रह्मका जो निश्चय सिद्ध हुवा है, तिसकी संभावनामात्रका हेतु अनुमानप्रमाण है, स्वतंत्र अनुमान ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं. काहेतैं ? वेदांतवाक्य विना अन्य प्रमाणकी ब्रह्मविषै प्रवृत्ति नहीं, यह **सिद्धांत** है. यह संक्षेपतैं अनुमानप्रमाण कह्या.

इति श्रीमन्निश्च० वृत्ति० अनुमानप्रमाणनिरूपणं नाम द्वि० प्रकाशः ॥२॥

अथ शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीय-प्रकाशः ॥ ३ ॥

शाब्दीप्रमाका भेद ॥ १ ॥

शाब्दीप्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहैहैं. शाब्दीप्रमा दो प्रकारकी है. एक व्यावहारिक है, दूसरी पारमार्थिक है. व्यावहारिकशाब्दीप्रमाभी दो प्रकारकी है. एक लौकिकवाक्यजन्य है, दूसरी वैदिकवाक्यजन्य है. "नीलो घटः" इत्यादिक लौकिकवाक्य है; "वज्रहस्तः पुरंदरः" इत्यादिक वैदिकवाक्य है. पदनके समुदायकूं वाक्य कहैहैं, अर्थवाला जो वर्ण अथवा वर्णका समुदाय सो पद कहिये है. अकारादिक वर्णभी विष्णुआदिक अर्थवाले हैं. नारायणआदिक पदनमैं वर्णका समुदाय अर्थवाला है. व्याकरणकी रीतिसैं "नीलो घटः" इस वाक्यमैं दो पद हैं; औ न्यायकी रीतिसैं च्यारि पद हैं औ व्याकरणके मतमैंभी अर्थबोधकता च्यारि समुदायनमैं है, पद च्यारि नहीं.

शाब्दीप्रमाका प्रकार ॥ २ ॥

तहां शाब्दीप्रमाका यह प्रकार हैः—"नीलो घटः" या वाक्यकूं सुनै तब श्रोताकूं सकल पदनका श्रवणसाक्षात्कार होवै है; पदनके साक्षात्कारसैं पदार्थनकी स्मृति होवै है. शंकाः—पदनका अनुभव पदनकी स्मृतिका हेतु है, औ पदार्थका अनुभव पदार्थकी स्मृतिका हेतु है; पदनका साक्षात्कार पदार्थनकी स्मृतिका हेतु बनै नहीं. काहेतैं ? जा वस्तुका सर्व अनुभव होवै ताकी स्मृति होवै है, अन्यके अनुभवसैं अन्यकी स्मृति होवै नहीं; यातैं पदके ज्ञानतैं पदार्थकी स्मृति बनै नहीं ? समाधानः—यद्यपि संस्कारद्वारा पदार्थनका अनुभवही पदार्थनकी स्मृतिका हेतु है, तथापि उद्भूत संस्कारनसैं स्मृति होवै है; अनुद्भूत संस्कारनसैं स्मृति होवै नहीं. जो अनुद्भूत संस्कारनसैंभी स्मृति

होवै तौ अनुभूत पदार्थकी सदा स्मृति हुई चाहिये; तहां पदार्थनके संस्कारनके उद्भवका हेतु पदज्ञान है. काहेतैं ? संबंधीके ज्ञानतैं तथा सदृशपदार्थनके ज्ञानतैं अथवा चिंतनतैं संस्कार उद्भव होवैं हैं, तिनतैं स्मृति होवै है. जैसैं पुत्रकूं देखिकै पिताकी औ पिताकूं देखिकै पुत्रकी स्मृति होवै है. तहां संबंधीका ज्ञान **संस्कारनके उद्भवका हेतु** है; तैसैं एक तपस्वीकूं देखिकै पूर्व देखे अन्य तपस्वीकी स्मृति होवै है. तहां **संस्कारका उद्बोधक** सदृशदर्शन है. जहां एकांतमैं बैठिकै अनुभूत पदार्थका चिंतन करै, तासैं अनुभूत अर्थकी स्मृति होवै है, तहां **संस्कारका उद्बोधक चिंतन** है. इसरीतिसैं संबंधी ज्ञानादिक संस्कारके उद्बोध द्वारा स्मृतिके हेतु हैं; औ संस्कारकी उत्पत्तिद्वारा समानविषयक पूर्व अनुभव स्मृतिका हेतु है; यातैं पदार्थनका पूर्व अनुभव तौ पदार्थविषयक संस्कारकी उत्पत्तिद्वारा हेतु है, औ पदार्थनके संबंधी पद हैं. यातैं पदार्थनके संबंधी जो पद तिनका ज्ञान संस्कारके उद्बोधद्वारा पदार्थकी स्मृतिका हेतु है. यातैं पदनके ज्ञानतैं पदार्थनकी स्मृति संभवै है. जहां एक संबंधीके ज्ञानतैं अन्य संबंधीकी स्मृति होवै तहां दोनूं पदार्थनके संबंधका जाकूं ज्ञान होवै ताकूं एकके ज्ञानसैं दूसरेकी स्मृति होवै है. जाकूं संबंधका ज्ञान होवै नहीं ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै नहीं. जैसैं पितापुत्रका **जन्यजनकभावसंबंध** है. जाकूं जन्यजनक भावसंबंधका ज्ञान होवै, ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै है. जाकूं जन्यजनक भावसंबंधका ज्ञान नहीं होवै, ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै नहीं. तैसैं पद अर्थका जो आपसमैं संबंध ताकूं **वृत्ति** कहैं हैं; वृत्तिरूप जो पद अर्थका संबंध ताका जाकूं ज्ञान होवै ताकूं पदके ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवै है. पद औ अर्थका जो वृत्तिरूपसंबन्ध ताके ज्ञानरहितकूं पदके ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवै नहीं यातैं वृत्तिसहित पदका ज्ञान पदार्थकी स्मृतिका हेतु है.

शब्दकी शक्तिवृत्तिका कथन ॥ २ ॥

सो वृत्ति दोप्रकारकी है:—एक शक्तिरूप वृत्ति है औ दूसरी लक्षणारूप वृत्ति है. **न्यायमतमें** ईश्वरकी इच्छारूप **शक्ति** है, **मीमांसाके मतमें**

शक्ति नाम कोई भिन्नपदार्थ है, व्याकरणके मतमैं औ पातंजलके मतमैं वाच्यवाचकभावका मूल जो पदअर्थका तादात्म्यसंबंध सोई शक्ति है औ विचारसागरमैं योग्यतारूप शक्ति व्याकरणके मतमैं लिखी है सो भूषणकारका मत है. व्याकरणके मंजूषा ग्रंथमैं योगभाष्यकी रीतिसैं वाच्य-वाचक भावका मूल तादात्म्यसंबंधही शक्ति कही है. औ अद्वैतसिद्धांतमैं सारे अपना कार्य करनेकी सामर्थ्यही शक्ति है. जैसे तंतुमैं पट करनेकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, वह्निमैं दाह करनेकी जो सामर्थ्य सो शक्ति है; तैसैं पदनमैं अपने अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्यही शक्ति है; परंतु इतना भेद है:—वह्निआदिक पदार्थनमैं जो सामर्थ्यरूप शक्ति ताके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं. शक्ति ज्ञात होवै अथवा अज्ञात होवै दोनूं स्थानमैं वह्निआदिकनमैं दाहादिक कार्य होवै है. औ पदकी शक्तिका ज्ञान होवै तब तौ अर्थकी स्मृतिरूप कार्य होवै है, शक्तिका ज्ञान होवै नहीं तब स्मृतिरूप कार्य होवै नहीं यातैं पदकी सामर्थ्यरूप शक्ति ज्ञात होवै, तब पदार्थकी स्मृतिरूप कार्य होवै है. शंका:—जहां अतीत पदकी स्मृति होवै तहां पदके स्मरणरूप ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवैहै, सो नहीं हुई चाहिये, काहेतैं ? सामर्थ्यरूपशक्तिवाले पदका ध्वंस होय-गया, यातैं अर्थकी स्मृतिका हेतु जो पद ताका अभाव है ? समाधान:—मीमांसाके मतमें सारे पद नित्य हैं. तिन्हकी उत्पत्ति नाश होवै नहीं, यातैं पदका ध्वंस बनै नहीं; औ जो पदनकूं अनित्यमानै तौ यह समाधान है:—पदार्थस्मृतिकी सामर्थ्य पदमैं नहीं है; किंतु पदज्ञानमैं पदार्थकी स्मृतिकी शक्ति है जहां पदका ध्वंस हुया है तहांभी पदका स्मरणरूप ज्ञान है. जहां वर्तमान पद है तहां पदका श्रवणसाक्षात्कार ज्ञान है. ताज्ञानमैं पदार्थकी स्मृतिकी सामर्थ्य है सोई शक्ति है. यापक्षमैं शक्ति-वाला पद नहीं किंतु पदका ज्ञान है. यह पक्ष गदाधर भट्टाचार्यनैं शक्ति-वादग्रंथमैं ज्ञान शक्तिवाद करिकै लिख्या है. इसीरीतिसैं पदकी सामर्थ्य वा पदके ज्ञानकी सामर्थ्य शक्ति कहिये है; दूसरे पक्षमैंभी पद शक्तिवाला है;

इसव्यवहारकी सिद्धिवास्तै पदका धर्म शक्ति अपेक्षित होवै तौ जिसपदका ज्ञान जिस अर्थकी स्मृतिमें समर्थ होवै तिसपदकी तिस अर्थमैं शक्ति कहियेहै.

शाब्दीप्रमाकी रीतिपूर्वक शक्तिविषे विवाद॥ ४ ॥

इसरीतिसैं शक्तिसहित पदज्ञानतैं पदार्थकी स्मृति होवैहै. जितने पदार्थनकी स्मृति होवैं उतने पदार्थोंके संबंधका ज्ञान अथवा संबंधसहित सकल पदार्थनका ज्ञान **वाक्यार्थज्ञान** कहियेहै; ताहीकूं **शाब्दीप्रमा** कहैंहैं. जैसैं "नीलो घटः" यह वाक्य है, तामैं च्यारि पदहैं. नील पद है १ ओकार पदहै २ घट पद है ३ विसर्ग पद है ४ नीलरूपविशिष्टमैं नीलपदकी शक्ति है; ओकारपद निरर्थक है, यह वार्ता **व्युत्पत्तिवादादिक ग्रंथनमैं** स्पष्ट है. अथवा ओकारपदका अभेद अथ है, घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्ति है, विसर्गकी एकत्व संख्यामैं शक्ति है, शक्तिका ज्ञान कोश व्याकरणादिकनतैं होवै है, नीलपीतादिक पदनकी वर्णमैं औ वर्णवालेमैं शक्ति है, यह कोशमैं लिख्याहै औ विसर्गकी एकत्व संख्यामैं शक्ति है यह व्याकरणतैं जानी जावै है; घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्ति है यह व्याकरण ग्रंथनमैं औ **शक्तिवादादिक तर्क** ग्रंथनमैं लिख्या हैं; औ **न्यायसूत्रमैं** गौतमनैं यह कह्याः—जाति आकृति व्यक्तिमैं सकल पदनकी शक्ति है. अवयवके संयोगकूं **आकृति** कहैं हैं. अनेक पदार्थनमैं रहै जो नित्य एक धर्म सो **जाति** कहिये है. जैसैं अनेक घटनमैं नित्य औ एक घटत्व है सो **जाति** है. जातिके आश्रयकूं **व्यक्ति** कहैंहैं. यामतमैं घटपदकी शक्ति कपालसंयोगसहित घटत्वविशिष्ट घटमैं है. औ **दीधितिकारशिरोमणि भट्टाचार्यके** मतमैं सकल पदनकी व्यक्तिमात्रमैं शक्ति है, जाति औ आकृतिमैं नहीं. यामतमैं घटपदका वाच्य केवल व्यक्ति है. घटत्व औ कपाल संयोग घटपदके वाच्य नहीं. काहेतैं? जिसपदकी जिस अर्थमैं शक्ति होवै तिस पदका सो अर्थ **वाच्य** कहिये है. औ शक्य कहिये है. केवल व्यक्तिमैं शक्ति है यातैं केवल व्यक्तिही वाच्य है. **शंकाः**—घटपदके उच्चारणतैं घटत्वकी गोपदके उच्चारणतैं गोत्वकी

ब्राह्मणपदके उच्चारणतैं ब्राह्मणत्वकी प्रतीति होवै है सो यामतमैं नहीं हुई चाहिये. काहेतैं? अवाच्यअर्थकी लक्षणा विना पदसैं प्रतीति होवै नहीं. जो अवाच्य अर्थकी लक्षणा विना पदसैं प्रतीत मानैं तौ घटपदके अवाच्य घटत्वकी जैसैं घटपदसैं प्रतीति मानी, तैसैं घटपदके अवाच्य पटादिकनकीभी घटपदसैं प्रतीति हुई चाहिये? **समाधानः**–वाच्यकी प्रतीति पदसैं होवैहै औ वाच्यवृत्ति जो जाति ताकी प्रतीति होवै है; यातैं यह **नियम** हैः–जाति-भिन्न अवाच्यकी प्रतीति होवै नहीं. औ वाच्यवृत्ति जो जाति सो अवाच्यभी प्रतीत होवै है; यातैं घटत्वादिक तौ अवाच्यभी घटादिक पदनतैं प्रतीत होवैं हैं, पटादिक अवाच्य प्रतीत होवैं नहीं. पुनः **शंकाः**–वाच्यवृत्ति अवाच्य जातिकी पदनसैं प्रतीति मानैं तौ घटपदसैं पृथिवीत्व जातिकी प्रतीति हुई चाहिये. काहेतैं घटपदके वाच्यमैं जैसैं घटत्व जाति रहैहै, तैसैं पृथि-वीत्वभी रहै है यातैं दोनूं वाच्यवृत्ति हैं औ अवाच्य हैं. घटत्वकी नाईं पृथिवीत्वकीभी प्रतीति हुई चाहिये. गोपदका वाच्य जो गौ ताके विषे गोत्व-की नाईं पशुत्व रहै है. औ दोनूं अवाच्य हैं. तैसें ब्राह्मण पदसैं ब्राह्मणत्वकी नाईं मनुष्यत्वकी प्रतीति हुई चाहिये ? **समाधानः**–वाच्यतावच्छेदक जो अवाच्य ताकी औ वाच्यकी पदसैं प्रतीति होवै है, अन्यकी प्रतीति होवै नहीं, जैसे घटपदका वाच्य घटव्यक्तिकी औ वाच्यतावच्छेदक घटत्वकी प्रतीति घट पदसैं होवै है. पृथिवीत्व वाच्य नहीं औ वाच्यतावच्छेदक नहीं, यातैं घटपदसैं पृथिवीत्वकी प्रतीति होवै नहीं. वाच्यतासैं न्यूनवृत्ति औ अधिकवृत्ति न होवै; किंतु जितनें देशमैं वाच्यता होवै उतने देशमैं रहै सो **वाच्यतावच्छेदक** होवै है. घटपदकी वाच्यता सकलघटव्यक्तिमैं है. औ घटत्वभी सकलघटव्यक्तिमैं रहै है; यातैं घटकी वाच्यतामैं न्यूनवृत्ति औ अधिकवृत्ति घटत्व नहीं; किंतु समानदेशवृत्ति होनेतैं घटपदका वाच्यतावच्छेदक घटत्व है. घटपदकी वाच्यता पटमैं नहीं, औ पृथिवीत्व पटमैं है; यातैं अधिकवृत्ति होनेतैं घटपदका वाच्यतावच्छेदक पृथिवीत्व नहीं. गोपदकी वाच्यता सकलगोव्यक्तिमैं है औ गोत्वभी सकलगोव्यक्तिमैं

है. यातैं गोपदका वाच्यताच्छेदक गोत्व है; औ अश्वमैं गोपदकी वाच्यता नहीं, तामैं पशुत्व रहै है यातैं गोपदकी वाच्यतासैं अधिकवृत्ति होनेतैं गोपदका वाच्यतावच्छेदक पशुत्व नहीं तैसैं ब्राह्मणपदकी वाच्यता सकलब्राह्मणव्यक्तिमैं है औ ब्राह्मणत्वभी सकल ब्राह्मणव्यक्तिमैं है. यातैं ब्राह्मणपदका वाच्यतावच्छेदक ब्राह्मणत्व है. औ क्षत्रियादिकनमैं ब्राह्मणपदकी वाच्यता नहीं, तहां मनुष्यत्व रहै है, यातैं अधिकवृत्ति होनेतैं ब्राह्मणपदका वाच्यतावच्छेदक मनुष्यत्व नहीं. इसरीतिसैं घटादिकपदनतैं घटत्वादिकनकी प्रतीति होवै है औ शक्ति नहीं होनेतैं घटादिपदनके वाच्य नहीं; किंतु वाच्यतावच्छेदक हैं. यह **शिरोमणि भट्टाचार्यका** मत है. औ घटादिपदनकी जातिमात्रमैं शक्ति है व्यक्तिमैं नहीं; यह **मीमांसाका मत है. शंकाः**—जिस अर्थमैं जिसपदकी शक्तिका ज्ञान होवै तिस अर्थकी तिस पदसैं स्मृति होयके शाब्दी प्रमा होवै है. पदकी शक्ति विना व्यक्तिकी पदसैं स्मृति औ शाब्दी प्रमा नहीं हुई चाहिये ? **समाधानः**—शब्दप्रमाणसैं तौ जातिकाही ज्ञान होवै है, तथापि अर्थापत्ति प्रमाणतैं व्यक्तिका ज्ञान होवै है. जैसैं दिनमैं अभोजी पुरुषकूं रात्रिभोजन विना स्थूलता संभवै नहीं तैसैं व्यक्तिविना केवल जातिमैं कोई क्रिया संभवै नहीं. यातैं अर्थापत्ति प्रमाणतैं व्यक्तिका बोध होवै है; "गामानय" इस वाक्यतैं गोत्वके आनयनका बोध होवै है; सो गोव्यक्तिके आनयनविना बनै नहीं. गोव्यक्तिका आनयन संपादक है, गोत्वका आनयन संपाद्य है, संपादकज्ञानका हेतु संपाद्यज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** कहिये है; संपादकज्ञान प्रमा है, या स्थानमैं जातिका ज्ञान **प्रमाण** है औ व्यक्तिका ज्ञान **प्रमा** है; यह **भट्टमीमांसकका मत** है. औ कोई जातिशक्तिवादी अनुमानतैं व्यक्तिका बोध मानैं हैं, सो ग्रंथांतरमैं स्पष्ट है. कठिन प्रसंग लिख्या नहीं. केवल जातिमैं शक्ति मानैं ताके मतमैं व्यक्तिका बोध शब्द प्रमाणतैं होवै नहीं; किंतु अर्थापत्ति वा अनुमानसैं व्यक्तिका बोध होवै है, परंतु कोई ग्रंथकार जातिमैं कुब्जशक्ति मानैं हैं. तिनके मतमैं व्यक्तिका

ज्ञानभी शब्दप्रमाणतैं ही होवै है.ताका यह अभिप्राय है:—सकल पदनकी शक्ति तौ जातिविशिष्ट व्यक्तिमैं है, परंतु शक्तिका ज्ञान जाकूं होवै ताकूं पदसैं अर्थकी स्मृति औ शाब्दबोध होवै है अन्यकूं नहीं. तहां घटपदकी घटत्वमैं शक्ति है. इसरीतिसैं जातिशक्तिका ज्ञानपदार्थकी स्मृतिका औ शाब्दबोधका हेतु है औ व्यक्तिमैं शक्तिके ज्ञानका उपयोग नहीं औ व्यक्ति अनंत हैं. यातैं सकल व्यक्तिका ज्ञान संभवै नहीं. इस कारणतैं व्यक्तिकी शक्ति स्वरूपसैं पदार्थकी स्मृति औ शाब्दबोधका हेतु है; ताका ज्ञान हेतु नहीं. इसरीतिसैं घट पदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्ति होनेतैं घटपदके वाच्य तौ घटत्व औ घट दोनूं हैं; यातैं घटपदका वाच्य जो घटत्व औ घट तिनके शाब्दबोधका हेतु घटत्वमैं शक्तिका ज्ञान है; या पक्षकूं कुब्जशक्तिवाद कहैं हैं और प्रकारसैं कुब्जशक्तिवाद गदाधर भट्टाचार्यनैं शक्तिवादके अंतमैं लिख्या है सो कठिन है, यातैं इहां लिख्या नहीं औ घटादिक पदनतैं जैस जातिविशिष्ट व्यक्तिका बोध होवै है तैसैं जातिका व्यक्तिमैं जो समवायादिक संबंध ताकाभी बोध होवै है, यातैं जाति व्यक्ति संबंध इन तीनूंमैं घटादि पदनकी शक्ति है; यह गदाधर-भट्टाचार्यका मत है. सर्व मतनमैं जातिविशिष्ट व्यक्तिमैं घटादिक पदनकी शक्ति है यह मत बहुत ग्रंथकारोंनैं लिख्या है. यातैं घटपदकी घटत्वविशिष्टमैं शक्ति कही है.

वाक्यनका भेद ॥ ६ ॥

नीलके अभेदवाला एक घट है: यह "नीलो घटः" इस वाक्यका अर्थहै; तैसैं "वज्रहस्तः पुरंदरः" यह वैदिक वाक्य है. जैसैं "नीलो घटः" या वाक्यमैं विशेषणबोधक नीलपद है औ घटपद विशेष्यबोधक है, तैसैं वज्रहस्तपद विशेषणबोधक है औ पुरंदरपद विशेष्यबोधक है. विशेषणपदकै आगै विसर्ग निरर्थक है अथवा अभेदार्थक है. विशेष्यबोधकपदकै आगै विसर्ग-का एकत्व अर्थ है. "वज्रहस्तके अभेदवाला एक पुरंदर है" यह वाक्यक

अर्थ है. इस रीतिसें लौकिक वैदिक वाक्यनकी समान रीति है; परंतु **वैदिक वाक्य दोप्रकारके** हैं:—एक व्यावहारिक अर्थके बोधक हैं दूसरे परमार्थ तत्त्वके बोधक हैं. ब्रह्मसैं भिन्न सारा व्यावहारिक अर्थ कहिये है, **परमार्थतत्त्व** ब्रह्म कहिये है. ब्रह्मबोधक **वाक्यभी दो प्रकार** के हैं:—तत्पदार्थ वा त्वंपदार्थके स्वरूपके बोधक **अवांतर वाक्य** हैं. जैसैं "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" यह वाक्य तत्पदार्थका बोधक है. "य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" यह वाक्य त्वंपदार्थके स्वरूपका बोधक है, तत्पदार्थ त्वंपदार्थके अभेदके बोधक "तत्त्वमसि" आदिक **महावाक्य** हैं.

शब्दकी शक्तिलक्षणवृत्तिका संक्षेपतें कथन ॥ ६ ॥

जा अर्थमें जा पदकी वृत्ति होवै ता अर्थकी ता पदसैं प्रतीति होवै है. शक्ति औ लक्षणा भेदतैं सो वृत्ति **दोप्रकारकी** है; ईश्वरकी इच्छा अथवा वाच्यवाचकभाव संबंधमूल तादात्म्य अथवा पदार्थबोधहेतु सामर्थ्यकूं शक्ति कहैहैं. जिस अर्थमें पदकी शक्ति होवै सो अर्थ पदका शक्य कहिये है, शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं; जैसें गंगापदकी शक्ति प्रवाहमें है, यातें गंगापदका शक्य प्रवाह है, तामें संयोगसंबंध तीरका है; इस रीतिमें पदका जो अर्थसें परंपरासंबंध सो **लक्षणा** है. जैसें गंगापदका तीरसें परंपरासंबंध है, सोई तीरमें गंगापदकी **लक्षणा** कहिये है. काहेतें ? साक्षात्संबंधवालेसैं जो संबंध सो **परंपरासंबन्ध** कहिये है. गंगापदका शक्तिरूप संबंध प्रवाहतेंहै तासैं संयोग तीरका है. यातें स्वशक्य संयोगरूप गंगापदका तीरसैं **परंपरासंबंध** है, सोई लक्षणा कहिये है. यातें यह सिद्ध हुवा:—जा अर्थमें जिसपदका शक्तिरूप साक्षात्संबंध होवै, सो अर्थ तिस पदका **शक्य** कहिये है, जा अर्थमें जिस पदके शक्यका संबंध होवै सो अर्थ तिस पदका **लक्ष्य** कहिये है. जैसें गंगापदका शक्य जो प्रवाह ताका तीररूप अर्थसें **संयोगसंबंध** है यातें **गंगापदका** शक्य प्रवाह है औ तीर लक्ष्य है.

इस रीतिसैं पदका साक्षात्संबंध औ परंपरासंबंधरूप शक्तिलक्षणा भेदतैं **वृत्ति दोप्रकारकी** है. जा पदकी वृत्ति जिस पुरुषकूं अज्ञात होवै ता पदका तिस पुरुषकूं साक्षात्कार हुये भी पदार्थकी स्मृति औ शाब्दबोध होवै नहीं; यातैं शक्तिलक्षणारूप वृत्तिका ज्ञान पदार्थकी स्मृति औ शाब्दबोधका हेतु है.

वाक्यार्थज्ञानका क्रम ॥ ७ ॥

शाब्दबोधका यह क्रम है:—जा पुरुषकूं पदकी वृत्ति ज्ञात होवै ता पुरुषकूं वाक्यके सकल पदनका साक्षात्कार होवै जिस पदकी जिस अर्थमैं वृत्ति पूर्व जानी होवै तिस पदसैं तिस अर्थकी स्मृति होवै है; तिसतैं अनंतर परस्परसंबंधवाले सकल पदार्थनका ज्ञान अथवा सकल पदार्थनका परस्परसंबंधज्ञान वाक्यार्थज्ञान होवैहै. जैसैं "गामानय त्वम्" या वाक्यमैं गो आदिक पद हैं, तिनकी अपने अर्थमैं वृत्तिका प्रथम ऐसा ज्ञान पुरुषकूं चाहिये:—गोपदकी गोत्वविशिष्ट पशुविशेषमैं शक्ति है. द्वितीया विभक्तिकी कर्मतामैं शक्ति है. आनयनमैं आपूर्व नीपदकी शक्ति है. यकारोत्तर अकारकी कृति औ प्रेरणामैं शक्ति है. संबोधनयोग्यचेतनमैं **त्वंपदकी शक्ति** है इस रीतिसैं शक्तिज्ञानवालेकूं "गामानय त्वम्" या वाक्यका श्रोत्रसैं संबंध होतैं ही गो आदिक सकल पदनका साक्षात्कार होयके तिन पदनके शक्य अर्थकी स्मृति होवै है, जैसैं हस्तिपालकके ज्ञानतैं ताके संबंधी हस्तीकी स्मृति होवै है, तैसैं पदनके ज्ञानतैं तिनके संबंधी शक्य अर्थनकी स्मृति होवै है. "यह हस्तिपालक है" ऐसा हस्ति औ महावतके संबंधका जाकूं ज्ञान होवै नहीं; किंतु "मनुष्य है" ऐसा ज्ञान होवै ताकूं हस्तिपालक देखे भी हस्तीकी स्मृति होवै नहीं; तैसैं इसपदका यह शक्य है अथवा लक्ष्य है. ऐसा शक्ति वा लक्षणारूप संबंधका जाकूं पूर्व ज्ञान होवै नहीं; किंतु अज्ञातार्थपदका श्रावणसाक्षात्कार होवै, ताकूं पदनके श्रवणतैंभी अर्थनकी स्मृति होवै नहीं; यातैं वृत्ति

सहित पदका ज्ञान पदार्थस्मृतिका हेतु है; केवल पदका ज्ञान हेतु नहीं. पदनके ज्ञानतैं सकल पदार्थनकी स्मृति होयके सकल पदार्थनके परस्पर संबंधका ज्ञान होवै है. अथवा पदनके ज्ञानतैं परस्परसंबंध रहित जिन पदार्थनका स्मरण हुवाहै, तिन पदार्थनका परस्परसंबंध सहित ज्ञान होवै है, सो पदार्थनके संबंधका ज्ञान अथवा संबंधसहित पदार्थनका ज्ञान **वाक्यार्थज्ञान** कहिये है औ **शाब्दीप्रमा** कहिये है. "गामानय त्वम्" या वाक्यमें गो पदार्थका द्वितीयार्थ कर्मतामें **आधेयता संबंध** है. आधेयताकूं **वृत्तित्व** कहैं हैं; "आपूर्व नीके" अर्थ आनयनमें कर्मताका **निरूपकता** **सबध** है. यकारोत्तर अकारके कृति औ प्रेरणा दो अर्थ हैं. तहां कृतिमें आनयनका **अनुकूलतासंबंध** है; कृतिका त्वंपदार्थमें **आश्रयता संबन्ध** है. प्रेरणाका त्वं पदार्थमें **विषयतासंबंध** है; यातैं "गोवृत्तिकर्मतानिरूपक आनयनानुकूलकृत्याश्रयः प्रेरणाविषयस्त्वंपदार्थः" यह ज्ञान वाक्य श्रोताकूं होवै है. तहां वृत्तिविशिष्ट सकल पदनका ज्ञान शब्दप्रमाण है. पदनके ज्ञानतैं तिनके अर्थकी स्मृति व्यापार है; वाक्यार्थज्ञान फल है;इस रीतिसैं लौकिक वैदिक वाक्यनतैं बहुत स्थानोंमें पदार्थनके संबंधका वा संबंध सहित पदार्थनका बोधही फल होवै है. तथापि त्वंपदार्थके संबंधी तत्पदार्थका तत्पदार्थके संबंधी त्वंपदार्थका महावाक्यनतैं बोध मानैं तौ "असंगो ह्ययं पुरुषः"इत्यादिक **श्रुतिवचनोंनैं** वेदांतप्रतिपाद्य ब्रह्मकूं असंगता कही है,ताका बाध होवैगा.यातैं महावाक्यनका प्रतिपाद्य अखंड ब्रह्म है. वाक्यनकूं अखंड अर्थकी बोधकतामें दृष्टांत संक्षेपशारीरकमैं स्पष्टहै विस्तारभयतैं लिख्या नहीं.

लक्षणाका प्रकार ॥ ८॥

महावाक्यनमें लक्षणाका प्रकार विचारसागरमैं लिख्या है सो जानिलेना. पदके शक्यसैं संबंधकूं लक्षणा कहैंहैं, यातैं पदका परंपरासंबंधरूप लक्षणा है.काहेतैं?पदका **साक्षात्संबंध** शक्यतैं होवै है.ता शक्यका संबंध लक्ष्यतैं होवै है. यातैं शक्यद्वारा पदका संबंध होनेतैं परंपरासंबंधरूप **लक्षणावृत्ति** है.इसी

कारणतैं ग्रंथकारोंनें लक्षणावृत्ति **जघन्य** कहीहै. जहां पदका साक्षात्संबन्धरूप शक्तिवृत्ति नहीं संभवै, तहां परंपरासंबंधरूप लक्षणावृत्तिका अंगीकार है. इसीकारणतैं ग्रंथकारोंनें लिख्याहैः—जहां शक्य अर्थमैं वक्ताका तात्पर्य नहीं संभवै, तहां **लक्षणावृत्ति** मानिकै पदका लक्ष्य अर्थ मानना योग्य है. जहां शक्य अर्थमैं वक्ताका तात्पर्य संभवै; तहां लक्ष्य अर्थ मानना योग्य नहीं. केवललक्षणा औ लक्षितलक्षणाके भेदतैं सो **लक्षणा दो प्रकारकी** हैः—पदके शक्यका साक्षात्संबंध होवै ताकूं **केवललक्षणा** कहैं हैं. जैसें गंगापदकी तीरमैं लक्षणा होवै है, तहां गंगापदका शक्य जो प्रवाह ताका तीरसैं **साक्षात्संबंध संयोग** है, तहां गंगापदकी तीरमैं केवल लक्षणा है, **लक्षितलक्षणाका उदाहरण यह** हैः-"द्विरेफो रौति"या वाक्यका"दो रेफ ध्वनि करैं हैं"यह अर्थ पदनकी शक्तिसैं प्रतीत होवै है; सो वर्णरूप रेफमैं ध्वनि करना संभवै नहीं. यातैं शक्य अर्थमैं वक्ताका तात्पर्य नहीं, किंतु दो रेफवाला जो भ्रमरपद तिसके शक्यमैं ही रेफपदकी लक्षणा है; सो केवल लक्षणा तौ है नहीं. काहेतैं?जा अर्थमैं पदके शक्यका साक्षात्संबंध होवै तामैं केवललक्षणा होवै है. द्विरेफ पदका शक्य दो रेफ हैं, तिनका अवयविना संबंध भ्रमरपदमैं है; ता पदका शक्तिरूप संबंध अपने वाच्य मधुपमै है;यातैं शक्यसंबंधी जो भ्रमरपद ताका संबंध होनेतैं शक्यका परंपरासंबंध है;यातैं **लक्षितलक्षणा** है. यद्यपि दो रेफनकूं द्विरेफ नहीं कहैं हैं, किंतु दोरेफवालेकूं द्विरेफ कहैं हैं. दोरेफवाला भ्रमरपदहै; यातैं द्विरेफपदका शक्य जो भ्रमरपद ताका मधुपसैं साक्षात्संबंध होनेतैं केवललक्षणा संभवै है, तथापि **व्याकरणके मतमैं** सो समासकी शक्ति है; यातैं द्विरेफ पदका शक्य दोरेफवाला भ्रमरपद है, **न्यायवैशेषिकादिकनके मतमैं** समाससमुदायकी शक्ति नहीं मानैं हैं, किंतु समाससमुदायके जो अवयव हैं, तिनकी लक्षणावृत्तिसैं अधिक अर्थ समासमैं प्रतीत होवै है. जैसें " द्विरेफ" **इतना** समाससमुदाय है ताकी किसी अर्थमैं शक्ति नहीं. तहां द्वित्वसंख्याविशिष्ट द्विपदका अर्थ है, रेफत्वजातिविशिष्ट

अक्षर रेफपदका अर्थ है, द्विपदके शक्यका औ रेफपदके शक्यका अभेद-संबंध वाक्यार्थ होवै तौ द्वित्वसंख्यावाले रेफ हैं यही अर्थ शक्य है; औ दोरेफवाले पदकूं द्विरेफ कहैं हैं; सो लक्षणावृत्ति मानिकै कहैं हैं; परंतु इतना भेद हैः—**न्यायवैशेषिकमतमैं** वाक्यकी लक्षणा नहीं मानैं , काहेतैं ? शक्य संबंधकूं **लक्षणा** कहैं हैं. पदसमुदायरूप वाक्यकी किसी अर्थमैं शक्ति नहीं यातैं वाक्यके शक्यका अभाव होनेतैं शक्यसंबंधरूप लक्षणा वाक्यकी बनै नहीं; किंतु पदकी लक्षणा होवै है, यामतमैं रेफपदकी रेफवालेमैं लक्षणा औ **मीमांसामतमैं तथा वेदांतमतमैं** वाक्यकीभी लक्षणा मानैंहैं औ वाक्यकी लक्षणामें जो दोष कहाहै ताका यह समाधान हैः—पद समुदायकूं **वाक्य** कहैंहैं; सो समुदाय प्रत्येक पदसैं भिन्न नहीं; यातैं पदनका शक्यही वाक्यका शक्य है; अथवा शक्यसंबंधरूप लक्षणा नहीं किंतु बोध्यसंबंधकूं **लक्षणा** कहैं हैं. जैसैं पदका शक्यताशक्ति वृत्तिसैं बोध्य है, तैसैं परस्परसंबंध सहित पदार्थरूप वा पदार्थनका संबंधरूप वाक्यार्थ भी वाक्यबोध्य है. यातैं पदबोध्य संबंधरूप लक्षणा जैसैं पदकी होवै है तैसैं वाक्यबोध्य संबंधरूप लक्षणा वाक्यकी भी होवै है. यामतमैं द्विरेफसमुदायकी दोरेफवाले पदमैं लक्षणा, इसरीतिसैं द्विरेफपदसें लक्षित भ्रमरपदकी मधुपमैं लक्षणा होनेतैं लक्षितलक्षणा कहावै है. सो भी लक्षणाके अंतर्भूत ही है. काहेतैं द्विरेफपदका शक्य जो दो रेफ ताका भ्रमर पदसैं साक्षात्संबंध है; औ भ्रमरतैं भ्रमरपदद्वारा परंपरासंबंध है; यातैं शक्यसंबंधरूप लक्षणातैं **लक्षितलक्षणा** पृथक् नहीं. **व्याकरण मतमैं** द्विरेफ पदका शक्य दोरेफवाला भ्रमरपद है, ताका भ्रमरसैं साक्षात्संबंध है, यातैं यह उदाहरण लक्षितलक्षणाका नहीं, केवल लक्षणाका है. ता मतमैं **लक्षितलक्षणाके उदाहरण** "सिंहो देवदत्तः" इत्यादिक हैं. या स्थानमैं "सिंहसैं अभिन्न देवदत्त है" यह वाक्यका अर्थ पदनकी शक्तिवृत्तिस प्रतीत होवै है, सो संभवै नहीं. काहेतैं ? पशुत्व जाति औ मनुष्यत्व जाति परस्पर विरुद्ध हैं,

एकमैं संभवे नहीं; यातैं सिंहशब्दकी शूरताक्रूरताधर्मवाले पुरुषमैं लक्षणा है. ता पुरुषतैं सिंहशक्यका साक्षात्संबंध नहीं होनेतैं केवल लक्षणा तौ है नहीं, किंतु शूरतादिकनतैं सिंहशब्दके शक्यका आधेयतासंबंध है; औ शक्यसंबंधि शूरतादिकनका पुरुषमैं आश्रयतासंबंध है; परंतु सिंहकी शूरता औ पुरुषकी शूरताका अभेद मानैं तब तौ सिंहकी शूरताका देवदत्तमैं **अधिकरणता संबंध** है; औ दोनूं शूरताका परस्पर भेद मानैं तौ सिंहकी शूरताका पुरुषमैं स्वजातीय शूरताधिकरणता संबंध है. सिंहकी शूरता स्वशब्दका अर्थ है;इसरीतिसैं वाक्यका परंपरासंबंध होनेतैं सिंहशब्दकी शूरतादिगुणविशिष्टमैं लक्षितलक्षणा है. शक्यके परंपरासंबंधकूं लक्षितलक्षणा कहै हैं, यद्यपि लक्षितलक्षणाशब्दसैं उक्त अर्थकी सिद्धि क्लिष्ट है. काहेतें ? लक्षितलक्षणाशब्दकी रूढि तौ शक्यके परंपरासंबंधमैं कोशादिकनमैं कही नहीं. औ योगवृत्तिमैं लक्षणा शब्दका उक्त अर्थ प्रतीत होवै नहीं. काहेतें ? "लक्षितस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा" इसरीतिसैं षष्ठी **समास** करैं तौ लक्षित कहिये लक्षणावृत्तिसैं जो प्रतीत हुया है ताकी लक्षणा यह लक्षितलक्षणा शब्दका अर्थ सिद्ध होवैहै. "द्विरेफो रौति, सिंहो देवदत्तः" इत्यादिक जो **लक्षितलक्षणाके उहदारण** कहे तहां उक्तस्वरूप लक्षितलक्षणा संभवे नहीं. काहेतें ? "द्विरेफो रौति" या वाक्यमैं द्विरेफपदसैं भ्रमरपदलक्षित होवै औ ताकी मधुपमैं लक्षणा होवै तौ उक्त अर्थका संभव होवे सो दोनूं वार्ता हैं नहीं. काहेतें ? यद्यपि द्विरेफपदके शक्यका संबंध भ्रमरपदतैं है, तथापि द्विरेफ पदसैं लक्षित भ्रमरपद नहीं काहेतैं? वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षित होवै है केवल शक्यसंबंधी लक्षित नहीं होवै है, जो केवल शक्यसंबंधी लक्षित होवै तौ गंगापदके शक्यके संबंधी मीनादिक अनेक हैं; ते सारेही गंगापदसैं लक्षित हुये चाहियें यातें वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षित होवैहै. गंगापदके शक्यसंबंधी तौ अनेकहैं तथापि "गंगायां ग्रामः" या वाक्यमैं श्रोताकूं गंगापदसैं तीरका बोध होवै. ऐसे तात्पर्यविषय शक्यसंबंधी केवल तीर है, यातें गंगापदसैं तीरही लक्षित

है. मीनादिकभी शक्यसंबंधी तौ हैं उक्त तात्पर्यके विषय नहीं. यातैं गंगा-पदसैं लक्षित नहीं. इसरीतिसैं द्विरेफपदके शक्यका संबंधी तौ भ्रमरपद है, परंतु द्विरेफपदसैं भ्रमरपदका बोध श्रोताकूं होवै, ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहीं किंतु द्विरेफपदसैं भ्रमरपदके शक्य मधुपका बोध श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्य होवैहै, यातैं द्विरेफपदके शक्यका संबंधीभी भ्रमरपद है. वक्ताके उक्त तात्पर्यका विषय नहीं होनेतैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपद नहीं, और किसी रीतिसैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपद है, इसवार्ताकूं मानिलेवै तौ भी भ्रमर-पदकी मधुपमैं शक्ति है; यातैं ताकी लक्षणा कथन असंगत है. इसरीतिसैं "लक्षितस्य भ्रमरपदस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा" इसरीतिसैं षष्ठीसमासका अर्थ उक्त उदाहरणमैं संभवै नहीं; तैसैं "सिंहो देवदत्तः" या उदाहरणमैं भी उक्त अर्थ संभवै नहीं. सिंहवृत्ति शूरतादिक सिंहशब्दके शक्यसंबंधी तौ हैं, परंतु सिंहशब्दसैं शूरतादिकनका बोध श्रोताकूं होवै, ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहीं; किंतु सिंहशब्दसैं सिंहसदृश पुरुषका बोध श्रोताकूं होवै, ऐसा वक्ताका तात्पर्य होवै है. यातैं शक्यसंबंधीभी शूरतादिक गुण उक्त तात्पर्यके विषय नहीं होनेतैं सिंहशब्दसैं लक्षित नहीं,औ किसी रीतिसैं सिंहशब्दसैं लक्षित शूरतादिक हैं; याकूं मानि लेवैं तौ भी तिनकी लक्षणा कहना विरुद्ध है.काहेतैं शक्ति औ लक्षणा वर्णात्मक शब्दकी होवै है. शूरतादिक गुण शब्दरूप नहीं, यातैं तिनकी शक्ति वा लक्षणा संभवै नहीं. इस रीतिसैं "लक्षितस्य भ्रमरप-दस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा" औ "लक्षितस्य शूरतादिगुणसमुदायस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा" इस प्रकारका अर्थ षष्ठीसमासमानिकै होवै है. या अर्थमैं शक्यके परंपरासंबंधका लक्षितलक्षणा शब्दसैं बोध होवै नहीं; पूर्व उक्त दोनूं उदाहरणोंमैं शक्यका परंपरासंबंध तौ मधुप औ पुरुषमैं है, औ पूर्वोक्त रीतिसैं लक्षितलक्षणा शब्दका योग अर्थ संभवै नहीं. तथापि या वक्ष्यमाण रीतिसैं लक्षितलक्षणा शब्दका योग अर्थ षष्ठीसमास मानिकै शक्यका परंपरासंबंधही संभवै हैः—यद्यपि वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षितशब्दका अर्थ है, तथापि भागत्यागलक्षणासैं

वक्तृतात्पर्य विषय इतना भाग त्यागिकै इहां शक्यसंबंधी लक्षितशब्दका अर्थ है; तैसैं लक्षणाशब्दका अर्थ भी शक्यसंबंध है. तामैं शक्य भाग त्यागिकै भागत्यागलक्षणासैं संबंधमात्र लक्षणाशब्दका अर्थहै. यातैं **लक्षित** कहिये शक्यसंबंधीकी लक्षणा कहिये संबंध लक्षितलक्षणा शब्दका अर्थ होवै है. इस रीतिसैं शक्यसंबंधीका संबध लक्षितलक्षणा शब्दसैं योगवृत्तिसैं ही सिद्ध होवै है; अथवा लक्षित शब्दकी तौ शक्यसंबंधी मैं भागत्याग लक्षणा है; औ लक्षणा शब्दका शक्यसंबन्धही अर्थ है. ताकी संबंधमात्रमैं लक्षणा नहीं, औ "लक्षितेन लक्षणा लक्षितलक्षणा" इसरीतिसैं तृतीयासमास मानें इष्ट अर्थकी सिद्धि होवै है. **लक्षितेन** कहिये शक्यसंबंधीद्वारा लक्षणा कहिये शक्यका संबंध यह **लक्षितलक्षणा शब्दका** अर्थ है. शक्यका संबंध कहूं साक्षात् होवै है, कहूं शक्यसंबन्धीद्वारा शक्यका संबंध होवै है. "द्विरेफो रौति" इत्यादि स्थानमैं द्विरेफपदका शक्य जो दो रेफ तिनका मधुपसैं साक्षात् संबन्ध नहीं; किंतु शक्यसंबंधी भ्रमरपदहै तिसका संबंधी मधुप है. यातैं द्विरेफपदका शक्य जो दोरेफ तिनका भ्रमरपदद्वारा मधुपमैं संबन्ध है. तैसैं सिंहशब्दके शक्यके संबन्धी जे शूरतादिक गुण तिन्होंद्वारा सिंहशब्दके शक्यका संबन्धी शूरतादिगुणविशिष्टमैं है. यातैं सिंहशब्दका लक्षित कहिये शक्यसंबन्धी जे शूरतादिगुण तिन्हद्वारा **लक्षणा** कहिये सिंहशब्दके शक्यका संबन्ध पुरुषमैं है. षष्ठीसमास मानैं तौ लक्षित शब्द औ लक्षणा शब्दमैं भागत्याग लक्षणा माननी होवै है, औ तृतीयासमास मानै तौ लक्षणा शब्दका मुख्य अर्थ रहै है. एक लक्षितशब्दमैं भागत्यागलक्षणा माननी होवै है, औ लक्षितलक्षणाशब्दमैं **कर्मधारयसमास** मानैं तौ लक्षित शब्द औ लक्षणाशब्द इन दोनूंका मुख्य यौगिक अर्थ रहै है. भाग त्यागलक्षणा माननी होवै नहीं. अवयवकी शक्तिसैं जो शब्द अपने अर्थकूं जनावै ताकूं **यौगिक** शब्द कहैहैं. जैसैं "पाचक" शब्द है वहां "पाच" अवयवका पाक अर्थ है, " अक" अवयवका कर्ता अर्थ है, इसरीतिसैं अवयवशक्तिसैं पाककर्ता पाचक शब्दका अर्थ होनेतैं पाचकशब्द

यौगिक है. अवयवशक्तिकूं **योग** कहैं हैं. शास्त्रका असाधारण संकेत **परिभाषा** कहिये है. परिभाषातैं अर्थका बोधक शब्द **पारिभाषिक शब्द** कहिये है. लक्षितशब्दके लक्ष औ इत दो अवयव हैं; तिनमें लक्षशब्दका अर्थ **लक्षण** है. इतशब्दका अथ संबंधी है यातैं लक्षण-संबंधी अर्थका बोधक लक्षितशब्द यौगिक है. यातैं लक्षणवाला लक्षित-शब्दका अर्थ है; तैसें शक्य संबंधका नाम **लक्षणा** है. यह शास्त्रका संकेत है. यातैं लक्षणा शब्द पारिभाषातैं शक्यसम्बन्धरूप अर्थबोधक होनेतैं पारिभाषिक है. "लक्षिता चासौ लक्षणा लक्षितलक्षणा" यह **कर्मधारयसमास** है लक्षणवाली लक्षणा यह अर्थ कर्मधारयसमासतैं सिद्ध होवै है. असाधारण धर्मकूं **लक्षण** कहैं हैं शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहैहैं, यातैं लक्षणाका असाधारण धर्म शक्यसंबंधत्व है; सोई ताका लक्षण है; यद्यपि शक्यका संबंध साक्षात् परंपराभेदतैं दोप्रकारका है औ बहुत स्थानमें शक्यका **साक्षात्संबंधरूपलक्षणा** है. "द्विरेफो रौति, सिंहो देवदत्तः" इत्यादिकनमें शक्यका साक्षात्संबंध है नहीं, तथापि लक्षणाका असाधारणधर्म शक्यसंबंधत्व है. संबंधमें साक्षात्पना लक्षणाके लक्षणमें प्रविष्ट नहीं. जहां शक्यका परंपरासंबंध है, तहांभी शक्यसंबंधत्वरूप स्वलक्षणवाली लक्षणा है "गंगायां ग्रामः" इत्यादिक उदाहरणमैं यद्यपि शक्यका साक्षात्संबंधरूप लक्षणा है. तथापि संबंधका साक्षात्पना लक्षणाके लक्षणमैं प्रविष्ट नहीं किंतु साक्षात्परंपरा साधारणसंबंधत्वरूपतैं लक्षणाके लक्षणमें संबंधमात्रप्रविष्ट है. इसीवास्ते "शक्यसंबंधो लक्षणा" ऐसा कहैहैं; "शक्यसाक्षात्संबंधो लक्षणा" ऐसा नहीं कहैहैं. इसरीतिसें लक्षिता कहिये शक्यसंबंधत्वरूप स्वलक्षणवाली लक्षणा **लक्षितलक्षणा शब्दका** अर्थ है. सो परंपरा-संबंधस्थलमैं संभवै है. यद्यपि लक्षितलक्षणाशब्दका उक्त अर्थ साक्षात्संबंधस्थलमें संभवैभी है. तहांभी लक्षितलक्षणा कही चाहिये. तथापि "लक्षिता लक्षणा लक्षितलक्षणा" या कहनेका यह अभिप्राय हैः—शक्य साक्षात्त्वविशिष्टसंबंधत्वरहिता केवलशक्यसंबंधत्वरूपलक्षणवती लक्षणा

लक्षितलक्षणा; यातैं केवल लक्षणाका संग्रह होवै नहीं. इसरीतिसें कर्मधारय समास है.

शब्दकी तृतीय गौणवृत्तिका कथन ॥ ९ ॥

और कितने ग्रंथनमें यह लिख्या है:—"सिंहो देवदत्तः" इत्यादिवाक्यनमें सिंहादिशब्द गौणीवृत्तिसें पुरुषादिकनके बोधक हैं. जैसे शक्ति औ लक्षणा पदकी वृत्ति है तैसें तीसरी गौणी वृत्ति है. पदके शक्य अर्थमें जो गुण होवै तिसवाले अशक्य अर्थमें पदकी **गौणीवृत्ति** कहिये है. जैसें सिंहपदके शक्य मैं शूरतादिक गुण हैं; तिनवाला जो सिंहशब्दका अशक्य पुरुष तामैं सिंहशब्दकी **गौणीवृत्ति** है, सो पूर्व प्रकारमैं लक्षणाके अंतर्भूतहै.

चतुर्थीव्यंजनावृत्तिका कथन ॥ १० ॥

औ चौथी व्यंजनावृत्ति अलंकारग्रंथनमें लिखी है, ताका यह उदाहरण है:—शत्रुगृहमें भोजननिमित्त प्रवृत्त पुरुषकूं दूसरा प्रिय पुरुष कहै "विषं भुंक्ष्व" तहां 'विषका भोजन कर' यह शक्तिवृत्तिमें वाक्यका अर्थ है. औ भोजनके अभावमें वक्ताका तात्पर्य है. सो भोजनमें शक्तिवाले पदकी अभावमें संबंधके अभावतें लक्षणाभी बनैं नहीं, यातें शत्रुगृहतैं भोजननिवृत्तिवाक्यका व्यंग्य अर्थ है. **व्यंजनावृत्तिसैं** जो अर्थ प्रतीत होवै सो **व्यंग्य अर्थ** कहिये है. अन्य उदाहरण:—संध्याकालमैं अनेक पुरुषनकूं नानाकार्यमैं प्रवृत्तिनिमित्त किसीनैं "सूर्योऽस्तं गतः" यह वाक्य उच्चारण किया; ताकूं सुनिकै नाना पुरुष तिसकालमैं अपनें अपनें कर्तव्यकूं जानिकै प्रवृत्त होवै हैं; तहां अनेक पुरुषनकूं नाना कर्त्तव्यका बोध व्यंजनावृत्तिसैं होवै है. इसरीतिसैं व्यंजनावृत्तिके अनेक उदाहरण **काव्यप्रकाश काव्यप्रदीप आदिक ग्रंथनमै** मम्मट गोविंदभट्ट आदिकोंनैं लिखे हैं सो बहुत उदाहरण शृंगार रसकेहैं यातैं नहीं लिखे. न्यायग्रंथनमें व्यंजनावृत्तिकाभी लक्षणावृत्तिसें अंतर्भाव कह्या है. और जो अलंकारिक कहैहैं:—शक्यसंबंधी अर्थका तौ लक्षणावृत्तिसैं बोध संभवै है, औ शक्य अर्थके

संबंधी अर्थमें लक्षणा संभवै नहीं, ताकी शब्दसें प्रतीतिके अर्थ व्यंजनावृत्ति माननी चाहिये ? ताका यह समाधान हैः—साक्षात् औ परंपरा भेदतैं संबंध दोप्रकारका होवे है. तिनमें साक्षात् संबंध तौ परस्पर किनोंका ही होवैहै, सर्वका होवै नहीं; औ परंपरासंबंध तौ सर्व पदार्थनका परस्पर संभवैहै. बहुत क्या कहैं:—गोत्व अश्वत्वकाभी परस्पर व्यधिकरणता संबंध है घटाभाव औ घट परस्पर विरोधी हैं. तौ भी घटाभावका घटमें प्रतियोगिता संबन्ध औ घटका अपनें अभावमें स्ववृत्तिप्रतियोगिता निरूपकता संबन्ध है. इसरीतिसें सर्व पदार्थनका आपसमें परंपरा-संबन्ध संभवै है. यातें व्यंग्य अर्थभी शक्यसंबन्धी होनेतें लक्ष्यके अंत-र्भूत है; औ व्यंजनावृत्तिका प्रतिपादन काव्यप्रकाशमें और ताकी टीकामें जयराम भट्टाचार्यादिकोंनें लिख्या है; तैसें काव्यप्रदीपमें और ताकी टीका उद्योतनमें नागोजीभट्टनें लिख्या है. ताका खंडनभी न्यायग्रंथनमें लिख्या है औ व्याकरण ग्रंथनमें कहूं खंडन लिख्या है. कहूं प्रतिपादन लिख्या है. अद्वैतसिद्धांतमें खंडनका वा प्रतिपादनका आग्रह नहीं, यातें प्रतिपादनकी रीतिमात्र जनाई है.

लक्षणाके भेदका कथन ॥ ११ ॥

शक्ति औ लक्षणा दो वृत्ति सर्वके मतमें हैं. औ महावाक्यके अर्थ निरूपणमें भी दोकाही उपयोग है. तिनमें शक्तिका निरूपण किया, औ शक्यके साक्षात्संबन्ध और परंपरासंबन्धके भेदतें केवल लक्षणा औ लक्षित लक्षणारूप दो भेद लक्षणाके कहे. जहत् लक्षणा अजहत् लक्षणा भाग-त्याग लक्षणा इन भेदनतैं फेरि तीनि प्रकारकी लक्षणा है.

जहां शक्यकी प्रतीति नहीं होवै केवल शक्य संबन्धीकी प्रतीति होवै वहां जहल्लक्षणा होवे है. जैसें "विषं भुंक्ष्व" या स्थानमें शक्य जो विषभोजन ताकूं त्यागिकै शक्यसंबन्धी भोजननिवृत्तिकी प्रतीति होनेतें जहल्लक्षणा है. यद्यपि जहां शक्य अर्थका संबन्ध नहीं संभवै तहां

जहल्लक्षणाका अंगीकार होवै है. जैसे "गंगायां ग्रामः" या स्थानमें पदनके शक्य अर्थनका परस्पर संबन्ध संभवै नहीं. औ "विषं भुंक्ष्व" या स्थानमैं शक्य अर्थका अन्वय संभवै है. मरणका हेतुभी विष है तौभी भोजनमैं विषका अन्वय संभवै है; तथापि अन्वयानुपपत्ति लक्षणामें बीज नहीं; किंतु तात्पर्यानुपपत्ति लक्षणामें बीज है यह ग्रंथमें लिख्या है, ताका यह भाव है:–अन्वय कहिये शक्य अर्थका संबन्ध ताकी अनुपपत्ति कहिये असंभव जहां होवै तहां लक्षणा होवै है; यह नियम नहीं जो यहो नियम होवै तो"यष्टीः प्रवेशय"या वाक्यमें यष्टिपदकी यष्टिधरनमैं लक्षणा नहीं होवैगी. काहेतैं ? यष्टिपदके शक्यका प्रवेशमें अन्वय संभवै है, यातैं तात्पर्यानुपपत्ति लक्षणामें बीज है. अन्वयानुपपत्तिमैं नहीं; तात्पर्य कहिये वाक्यकर्ताकी इच्छा ताकी अनुपपत्ति कहिये शक्य अर्थमें असंभवलक्षणा माननेंका बीज कहिये हेतु है. "यष्टीः प्रवेशय" या वाक्यमैं तात्पर्यानुपपत्ति है; काहेतें ? यष्टिका प्रवेश जो शक्य अर्थ तामें वक्ताका तात्पर्य भोजनके समय संभवै नहीं, यातें यष्टिपदकी यष्टिधर पुरुषनमें लक्षणा है, तैसें मरणहेतु विषभोजनमें पिताका तात्पर्य संभवै नहीं; यातें भोजननिवृत्तिमें जहल्लक्षणा है. "गंगायां ग्रामः" या स्थानमें तात्पर्यानुपपत्तिभी संभवै है, यातें जहां तात्पर्यानुपपत्ति होवै तहां लक्षणा मानिये है, यह नियम है, "गंगायां ग्रामः" या स्थानमैंभी गंगापदका शक्य जो देवनदी प्रवाह ताकूं त्यागिकै शक्यसंबन्धी तीरकी प्रतीति होवैहै, यातैं जहल्लक्षणा है.

जहां सामान्यतीरबोधमैं वक्ताका तात्पर्य नहीं है; किंतु गंगातीरके बोधमैं वक्ताका तात्पर्य है तहां गंगापदकी गंगातीरमै अजहल्लक्षणा है औ अजहल्लक्षणाके असाधारण उदाहरण तौ "काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" इत्यादिक हैं, सहितशक्यसंबन्धीकी जहां प्रतीति होवै तहां अजहल्लक्षणा

होवैहै भोजनवास्तै दधिरक्षामें वक्ताका तात्पर्य है. सो विडालादिकनसैं दधिरक्षणविना संभवै नहीं; यातैं काकपदकी दधिउपघातकमैं अजहत-लक्षणा है. इसरीतिसैं "छत्रिणो यांति" या स्थानमैं छत्रिपदकी छत्रिसं-युक्त एक सार्थमैं अजहल्लक्षणा है. न्यायमतमैं नीलादिकपदनकी गुण-मात्रमैं शक्ति है. "नीलो घटः" इत्यादिक वाक्यनमैं नीलरूपवालेके बोधक नीलादिकपद लक्षणातैं हैं. तहां शक्यसहित संबन्धीकी प्रतीति होवैहै, यातैं अजहल्लक्षणा है. और कोशकारके मतमैं नीलादिकपद लक्षणातैं हैं. तहां शक्यसहित संबन्धीकी प्रतीति होवैहै, यातैं अजहत्लक्षणा है. औ कोशकारके मतमैं नीलादिकपदनकी गुण औ गुणीमें शक्ति है लक्षणा नहीं वेदांतपरिभाषाग्रंथमैं नीलादिकपदनकी गुणीमैं अजहतलक्षणा कही सो न्यायका मत है.

औ शक्य अर्थके एकदेशकूं त्यागिके एकदेशके बोधमैं वक्ताका तात्पर्य होवै, तहां **भागत्यागलक्षणा** होवैहै. जैसें "सोऽयं देवदत्तः" या स्थानमैं भागत्याग लक्षणा है. इहां परोक्षवस्तु तत्पदका अर्थ है औ अपरो-क्षवस्तु इदंपदका अर्थ है. दकारादिवर्णविशिष्ट नामावाला पुरुषशरीर देव-दत्तपदका अर्थ है, तत्पदार्थका इदंपदार्थसैं अभेद तत्पदोत्तर विभक्तिका अर्थ है, इदंपदार्थका देवदत्तपदार्थसैं अभेद इदंपदोत्तरविभक्तिका अर्थ है, अथवा तत्पद औ इदंपदसैं उत्तरविभक्ति निरर्थक है. समानविभक्तिवाले पदनके सन्निधानतैं पदार्थनका अभेद प्रतीत होवै है, यातैं परोक्षवस्तुसैं अभिन्न अपरोक्ष वस्तुस्वरूप देवदत्तनामवाला शरीर है. यह वाक्यके पदनका शक्य अर्थ है. सो उष्ण शीतल है, याकी नाई बाधित है. बाधित अर्थमैं वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं यातैं तत्पदइदंपदके शक्यमैं परोक्षता अपरो-क्षता भागकूं त्यागिके वस्तुभागमैं लक्षणा होनेतैं **भागलक्षणा** है.

इसरीतिसैं तीनिभांतिकी लक्षणा **प्रयोजनवती लक्षणा** औ **निरूढल-क्षणा** भेदतैं **दोप्रकारकी** है:—जहां शक्तिवाले पदकूं त्यागिके लाक्षणिक

शब्दप्रयोगमैं प्रयोजन कहिये फल होवै सो **प्रयोजनवतीलक्षणा** कहियेहै. जैसैं गंगापदकी तीरमैं प्रयोजनवती लक्षणा है. "तीरे ग्रामः" ऐसा कहैं तौ तीरमैं शीतपावनतादिकनकी प्रतीति होवै नहीं, गंगापदसैं तीरका बोध न करैं गंगाके धर्म शीतपावनतादिक तीरमैं प्रतीत होवहैं; इसी वास्तै व्यंजनावृत्तिकूं आलंकारिक मानैं हैं. न्यायमतमैं शीतपावनतादिक शाब्दबोधके विषय नहीं, किंतु अनुमितिके विषय हैं. तथाहि—"गंगातीरं शीतपावनत्वादिमत्, गंगापदबोध्यत्वात् गंगावत्" यह अनुमान है. सर्वथा **प्रयोजनवती लक्षणा** है.

औ पदकी जिस अर्थमैं शक्तिवृत्ति होवै नहीं औ शक्यकी नाई जिस अर्थकी प्रतीति जिसपदमैं सर्वकूं प्रसिद्ध होवै तिस अर्थमैं ता पदकी **प्रयोजनशून्यलक्षणा निरूढलक्षणा** कहिये है. जैसैं नीलादिक पदनकी कोशरीतिसैं गुणगुणीमैं शक्ति मानैं तौ गौरवदोष है. औ शक्यतावच्छेदक एक एक धर्मका लाभ होवै नहीं; यातैं गुणमात्रमैं शक्ति है. औ "नीलो घटः" इत्यादिक वाक्यनकूं सुनतेंही सर्व पुरुषनकूं गुणकी प्रतीति अतिप्रसिद्धहै; यातैं नीलादिक पदनकी गुणीमैं प्रयोजनशून्यलक्षणा होनेतैं **निरूढलक्षणा** है. निरूढलक्षणा शक्तिके सदृश होवै है. कोई विलक्षण अनादि तात्पर्य होवै तहां निरूढलक्षणा होवै है.

औ जहां प्रयोजन औ अनादि तात्पर्य दोनूं होवैं नहीं; किंतु ग्रंथकार अपनी इच्छातैं लाक्षणिक शब्दका प्रयोगविना प्रयोजन करै है, तहां तीसरी **ऐच्छिकलक्षणा** होवैहै; परंतु अनादि तात्पर्य औ प्रयोजन विना लाक्षणिक शब्दके प्रयोगकूं विद्वान समीचीन नहीं कहैं हैं; इसी कारणतैं **काव्यप्रकाशादिक साहित्य ग्रंथन**मैं निरूढलक्षणा औ प्रयोजनवती लक्षणाके भेद उदाहरणसहित लिखे हैं. ऐच्छिक लक्षणा लिखी नहीं, गदाधरभट्टाचार्यादिकोंनैं ऐच्छिक लक्षणा लिखी है. तिनका तात्पर्य ऐच्छिक लक्षणाकी संभावनामैं है, औ "ऐच्छिकलक्षणावाले पदका प्रयोग साधु है" इस

अर्थमें तात्पर्य नहीं. लक्षणाके अवांतर भेद मम्मट्ट आदिकोंनें और बहुत लिखे हैं. तथापि वेदांतग्रंथनमें कहूं लिखे नहीं; यातें जिज्ञासुकूं तिनके लिखनेका उपयोग नहीं.

शाब्दबोधकी हेतुताका विचार ॥ १२ ॥

जैसें शक्यतावच्छेदकमें शक्ति है तैसें लक्ष्यतावच्छेदक तीरत्वादिकनमें गंगादिकपदनकी लक्षणा नहीं; किंतु व्यक्तिमात्रमें लक्षणावृत्ति होवै है, औ पदकी वृत्तिविना लक्ष्यतावच्छेदककी स्मृति औ शाब्दबोध होवै है. यह वार्ता शब्दार्थनिर्णयके ग्रंथनमें प्रतिपादन करी है. औ मीमांसाके मतमें लाक्षणिकशब्दसें लक्ष्य अर्थकी स्मृति तौ होवै है औ लक्ष्य अर्थके शाब्दबोधका हेतु लाक्षणिकपद नहीं, किंतु लाक्षणिकपदके समीप जो पदोत्तर सो अपने शक्य अर्थके शाब्दबोधका औ लक्ष्य अर्थके शाब्दबोधका हेतु होवैहै. जैसें "गगायां ग्रामः" या वाक्यमैं गंगापद तीरमें लाक्षणिक है. सो तीरकी स्मृतिका हेतु है. औ तीर विषै शाब्दबोधका हेतु नहीं, किंतु तीरविषै शाब्दबोधका हेतु औ अपनें शक्यविषै शाब्दबोधका हेतु "ग्राम" पद है. या मतकी साधक यह युक्ति है:— लाक्षणिक शब्दकूं शाब्दबोधकी जनकता मानैं तौ सकल शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक धर्मका लाभ नहीं होवैगा. काहेतें ? मीमांसाके मतमें तौ शाब्दबोधकी जनकता लाक्षणिक पदमें है नहीं; किंतु शक्तपदमें है. यातें शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति है. औ लाक्षणिक पदकूंभी शाब्दबोधकी जनकता मानैं तौ ता जनकतासैं शक्तिन्यून वृत्ति होनेतें ताका अवच्छेदक नहीं होवैगा. जो न्यूनदेशवृत्ति औ अधिक देशवृत्ति न होवै, किंतु जाके समान देशवृत्ति जो होवै ताका अवच्छेदक सो होवै है. शाब्दबोधकी जनकता सकल शक्तपदमें रहैहै, ताके समानदेशमें शक्ति रहैहै, यातें शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति संभवैहै, लाक्षणिक पदमैंभी शाब्दबोधकी जनकता मानैं तौ लाक्षणिकपदमैं शक्ति

है नहीं, शाब्दबोधको जनकता है; यातैं न्यूनदेशवृत्ति होनेतैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति तौ संभवै नहीं औ शक्त लाक्षणिक सारे पदनमैं रहनेवाला एक धर्म है नहीं; यातैं शाब्दबोधकी जनकता निरवच्छेदक होवैगी. सो निरवच्छेदक जनकता अलीक है. दंडकुलालादिकनमैं घटादिकनकी जनकताके अवच्छेदक दंडत्व कुलालत्वादिक हैं; यातैं निरवच्छेदक जनकता अप्रसिद्ध है. इस रीतिसैं लाक्षणिकपदकूं शाब्दबोधकी जनकता नहीं. यह मीमांसाका मतहै औ अद्वैतवादका अतिविरोधी है. काहेतैं ? महावाक्यनमैं सकलपद लाक्षणिक हैं. तिनतैं शाब्दबोधकी अनुपपत्ति होवैगी. यातैं इस मतका खंडन अवश्य कर्तव्य है; तामैं यह दोष है:—"गंगायां ग्रामः" या वाक्यमैं ग्रामपदसैं तीरविषै शाब्दबोध मानैं तौ ग्रामपदकी तीरमैं भी शक्ति हुई चाहिये, काहेतैं ? जो पद–लक्षणाविना जिस अर्थविषै शाब्दबोधका जनक होवै तिस पदकी ता अर्थविषै शक्ति है, यह नियम है. मीमांसक मतमैं ग्रामपद लक्षणा विना तीरविषै शाब्दबोधका जनक होनेतैं तीरमैं शक्त हुया चाहिये; औ यह नियम है:—जा पदमैं जिस अर्थकी वृत्ति होवै ता पदसैं तिस अर्थ विषै स्मृति होवैहै. औ तिस अर्थविषै ही ता पदसैं शाब्दबोध होवैहै. मीमांसकमतमैं या नियमका भंग होवैगा, काहेतैं ? मीमांसकमतमैं लक्षणावृत्ति तौ तीरमैं गंगापदकी औ तीरकी स्मृतिभी गंगापदसैं और तीरविषै शाब्दबोध गंगापदसैं नहीं; किंतु शाब्दबोध तीरका ग्रामपदसैं होवै है: ता ग्रामपदकी तीरमैं शक्ति वा लक्षणावृत्ति नहीं औ ग्रामपदसैं तीरको स्मृतिभी नहीं; यातैं यह मत बुद्धिमानोंकूं हंसने योग्यहै औ ग्रामपदतैं तीरका शाब्दबोध मानैं ग्रामविषै शाब्द बोध नहीं होवैगा, काहेतैं ? जहां हरिआदिक एकपदकी अनेक अर्थनमैं शक्ति है तहांभी एककालमैं एक पुरुषकूं हरिपदसैं एकही अर्थका बोध होवै है. जो अनेक पदार्थनका एक पुरुषसैं बोध होवै तौ हरि या कहनेतैं वानरके ऊपरि सूर्य है इसरीतिसैं शाब्दबोध हुवा चाहिये. जैसैं एक ग्राम-

पदतैं परस्पर संबन्धी ग्रामतीरका शाब्दबोध होवै है तैसैं एक हरिपदतैं परस्परसंबन्धी वानर सूर्यका शाब्दबोध हुवा चाहिये. जो ऐसैं कहैंः—एकपदतैं दोशक्यका शाब्दबोध होवै नहीं ता एक पदतैं अपने शक्यके साथ अपने अशक्य अलक्ष्यके संबन्धका तौ शाब्दबोध अत्यंत दूर है, यातैं "लाक्षणिकं नानुभावके" यह मीमांसाका वचन असंगत है. औ जो लाक्षणिक शब्दकूं शाब्दानुभवकी जनकतामें दोष कह्या शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक नहीं मिलैगा. ताका यह समाधान हैः—शब्दमैं शक्ति औ लक्षणाके भेदतैं दो प्रकारकी वृत्ति है. कहूं अर्थकी शक्तिवृत्ति है; कहूं अर्थकी लक्षणावृत्ति है. शाब्दबोधकी जनकता शब्दमात्रमैं है औ वृत्तिभी शब्दमात्रमैं है. यातैं तिस जनकताके समान देशमें रहनेतैं ताका अवच्छेदक वृत्ति है, अथवा शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक योग्य शब्दत्व है; इस रीतिसैं लाक्षणिक पदसैंभी शाब्दबोध होवै है.

महावाक्यनमैं लक्षणाका उपयोग औ तामैं शंकासमाधान ॥ १३ ॥

महावाक्यनमैं जहतलक्षणा औ अजहतलक्षणा नहीं; किंतु भागत्यागलक्षणा है. ताकी रीति विचारसागरमैं लिखी है सो भागत्यागलक्षणा महावाक्यनमैं लक्षितलक्षणा नहीं; किंतु केवल लक्षणा है. काहेतें ? लक्ष्य चेतनतैं वाच्यका साक्षात् संबंध है परंपरा नहीं. जहां भागत्यागलक्षणा होवै तहां वाच्यका एकदेश लक्ष्य होवै है; ता वाच्यके एकदेशतैं वाच्यका साक्षात संबंध होवै है; यातैं केवल लक्षणा होवैहै औ महावाक्यतैं जिज्ञासुकूं अखंड ब्रह्मका बोध होवै ऐसा ईश्वरका अनादि तात्पर्य है; यातैं निरूढलक्षणा है प्रयोजनवती नहीं. इहां ऐसी शंका होवै हैः—वाक्यअर्थका लक्ष्य चेतनसैं संबंध मानैं तौ लक्ष्य अर्थमैं असंगताकी हानि होवैगी, संबंध नहीं मानैं तौ लक्षणा बनै नहीं. काहेतैं? शक्य संबंध अथवा बोध्य सबंधकूं लक्षणा कहैं हैं सो असंगमैं संभवै नहीं ? ताका यह समाधान हैः—वाच्य

अर्थमें चेतन औ जड दो भाग हैं. ताका चेतन भागका लक्ष्य अर्थमैं तादात्म्यसंबंध है. सकल पदार्थनका स्वरूपमें तादात्म्यसंबंध होवै है. वाच्यभाग चेतनका स्वरूपही लक्ष्य चेतन है; यातें वाच्यमें चेतन भागका लक्ष्य चेतनमैं तादात्म्यसंबंध है, औ वाच्यमें जड भागका लक्ष्यचेतनसें अधिष्ठानता संबंध है कल्पितके संबंधतें अधिष्ठानका स्वभाव बिगरै नहीं, औ अपनें तादात्म्य संबंधसें भी स्वभावकी हानि होवै नहीं, यातें लक्ष्य अर्थकी असंगता बिगरै नहीं

अन्यशंकाः—तत्पदकी अखंडचेतनमें लक्षणा मानें औ त्वंपदकीभी अखंड चेतनमें लक्षणा मानें तौ पुनरुक्ति दोष होनेतें "घटो घटः" इस वाक्यकी नाई अप्रमाण वाक्य होवैगा. दोनूं पदनका लक्ष्य अर्थ जुदा मानैं तौ अभेदबोधकता नहीं होवैगी ? ताका यह समाधान हैः—मायाविशिष्ट औ अंतःकरणविशिष्ट तौ तत्पद औ त्वंपदका शक्य है, उपहित लक्ष्य है, जो ब्रह्मचेतन दोनूंपदनका लक्ष्य होवै तौ पुनरुक्ति दोष होवै सो ब्रह्मचेतन लक्ष्य नहीं; किंतु मायाउपहित औ अंतःकरण उपहित लक्ष्य है सो उपाधिके भेदतें भिन्न है पुनरुक्ति नहीं. औ उपहित दोनूं परमार्थसें अभिन्न हैं, यातें अभेद बोधकता वाक्यकूं संभवै है. इस रीतिसें तत्पदार्थ औ त्वंपदार्थका उद्देश विधेय भाव मानिकै अभेदबोधकता निर्दोष है. तत्पदार्थमें परोक्षता भ्रम निवृत्तिके अर्थ तत्पदार्थकूं उद्देश करिकै त्वंपदार्थता विधेय है. त्वंपदार्थमें परिछिन्नता भ्रम निवृत्तिके अर्थ त्वंपदार्थकूं उद्देश करिकै तत्पदार्थता विधेय है. औ पुनरुक्तिके परिहारवास्तै कोई ग्रंथकारका यह तात्पर्य हैः—जो दोपदनकूं भिन्न भिन्न लक्षकता मानैं तौ पुनरुक्तिकी शंका होवै सो भिन्न भिन्न लक्षकता नहीं; किंतु मीमांसक रीतिसैं दोनूं पद मिलिकै अखंड ब्रह्मके लक्षक हैं, इसीवास्तै प्राचीन आचार्योंनैं महावाक्यनकूं प्रातिपदिकार्थमात्रकी बोधकता कही है. यद्यपि उद्देश विधेयभाव शून्य अर्थका बोधक वाक्य लोकमें अप्रसिद्ध है, तथापि अलौकिक अर्थ महावाक्यनका है; यातैं अप्रसिद्ध दोष नहीं किंतु भूषण है.

जो अप्रसिद्ध दोष होवै तौ असंगी अर्थकी बोधकताभी वाक्यकूं लोकमैं अप्रसिद्ध है; यातें असंगी ब्रह्मकी बोधकताभी महावाक्यनकूं नहीं होवैगी जैसें लोकमें अप्रसिद्ध असंगी ब्रह्मकी बोधकता मानिये है; तैसें उद्देश्यविधेय-भाव शून्य अखंड अर्थकी बोधकता संभवै है; इसीरीतिमैं लक्षणाके प्रसंगमैं बहुत विचार प्राचीन आचर्योंनैं लिख्या हैं.

लक्षणाविना शक्तिवृत्तिसैं महावाक्यकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता ॥ १४ ॥

कोई आधुनिक ग्रन्थकार लक्षणाविना शक्तिवृत्तिसंही महावाक्यनकूं अद्वितीय ब्रह्मकी बोधकता मानैं हैं तिन्होंनैं यह प्रकार लिख्याहैः—विशिष्ट-वाचक पदके अर्थका अन्यपदके विशिष्ट अर्थमें जहां संबंध नहीं संभवै तहां पदकी शक्तिसैंही विशेषणकूं त्यागिकै विशेष्यकी प्रतीति होवैहै. जैसें "अनित्यो घटः" या वाक्यमैं घटत्वविशिष्ट व्यक्तिका वाचक घटपद है,ताका अनित्यत्वविशिष्ट अनित्यपदार्थसं अभेदसंबंध बोध न करियेहै, औ घटत्वजाति नित्य है, यातैं घटत्वविशिष्टका अनित्यपदार्थसें अभेदबाधित होनेतें ताका अनित्यपदार्थसैं अभेदसंबंध संभवै नहीं. तहां घटत्वरूप विशेषणकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्रकी घटपदसैं स्मृति औ अनित्यपदार्थसें संबंधबोधरूप शाब्द-बोध होवैहै. तैसें "गेहे घटः" यावाक्यमैं घटत्वरूपविशेषणकूं त्यागिकै विशेष्य व्यक्तिमात्रकी घटपदसें स्मृति औ शाब्दबोध होवैहै; तैसें "घटे रूपम्" या वाक्यमैंभी घटत्वकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्रकी प्रतीति होवैहै.काहेतें? "गेहे घटः" या वाक्यतें गेहकी आधेयता घटपदार्थमें प्रतीत होवैहै, औ घटत्व जातिमें अपना आश्रय व्यक्तिकी आधेयता होवैहै; गेहकी आधेयता बाधित है, यातैं घटत्वकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्रमैं गेहकी आधेयताका संबंध बोधन करिये है, तैसें गेह पदार्थमैं गेहत्वका त्याग होवै है. "घटे रूपम्" या वाक्यमें भी घटत्वकूं त्यागिकै द्रव्यरूपव्यक्तिमात्रमैं अधिकरणता औ रूपत्वकूं त्यागिकै गुणमात्रमें आधेयता प्रतीत होवैहै.काहेतैं? घटपदार्थकी

आधेयतावाला रूप पदार्थ है यह वाक्यका अर्थ है, तहां घटत्वकी आधेयता किसीमें है नहीं. यातें घटत्वकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्र घटपदका अर्थ है ताकी आधेयता रूपत्वजातिमें नहीं; किंतु रूपव्यक्तिकी आधेयता रूपत्वमें है. यातें रूपपदार्थमें रूपत्वका त्याग है. तैसें "उत्पन्नो घटः, नष्टो घटः" इत्यादिक वाक्यनमें जातिरूप विशेषणकूं त्यागिकै व्यक्तिमात्र घटादिक पदनका अर्थ है; काहेतें? जाति नित्य है ताके उत्पत्ति नाश बनें नहीं. जैसें पूर्व वाक्यनमें विशिष्टवाचक पदनमें शक्तिबलतेंही विशेष्यमात्रका बोध होवै है, तैसें महावाक्यनमेंभी विशिष्टवाचक पदनकी शक्तिबलतें ही माया अंतःकरणरूप विशेषणकूं त्यागिकै चेतनरूप विशेष्यमात्रकी प्रतीति संभवै है. लक्षणाका अंगीकार निष्फल है, परंतु इतना भेद है:—विशिष्टवाचकपदके वाच्यका एकदेश विशेष्य होवैहै औ एकदेश विशेषण होवैहै. जाति विशेषण होवैहै औ व्यक्ति विशेष्य होवैहै. तिनमें विशेष्य भागका बोध तौ शक्तिसें होवैहै औ केवल विशेषणका बोध होवै नहीं. जो वाच्यके विशेषणमात्रकाभी विशिष्टवाचकके शब्दकी शक्तिसें बोध होवै तौ "अनित्यो घटः" या वाक्यकी नाईं "नित्यो घटः" यह वाक्यभी घटपदसें जातिमात्रका बोध करिकै साधु हुया चाहिये; यातें विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसें विशेष्यमात्रकी प्रतीति होवैहै. "सोऽयं देवदत्तः" या वाक्यमें भी परोक्षत्व अपरोक्षत्व विशेषणकूं त्यागिकै विशेष्यमात्रकी प्रतीति शक्तिवृत्तिसेंही होवैहै, भागत्याग लक्षणाका कोई उदाहरण है नहीं; यातें जहत्लक्षणा अजहत्लक्षणा भेदतें दोप्रकारकी लक्षणा माननी चाहिये. भागत्यागलक्षणा अलीक है. औ वेदांतपरिभाषामें धर्मराजनें पूर्वप्रकारसें महावाक्यनमें लक्षणाका खंडन करिकै भागत्यागलक्षणाका स्वरूप औ उदाहरण इस रीतिसें कहे हैं:—सांप्रदायिक रीतिसें वाच्यके एकदेशमें वृत्ति भागलक्षणाका स्वरूप है; या मतमें वाच्यके एकदेशमें वृत्ति शक्तिकाही स्वरूप है. सो भागलक्षणाका स्वरूप नहीं; किंतु शक्य औ अशक्यमें जो

वृत्ति सो **भागत्यागलक्षणा** कहिये है. यद्यपि अजहल्लक्षणाभी शक्य अशक्यमें वृत्ति है, तथापि जहां शक्य अर्थका विशेषणतासें बोध औ अशक्यका विशेष्यतासें बोध होवै, तहां **अजहल्लक्षणा** कहिये है. जैसें "नीलो घटः" या वाक्यमें नीलपदका शक्य रूप है,ताका विशेषणतासें बोध होवै है; औ नीलरूप द्रव्यका आश्रय अशक्य है, ताका विशेष्यतासें बोध होवै है यातैं नीलपदकी नीलरूपके आश्रयमें अजहत्लक्षणा है; ऐसें "मंचाः क्रोशंति" या वाक्यमें मंचपदका शक्य विशेषण है; अशक्य पुरुष विशेष्य है; यातें अजहत्लक्षणा है. औ जहां शक्य अशक्य दोनूं विशेष्य होवैं औ शक्यतावच्छेदकसें व्यापक लक्ष्यतावच्छेदक धर्म विशेषण होवै तहां **भागत्यागलक्षणा** कहिये है. जैसें "काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" या वाक्यमैं काकपदका शक्य वायस औ अशक्य बिडालादिक विशेष्य हैं; औ शक्यतावच्छेदक काकत्वका व्यापक दध्युपघातकत्व लक्ष्यतावच्छेदकत्व विशेषण है. काहेतें ? दधिके उपघातक काकबिडालादिकनतें दधिकी रक्षा कर यह वाक्यका अर्थ है. तहां काकत्वविशिष्टव्यक्ति काकपदका शक्य है. तामें काकत्वका त्याग करिकै दध्युपघातकत्वविशिष्ट काकबिडालादिकनका लक्षणासैं बोध होनेतें काकपदके वाच्यके एक भाग काकत्वका त्याग होवै है व्यक्तिभागका बोध होवैहै तैसें बिडालत्वादिकनका त्याग व्यक्तिका बोध होवैहै; यातें **भागत्यागलक्षणा** है. तैसें " छत्रिणो यांति " या वाक्यमैं भी भागत्यागलक्षणा है. काहेतें ? छत्रसहित औ छत्ररहित एकसाथवाले पुरुष जावैं हैं. यह वाक्यका अर्थ है. तहां छत्रिपदका शक्य छत्रसहित अशक्य छत्ररहित दोनूं विशेष्य हैं. औ शक्यतावच्छेदक छत्रिताका व्यापक एकसार्थवाहिता लक्ष्यतावच्छेदक विशेषण है या स्थानमैं भी छत्रके संबंधविशिष्ट जो छत्रीपदका शक्य तामैं छत्रसंबंधरूप शक्यतावच्छेदककूं त्यागिकै एक सार्थवाहित्वविशिष्ट छत्री तदन्यका लक्षणासैं बोध होनेतें वाच्यके एक भाग

छत्रसंबंधकूं त्याग करिकै एक भाग पुरुषका बोध होवैहै. यातैं **भागत्याग लक्षणा** है. इसरीतिसैं वेदांतपरिभाषामैं भागत्यागलक्षणाके उदाहरण कहे हैं सो सांप्रदायिक मतमैं सारे अजहत्लक्षणाके उदाहरण हैं कहूं अजहत्लक्षणाके उदाहरणमैं शक्य अर्थ विशेषण है, कहूं विशेष्य है; शक्यसहित अशक्यकी प्रतीति समान है. किंचित् भेदकूं देखिकै लक्षणाका भेद मानना निष्फल है. सर्व आचार्योंनैं अजहत्लक्षणाके जो उदाहरण कहे तिनकूं भागत्याग लक्षणाके उदाहरण कहनेका आचार्योंके वचनोंतैं विरोधही फल है औ शक्य अर्थकी विशेषणता औ विशेष्यतामैं अजहत्लक्षणा औ भागत्यागलक्षणाका भेद मानैं तौ जहां शक्य अर्थकी विशेषणता तहां **भागत्यागलक्षणा** औ जहां शक्य अशक्य दोनूंकी विशेष्यता तहां **अजहत्लक्षणा** इसरीतिसैं विपरीत मानैं तौ कोई बाधक नहीं; यातैं महावाक्यनसैं "सोऽयं देवदत्तः" या वाक्यमैं लक्षणाका निषेध करिकै भागत्यागलक्षणाका स्वरूप औ उदाहरण कथन धर्मराजका निष्फल है; औ महावाक्यनमैं लक्षणाविना जो निर्वाह कह्या सोभी असंगत है. काहेतैं? घटादिकपदनकी जातिविशिष्टमैं शक्ति मानिकै लक्षणाविना केवल व्यक्तिका पदतैं बोधकथन निर्युक्तिक है. केवल व्यक्तिमैं शक्ति मानैं औ जातिविशिष्ट व्यक्तिमैं नहीं मानैं तौ केवल व्यक्तिका बोध घटादिक पदनतैं संभवै है सो मान्य नहीं; किंतु विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यमात्रका बोध होवै है. यह धर्मराजनैं लिख्या है. सो शक्तिवादादिक ग्रंथनमैं निपुणमति पंडितकूं आश्चर्यका जनक है. शक्तिवादमैं यह प्रसंग स्पष्ट है कोई शब्द एकधर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक है, कोई शब्द अनेकधर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक है, कोई शब्द अनेकधर्मविशिष्ट अनेकधर्मीका वाचक है. जिसपदकी जा अर्थमैं शक्ति है सो पद ता अर्थका वाचक कहियेहै. जैसैं घटपदकी घटत्वरूप एकधर्मविशिष्ट धर्मीमैं औ गोपदकी गोत्वरूप एकधर्मविशिष्ट धर्मीमैं शक्ति है, सो तिनके वाचक हैं. औ धेनुपदकी प्रसव औ गोत्वरूप

अनेकधर्मविशिष्ट एकधर्मीमें शक्ति है, सो ताका वाचक है. पुष्पवंतपदकी चंद्रसूर्यत्वरूप अनेकधर्मविशिष्ट अनेकधर्मी चंद्रसूर्यमें शक्ति है सो पुष्पवंतपद चंद्रसूर्य दोनूंका वाचक है जिस धर्मविशिष्टमें शक्ति है ता धर्मकूं त्यागिकै केवल आश्रयका बोध लक्षणातैं होवै है; लक्षणा विना होवै नहीं यातैं घटादिक पदनतैं केवल व्यक्तिका बोध लक्षणातैं होवैहै; औ अनेक धर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक जो धेनुपद है तासैं एक धर्मकूं त्यागिकै एकधर्मविशिष्ट धर्मीका बोधलक्षणाविना होवै नहीं; यातैं धेनुपदतैं अप्रसूत गोका वा प्रसूतमहिषीका शक्तिसैं बोध होवै नहीं. औ कहूं गोमात्रका बोध धेनुपदसैं होवैहै सो भागत्यागलक्षणातैं होवै है, शक्तिसैं नहीं. तैसैं पुष्पवंतपदसैं चंद्रकूं त्यागिकै सूर्यका औ सूर्यकूं त्यागिकै चंद्रका बोध शक्तिसैं होवै नहीं; इसरीतिसैं शक्तिवादमैं लिख्या है, सोई संभवै है. शक्ति तौ विशिष्टमैं औ शक्तिसैं बोधविशेष्यका यह कथन सर्वथा निर्युक्तिक है. जिस धर्मवाले अर्थमैं पदकी शक्ति होवै उसतैं न्यून वा अधिक अर्थ लक्षणातै प्रतीत होवै है. शक्तिमैं उस धर्मवाले अर्थकीही प्रतीति होवै है; यह नियम है. जो ऐसै कहै व्यक्तिमात्रमैं शक्ति है विशिष्टमैं नहीं. यह धर्मराजका अभिप्राय है सो बनै नहीं:— काहेतैं ? विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यका बोध होवै है यह धर्मराजनैं कह्या है, जो व्यक्तिमात्रमैं शक्ति वांछित होती तौ व्यक्तिमात्रमैं पदकी शक्तिसैं ताका बोध होवै है ऐसा कहते, विशिष्टवाचक पद नहीं कहते. औ व्यक्तिमात्रमैं शक्ति किसीके मतमैं है नहीं, सर्वमतमैं विरुद्ध है. यद्यपि शिरोमणि भट्टाचार्यनैं व्यक्तिमात्रमैं शक्ति मानीहै तथापि पदसैं अर्थकी स्मृति औ शाब्दबोध जातिविशिष्टका ताके मतमैं होवैहै व्यक्तिमात्रका शाब्दबोध शक्तिसैं किसीके मतमैं होवै नहीं. और जो ऐसैं कहैं घटादिक पदनकी जा[illegible]शिष्टमैं शक्ति है औ केवल व्यक्तिमैं शक्ति है. कहूं जाति विशिष्टका बोध होवै है, कहूं केवल व्यक्तिका बोध होवैहै. जैसैं हरि पद नानार्थक है तैसैं सकल पद नानार्थक हैं; यह अर्थ अत्यंत अशुद्ध है. औ

ताके ग्रन्थनमैं यह अर्थ है नहीं. अशुद्धतामैं यह हेतु है:—लक्षणातैं जहां निर्वाह होवै. तहां नाना अर्थमैं शक्तिकूं त्यागैंहैं, एक अर्थमैं शक्ति औ दूसरेमैं लक्षणा मानैंहैं. धर्मराजनैं ही लिख्याहै:—नीलादिक शब्दनकी गुणमैं शक्ति है औ गुणीमैं लक्षणा है. दोनूंमैं शक्ति नहीं कही. यातैं लक्षणाके भयतैं नानार्थताका अंगीकार नहीं किंतु नानार्थताके भयतैं लक्षणाका अंगीकार है; यातैं विशिष्टमैं शक्ति है औ व्यक्तिमात्रमैं शक्ति है, इस अशुद्ध अर्थमैं धर्मराजका तात्पर्य नहीं; किंतु विशिष्टमैं सकल पदनकी शक्ति है. ता विशिष्टमैं शक्तिके माहात्म्यतैं कहूं विशिष्टका अन्यपदार्थसैं अन्वय होवैहै, कहूं विशेष्यका अन्यपदार्थसैं अन्वय होवैहै, जहां विशिष्टमैं अन्वयकी योग्यता होवै तहां विशिष्टका औ जहां विशिष्टमैं अन्वयकी योग्यता नहीं तहां विशेष्यमात्रका शक्तिसैं अन्वयबोध होवै है; यह धर्मराजका मत है सो असंगत है. काहेतैं ? शक्तिविशिष्टमैं औ लक्षणा विना अन्वयबोध व्यक्तिमात्रका मानैं तौ धेनुपदतैं भी अप्रसूत गोकी अथवा प्रसूत महिषीकी लक्षणाविना प्रतीति हुई चाहिये औ पुष्पवंत पदसैं लक्षणा विना एक सूर्यका अथवा एक चंद्रका बोध हुवा चाहिये औ होवै नहीं; यातैं "अनित्यो घटः" इत्यादिक वाक्यनमैं घटादिपदनकी व्यक्तिमात्रमैं भागत्यागलक्षणा है. जो ऐसें कहै बहुत प्रयोगनमैं व्यक्तिमात्रका बोध होनेतैं शक्तिसैंही बोध होवै है, ताका यह समाधान है:—प्रयोगबाहुल्यतैं अर्थमैं शक्यता मानैं तौ नीलादिपदनका प्रयोगबाहुल्य गुणीमैं है सोभी शक्य हुवा चाहिये. औ नीलादिपदनका गुणी शक्य नहीं किंतु लक्ष्य है. यह धर्मराजनैं औ वेदांतचूडामणि टीकामैं ताके पुत्रनैं लिख्याहै; यातैं जहां विशिष्ट वाचकपदतैं विशेष्यमात्रका बोध होवै तहां सारै भागत्यागलक्षणा है, परंतु सो निरूढलक्षणाहै. निरूढलक्षणाका शक्तिसैं ईषतही भेद होवै है;ताका प्रयोग बाहुल्य होवै है. जिस अर्थमैं शब्दप्रयोगका बाहुल्य होवै तिस अर्थमैं सारै शक्ति

मानैं तौ जातिशक्तिवादमैं व्यक्तिका बोध सारै लक्षणातैं होवै है सो असंगत होवैगा. औ न्यायमतमैं राजपुरुष इत्यादिक वाक्यनमैं राजपद-की राजसंबंधीमैं सारै लक्षणा है, सो असंगत होवैगी.इसरीतिसैं विशिष्ट-वाचकपदतैं विशेष्यमात्रका बोध लक्षणा विना होवै नहीं यातैं महावाक्य-नमैं लक्षणा है. यह सांप्रदायिक मतही जिज्ञासुकूं उपादेय है. वेदांतवाक्य-नतैं असंग ब्रह्मका आत्मरूपकरिकै साक्षात्कार होवैहै;तासैं प्रवृत्ति निवृत्ति शून्य ब्रह्मरूपतैं स्थिति फल होवैहै;यह अद्वैतवादका सिद्धान्त है.

मीमांसाका मत ॥ १९ ॥

तामैं मीमांसाके अनुसारीकी यह शंका है; सकल वेद प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका बोधक है. प्रवृत्तिनिवृत्तिरहित अर्थकूं वेद बोधन करै नहीं. और जो बोधन करै तौ निष्फल अर्थका बोधक वेद अप्रमाण होवैगा. यातैं विधिनिषेधशून्य वेदांतवाक्यका विधिवाक्यनसैं संबंध होनेसैं विधिवाक्यनके वेदांतवाक्य शेष हैं कोई वाक्य कर्मकर्ताके स्वरूपके बोधक हैं. जैसैं त्वं पदार्थके बोधक पंचकोश वाक्य हैं, कोई वाक्य कर्मशेष देवताके स्वरूपके बोधक हैं सो तत्पदार्थ बोधक वाक्य हैं. जीव ब्रह्मका अभेदबोधक वाक्यनका यह अर्थ है:—कर्मकर्ता जीव देवभावकूं प्राप्त होवै है, यातैं कर्म अवश्य कर्तव्य है; इस रीतिसैं कर्मके फलकी स्तुति करनेतैं अभेदबोधक वाक्य अर्थवादरूप है. यद्यपि मीमांसामतमैं मंत्रमयी देवता है, विग्रहवान् ऐश्वर्यवाला कोई देव है नहीं; यातैं देवभा-वकी प्राप्ति कहना संभवै नहीं, तथापि संभावनामात्रसैं कर्मफलकी स्तुति है. जैसैं कृष्णप्रभाकी उपमा कोटिसूर्य प्रभा कही है, तहां कोटिसूर्य-प्रभा अलीकपदार्थ है, तौभी संभावनासैं उपमा कही है. जो कोटिसूर्यकी प्रभा एकत्र होवै तौ कृष्णप्रभाकी उपमा संभवै इस रीतिसैं सर्वज्ञ-तादिकगुणविशिष्ट परमऐश्वर्यवाला कोई अद्भुत देव होवै तौ ऐसा स्वरूप कर्मकर्ताका होवै है. इस रीतिसैं संभावनातैं देवभावकी प्राप्ति

कही है. इस रीतिसैं साक्षात वा परंपरातैं प्रवृत्तिनिवृत्तिके बोधक सकल वेद हैं. प्रवृत्तिमैं अनुपयोगी ब्रह्मबोध वेदवाक्यनतैं संभवै नहीं.

प्राचीन वृत्तिकारका मत ॥ १६ ॥

औ **प्राचीनवृत्तिकार** वेदांती कहावैं हैं तिनका यह मत है:—कर्मविधिके प्रकरणमैं वेदांतवाक्य नहीं, यातैं भिन्नप्रकरणमैं पठित वेदांतवाक्य कर्मविधिके शेष नहीं; किंतु उपासनाविधि वेदांतप्रकरणमैं है; यातैं सकल वेदांतवाक्य उपासनाविधिके शेष हैं. त्वंपदार्थके बोधकवाक्य उपासकके स्वरूपकूं बोधन करैं हैं. तत्पदार्थबोधक वाक्य उपास्यके स्वरूपकूं बोधन करैं हैं. त्वंपदार्थ औ तत्पदार्थकी अभेदबोधक वाक्यनका यह अर्थ है:—संसारदशामें जीवब्रह्मका भेद है औ उपासनाके बलतैं मोक्षदशामें अभेद होवै है. अद्वैतवादमैं तौ सदा अभेद है. भेदप्रतीति संसारदशामैंभी भ्रमरूप है. औ या मतमें संसारदशामैं भेद औ मोक्षदशामें अभेद होवै है. मोक्षदशामैंभी जीवब्रह्मका भेद माननेवाले यामतमैं दोष कहैं हैं. जीवमैं ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं है अथवा उपाधिकृत है ? जो स्वरूपसें भेद मानें तौ जितनें स्वरूप रहै उतनें भेदकी निवृत्ति होवै नहीं. जो मोक्षदशामें भेदकी निवृत्तिवास्ते जीवके स्वरूपकी निवृत्ति मानें तौ सिद्धांतका त्याग औ मोक्षकूं अपुरुषार्थता होवैगी. काहेतें ? मोक्षदशामें स्वरूपकी निवृत्ति वृत्तिकारनें मानी नहीं और किसीके सिद्धांतमैं स्वरूपकी निवृत्ति मोक्षमैं होवै नहीं जो कोई स्वरूपकी निवृत्ति मोक्षदशामैं मानैं तौ स्वरूपकी निवृत्तिम किसी पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं; यातैं मोक्षमैं पुरुषार्थताका अभाव होवैगा. पुरुषकी अभिलाषाका विषय **पुरुषार्थ** कहिये है. यातें जीवमें ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं मानैं तौ मोक्षदशामैं अभेद संभवै नहीं. जीवमैं ब्रह्मके भेदकूं उपाधिकृत कहैं तौ उपाधिकृत निवृत्तिसैं मोक्षदशामै अभेद तौ संभवै है; परंतु अद्वैतमतसैं या मतका भेद सिद्ध नहीं होवैगा. काहेतें ? अद्वैतवादमैभी उपाधिकृत भेदका अंगीकार है, औ उपाधिकृत भेद मिथ्या होवैगा. ताकी

निवृत्तिभी अद्वैतवादकी नाईं केवल ज्ञानसैं माननी योग्य है. मोक्षनिमित्त उपासना क्रिया निष्फल होवैगी वृत्तिकारके मतमैं नैयायिकादिक यह कुतर्क करैं हैं सो संभवै नहीं. काहेतैं ? जीवमैं ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं नहीं. उपाधिकृत है. उपाधि मिथ्या होवै तौ उपाधिकृत भेदभी मिथ्या होवै; ताकी केवल ज्ञानसैं निवृत्ति होवै. वृत्तिकारके मतमैं प्रलयपर्यंत स्थायी आकाशादिक पदार्थ हैं सो मिथ्या नहीं. तैसैं ही जीवकी उपाधि अंतःकारणादिक सत्य हैं; ज्ञानमात्रसैं तिनकी निवृत्ति होवै नहीं. यद्यपि मोक्षदशामैं अंतःकरणादिकनका नाश होवै है यातैं ध्वंसशून्यतारूप नित्यता वृत्तिकारके मतमैंभी बनैं नहीं; तथापि ज्ञानतैं अबाध्यतारूप नित्यता वृत्तिकारके मतमैं सकल पदार्थनमैं संभवै है; इसरीतिसैं उपाधि सत्य है. ता सत्यउपाधिकृत भेदभी सत्य है. जैसैं जलसंयोगरूप सत्यउपाधिकृत शीतलता पृथिवीमैं सत्य है तैसैं सत्यउपाधिकृत भेद सत्य है. ता सत्यभेदकी औ उपाधिकी ज्ञानमात्रसैं निवृत्ति होवै नहीं; किंतु नित्यकर्म औ उपासनासहित ज्ञानतैं उपाधिनिवृत्तिसैं मोक्षदशामैं भेदकी निवृत्ति होवै है. औ अद्वैतमतमैं सकल उपाधि और भेद मिथ्या हैं तिनकी ज्ञानमात्रसैं निवृत्ति होवै है; और संसारदशामैंभी मिथ्याउपाधितैं पारमार्थिक अद्वैतता बिगरै नहीं; यातैं अद्वैतमतसैं वृत्तिकारके मतका भेद है. इसरीतिसैं वृत्तिकारके मतमैं भेदबोधक औ अभेदबोधक वाक्यनकी गति संभवै है. जीवमैं ब्रह्मका भेदबोधक वाक्य तौ संसारिकजीवका स्वरूप बोधन करै है; औ अभेदबोधक वाक्य मुक्तजीवका स्वरूप बोधन करै है. मुक्तदशामैंभी जो भेद अंगीकार करैं तिनके मतमैं अभेदबोधक वाक्यनका बाध होवै है; अद्वैतवादमैं सदा अभेदका अंगीकार है. ता मतमैं जीवब्रह्मका भेदबोधकवाक्यनका बाध होवै, यातैं संसारदशामैं भेद औ मुक्तिदशामैं अभेद मानना योग्य है.

यह मतभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? सकल वेदांतवाक्य अहेय अनुपादेय ब्रह्मके बोधक हैं, विधिशेष अर्थके बोधक नहीं. यह अर्थ प्रथमाध्यायके

चतुर्थ सूत्रके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं विस्तारतैं लिख्या है. किसी मंदमति पुरुषनकी मीमांसावृत्तिकारादिकनके मतमैं अधिक श्रद्धा होवै औ शास्त्रमैं प्रवेश होवै तौ भामतीनबंध औ ब्रह्मविद्याभरणसैं आदिव्याख्यान सहित भाष्यविचारसैं बुद्धिदोषकी निवृत्ति करै. सूत्रभाष्यविचारमैं जाकी बुद्धि समर्थ नहीं होवै सो भाष्यकारके व्याख्यानसहित उपनिषद्ग्रंथनकूं विचारै तिनका तात्पर्य अहेय अनुपादेय ब्रह्मबोधमैं है. उपासनाविधिमैं तात्पर्य नहीं. काहेतैं ? लौकिकवाक्यका तात्पर्य तौ प्रकरणादिकनतैं जानिये है; सो प्रकरणादिक काव्यप्रकाश काव्यप्रदीपमैं लिखेहैं.

षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग ॥ १७ ॥

औ वैदिक वाक्यके तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमोपसंहारादिक षट् हैं. उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता १ अभ्यास २ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद ५ उपपत्ति ६ ये षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग हैं. इनतैं वैदिकवाक्यनका तात्पर्य जानिये है; यातैं तात्पर्यके लिंग कहियें हैं. जैसे धूमतैं वह्नि जानिये है वह्निका लिंग धूम कहिये है तैसे उपनिषदनतैं भिन्न कर्मकांडबोधक वेदका तात्पर्य कर्मविधिमैं हैं. जैसैं उपक्रमोपसंहारादिक पूर्ववेदके कर्मविधिमैं हैं तैसैं जैमिनिकृत द्वादशाध्यायीमैं स्पष्ट हैं. औ उपनिषद्रूप वेदके उपक्रमोपसंहारादिक अद्वितीय ब्रह्ममैं हैं; यातैं अद्वितीयब्रह्ममैं तिनका तात्पर्यहै, जैसे छांदोग्यके षष्ठाध्यायका उपक्रम कहिये आरंभमैं अद्वितीय ब्रह्म है. औ उपसंहार कहिये समाप्तिमैं अद्वितीय ब्रह्म है. जो अर्थ आरंभमैं होवै सोई समाप्तिमैं होवै तहां उपक्रमोपसंहारकी एकरूपता कहियेहै. पुनः पुनः कथनका नाम अभ्यास है छांदोग्यके षष्ठाध्यायमैं नवबार तत्त्वमसि वाक्य है; यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अभ्यास है. प्रमाणांतरतैं अज्ञाततताकूं अपूर्वता कहैहैं. उपनिषद्रूपशब्दप्रमाणतैं और प्रमाणका अद्वितीय ब्रह्म विषय नहीं यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अज्ञाततारूप अपूर्वता है. अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोकमोहकी

निवृत्ति फल कह्या है. स्तुति अथवा निंदाका बोधक वचन अर्थवाद कहिये है; अद्वितीय ब्रह्मबोधकी स्तुति उपनिषदनमैं स्पष्ट है; कथन करे अर्थके अनुकूल युक्तिकूं उपपत्ति कहैंहैं. छांदोग्यमैं सकल पदार्थनका ब्रह्मसें अभेद कथनके अर्थ कार्यका कारणतैं अभेद प्रतिपादन अनेक दृष्टांतनमैं कह्या है. इसरीतिसैं षट्लिंगनतैं सकल उपनिषदनका तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्ममैं है. सो उपनिषदनके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं षट् लिंग स्पष्ट लिखे हैं. तिनमैं वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्ममैं तात्पर्य निश्चय होवै है. जा अर्थमैं वक्ताके तात्पर्यका ज्ञान होवै ता अर्थका श्रोताकूं शब्दसैं बोध होवै है. काहेतैं? शब्दकी शक्तिवृत्ति अथवा लक्षणावृत्तिका ज्ञान शाब्दबोधका हेतु है.

आकांक्षा आदिक च्यारि शाब्दबोधके सहकारी ॥ १८ ॥

और आकांक्षाज्ञान योग्यताज्ञान तात्पर्यज्ञान आसक्ति ये च्यारि सहकारी हैं एक पदार्थका पदार्थांतरसैं अन्वयबोधका अभाव आकांक्षा कहिये है. "अयमेतिपुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्" या वाक्यमैं राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुयां पाछै पुरुषपदार्थसैं आकांक्षाके अभावतैं शाब्दबोध होवै नहीं. काहेतैं? एक पदार्थसैं अन्वय हुयां पाछै अन्वयबोधाभावरूप आकांक्षा है नहीं. स्थूलरीति यह है:-आकांक्षा नाम इच्छाका है, सो यद्यपि चेतनमैं होवै है तथापि पदके अर्थका जितने काल पदार्थांतरसैं अन्वयका ज्ञान होवै नहीं इतनेकाल अपने अर्थके अन्वयवास्तै पदांतरकी इच्छासदृश प्रतीत होवै है. अन्वयबोध हुयां पाछै प्रतीत होवै नहीं सो आकांक्षा कहिये है. आकांक्षाका स्वरूप सूक्ष्मरीतिसैं ग्रंथनमैं लिख्या है; सो कठिन है; यातैं रीतिमात्र जनाई है. यह राजाका पुत्र आवै है, इस रीतिसैं राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुयां पाछै पुरुषपदार्थसैं अन्वयबोधकी हेतु आकांक्षा राजपदार्थमैं है नहीं; यातैं राजाके पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध होवै नहीं; किंतु पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध होवै है. जो आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ

राजाका पुत्र आवै है, राजाके पुरुषकूं निकासो. ऐसा बोध हुवा चाहिये; यातें आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु है. एक पदार्थका पदार्थांतरमें संबंधकूं **योग्यता** कहैंहैं. जहां योग्यता नहीं होवै तहां शाब्द-बोध होवै नहीं. जैसें "वह्निना सिंचति" या वाक्यमें वह्निवृत्तिकरणतारूप तृतीयापदार्थका सेचनपदार्थमें निरूपकतासंबंधरूप योग्यता है नहीं; यातैं शाब्दबोध होवै नहीं. जो शाब्दबोधमें योग्यता हेतु नहीं होवै तौ "वह्निना सिंचति" या वाक्यतें शाब्दबोध हुया चाहिये. वक्ताकी इच्छाकूं **तात्पर्य** कहैं हैं. जा अर्थमें तात्पर्यज्ञान होवै नहीं ताका शाब्दबोध होवै नहीं. जैसें "सैंधवमानय" या वाक्यतैं भोजनसमयमैं अश्वविषै वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य संभवै नहीं; यातें अश्वका शाब्दबोध होवै नहीं. तैसें गमनसमयमैं लवणका शाब्दबोध होवै नहीं. जो तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ "सैंधवमानय" या वाक्यतें भोजनसमयमें अश्वका बोध औ गमनसमयमें लवणका बोध हुया चाहिये; यातें शाब्दबोधमैं **तात्पर्यज्ञान** हेतु है.

इहां ऐसी शंका होवैहै वक्ताकी इच्छाकूं **तात्पर्य** कहैं हैं शुकवाक्यमैं वक्ताकी इच्छा है नहीं, औ शुकवाक्यतैं शाब्दबोध होवै है; यातैं तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु संभवै नहीं. औ मीमांसक वेदकूं नित्य मानैं हैं, ईश्वरका तिनके मतमें अंगीकार नहीं, और कोई जीवभी वेदका कर्ता नहीं; किंतु वेद नित्य है तिनकूं वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्यका ज्ञान वैदिक वाक्यनमैं संभवै नहीं।

या शंकाका समाधान मंजूषाग्रंथमैं नागोजीभट्टनैं यह लिख्या हैः– सकल शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञान होवै तौ यह दोष होवै सकल शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञान नहीं, किंतु नानार्थकपदसहितवाक्यजन्य शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञान है, यातें दोष नहीं.

औ विवरणग्रंथमैं प्रकाशात्म श्रीचरणनैं तात्पर्यज्ञानकूं शाब्दबोधकी कारणता सर्वथा निषेध करीहै सो दोनूंकी उक्ति समीचीन नहीं. काहेतैं? इन

दोनूंके मतमैं वेदवाक्यनका तात्पर्य निर्णयके हेतु पूर्व मीमांसा उत्तरमीमांसा व्यर्थ होवैंगे; यातैं तात्पर्यनिश्चय सकल शाब्दबोधका हेतु है. शुकवाक्यमैं औ मीमांसककूं तात्पर्यज्ञान संभवै नहीं. ताका यह समाधान है:—मीमांसककूं वेदकर्ताके तात्पर्यका ज्ञान तौ नहीं संभवै; परंतु वेदवक्ता जो पाठक ताके तात्पर्यका ज्ञान संभवै है. शुकवाक्यमैं यद्यपि तात्पर्यज्ञान संभवै नहीं तथापि श्रोताकूं बोधकी इच्छा करिकै जो वाक्य उच्चारण करिये सो बुबोधयिषाधीन वाक्य कहियेहै. शुकवाक्य बुबोधयिषाधीन नहीं औ वेदवाक्यभी पाठककी बुबोधयिषाधीन है. बुबोधयिषाधीन वाक्यजन्यज्ञानमैं तात्पर्यज्ञान कारण है, बोधकी इच्छाकूं बुबोधयिषा कहैहैं. शुककूं बोधकी इच्छा नहीं, यातैं शुकवाक्यजन्यज्ञानमैं तात्पर्यज्ञान कारण नहीं. औ वेदांतपरिभाषामें शुकवाक्यमैंभी तात्पर्य मान्या है सो वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य नहीं; किंतु इष्ट अर्थका बोधजननमैं योग्यताकूं तात्पर्य कह्या है. यामैं शंका समाधान औरभी लिख्याहैं, सो सारा निष्फल हैं तात्पर्यका अर्थ वक्ताकी इच्छा प्रसिद्ध है. ताकूं त्यागिकै पारिभाषिक अर्थ तात्पर्यका मानिकै शुकवाक्यमैं तात्पर्य प्रतिपादनका लोकप्रसिद्धिके विरोधी विना और फल नहीं केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फल है. काहेतैं? "शुकवाक्यं न तात्पर्यवत्" यह सर्व लोकमैं अनुभवप्रसिद्ध है. औ "शुकवाक्यं तात्पर्यवत्" ऐसा कोई कहै नहीं; यातैं बुबोधयिषाधीनवाक्यजन्य शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतु है. औ बोधरहित पुरुषनैं उच्चारण करे वाक्यतैं शाब्दबोध होवै है. परंतु सो वाक्य बुबोधयिषाधीन नहीं; यातैं ताके अर्थके बोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतु नहीं. औ मौनिरचित श्लोकमैं वक्ताकी इच्छा तात्पर्य संभवै नहीं. काहेतैं? उच्चारणका कर्ता वक्ता कहियेहै, मौनी उच्चारण करै नहीं; यातैं मौनीकी इच्छा वक्ताकी इच्छा नहीं. यह वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं धर्मराजके पुत्रनैं लिख्याहै.

सो शब्दरत्नव्याकरणके ग्रंथसैं खंडित है. तहां यह प्रसंग है:—उच्चारण करे शब्दसैं बोध होवै है.उच्चारण विना शाब्दबोध होवै नहीं या अर्थका

बोधक महाभाष्यका वचन लिखिकै यह शंका लिखी.उच्चारणतैं विना शाब्द-बोध नहीं होवै तौ एकांतमैं उच्चारण विना पुस्तक देखनेवालेकूं शाब्दबोध नहीं हुया चाहिये.ताका समाधान यह लिख्याहैः—तहां भी पुस्तक देखनेवाला सूक्ष्म उच्चारण करैहै. या रीतिसैं मौनिलिखित श्लोकका उच्चारणकर्ता मौनी है.

और अभेदरत्नकारका यह मत हैः—जहां तात्पर्यका संदेह होवै तहां शाब्दबोध होवै नहीं. औ जहां तात्पर्यके अभावका निश्चय होवै तहांभी शाब्दबोध होवै नहीं. जहां प्रथम तात्पर्यका संदेह होवै अथवा तात्पर्याभावका निश्चय होवै उत्तरकालमैं तात्पर्यका निश्चय होय जावै तहां शाब्दबोध होवैहै; यातैं तात्पर्यके संदेहतैं उत्तरकालभावी शाब्दबोधमैं औ तात्पर्याभावनिश्चयतैं उत्तर कालभावी शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतु है; सारै शाब्दबोधमैं हेतु नहीं. या मतमैं दोष वेदान्तशिखामणिमें लिख्या है, खंडनमैं आग्रह नहीं; यातैं दोष लिख्या नहीं विवरणकार औ मंजूषाकारके मतमैं जैसें पूर्वउत्तरमीमांसा निष्फल होवै है तैसें या मतमैं मीमांसा निष्फल नहीं. काहेतैं ? या मतमैं तात्पर्य संदेहोत्तर शाब्द-बोधका तात्पर्यज्ञान हेतु है, औ वेदवाक्यनमैं तात्पर्यका संदेह होवै है, ताकी निवृत्ति मीमांसातैं होवै है. जैसैं वेदवाक्यनमैं संदेह औ ताकी निवृत्ति होवै सो पूर्वोत्तर मीमांसामैं स्पष्ट है.

इस रीतिसैं आकांक्षा योग्यता तात्पर्य शाब्दबोधके हेतु हैं, परंतु आकांक्षादिकका ज्ञान हेतु है; स्वरूपसैं आकांक्षादिक हेतु नहीं. काहेतैं ? जहां आकांक्षादिक शून्यवाक्यमैं आकांक्षादिकनका भ्रम होवै तहां शाब्दबोध होवैहै, स्वरूपसैं आकांक्षादिकनकूं हेतुता मानैं तौ आकांक्षादिक भ्रमस्थलमैं शाब्दबोध नहीं हुया चाहिये औ आकांक्षादिके ज्ञानकूं हेतुता मानैं, शाब्दबोधका कारण भ्रमरूप ज्ञान होनेतैं शाब्दबोध संभवैहै; औ स्वरूपसैं आकांक्षादिकनकूं हेतुता मानैं, जहां आकांक्षादिक हैं औ श्रोताकूं ऐसा भ्रम होवै यह वाक्य आकांक्षादिकशून्य है तहां शाब्दबोध

हुया चाहिये औ होवै नहीं; यातैं आकांक्षादिकनका ज्ञान हेतु है सो ज्ञान भ्रम होवै चाहिये प्रमा होवै. शाब्दबोधका हेतु भ्रम प्रमा साधारण आकांक्षादिकनका ज्ञान है. भ्रम सामग्रीतैं शाब्दबोधभ्रम नहीं होवै है किंतु विषयके अभावतैं शाब्दबोध भ्रम होवै है. जैसैं वह्निकी व्यभिचारी पृथ्वीत्वमैं वह्निव्याप्यताभ्रम होयके पृथिवीत्व हेतुसैं वह्निवाले पर्वतमैं वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो विषयके सद्भावतैं प्रमा होवै है, विषयदेशून्यदेशमैं व्यभिचारी हेतुसैं **अनुमितिभ्रम** होवै है, यातैं विषयके सद्भावतैं जैसैं भ्रमसामग्रीतैं अनुमितिप्रमा होवै है तैसैं आकांक्षादिक ज्ञान शाब्दबोधकी सामग्री भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै जहां विषयका सद्भाव होवै तहां शाब्दबोध प्रमा होवै है. जहां विषयका अभाव होवै तहां शाब्दबोधभ्रम होवै है, परंतु जहां योग्यताज्ञान भ्रम होवै तहां नियमतैं शाब्दबोध होवै है प्रमा होवै नहीं. काहेतैं? जहां शाब्दबोधका विषय होवै तहां नियमतैं योग्यता ज्ञानप्रमा होवै है. जहां योग्यताज्ञान भ्रम होवै, तहां नियमतैं शाब्दबोधका विषय होवै नहीं. यातैं यह **नियम** है:-विषयके सद्भावतैं शाब्दबोध प्रमा औ विषयके अभावतैं भ्रम होवैहै. जैसैं आकांक्षादिकनके ज्ञान शाब्दबोधके हेतुहैं, तैसैं **आसत्ति** भी शाब्दबोधकी हेतुहै.न्यायके ग्रन्थनमैं पदनकी समीपताकूं **आसत्ति** कहैं हैं. व्यवहितपदनके अर्थोंका अन्वयबोध होवै नहीं; जैसैं "गिरिर्भुक्त वह्निमान् देवदत्तेन" या वाक्यतैं अन्वयबोध होवै नहीं; किंतु "गिरिर्वह्निमान् भुक्तं देवदत्तेन" ऐसा कहैं तौ शाब्दबोध होवैहै. यातैं पदनकी समीपतारूप आसत्ति शाब्दबोधकी हेतुहै. जहां समीपता न होवै औ समीपताका भ्रम होवै तहां शाब्दबोध होवै है. यातैं भ्रमप्रमासाधारण आसत्तिका ज्ञान हेतु है स्वरूपसैं आसत्ति हेतु नहीं. और ग्रंथनमैं यह लिख्या है:-जहां व्यवहितपद हैं तहां श्लोकादिकनमैं शाब्दबोध होवैहै; यातैं उक्त आसत्ति शाब्दबोधकी हेतु नहीं किंतु शक्ति वा लक्षणारूप पदके संबंधसैं जो पदार्थनकी व्यवधानरहित स्मृति सो आसत्ति शाब्दबोधकी हेतु है. पदनका व्यवधान

होवै अथवा अव्यवधान होवै; जा पदार्थका जा पदार्थसैं अन्वयबोध होवै तिनपदार्थनकी स्मृति व्यवधानरहित चाहिये. पदार्थनकी स्मृतिमात्रसैं शाब्दबोध होवै तौ किसी रीतिसैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध हुया चाहिये. पदके संबंधसैं पदार्थकी स्मृतिकूं शाब्दबोधका हेतु कहैं तौ सकलपदनका आकाशतैं समवायसंबंध है और आत्मामैं सकलपदनका **स्वानुकूलकृति संबंध** है यातैं घटादि पदनके समवाय-संबंधतैं आकाशकी जहां स्मृति होवै औ स्वानुकूलकृति संबंधतैं आत्माकी जहां स्मृति होवै तिनकाभी 'घटमानय' इत्यादि वाक्यनतैं बोध हुया चाहिये. यातैं शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप पदके संबंधतैं पदार्थकी स्मृति शाब्दबोधका हेतु है. घटादि पदनका समवायसंबंध आकाशमैं है औ स्वानुकूलकृतिसंबंध आत्मामैं है. **शक्ति वा लक्षणा-वृत्तिरूपसंबंध** घटादिपदनका आकाश आत्मामैं नहीं, आकाशगगनादिपद-नका शक्तिरूपसंबंध आकाशमैं है. स्वपदआत्मपदका **शक्तिसंबंध** आत्मामैं-है. यातैं आकाशपदसहित वाक्यतैं आकाशका शाब्दबोध होवै है. आत्म-पदसहित वाक्यतैं आत्माका शाब्दबोध होवै है; इसरीतिसैं जा पदके वृत्तिरूप संबंधतैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध होवै है. ऐसा कहैंभी "घटमानय" या वाक्यतैं जो बोध होवै है ता बोधकी उत्पत्ति "घटः कर्मता, आनयनं कृतिः" इतने पदनतैं हुई चाहिये. काहेतैं ? दोनों वाक्यनके पदनकी शक्ति समान है. औ प्रथम वाक्यतैं शाब्दबोध होवै है, दूसरेतैं होवै नहीं याकै विषै यह हेतु है:–योग्यपदकी वृत्तिसैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध होवै है प्रथम वाक्यके पद योग्य हैं दूसरेके योग्य नहीं. योग्य-ता अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय है. जिन पदनतैं शाब्दबोध अनुभवसिद्ध है तिनमैं योग्यता है, जिनपदनतैं शाब्दबोधका अभाव अनुभवसिद्ध है तिनमैं योग्यता नहीं. इसरीतिसैं योग्यपदके वृत्तिरूप-संबंधतै व्यवधानरहित पदार्थनकी स्मृति **आसत्ति** कहिये है. इस रीतिकी आसत्तिस्वरूपसैं शाब्दबोधका हेतु है ताका ज्ञान हेतु नहीं या प्रकारतैं

आकांक्षा ज्ञान योग्यताज्ञान तात्पर्यज्ञान आसत्ति शाब्दबोधके हेतु हैं इन च्यारिकूं **शाब्दसामग्री** कहैं हैं.

उत्कटजिज्ञासाकूं बोधकी हेतुता ॥ १९ ॥

अनुमितिकी सामग्री व्याप्तिज्ञान है, प्रत्यक्षसामग्री इंद्रियसंयोगादिक हैं. जहां दो सामग्री होवैं तहां दोनूंका फल होवै नहीं. काहेतें ? एकक्षणमें दो ज्ञानकी उत्पत्ति होवै नहीं. यद्यपि ज्ञानद्वयका आधार तौ एक क्षण होवै है, तथापि ज्ञानद्वयकी उत्पत्तिका आधार एक क्षण होवै नहीं. सो उत्पत्तिभी व्यधिकरण दो ज्ञानकी तौ एक क्षणमें होवै है. जैसें देवदत्तका ज्ञान औ यज्ञदत्तका ज्ञान व्यधिकरण हैं तिनकी उत्पत्ति एक क्षणमें होवै है. तथापि समानाधिकरण दो ज्ञाननकी उत्पत्ति एकक्षणमें होवै नहीं, यह **सिद्धांत** है दोनूं सामग्रीका फल एक कालमें होवै नहीं; यातें प्रबल सामग्रीका फल होवै है. दुर्बलका बाध होवै है. प्रबलता दुर्बलता अनुभवके अनुसार अनुमेय है. जैसें भूतल औ घटके साथ नेत्रका संयोग होवै तिस कालमें "घटवद्भूतलम्" इस वाक्यका श्रवण होवै तहां घटवाला भूतल है. ऐसें प्रत्यक्षज्ञानकी औ शाब्द ज्ञानकी सामग्री है तथापि प्रत्यक्षज्ञान होवै है, शाब्दज्ञान होवै नहीं; यातें समानविषयक **प्रत्यक्षज्ञानकी औ शाब्दज्ञानकी दो सामग्री** होवैं. तहां प्रत्यक्षज्ञानकी सामग्री प्रबल है शाब्दज्ञानकी सामग्री दुर्बल है औ जहां भूतलसंयुक्त घटमें नेत्रका संयोग होवै औ उसकालमें "पुत्रस्ते जातः" इसवाक्यका श्रवण होवै तहां भूतलमें घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं; किंतु पुत्रजन्मका शाब्दबोध होवै है. यातें भिन्नविषयक ज्ञानकी प्रत्यक्षसामग्री औ शाब्दसामग्री होवै तहां शाब्दसामग्री प्रबल है. प्रत्यक्षसामग्री दुर्बल है. इस रीतिसें बाध्यबाधकभाव विचारिकै सूक्ष्मदर्शी पुरुष प्रबलदुर्बलताकूं जानि लेवै; परंतु जिज्ञासाशून्यस्थलमें पूर्वउक्त बाध्यबाधकभाव है. जहां एकवस्तुकी जिज्ञासा होवै अपरकी जिज्ञासा होवै नहीं औ दोनूंके बोधकी सामग्री होवै तहां जिज्ञासितका बोध होवै है

अजिज्ञासितका बोध होवै नहीं; यातैं जिज्ञासितके बोधकी सामग्री प्रबल है अजिज्ञासितके बोधकी सामग्री दुर्बल है. ज्ञानकी इच्छा जिज्ञासा कहिये है. ताका विषय जिज्ञासित कहिये है. जिज्ञासासहित सामग्री सारी प्रबल है. जहां उभयकी जिज्ञासा होवै तहां उत्कटजिज्ञासा बाधक है. इसी कारणतैं अध्यात्मग्रंथनमैं लिख्या है. उत्कटजिज्ञासावालेकूं ब्रह्मबोध होवैहै. उत्कटजिज्ञासारहितकूं ब्रह्मबोध होवै नहीं. काहेतैं ? जिस पदार्थकी जिज्ञासासहित बोधसामग्री होवै तासैं उत्कटजिज्ञासा सहित बोधसामग्रीतैं ताका बोध होवै है; अन्यथा जिज्ञासासहित सामग्रीतैं अन्य सामग्रीका बोध होवै है; लौकिकपदार्थनकी जिज्ञासा औ तिनके प्रत्यक्षादिक बोधकी सामग्रीका सर्वदा जाग्रत्कालमैं संभवैहै,तासैं जिज्ञासा-रहित ब्रह्मबोधकी सामग्रीका बाध होवैगा; यातैं लौकिक पदार्थनके जिज्ञा-सासहित प्रत्यक्षादि बोधकी सामग्रीके बाधवास्तै ब्रह्मकी उत्कट जिज्ञासा चाहिये. उत्कटजिज्ञासासहित ब्रह्मबोधकी सामग्रीतैं लौकिकपदार्थनके बोधकी सामग्रीका बोध होवै है. "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" या सूत्रकाभी इसी अर्थमैं तात्पर्य है. यद्यपि व्याख्यानकारोंनैं विचारमैं जिज्ञासापदकी लक्षणा कही है औ कर्तव्यपदका अध्याहार कह्या है; यातैं ब्रह्मज्ञानके अर्थ वेदांतवाक्यनका विचार कर्तव्य है यह सूत्रका अर्थ है; तथापि विचारवाचक पदकूं त्यागिके लाक्षणिक जिज्ञासापदके प्रयोगतैं सूत्रका-रका वाच्य औ लक्ष्य दोनूं अर्थनमें तात्पर्य है. ब्रह्मजिज्ञासा ब्रह्मबोधका हेतु है, यह वाच्य अर्थ है औ एक शब्दमैं लक्षणावृत्ति औ शक्तिवृत्तिसैं दो अर्थका बोध होवै नहीं या प्राचीन उक्तिका "गंगायां मीनघोषौ" यावाक्यमें व्यभिचार होनेतैं श्रद्धायोग्य नहीं. "गंगायां मीनघोषौ" या वाक्यमैं गंगापदके वाच्यअर्थका मीनमैं संबंध औ लक्ष्यअर्थका घोषसैं संबंध होवैहै, यातैं गंगाके प्रवाहमैं मीन है. औ तीरमें घोष है यह वाक्यका अर्थ है. ग्रंथकारोंनैं यद्यपि सूत्रके अनेक अर्थ लिखेहैं तथापि अनेक अर्थ सूत्रका भूषण हैं, विचारकी

नाईं जिज्ञासामैं विधिका संभव है अथवा नहीं इस अर्थके लिखनेमैं ग्रंथकी वृद्धि होवै है, यातैं लिख्या नहीं.

वेदांतके तात्पर्य औ वेद अरु शब्दविषे विचार ॥ २० ॥

आकांक्षा ज्ञानादिक शाब्दबोधके हेतु हैं तिनमैं तात्पर्यज्ञान है. वेदवाक्यके तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमादिक हैं, तिन उपक्रमादिकनतैं वेदांतवाक्यनका तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्ममैं है, उपासनाविधिमैं तात्पर्य नहीं. यह अर्थ भाष्यकारनैं समन्वयसूत्रमैं विस्तारसैं लिख्याहै. यातैं मीमांसक औ वृत्तिकारका मत समीचीन नहीं. तिनके मतखंडनके अनुकूल तर्क भाषाके श्रोताकूं दुर्ज्ञेय हैं; यातैं लिखे नहीं. इस वाक्यतैं श्रोताकूं इस अर्थका बोध होवै ऐसी वक्ताकी इच्छा तात्पर्य कहिये है. मीमांसक मतमैं वेद नित्य है तहां कर्ताकी उच्छा तौ संभवै नहीं, अध्यापककी इच्छा संभवै है. नैयायिकमतमैं शब्दका तीसरे क्षणमैं नाश होवै है. वेदभी शब्दरूप है. यातैं क्षणिक है तीसरे क्षणमैं जाका नाश होवै सो **क्षणिक** कहिये है. नैयायिकमतमैं उच्चारणके भेदतैं वेदका भेद है.एक वेरी उच्चारण करिकै फेरि जो उच्चारण करिये सो वाक्य पूर्ववाक्यतैं भिन्न होवै है; परंतु पूर्ववाक्यके सजातीय उत्तरवाक्य है यातैं अभेदभ्रम होवै है. नैयायिकमतमैं भारतादिकनकी नाईं वेद **पौरुपेय** है औ क्षणिक है. काहेतैं? वर्णसमुदायतैं भिन्न तौ वेद है नहीं; वर्णसमुदायकूंही वेद कहैं हैं सो समुदाय प्रत्येक वर्णतैं न्यारा नहीं. यातैं वेद वर्णरूप है, सो वर्ण शब्दरूप है, आकाशका गुण शब्द है, नानाशब्दकी एक कालमैं उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतैं ? जैसैं आत्माके विशेष गुण ज्ञानादिक हैं तैसैं आकाशका विशेष गुण शब्द है. औ विभुके जो विशेषण सो एककालमैं दो उत्पन्न होवैं नहीं यद्यपि देवदत्तका शब्द औ यज्ञदत्तका शब्द एककालमैं होवै है. औ भेरीका शब्द तैसैं तालका शब्द एककालमैं होवैहै और जो ऐसैं कहैं समानाधिकरण दोशब्दनकी एक कालमैं उत्पत्ति होवै

नहीं तौभी सारे शब्दनका समवाय एक आकाशमैं है. सारे शब्द-समवायसंबंधतैं आकाशवृत्ति होनेतैं समानाधिकरण है, कोई शब्दव्यधिकरण नहीं; तथापि जैसैं आकाशमैं शब्दका समवायसंबंध है तैसैं कंठ तालु दन्त नासिका ओष्ठ जिह्वामूल उरस् शिरस् इन अष्ट अंगनमैं वर्णरूपशब्दका अवच्छेदकतासंबंध है. औ ध्वनिरूपशब्दका भेरी तालादिकनमैं अवच्छेदकतासंबंध है. एक अधिकरणमैं वृत्तिकूं **समानाधिकरण** कहैंहैं. समवायसंबंधसैं सारे शब्द आकाशवृत्ति होनेतैं समानाधिकरण हैं भी परंतु अवच्छेदकतासंबंधसैं देवदत्तशब्द यज्ञदत्तशब्द व्यधिकरण हैं. तैसैं भेरीशब्द तालशब्दभी अवच्छेदकता संबंधसैं **व्यधिकरण** हैं. औ यह नियम है—अवच्छेदकतासंबंधसैं एक अधिकरणमैं दो शब्दनकी उत्पत्ति एक कालमैं होवै नहीं. अर्थ यह है:—एक अवच्छेदकसैं दो शब्दनकी उत्पत्ति एककालमैं होवै नहीं. यातैं वाक्यपदके अवयवरूप वर्णनकी एक कालमैं उत्पत्ति होवै नहीं; किंतु सारे वर्ण क्रमतैं उपजैं हैं. क्रमतैं उपजते वर्णनका निमित्तविना नाश मानैं तौ सकल वर्णनकी प्रथमक्षणमैं उत्पत्ति औ द्वितीयक्षणमैं नाश होवैगा. यातैं उत्पत्ति नाश विना शब्दमैं और कोई प्रत्यक्षतादिक व्यापार सिद्ध नहीं होवैगा. यातैं शब्दके नाशका कोई निमित्त मानना चाहिये जा निमित्तविना द्वितीयक्षणमैं शब्दका नाश होवै नहीं सो और तौ कोई शब्दकेनाशका निमित्त संभवै नहीं. पूर्व शब्दके नाशका हेतु स्वोत्तरवर्त्तिशब्द है. "गौः" या वाक्यमैं पुरुषकी कृतिसैं नाभिदेशतैं वायुमैं क्रिया होयके गकारका जनक जिह्वामूलमैं वायुका संयोग होयके औकारका जनक कंठओष्ठसैं वायुका संयोग होवै है. तिसतैं अनंतर विसर्गका जनक कंठसैं वायुका संयोग होवै है. जिस क्रमतैं तीनि संयोग होवैंहैं उसी क्रमतैं गकार औकार विसर्गरूप तीनि वर्ण होवैं हैं. यद्यपि कौमुदीआदिक ग्रंथनमैं कवर्गका कंठस्थान लिख्या है तथापि पाणिनिकृत शिक्षामैं कवर्गका जिह्वामूल स्थान लिख्याहै वा शिक्षा वचनके अनुसारतैं जिह्वामूलमैं वायुके संयोगतैं गकारकी

उत्पत्ति कही है. व्याकरणमतमैं यद्यपि 'गौः' इतनें वर्ण वाक्यरूप नहीं हैं तथापि न्यायमतसैं वाक्य कह्या है. प्रथमक्षणमैं गकारकी, द्वितीयक्षणमैं औकार की औ तृतीयक्षणमैं विसर्गकी उत्पत्ति होवै है. तहां गकारनाशमैं औकार हेतु है, औकारके नाशमैं विसर्ग हेतु है, तृतीयक्षणमैं शब्दका नाश होवै है द्वितीयमैं नहीं. काहेतें ? नाशका हेतु **स्वोत्तरशब्द** है सो द्वितीय णमैं उपजै है. कारणकी सिद्धिविना कार्य होवै नहीं. प्रथम क्षणमैं द्वितीयशब्द असिद्ध है यातें द्वितीय क्षणमैं सिद्ध द्वितीयशब्दसैं तृतीयक्षणमैं प्रथमशब्दका नाश होवै है ऐसैं तृतीयशब्दसैं द्वितीयका नाश होवै है. इस रीतिसैं उपांत्यशब्दपर्यंत स्वोत्तरवर्त्तिशब्दसैं शब्दका नाश होवै है. औ अंत्यशब्दका उपांत्यशब्दसैं **सुंदोपसुंदन्यायतें** नाश होवै है. सुंद औ उपसुंद दो भ्राता हुये हैं तिनका परस्पर नाश भारतमैं प्रसिद्ध है. परंतु यामैं यह दोष हैः— जो उपांत्यशब्दमैं अंत्यशब्दका नाश मानैं तौ द्वितीयक्षणमैंही अंत्यशब्दका नाश होवैगा; यातें उत्पत्तिनाशतें अन्यव्यापाररहित अंत्यशब्द अप्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो ऐसैं कहैं जगदीश भट्टाचार्यनें अंत्यशब्द अप्रत्यक्ष कह्याहै; यातें अप्रत्यक्षका अपादान इष्ट है दोष नहीं, तौभी तृतीयक्षणमैं शब्दका नाश होवै है या नियमका भंग होवैगा. यातें अन्त्यशब्दके नाशमैं उपांत्य शब्दका नाश हेतु है उपांत्यशब्द हेतु नहीं. या पक्षमैं अंत्यशब्दके नाशमैं नाशकी द्वितीयक्षणमैं आपत्ति नहीं. काहेतें? उपांत्यशब्दका नाश अंत्यशब्दसैं होवैहै. यातें अंत्यशब्दके द्वितीयक्षणमैं उपांत्यका नाश तासैं उत्तर क्षणमैं अंत्यका नाश होवैहै. इस रीतिसैं सकल शब्दका नाश तृतीय क्षणमैं होवैहै. यामैं यह शंका होवैहैः—जहां एकही वर्णरूप शब्द होवै तहां शब्दके नाशका हेतु कोई शब्द नहीं. ताका यह समाधान हैः—जैसैं कंठादिकनतें वायुका संयोग वर्णरूपशब्दका हेतु है औ भेरी आदिकनतें दंडादिकनका संयोग ध्वनिरूप शब्दका हेतु है, औ वंशके दलद्वयका विभागध्वनिरूप शब्दका हेतु है तैसैं शब्दभी शब्दका हेतु

है. भेरीदंडके संयोगतैं जो भेरीदेशमैं शब्द होवै है तासैं उत्पन्न हुवा जो शब्द ताका श्रवणसैं साक्षात्कार होवै है. तैसैं कंठादिकदेशमैं वायुके संयोगतैं जो वर्णरूप शब्द उपजै है ताका श्रोत्रसैं साक्षात्कार होवै नहीं; किंतु वर्णरूपशब्दसैं अन्यशब्द उपजै है ताका साक्षात्कार होवै है इस रीतिसैं अन्यशब्दरहित एक शब्द अलीक है, परंतु या मतमैं वर्णका समुदायरूप पदका एककालमैं संभव नहीं यातैं पदका साक्षात्कार तौ संभवै नहीं, तथापि प्रत्येकवर्णके साक्षात्कारनतैं सकलवर्णकूं विषय करनेवाली एक स्मृति होवैहै स्मृतिपदमैं पदार्थकी स्मृति होवै है, तासैं शाब्दबोध होवैहै, अथवा पूर्व पूर्व वर्णके अनुभवतैं संस्कार होवैहै. संस्कारसहित अंत्यवर्णका अनुभवही पदका अनुभव कहियेहै, तासैं पदार्थकी स्मृति होवैहै; तासैं शाब्दबोध होवैहै यह न्यायका मतहै. औ मीमांसाके मतमैं वर्ण नित्य हैं, यातैं वर्णका समुदायरूप वेदभी नित्यहै और सारे वर्ण विभु हैं. जहां कंठादिदेशमैं अध्यात्म वायुका संयोग होवै, तहां वर्णकी अभिव्यक्ति होवैहै. नैयायिकमतमैं जो वर्णकी उत्पत्तिके हेतु हैं सोई मीमांसकमतमैं वर्णका अभिव्यक्तिके हेतु हैं. इस रीतिसैं वर्णसमुदायरूप वेद नित्य है, यातैं अपौरुषेय है. औ वेदांतमतमैं वर्ण औ तिनका समुदायरूप वेद नित्य नहीं. काहेतैं? वेदकी उत्पत्ति श्रुतिनैं कही है; औ चेतनमैं भिन्न सकल अनित्य है, यातैं वेद नित्य नहीं औ क्षणिक नहीं; किंतु सृष्टिके आदिकालमैं सर्वज्ञ ईश्वरके संकल्पमात्रतैं वेदकी उत्पत्ति होवै है;यातैं श्वासकी नाईं अनायासतैं ईश्वर वेदकूं रचै है. नैयायिकमतमैं भारतादिकनकी नाईं वेद पौरुषेय है. वेदांतमतमैं भारतादिकनकी नाईं ईश्वररूप पुरुषतैं रचित होनेतैं पौरुषेय तौ है परंतु सर्वज्ञ व्यासादिक सकल सर्गमैं भारतादिकनकूं रचैं हैं तहां यह नियम नहीं. जैसी पूर्व सर्गमैं आनुपूर्वी होवै तैसैं ही भारतादिक उत्तरसर्गमैं होवैं हैं; किंतु अपनी इच्छाके अनुसार भारतादिकनकी आनुपूर्वी रचैं हैं; औ वेदकी आनुपूर्वी विलक्षण नहीं होवै है. किंतु पूर्व

सर्गकी आनुपूर्वीकूं यादि करिकै उत्तरसर्गमैं पूर्व कल्पके समान आनुपूर्वी-वाले वेदकूं ईश्वर रचै हैं. पुरुषरचिततारूप पौरुषेयता वेदमैं भारतादिक-नके समान है. अन्यसर्गकी आनुपूर्वीके स्मरणविना पुरुषरचितत्वरूप पौरुषेयत्व भारतादिकनमैं है वेदमैं नहीं वेदमैं पूर्व सर्गकी आनुपूर्वीकूं स्मरण करिकै पुरुषरचितत्व है; यातैं वेदकी आनुपूर्वी अनादि है औ ईश्वररूप पुरुषकरिकै रचित है विरोध नहीं.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे शब्दप्रमाणनि-रूपणं नाम तृतीयः प्रकाशः ॥ ३ ॥

अथोपमानप्रमाणनिरूपणं नाम चतुर्थप्रकाशप्रारम्भः ।

क्रमभंगके अभिप्रायपूर्वक दो न्यायरीतिसैं उपमान औ उपमितिका द्विधास्वरूप ॥ १ ॥

यद्यपि न्यायवेदांतके सकल ग्रंथनमैं उपमाननिरूपणतैं उत्तर शब्दनि-रूपण किया है तथापि **तीनि प्रमाणवादी सांख्यादिक** उपमानकूं नहीं मानैंहैं. प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीनि मानैं हैं; तिनके उपयोगी प्रमाण पहली कहे चाहियें; यातैं शब्द प्रमाणतैं उत्तर **उपमान** निरूपण करिये है. जिस क्रमतैं शास्त्रोंमैं अधिक प्रमाणका अंगीकार है तिस क्रमतैं या ग्र-न्थमैं प्रमाण निरूपण है. यातैं अन्यसंगतिकी इहां अपेक्षा नहीं.

उपमितिप्रमाका करण **उपमानप्रमाण** कहिये है. **न्यायरीतिसैं उप-मिति उपमानका यह स्वरूप** हैः–संज्ञीमैं संज्ञाकी वाच्यताका ज्ञान **उपमिति** कहिये है; ताका करण कहिये व्यापारवाला असाधारणकारण जो होवै सो **उपमान** कहिये है. कोई नगरवासी पुरुष गवयशब्दके वा-

च्यकूं नहीं जानिकै आरण्यक पुरुषतैं "कीदृश गवय होवै है ? ऐसा प्रश्न करै तब गोके सदृश गवय होवै है, ऐसा आरण्यक पुरुषका वचन सुनिकै वाक्यार्थ अनुभव करिकै वनमैं गोसदृश गवयकूं देखिकै "गोके सदृश गवय होवै है" इस रीतिसैं वाक्यार्थका स्मरण करै है. तिसतैं अनंतर दृष्टपशुमैं गवयपदवाच्यता जानैं है, तहां पशुविशेषमैं गवयपदवाच्यता **ज्ञानउपमिति** है. आरण्यकपुरुषबोधित वाक्यके अर्थका शब्दानुभव करण है गोसदृश पिंडकूं देखिकै वाक्यार्थकी स्मृति व्यापार है औ गोसदृशपिंडका प्रत्यक्ष संस्कारका उद्बोधक होनेतैं सहकारी है; यातैं वाक्यार्थानुभव उपमान है, वाक्यार्थस्मृति व्यापार है. जैसैं आकांक्षादिक शाब्दके सहकारी हैं तैसैं गोसदृश पिंडका प्रत्यक्ष सहकारी है, उपमिति फल है; यह **सांप्रदायिक नैयायिकनका मत** है.

औ **नवीन नैयायिक** यह कहैं हैं:—गोसदृशपिंडका प्रत्यक्ष सहकारी मान्या है सो **उपमान** है, औ वाक्यार्थस्मृति व्यापार है. गवयपदकी वाच्यताका ज्ञान उपमितिरूप फल है. या मतमैं वाक्यार्थका अनुभव कारणका कारण होनेतैं कुलालपिताकी नाई अन्यथासिद्ध है. अर्थ यह है:— जैसैं कुलालपिता घटकी सामग्रीतैं बाह्य है तैसैं उपमिति सामग्रीतैं वाक्यार्थानुभव बाह्य है. यह दो मत नैयायिकनके हैं. इनमैं अनेक शंका समाधानरूप विचार न्यायकौस्तुभादिकोंमैं लिख्याहैं. सिद्धांतमैं उपयोगी नहीं यातैं हमनैं लिख्या नहीं.

जैसैं सदृशज्ञानतैं उपमिति होवैहै तैसैं विधर्मज्ञानसैं भी होवैहै. जहां खड्गमृगपदके वाच्यकूं नहीं जानता आरण्यकपुरुषतैं उष्ट्रविधर्मा शृंगसहित नासिकावाला खड्गमृगपदका वाच्य है. इसवाक्यकूं सुनिकै वाक्यार्थानुभवसैं उत्तर बनमैं जायकै उष्ट्रविधर्म खड्गमृगके प्रत्यक्षसैं उत्तर गैंडेमैं खड्गमृगपदकी वाच्यता जानैहै. औ पृथिवीपदके वाच्यकूं नहीं जानता "जलादिवैधर्म्यवती पृथिवी" ऐसा गुरुवाक्य सुनिकै ताके अर्थकूं अनुभव करिकै जलादिवै-

धर्म्यवान् पदार्थकूं देखिकै वाक्यार्थकूं स्मरण करिकै ता पदार्थमैं पृथिवीपदकी वाच्यता निश्चय करैहै. विरुद्धधर्मवालेकूं **विधर्म** कहैहैं विरुद्ध धर्मकूं **वैधर्म्य** कहैहैं. खड्गमृगमैं उष्ट्रतैं विरुद्ध धर्म ह्रस्वग्रीवादिक हैं, पृथिवीमैं जलादिकनतैं विरुद्ध धर्म गंध है. दोनूं उदाहरणनमैं सांप्रदायिक रीतिसैं वाक्यार्थानुभव करण है, वाक्यार्थस्मृति व्यापार है, विरुद्धधर्मवत्पदार्थदर्शन सहकारी है. नवीनरीतिसैं विरुद्धधर्मविशिष्ट पदार्थका प्रत्यक्ष करण है, वाक्यार्थस्मृतिव्यापार वाक्यार्थानुभव सामग्री बाह्य है. खड्गमृगपदकी वाच्यताज्ञान औ पृथिवीपदकी वाच्यताज्ञान उपमितिरूप फल है. इस रीतिसैं न्यायमतमैं संज्ञाका वाच्यताज्ञान उपमानप्रमाणका फल है और प्राचीनमतमैं वाक्यार्थानुभवकूं **उपमानप्रमाण** कहैं हैं नवीनमतमैं सादृश्यविशिष्ट पिंडदर्शन वा वैधर्म्यविशिष्ट पिंडदर्शन कूं **उपमानप्रमाण** कहैं हैं.

वेदांतरीतिसैं उपमान औ उपमितिका स्वरूप ॥ २ ॥

वेदांतमतमैं उपमिति उपमानका अन्यस्वरूप हैः—ग्रामविषै गोव्यक्तिकूं देखनेवाला बनमैं जायकै गवयकूं देखै तब "यह पशु गौके सदृश है" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै, तिसतैं अनंतर "मेरी गौ इस पशुके सदृश है" ऐसा ज्ञान होवे है; तहां गवयमैं गोसदृशका ज्ञान **उपमानप्रमाण** कहियेहै औ गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान **उपमिति** कहिये है. या मतमैंभी उपमितिका करणही **उपमान** कहियेहै, परंतु उपमितिका स्वरूप औ लक्षण भिन्न है; यातैं उपमानके लक्षणभेदविना स्वरूपका भेद सिद्ध होवै है. **न्यायमतमैं** तौ संज्ञाका संज्ञीमैं वाच्यताज्ञान **उपमिति** कहिये है. औ **वेदांतमतमैं** सादृश्य ज्ञानतैंजन्यज्ञानकूं **उपमिति** कहैहैं. गवयमैं गोके सादृश्यज्ञानतैं गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान जन्य है. इसरीतिसैं उपमितिका लक्षण न्यायमतसैं भिन्न है ताका जो करण होवै सो **उपमान** कहियेहै. सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानरूप उपमिति गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान है; ताका करण गवयमैं गोका

सादृश्यज्ञान है सोई उपमान है. या मतमैं उपमानप्रमाण व्यापारहीन है. उपमानतैं अनंतर उपमितिकी उत्पत्तिमैं कोई व्यापार मिलै नहीं, या मतमैं वैधर्म्यविशिष्टज्ञानतैं उपमितिका अंगीकार नहीं. काहेतैं ? सादृश्य-ज्ञानजन्य ज्ञानकूंही **उपमिति** कहैं हैं अन्यकूं नहीं.

विचारसागरमैं न्यायरीतिसैं उपमितिके कथनका अभिप्राय ॥ ३ ॥

औ विचारसागरमैं न्यायकी रीतिसैं उपमितिका स्वरूप कह्या है ताका यह अभिप्राय है:—न्यायकी रीतिसैं उपमिति उपमानका स्वरूप मानैं तौभी अद्वैतसिद्धांतमैं हानि नहीं, उलटा न्यायकी रीतिसैं सिद्धांतके अनुकूल उदाहरण मिलैहै.काहेतैं ? वैधर्म्यज्ञानतैं उपमिति न्यायमतमैं मानीहै ताका सिद्धांतके अनुकूल यह उदाहरण है—"आत्मपदका अर्थ कैसा है" या प्रश्नका "देहादिवैधर्म्यवान् आत्मा" ऐसा गुरुके उत्तरसैं अनित्य अशुचि दुःखस्वरूप देहादिकनसैं विधर्मा नित्य शुद्ध आनंदरूप आत्मपदका वाच्य है; ऐसा ऐकांत-देशमैं विवेचनकालमैं मनका आत्मासैं संयोग होयकै **उपमितिज्ञान** होवै है. औ सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानकूं ही उपमिति मानैं तौ आत्मामैं किसीका सादृश्य नहीं; यातैं जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण मिलै नहीं. यद्यपि असंगतादिक धर्म-नतैं आकाशके सदृश आत्मा है यातैं आकाशमैं आत्माका सादृश्यज्ञान उपमान है, आत्मामैं आकाशका सादृश्यज्ञान उपमिति है; यह जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण सिद्धांतकी उपमितिका संभवै है; तथापि जिस अधिकरणमैं जिस पदार्थके अभावका ज्ञान होवै तहां अभावज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना तिस अधिकरणमैं तापदार्थका ज्ञान होवै नहीं. जैसैं आत्मामैं कर्तृत्वादिकनका अभावज्ञान हुया औ न्यायादिक शास्त्र सुने तौभी प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुयां-विना कर्ताभोक्ता आत्मा है ऐसा ज्ञान होवै नहीं. जाकूं वेदांत अर्थ निश्चय करिकै नैयायिकादिकनके कुसंगतैं कर्ता भोक्ता आत्मा है ऐसा ज्ञान होवैहै, तहां प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि होयकै होवै है. प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना

विरोधीज्ञान होवै नहीं. सो भ्रमबुद्धि भ्रमरूप होवै अथवा यथार्थ होवै इसमैं आग्रह नहीं; परंतु भ्रमबुद्धिमैं भ्रमत्वनिश्चय नहीं चाहिये यह आग्रह है. इसरीतिसैं जिसकालमैं गुरुवाक्यनतैं जिज्ञासुकूं ऐसा दृढनिश्चय हुया हैः—आकाशादिक सकलप्रपंच गंधर्वनगरकी नांई दृष्टनष्टस्वभाव है तातैं विलक्षणस्वभाव आत्मा है, आकाशादिकनमैं आत्माका किंचित्‌भी सादृश्य नहीं तिस कालमैं आकाश औ आत्माका सादृश्यज्ञान संभवै नहीं; यातैं उत्तम जिज्ञासुके अनुकूल सिद्धांत उपमितिका उदाहरण मिलै नहीं.

पूर्वउक्तवेदांतरीति औ न्याय रीतितैं विलक्षण उपमिति औ उपमानका लक्षण ॥ ४ ॥

औ सर्वथा नैयायिक रीतिकी उपमितिमैं विद्वेष होवै तौ उपमितिका यह लक्षण करना चाहियेः—सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान अथवा वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान इन दोनूंमैं कोई एक होवै सो **उपमिति** कहिये है. खड्गमृगमैं उष्ट्रके वैधर्म्यज्ञानतैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान होवै है. पृथिवीमैं जलके वैधर्म्यज्ञानतैं जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान होवै है. यातैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान औ जलमैं पृथिवीका वैधर्म्य ज्ञान उपमिति करण **उपमान** कहिये है. इहां खड्गमृगमैं उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञान औ पृथिवीमैं जलका वैधर्म्यज्ञान करण होनेतैं उपमान है, औ विपरीतभी उपमान उपमितिभाव संभवै है. इंद्रियसंबद्धमैं सादृश्यज्ञान उपमान है औ इंद्रियसैं व्यवहितमैं सादृश्यज्ञान उपमिति है; तैसैं प्रपंचमैं आत्माके वैधर्म्यज्ञानतैं आत्मामैं प्रपंचका वैधर्म्यज्ञान उपमिति होवै है. इसरीतिसैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान दोनूंकूं **उपमिति** कहैहैं तौ जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण संभवै है.

वेदांतपरिभाषा औ ताकी टीकाकी उक्तिका खंडन ॥ ५ ॥

औ वेदांतपरिभाषामैं एक सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान ही उपमितिका लक्षण कह्या है. औ ताके व्याख्यानमैं ताके पुत्रनैं दूसरी उपमितिके खंडनवास्तै यह

कह्या है:—जहां "कमलेन लोचनमुपमिनोमि" इसरीतिसें उपमानउपमेयभाव होवै तिसीस्थानमें **उपमान प्रमाण** होवैहे. वैधर्म्यज्ञान होवे तहां उपमान-उपमेयभाव होवे नहीं; यातें उपमान प्रमाण संभवै नहीं. ताकूं यह पूछना चाहिये:—वैधर्म्यज्ञानजन्य उपमितिके जो उदाहरण कहे तिनमें उपमितिके विषयका ज्ञान उपमानप्रमाणसें होवे नहीं तौ किस प्रमाणतें तिनका ज्ञान होवैहे ? जा प्रमाणतें तिनका ज्ञान कहे तिसी प्रमाणतें सादृश्यज्ञानजन्य उपमितिके विषयकाभी ज्ञान होय जावैगा. उपमानप्रमाणका प्रयोजनके अभावतें अंगीकार चाहिये. जो ऐसें कहे गवयके प्रत्यक्षमें गोका सादृश्य तौ प्रत्यक्ष है, परंतु गोमें गवयका सादृश्य प्रत्यक्ष नहीं. काहेतें ? धर्मिके साथ इंद्रियका संयोग होवे तौ इंद्रियसंयुक्त तादात्म्यसंबंधसें सादृश्यधर्मका प्रत्यक्ष होवे. गोरूप धर्मीके साथ इंद्रियसंयोगके अभावतें गोमें गवयका सादृश्य प्रत्यक्षका विषय नहीं; यातें गोमें गवयके सादृश्यज्ञानका हेतु गवयमें गोका सादृश्यज्ञानरूप उपमानप्रमाण चाहिये तौ तैसेंही खड्गमृगमें उष्ट्रके वैधर्म्यका तौ प्रत्यक्ष ज्ञान है. उष्ट्रके साथ इंद्रियसंयोगके अभावतें उष्ट्रमें खड्गमृगके वैधर्म्यका ज्ञान प्रत्यक्षरूप संभवै नहीं; ताका हेतु खड्गमृगमें उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञानरूप उपमानही प्रमाण मानना योग्य है. और जो वेदांत-परिभाषाकी टीकामें लिख्या है:—जा ज्ञानतें उत्तर 'उपमिनोमि' ऐसी प्रतीति ज्ञाताकूं होवे सो ज्ञान उपमिति है औ वैधर्म्यज्ञानजन्य वैधर्म्यज्ञानसें उत्तर 'उपमिनोमि' ऐसी प्रतीति होवे नहीं, यातें उपमिति नहीं. सोभी अशुद्ध है:— काहेतें ? मुखमें चंद्रके सादृश्यप्रत्यक्षसें उत्तर "मुखं चंद्रेण उपमिनोमि" ऐसी प्रतीति होवे है औ मुखमें चंद्रके सादृश्यका प्रत्यक्ष ज्ञान है उपमिति नहीं, यातें 'उपमिनोमि' इस व्यवहारका विषय **उपमालंकार** है. जहां उपमानउपमेयकी समान शोभा होवै तहां **उपमालंकार** कहिये है' अलंकारका सामान्यलक्षण औ उपमादिकनके विशेष लक्षण **अलंकार-चंद्रिकादिकनमें** प्रसिद्ध हैं. कठिन औ अनुपयोगी जानिके इहां लिखे नहीं; यातें जहां 'उपमिनोमि' ऐसी प्रतीति होवै ताका विषय

उपमितिज्ञान नहीं, किंतु सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञानमैं उपमिति शब्द पारिभाषिक है. शास्त्रके संकेतकूं परिभाषा कहैं हैं. परिभाषातैं बोधक शब्दकूं **पारिभाषिक** कहैं हैं. जैसैं **छंदोग्रन्थनमैं** पंच षट् सप्तमैं बाण रस मुनि शब्द पारिभाषिक हैं, तैसैं उपमिति शब्दभी न्यायशास्त्र औ अद्वैतशास्त्रमैं भिन्न भिन्न अर्थमैं पारिभाषिकहै; यातैं अद्वैतशास्त्रमैं सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानकी नाई वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञानभी **उपमितिशब्दका** अर्थ है भेदसहित समानधर्मकूं **सादृश्य** कहैं हैं. जैसैं गवयमैं गोके भेदसहित समान अवयव है, सोई गोका सादृश्य है. गोके समान धर्म गोमैं हैं भेद नहीं. गोका भेद अश्वमैं है समानधर्म नहीं, यातैं सादृश्य नहीं चंद्रके भेद सहित आल्हादजनकतारूप समानधर्म मुखमैं हैं, सोई मुखमैं चंद्रका सादृश्य है. इस रीतिसैं उपमानउपमेयका भेदसहित समान धर्मही **सादृश्यपदका** अर्थ है. और कोई ऐसैं कहैं हैं:—सादृश्य नाम कोई भिन्नपदार्थ है, उपमान उपमेय वृत्ति है, उपमान उपमेयके निर्णीत धर्मनसैं भिन्न है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं? जहां दोपदार्थनमैं अल्पसमानधर्म होवै तहां **अपकृष्टसादृश्य** कहिये है, समानधर्म अधिक होवै तहां **उत्कृष्टसादृश्य** कहियेहै, इसरीतिसैं समानधर्मकी न्यूनता अधिकतासैं सादृश्यमैं अपकर्ष उत्कर्ष होवै है. निर्णीत धर्मनसैं अतिरिक्त सादृश्य होवै तौ ब्राह्मणत्वादिक जातिकी नाई अखंड होवैगा, तामैं अपकर्ष उत्कर्ष बनैं नहीं; यातैं समानधर्मरूप सादृश्य है. यह **उदयनाचार्यका मत** सिद्धांतमैं अंगीकरणीय है.

करणके लक्षणका निर्णय ॥ ६ ॥

उपमितिशब्दकी परिभाषाका न्यायमतमैं औ अद्वैतमतमैं भेद है. उपमानशब्दका अर्थ यद्यपि दोनों मतमैं भिन्न नहीं, काहेतैं? उपमितिका करण **उपमान** कहिये है सो न्यायमतमैं गवयपदकी वाच्यताज्ञान उपमितिपदका पारिभाषिक अर्थ है, ताका करण वाक्यार्थानुभव वा सादृश्यविशिष्ट पिंड प्रत्यक्ष है. औ अद्वैतमतमैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञान-

जन्य ज्ञान उपमितिपदका पारिभाषिक अर्थ है; ताका करण सादृश्यज्ञान औ वैधर्म्यज्ञान है. इसरीतिसैं **उपमितिशब्दका परिभाषामैं भेद है.** ताके भेदतैं उपमानका भेद सिद्ध होवैहै. उपमानपद पारिभाषिक नहीं; किंतु यौगिक है. व्याकरणकी रीतिसें जो पद अवयवअर्थकूं त्यागै नहीं सो **यौगिक पद** कहियेहै. इहां व्याकरणकी रीतिसैं उपमितिका करण उपमानपदके अवयवनका अर्थ है. उपमानसैं उपमितिकी उत्पत्तिमें व्यापार नहीं है; यातैं व्यापारवतकारणही करण होवैहै, यह नियम नहीं है; किंतु निर्व्यापार कारणभी करण होवै है. यद्यपि न्यायमत निरूपणके प्रसंगमैं व्यापारवाले असाधारण कारणकूं ही करणता कही है, यातैं निर्व्यापारकारणमैं करणता संभवै नहीं, तथापि **सिद्धांतमतमें** व्यापारसें भिन्न असाधारण कारणकूं करणता कही चाहिये. व्यापारवाले असाधारणकारणकूंही करणता नहीं. जैसें व्यापारवत कहनेसैं व्यापारमें करणलक्षण जावै नहीं तैसें व्यापारभिन्न कहनेतैंभी व्यापारमैं करणलक्षण जावै नहीं. काहेतैं ? जैसें व्यापारमें व्यापारवत्ता नहीं है, तैसें व्यापारसैं भिन्नताभी व्यापारमैं नहीं है; इस रीतिसैं व्यापारभिन्न असाधारण कारण करण कहियेहै. सो निर्व्यापार होवै अथवा सव्यापार होवै प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीनि तौ प्रत्यक्षप्रमा अनुमितिप्रमा शाब्दीप्रमाके व्यापारवाले कारण हैं, औ उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि ये तीनूं उपमिति आदिक प्रमाके निर्व्यापारकारण हैं; यातैं **सिद्धांतकी रीतिसैं** करणलक्षणमैं व्यापारवत् पदके स्थानमैं व्यापारभिन्न कह्या चाहिये. औ न्यायमतमैं तौ करणलक्षणकी व्यापारमैं अतिव्याप्तिका परिहारके अर्थ व्यापारवत् पदका निवेश होवै अथवा व्यापारभिन्नपदका निवेश होवै दोनूं प्रकारसैं करणलक्षण संभवै है. काहेतैं ? न्यायमतमैं उपमितिप्रमाके करण उपमानप्रमाणमैं वाक्यार्थ स्मृति व्यापार है. यह न्यायानुसारी उपमानके निरूपणमैं पूर्व कह्या है, यातैं उपमितिके करण उपमानमैं व्यापारवत् कहनेसेभी

करणलक्षणकी अव्याप्ति नहीं. औ अर्थापत्तिका अनुमानमैं अंतर्भाव नैयायिक मानैं हैं, यातैं अर्थापत्तिमैं प्रमा करणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं तामैं करणताव्यवहारकी अपेक्षा नहीं. तैसैं अभावकी प्रमामैं अनुपलब्धिकूं सहकारी कारणही मानैं हैं औ प्रमाकरणतारूप प्रमाणता अनुपलब्धिकूं नैयायिक मानैं नहीं; किंतु अभावप्रमामैं अनुपलब्धि सहकृत इंद्रियादिकनकूं प्रमाणता मानैं हैं. यातैं अनुपलब्धिमैं भी प्रमा करणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं कारणताव्यवहारकी अपेक्षा नहीं. या स्थानमैं यह निष्कर्ष है:—अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैं करणता व्यवहार इष्ट होवै औ करणका लक्षण नहीं होवै तौ करणलक्षणमैं अव्याप्ति दोष होवै. अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैं प्रमाणता होवै तौ करणताकी अवश्य अपेक्षा होवै. काहेतैं ? प्रमाके करणकूं प्रमाण कहैहैं; यातैं प्रमाणतामैं करणताका प्रवेश होनेतैं करणताविना प्रमाणता संभवै नहीं. तिस प्रमाणताका न्यायमतमैं अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं अनंगीकार होनेतैं दोनूंमैं करणताव्यवहार अपेक्षित नहीं. इसरीतिमैं करणतारहित अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं करणलक्षणके नहीं होनेतैं अव्याप्ति दोष होवै नहीं. इसरीतिसैं न्यायमतमैं व्यापारवत असाधारण कारणकूं करणता कहै भी अव्याप्ति नहीं औ सिद्धांतमैं तौ व्यापारवत् कहै उपमानादिक तीनि प्रमाणोंमैं करण लक्षणकी अव्याप्ति होवै है. काहेतैं ? सिद्धांतमतमैं इंद्रियसंबंधि गवयमैं गोका प्रत्यक्षरूपसादृश्यज्ञान उपमानप्रमाण है; औ व्यवहित गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति प्रमा है, तैसैं इंद्रियसंबंधि पशुमैं व्यवहित पशुका वैधर्म्यज्ञान तौ उपमान प्रमाण है औ व्यवहित पशुमैं इंद्रियसंबंधि पशुका वैधर्म्यज्ञान उपमिति प्रमा है; इसप्रकारसैं उपमानतैं उपमितिकी उत्पत्तिमैं कोई व्यापार संभवै नहीं औ उपमिति प्रमाके करणकूं उपमानप्रमाण कहैं हैं; यातैं उपमानप्रमाणमैं करणता व्यवहार इष्ट है. तैसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैंभी प्रमाणता कहैंगे यातैं करणता व्यवहार इष्ट है औ व्यापारका संभव नहीं, यातैं उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं करणलक्षणकी अव्याप्ति

होवैगी, यातैं करणके लक्षणमैं सिद्धांतरीतिसैं व्यापारवत् पदकूं त्यागिकै व्यापारभिन्न कह्या चाहिये वेदांतपरिभाषा ग्रन्थमैं धर्मराजनैं "व्यापारवत् असाधारण कारणम्" यह कारणलक्षण कह्याहै, औ "प्रमाकरणं प्रमाणम्" यह **प्रमाणका** लक्षण कह्या है. औ धर्मराजके पुत्रनैं वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं यह कह्याहै:—उपमितिका असाधारणकारण **उपमान** है, सो व्यापारहीन है.तैसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिभी व्यापारहीन कारण है; यातैं उपमानादिक तीनिके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं. उपमिति प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण उपमान है, उपपादककी प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण अर्थापत्तिप्रमाण है, अभावप्रमाका व्यापारवत असाधारणकारण अनुपलब्धि प्रमाण है; इस रीतिसैं उपमानादिक तीनूंके व्यापारवत् पदघटित लक्षण करै तौ तीनूंकूं व्यापारवत्त्वके अभावतैं उपमानादिकनके विशेष लक्षणोंका असंभव होवैगा; यातैं व्यापारवत पदरहित विशेष लक्षण है, उपमिति प्रमाका असाधारणकारण **उपमान-प्रमाण** कहिये है. इसरीतिसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिके लक्षणमैंभी व्यापारवत् नहीं कहना, यातैं असंभव नहीं. इसरीतिसैं धर्मराजके पुत्रनैं उपमान प्रमाणादिकनके विशेषलक्षण तौ यथासंभव कहे औ करणका लक्षण तथा प्रमाणका सामान्य लक्षण जो मूलकारका पूर्व कह्या है तामैं कछु विलक्षणता कही नहीं, यातैं तिसके पुत्रकी उक्तिमैं न्यूनता है. काहेतें ? करणके लक्षणमैं विशेष कहे विना व्यापारवत्ताके अभावतें उपमितिका करण **उपमान** है, औ अर्थापत्ति प्रमाका करण **अर्थापत्ति** है; अभावप्रमाका करण **अनुपलब्धि** है; ऐसा व्यवहार नहीं हुया चाहिये. तैसैं करणताके अभावतैं उपमानादिकनमैं प्रमाणता व्यवहारभी नहीं हुया चाहिये. यातैं मूलकारके करणलक्षणमैं व्यापारवत् पदका व्यापारभिन्न व्याख्यान करनेमैं सर्व इष्टकी सिद्धि होवैहै; यातैं मूलकारके करणलक्षणमैं

व्यापारवत् पदका विलक्षण अर्थ नहीं करनेतें पुत्रकी उक्तिमें न्यूनता है औ हमारी रीतिसैं तौ व्यापाररहित उपमानादिकनमैंभी उपमिति आदिक प्रमाकी करणता संभवै है; इसरीतिसैं प्रपंचमें ब्रह्मकी विधर्मताका ज्ञान उपमान है औ प्रपंचतें विधर्म ब्रह्म है यह उपमानप्रमाणका फल उपमिति ज्ञान है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे उपमान-
निरूपणं नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

अथार्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमप्रकाशप्रारम्भः ।

न्यायमतमें अर्थापत्तिका अनंगीकार त्रिधा अनुमानका वर्णन॥१॥

नैयायिकमतमें पूर्वउक्त च्यारिही प्रमाण हैं, व्यतिरेकि अनुमानमें अर्थापत्तिप्रमाणका अंतर्भाव है. औ सिद्धांतमें केवल व्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं; यातें अर्थापत्ति भिन्न प्रमाण है, केवल व्यतिरेकि अनुमानका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं सिद्ध होवै है. जहां अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं औ साध्याभावमें हेतुके अभावकी व्याप्तिका उदाहरण मिलै सो केवल व्यतिरेकी अनुमान कहिये है. जैमें "पृथिवी इतरभेदवती गंधवत्त्वात्" या स्थानमैं "यत्र गंधवत्त्वं तत्रेतरभेदः" या अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं. काहेतें? पक्षसें भिन्न दृष्टांत होवै है. इहां सकल पृथिवी पक्ष है तासें भिन्न जलादिकनमें इतर भेद औ गंध रहै नहीं यातैं यह केवलव्यतिरेकी अनुमान है. "यत्र इतरभेदाभावस्तत्र गंधाभावः, यथा जले" इस रीतिसैं साध्याभावमें हेतुके अभावकी व्याप्तिज्ञानका हेतु जो सहचार ज्ञान सो जलादिकनमें होवै है, यातैं जलादिक उदाहरण हैं. व्याप्तिज्ञानका हेतु

सहचारज्ञान जहां होवै सो **उदाहरण** कहिये है, अन्वयि अनुमानमैं जैसा व्याप्यव्यापक भाव होवै तासें विपरीत व्यतिरेकिमैं होवै है. अन्वयिमैं हेतु व्याप्य होवै है औ साध्य व्यापक होवै है. व्यतिरेकिमैं साध्याभाव व्याप्य होवै है, औ हेतुअभाव व्यापक होवै है; परंतु या स्थानमैं नैयायिकनके दो मत हैं. साध्याभावमैं हेतुके अभावका सहचारदर्शन होवै है; यातें हेतुके अभावकी व्याप्तिका ज्ञानभी साध्याभावमैं होवै है. या पक्षमैं कोई नैयायिक यह दोष कहैं हैं:—जा पदार्थमैं जिसकी व्याप्तिका ज्ञान होवै तौ हेतुमैं तिस साध्यकी अनुमिति होवै है. जिनपदार्थनका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव जान्या नहीं तिनका परस्पर हेतु साध्याभाव बनै नहीं. व्याप्यव्यापकभाव तौ इतरभेदाभाव गंधाभावका औ गंध इतर भेदका हेतु साध्य भाव कहना आश्चर्यजनक है. यातें साध्यभाव हेत्वभावके सहचारदर्शनतैंभी हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै है. अन्वयि व्यतिरेकि अनुमानका इतना ही भेद है:—जहां हेतु साध्यके सहचारज्ञानतें हेतुमैं व्याप्तिका ज्ञान होवै है. सो **अन्वयि अनुमान** कहिये है. जहां साध्याभावमैं हेत्वभावके सहचारदर्शनतें हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै सो **व्यतिरेकि अनुमान** कहिये है. साध्याभावमैं हेत्वभावकी व्याप्तिका ज्ञान कहूंभी होवै नहीं औ जहां साध्याभावमैं हेतुके अभावकी व्याप्तिका ज्ञान होय जावै तहां साध्याभावतें हेत्वभावकी अनुमिति ही होवै है. हेतुसें साध्यकी अनुमिति होवै नहीं. काहेतें? व्याप्यज्ञानसें व्याप्यकी अनुमिति होवै है यह नियम है. आदि पक्ष प्राचीनका है, द्वितीय पक्ष नवीनका है; अनुमानप्रकरणमैं न्यायग्रंथनके अध्ययनविना बुद्धिका प्रवेश होवै नहीं, यातें कोई अर्थ अनुमानका हमनैं विस्तारसें लिख्या नहीं. इसरीतिसैं केवल व्यतिरेकि अनुमानके उदाहरण हैं. औ जहां साध्याभाव हेत्वभावके सहचारका उदाहरण मिलै नहीं सो **केवलान्वयि अनुमान** कहिये है. जैसें "घटः पदशक्तिमान् ज्ञेयत्वात् पटवत्" इहां साध्याभाव हेत्वभावका सहचार कहूं मिलै नहीं. न्यायमतमैं ज्ञेयता औ पदशक्ति सर्वमैं है. यातें अभावनके सहचारका उदाहरण मिलै

नहीं. जहां दोनूंके उदाहरण मिलैं सो अन्वयव्यतिरेकि अनुमान कहिये है, ऐसा प्रसिद्ध अनुमान है, 'पर्वतो वह्निमान्' याकूं प्रसिद्धानुमान कहैं हैं. इहां अन्वयके सहचारका उदाहरण महानस है औ व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण महाह्रद है. इसरीतिसैं तीनि प्रकारका अनुमान नैयायिक कहैं हैं.

वेदांतरीतिसैं एक अन्वयि (अन्वयव्यतिरेकि) अनुमान औ अर्थापत्तिका स्वीकार ॥ २ ॥

वेदांतमतमैं केवल व्यतिरेकिका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं होवै है, इतर भेदविना गंधवत्ता संभवै नहीं यातैं गंधवत्ताकी अनुपपत्ति इतर भेदकी कल्पना करै है औ इसरीतिसैं अर्थापत्ति प्रमाणतैं केवल व्यतिरेकि गतार्थ है,औ केवलान्वयि अनुमान कोई है नहीं. काहेतैं ? सर्व पदार्थनका ब्रह्ममें अभाव है, यातैं व्यतिरेकसहचारका उदाहरण ब्रह्म मिलै है. यद्यपि वृत्तिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञेयता ब्रह्मविषै है, ताका अभाव ब्रह्मविषै बनै नहीं, तथापि ज्ञेयतादिक मिथ्या हैं. मिथ्यापदार्थ औ ताका अभाव एक अधिष्ठानमैं रहैहै. यातैं जिसकूं नैयायिक अन्वयव्यतिरेकि कहैं हैं सोई अन्वयि नाम एक प्रकारका अनुमान है; यह वेदांतका मत है. या मतमैं केवल व्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं; अर्थापत्ति प्रमाणका अंगीकार है. औ विचारदृष्टि करै तौ दोनूं मानने चाहियें. काहेतैं ? जहां एक पदार्थके ज्ञानके अनुव्यवसाय भिन्न होवैं, तहां तिसपदार्थके ज्ञानोंके प्रमाण भिन्न होवैं हैं. व्यवसायज्ञानका जनक प्रमाणभेदविना अनुव्यवसायका भेद होवै नहीं. एक वह्निका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब "वह्निं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, अनुमानजन्य ज्ञान होवै तब "वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, जहां शब्दतैं वह्निका ज्ञान होवै तहां "वह्निं शाब्दयामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. औ जहां सूर्यमैं वह्निके सादृश्यज्ञानरूप उपमान प्रमाणतैं सूर्यसदृश वह्निका ज्ञान होवै तहां "सूर्येण वह्निमुपमिनोमि"

ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. ज्ञानके ज्ञानकूं **अनुव्यवसाय** कहैं हैं अनुव्यवसायका विषय जो ज्ञान होवै सो **व्यवसाय** कहिये है, इस रीतिसैं व्यवसाय ज्ञानका जनक प्रमाणके भेदतैं अनुव्यवसायका भेद होवै है. कदाचित् "गंधेन इतरभेदं पृथिव्यामनुमिनोमि" ऐसा **अनुव्यवसाय** होवै है औ "गंधानुपपत्त्या इतरभेदं पृथिव्यां कल्पयामि" कदाचित् ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै. जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसायअनुमान प्रमाणजन्य है, तहां प्रथम अनुव्यवसाय होवैहै. जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसाय अर्थापत्ति प्रमाणजन्य है, तहां द्वितीयअनुव्यवसाय होवैहै, इसरीतिसैं अनुव्यवसायके भेदतैं व्यवसायके भेदतैं व्यवसायज्ञानके जनक अनुमान अर्थापत्ति दोनूं हैं. एककूं मानिकै दूसरेका निषेध बनै नहीं. और **शब्दशक्तिप्रकाशिकादि ग्रन्थनमैं** अनुमानप्रमाणतैं शब्दप्रमाणका भेद अनुव्यवसायके भेदसैं ही सिद्ध कह्या है. यातैं प्रमाणके भेदकी सिद्धिमैं अनुव्यवसायका भेद प्रबल हेतु है. इसरीतिसैं अर्थापत्ति औ केवलव्यतिरेकि अनुमान दोनूं मानने चाहियें. जहां विषयका प्रकाश एक प्रमाणतैं सिद्ध होवै तहां अपरप्रमाणका निषेध होवै नहीं. केवलव्यतिरेकिका स्वरूप संक्षेपतैं दिखाया है.

अर्थापत्तिप्रमाण औ प्रमाका स्वरूपभेद अरु उदाहरण ॥ ३ ॥

अर्थापत्तिका यह स्वरूप है:–जैसैं प्रमाण औ प्रमाका बोधक प्रत्यक्ष शब्द है तैसैं अर्थापत्ति शब्दभी प्रमाण औ प्रमा दोनूंका बोधक है. उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्य ज्ञानकूं **अर्थापत्ति प्रमाण** कहै हैं, उपपादक ज्ञानकूं **अर्थापत्ति प्रमा** कहैं हैं; उपपादक संपादक पर्यायशब्द हैं, उपपाद्य संपाद्य पर्याय हैं; यातैं विचारसागरमैं संपादक ज्ञानकूं **अर्थापत्ति** कह्या है, तैसैं विरोध नहीं. जिसविना जो संभवै नहीं तिसका सो **उपपाद्य** कहिये है. जैसैं रात्रिभोजनविना दिवाअभोजी पुरुषमैं स्थूलता संभवै नहीं; यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता उपपाद्य है. जिसके अभावसैं जाका अभाव होवै

सो ताका उपपादक कहिये है. जैसैं रात्रिभोजनके अभावसैं स्थूलताका दिवाअभोजीकूं अभाव होवैहै; यातैं रात्रिभोजन स्थूलताका उपपादक है. शंकाः—इसरीतिसैं व्यापककूं उपपादकता औ व्याप्यकूं उपपाद्यता सिद्ध होवैहै. उपपादक ज्ञानका हेतु उपपाद्यज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण है, या कहनेतैं व्यापकज्ञानका हेतु व्याप्यज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण है. यह सिद्ध होवैहै. ऐसा अनुमान प्रमाण है. अर्थापत्तिप्रमाणका अनुमानप्रमाणसैं भेद प्रतीत होवै नहीं. उत्तर—स्थूलता रात्रिभोजनका व्याप्य है औ स्थूलतावाला देवदत्त है ऐसैं दो ज्ञान होयके जहां रात्रिभोजनका ज्ञान होवै तहां अनुमितिज्ञान है औ दिवाअभोजीपुरुषमैं रात्रिभोजन विना स्थूलताकी अनुपपत्ति है ऐसा ज्ञानतैं उत्तर रात्रिभोजनका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा है; इसी कारणतैं प्रथमरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर "स्थौल्येन रात्रिभोजनमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै. द्वितीयरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर "स्थूलतानुपपत्त्या रात्रिभोजनं कल्पयामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै. इसरीतिसैं उपपाद्य अनुपपत्ति ज्ञानतैं उपपादक कल्पना अर्थापत्तिप्रमा कहियेहै. उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण कहिये है. अर्थ कहिये उपपादक वस्तु ताकी आपत्ति कहिये कल्पना या अर्थमैं अर्थापत्ति शब्द प्रमाका बोधक है तहां "अर्थस्य आपत्तिः" ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास है. औ "अर्थस्य आपत्तिर्यस्मात्" इस बहुव्रीहिसमासतैं अर्थकी कल्पना जिसतैं होवै सो उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञानरूप प्रमाण अर्थापत्तिशब्दका अर्थ है. अर्थापत्ति दो प्रकारकी है; एक दृष्टार्थापत्ति है, दूसरी श्रुतार्थापत्ति है. जहां दृष्ट उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां दृष्टार्थापत्ति कहिये है. जैसैं दिवाअभोजी स्थूलमैं रात्रिभोजनका ज्ञान दृष्टार्थापत्ति है. काहेतैं ? उपपाद्य स्थूलता दृष्ट है औ जहां श्रुत उपपाद्यकी अनुपपत्तिकी ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां श्रुतार्थापत्ति कहिये है जैसैं "गृहेऽसन् देवदत्तो जीवति"

या वाक्यकूं सुनिकै गृहसैं बाह्य देशमैं देवदत्तकी सत्ताविना गृहमैं असत देवदत्तका जीवन बनैं नहीं; यातैं गृहमैं असत देवदत्तके जीवनकी अनुपपत्तिसैं देवदत्तकी गृहतैं बाह्यसत्ता कल्पना करिये है, तहां गृहमैं असत्देवदत्तका जीवन दृष्ट नहीं किंतु श्रुत है. श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिमैं उपपादककी कल्पना **श्रुतार्थापत्तिप्रमा** कहिये है, ताका हेतु श्रुत अर्थकी अनुपपत्तिका ज्ञान **श्रुतार्थापत्तिप्रमाण** कहिये है. या स्थानमैं गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन उपपाद्य है, गृहतैं बाह्यसत्ता उपपादक है. अभिधानानुपपत्ति औ अभिहितानुपपत्ति भेदतैं **श्रुतार्थापत्ति दो प्रकारकी** है. "द्वारम्" अथवा "पिधेहि" इत्यादिस्थानमैं जहां वाक्यका एकदेश उच्चारित होवै एक देश उच्चारित नहीं होवै, तहां श्रुतपदके अर्थकै अन्वययोग्य अर्थका अध्याहार होवै है. अथवा अन्वययोग्य अर्थका बोधक जो पद ताका अध्याहार होवै है. इनहीकूं क्रमतैं **अर्थाध्याहारवाद** औ **शब्दाध्याहारवाद** ग्रंथनमैं कहैं हैं; परंतु अर्थके अध्याहारका ज्ञान वा पदके अध्याहारका ज्ञान अन्यप्रमाणतैं संभवै नहीं. अर्थापत्ति प्रमाणतैं होवैहै, इहां **अभिधानानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** है. काहेतें ? अन्वयबोधफलवाले शब्दप्रयोगकूं **अभिधान** कहैहैं. 'द्वारम्' इत्यादिक शब्दप्रयोगरूपअभिधानकी पिधानरूप अर्थके वा 'पिधेहि' पदके अध्याहार विना अनुपपत्ति है. अथवा या स्थानमैं एकपदार्थका इतरपदार्थांतरसैं अन्वयबोधमैं वक्ताका तात्पर्य अभिधानशब्दका अर्थ है. 'द्वारम्' इतना कहै तहां द्वारकर्मताका निरूपकता संबंधसैं **पिधानान्वयिबोध** श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्यरूप **अभिधान** है. औ 'पिधेहि' इतना कहै तहांभी पूर्वोक्त वक्ताका तात्पर्यरूप **अभिधान** है. वक्ताके तात्पर्यरूप अभिधानकी अध्याहारविना अनुपपत्ति है; यातैं **अभिधानानुपपत्ति** कहिये है. इहां अर्थका अध्याहार अथवा शब्दका अध्याहार उपपादक है, बोधफलक शब्दप्रयोग उपपाद्य है, अथवा पूर्वउक्त तात्पर्य उपपाद्य है, बोधफलक शब्दप्रयोगरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अथवा तात्पर्यरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अर्थ

अथवा शब्दरूप उपपादककी कल्पनाहै यातैं अध्याहृत अर्थका वा शब्दका अभिधानानुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं बोध होवै है. जहां सारे वाक्यका अर्थ अन्य अर्थ कल्पनविना अनुपपन्न होवै तहां **अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** है. जैसें "स्वर्गकामो यजेत" या वाक्यका अर्थ अपूर्वकल्पनविना अनुपपन्न है; यातैं अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है, इहां यागकूं स्वर्गसाधनता उपपाद्य है, ताकी अनुपपत्तिसैं उपपादक अपूर्वकी कल्पना है औ स्वर्गसाधनता दृष्ट नहीं किंतु श्रुत है, यातैं **श्रुतार्थापत्ति** है.

अर्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण ॥ ४ ॥

श्रुतार्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण "तरति शोकमात्मवित" यह है. इहां ज्ञानतैं शोककी निवृत्ति श्रुत है. ताकी शोकमिथ्यात्वविना अनुपपत्ति है,यातैं ज्ञानतैं शोककी निवृत्तिका अनुपपत्तिसैं बंधमिथ्यात्वकी कल्पना होवै है. बंधमिथ्यात्व उपपादक है; ज्ञानतैं शोकनिवृत्ति उपपाद्य है, सो दृष्ट नहीं; किंतु श्रुत है; यातैं **श्रुतार्थापत्ति** है. तैसें महावाक्यनमें जीवब्रह्मका अभेद श्रवण होवै है सो औपाधिक भेद होवै तौ संभवै,स्वरूपसें जीवब्रह्मका भेद होवै तौ संभवै नहीं; यातैं जीवब्रह्मके अभेदकी अनुपपत्तिसैं भेदका औपाधिकत्वज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणजन्य है. इहां जीवब्रह्मका अभेद उपपाद्य है, भेदसैं औपाधिकता उपपादक है, सारे उपपाद्य ज्ञान प्रमाण है उपपादक ज्ञान प्रमा है, इहां जीवब्रह्मका अभेद विद्वानकूं दृष्ट है, अन्यकूं श्रुत है; यातैं दृष्टार्थापत्ति औ श्रुतार्थापत्ति दोनूंका उदाहरण है. जहां वाक्यमैं पदका वा अर्थका अध्याहार नहीं होवै औ अन्यअर्थकी कल्पनाविना वाक्यार्थकी अनुपपत्ति होवै तहां **अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** होवै है; यातैं 'द्वारम्' इस एक उदाहरण विना अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिके उदाहरणहैं तैसें रजतके अधिकरण शुक्तिमैं रजतका निषेध दृष्ट है, सो रजतके मिथ्यात्वविना संभवै नहीं; यातैं निषेधकी अनुपपत्तिसैं रजतमिथ्यात्वकी कल्पना होवै है, यह **दृष्टार्थापत्तिका उदाहरण है.**

इहां रजतनिषेध उपपाद्य है औ मिथ्यात्व उपपादक है, औ मनके विलयसैं अनंतर निर्विकल्पसमाधिकालमैं अद्वितीय ब्रह्ममात्र शेष रहै है. सकल अनात्मवस्तुका अभाव होवै है सो अनात्मवस्तु मानस होवै तौ मनके विलयतैं ताका अभाव संभवै. जो मानस नहीं होवै तौ मनके विलयतैं अभाव होवै नहीं. काहेतैं ? अन्यके विलयतैं अन्यका अभाव होवै नहीं; यातैं मनके विलयतैं सकल द्वैताभावकी अनुपपत्तिसैं सकल द्वैत मनोमात्र है यह कल्पना होवै है. या स्थानमैं मनके विलयतैं सकल द्वैतका विलय उपपाद्य है, ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण है. सकल द्वैतकूं मानसता उपपादक है, ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा है. या स्थानमैं उपपादक प्रमाका असाधारण कारण अर्थापत्ति प्रमाण है, सो निर्व्यापार है, तौभी तामैं उपपादक प्रमाकी करणता संभवै है, यह उपमाननिरूपणमैं कह्या है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमः प्रकाशः ॥ ५ ॥

अथानुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठप्रकाशप्रारंभः ।

अभावका सामान्य लक्षण औ भेद ॥ १ ॥

अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावकी प्रमा होवै है; यातैं अभावकी प्रमाके असाधारण कारणकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहैं हैं. न्यायवेदांतके संस्कारहीन अभावके स्वरूपकूं जानैं नहीं, यातैं प्रथम अभावका स्वरूप कहैं हैं निषेधमुख प्रतीतिका विषय होवै अथवा प्रतियोगि सापेक्ष प्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है. प्राचीनमतसैं प्रथमलक्षण है. नवीन मतमैं ध्वंस औ प्रागभाव नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय नहीं; यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा, यातैं दूसरा लक्षण कह्या है. प्रतियोगीकूं त्यागिके अभावकी प्रतीति

होवै नहीं यातैं प्रतियोगि सापेक्ष प्रतीतिके विषय सकल अभाव हैं. यद्यपि अभावकी नाई संबंध औ सादृश्यभी प्रतियोगिनिरपेक्ष प्रतीतिके विषय नहीं किंतु प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिके विषय है तिनमैं अभावलक्षण जावैहै तथापि संबंध औ सादृश्यकी प्रतियोगितासैं अभावकी प्रतियोगिता विलक्षण है सो न्यायग्रन्थनमैं अभावाभावरूपता अभावकी प्रतियोगिताका स्वरूप आचार्यनैं लिख्या है. ऐसी प्रतियोगिता संबंधकी औ सादृश्यकी है नहीं; यातैं संबंधकी औ सादृश्यकी प्रतियोगितासैं विलक्षण प्रतियोगितावाला जाका प्रतियोगी होवै सो **अभाव** कहियेहै. स्थूल रीति यह है:—संबंध सादृश्यतैं भिन्न होवै औ प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै सो **अभाव** कहिये है. सो **अभाव दो प्रकारका** है. एक संसर्गाभाव है दूसरा अन्योन्याभाव है. तिनमैं **अन्योन्याभाव** तो एकविधही है. **संसर्गाभावके** च्यारि भेद हैं. प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ सामयिकाभाव ३ औ अत्यंताभाव ४ है इस रीतिसैं च्यारिप्रकारका संसर्गाभाव औ अन्योन्याभाव मिलिकै **पांचप्रकारका अभाव** है. कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका अभाव है. औ कच्चे कपालमैं रक्तरूपकी उत्पत्तिसैं पूर्व रक्तरूपका अभाव है सो **प्रागभाव** है. घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर मुद्गरादिकतैं कपालमैं घटका अभाव है सो **प्रध्वंसाभाव** है. औ पक्क कपालमैं श्यामरूपका अभाव होवै है सो श्यामरूपका **प्रध्वंसाभाव** है. **नैयायिकमतमैं** प्रध्वंसाभाव सादि है औ अनंत है. काहेतैं? घटके ध्वंसकी उत्पत्ति तौ मुद्गरादिकनतैं होवै है यह अनुभवसिद्ध है. औ ध्वंसका ध्वंस संभवै नहीं. काहेतैं? प्रागभाव प्रतियोगि औ ध्वंस इन तीनूंमैं एकका अधिकरणकाल अवश्य होवै है प्रागभावध्वंसका अनाधार काल **प्रतियोगिका आधार** होवै है यह **नियम** है. जैसैं घटकी उत्पत्ति हुये नाशतैं पूर्व घटके प्रागभावध्वंसका अनाधार काल है.काहेतैं? प्रागभावका नाश होगया औ घटका ध्वंस हुया नहीं यातैं घटध्वंसका अनाधार काल है, सो घटका आधार काल है.जो घटके ध्वंसका ध्वंस मानैं तौ घटध्वंसके ध्वंसका अ-

धिकरण काल घटप्रागभावका औ घटध्वंसका अनाधार होनेतें घटका आधार हुया चाहिये इस रीतिसें ध्वंसका ध्वंस मानैं तौ प्रतियोगीका उन्मज्जन हुया चाहिये. इसीवास्तै प्रागभावकूं अनादि मानैं हैं. जो सादि मानें तौ प्रागभावकी उत्पत्तिसें प्रथमकालप्रागभाव औ ध्वंसका अनाधार होनेतें प्रतियोगिका आधार हुया चाहिये; यातें प्रागभाव अनादि सांत है, ध्वंस अनंत सादि है, भूतलादिकनमें जहां कदाचित् घट होवै तहां घटशून्य कालमें घटका सामयिकाभाव है. किसी समयमें होवै सो सामयिकाभाव कहिये है, वायुमें रूप कदाचित्भी होवै नहीं यातें वायुमें रूपका अत्यंताभाव है, घटसें इतर पदार्थनमें जो घटका भेद सो घटका अन्योन्याभाव है, सामयिकाभाव तौ सादि सांत है. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव दोनूं अनादि अनंत हैं, इस रीतिसें पांचप्रकारका अभाव है.

प्राचीन न्यायमतमें अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधकप्रतीति ॥ २ ॥

तिनकी परस्पर विलक्षणताकी साधक विलक्षण प्रतीति कहै हैं:— कपालमें घटकी उत्पत्तिसें पूर्व "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; वाका विषय घटका प्रागभाव है, काहेतें ? नियोगिके उपादानकारणमें सामयिकाभाव औ अत्यंताभाव तौ रहै नहीं यह अर्थ आगे कहेंगे. किंतु अपने प्रतियोगिके उपादानकूं त्यागिके अन्य स्थानमें दोनूं अभाव रहैं हैं; यातें "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिके विषय सामयिकाभाव अत्यंताभाव नहीं औ घटकी उत्पत्तिसें पूर्व ध्वंसका संभव नहीं. काहेतें ? ध्वंसका प्रतियोगि निमित्तकारण होवैहै; कारणतें पूर्व कार्य संभवै नहीं. यातें घटकी उत्पत्तिसें पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय घटध्वंसभी नहीं. औ घटका अन्योन्याभाव यद्यपि कपालमें सर्वदा है तथापि "कपालो न घटः" ऐसी अन्योन्याभावकी प्रतीति होवै है "कपाले न घटः" ऐसी प्रतीति अन्योन्याभावकी

होवै नही. जो ऐसी प्रतीतिका विषय है सो **प्रागभाव** कहिये है. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै तब "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है ताका विषय प्रागभाव नहीं है. काहेतैं? प्रागभावका नाश प्रतियोगिरूप होवै है. घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर प्रागभावका संभव नहीं औ जो तीनि अभाव हैं तिनकाभी पूर्वउक्त प्रकारसैं संभव नहीं यातैं मुद्गरादिजन्य घटके अदर्शन कालमैं कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; ताका विषय **प्रध्वंसाभाव** है. इसरीतिसैं प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावभी नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय हैं, यह प्राचीनका मत है.

नवीनन्यायमतमैं अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधक प्रतीति ॥ ३ ॥

औ नवीनमतमैं प्रतियोगिके उपादानकारणमैंभी अत्यंताभाव रहै है. काहेतैं? अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोध है अन्यतैं नहीं. जहां प्रतियोगी नहीं होवै तहां सारे अत्यंताभाव होवै है; यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व औ प्रतियोगिके नाशकालमैं प्रतियोगीका अत्यंताभाव होनेतैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय **अत्यंताभाव** है; ऐसी प्रतीतिसैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावकी सिद्धि होवै नहीं; किंतु "कपाले घटो भविष्यति" ऐसी प्रतीति घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व होवै है. ताका विषय **प्रागभाव** है. और "घटो ध्वस्तः" ऐसी प्रतीतिका विषय ध्वंस है. इसरीतिसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमैं घटका अत्यंताभाव औ प्रागभाव दोनूं हैं तिनमैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका **अत्यंताभाव** है औ "कपाले घटो भविष्यति" इस प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका **प्रागभाव** है, तैसैं मुद्गरादिकनतैं कपालमैं घटका अदर्शन होवै तिसकालमैं भी "कपाले घटो नास्ति, कपाले घटो ध्वस्तः" इसरीतिसैं द्विविध प्रतीति होवैहै तिनमैं आद्यप्रतीतिका विषय घटका **अत्यंताभाव** है. औ द्वितीय प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका **प्रध्वंसाभाव** है; इसरीतिसैं नवीनमतमैं प्रागभाव प्रध्वंसा-

भाव नशब्दजन्यप्रतीतिके विषय नहीं; यातें प्रथम लक्षण प्राचीनमतके अनुसारी है. उभयमतानुसारी द्वितीय लक्षण है, यातें द्वितीय लक्षणही समीचीन है.

अभावका द्वितीयलक्षण औ विलक्षण प्रतीति ॥ ४ ॥

संबंध औ सादृश्यतें भिन्न जो अन्यसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै सो **अभाव** कहियेहै; यह द्वितीय लक्षण है. 'भूतले घटो नास्ति' इस प्रतीतिके विषय प्रागभाव औ ध्वंस नहीं. काहेतें ? प्रतियोगिके उपादानमें दोनूं अभाव रहैहैं. घटाभावके प्रतियोगी घटका उपादान भूतल नहीं यातें उक्त प्रतीतिके विषय दोनूं अभाव नहीं. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव तौ नित्य हैं औ भूतलमें घटाभाव अनित्य है; यातें घटका सामयिकाभाव ही उक्तप्रतीतिका विषय है. "वायौ रूपं नास्ति" इस प्रतीतिका विषय केवल अत्यंताभाव है. अनंत होनेतें प्रागभाव, नहीं, अनादितासें ध्वंस नहीं, सर्वदा होनेतें सामयिकाभाव नहीं; यातें उक्तप्रतीतिका विषय अत्यंताभाव है. तैसें "वायुर्न रूपवान्" इस प्रतीतिका विषय **अन्योन्याभाव** है. उक्त प्रतीतिसें वायुमें रूपवत्‌का भेद भासै है, तैसें "घटः पटो न" या प्रतीतिका विषय **अन्योन्याभाव** है. अन्योन्याभावकूं ही भेद कहैहैं.

अन्योन्याभावलक्षण औ तामें शंका समाधान ॥ ५ ॥

अभेदका निषेधक जो अभाव सो **अन्योन्याभाव** कहिये है. "घटः पटो न" ऐसा कहनेतें घटमें पटके अभेदका निषेध होवै है, यातें घटमें पटका **अन्योन्याभाव** है. काहेतें ? न शब्द विना जामें जो प्रतीत होवै ताका न शब्दसें निषेध होवै है. जैसें नशब्द विना 'घटः पटः' या वाक्यतें 'नीलो घटः' इत्यादिकनकी नाईं पटमें घटका अभेद वा घटमें पटका अभेद प्रतीत होवै है. तिस अभेदका निषेध नशब्दसें होवै है. परंतु इतना भेद है:—जा पदसें नशब्दका संबंध होवै ता पदके अर्थके अभेदका निषेध होवैहै जैसें "घटः पटो न" या वाक्यमें पटपदसें नश-

ब्दका संबंध है तहां घटमैं पटपदके अर्थके अभेदका निषेध होवै है; औ "पटो घटो न" या वाक्यमैं नशब्दका संबंध घटपदसैं है. तहां घटपदके अर्थके अभेदका निषेध पटमैं होवै है; इसीवास्तै "घटः पटो न" या वाक्यतैं जो अन्योन्याभाव प्रतीत होवै ताका घट **अनुयोगी** है औ पट **प्रतियोगी** है. तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अन्योन्याभावका पट **अनुयोगी** है, घट **प्रतियोगी** है. जामैं अभाव होवै सो अभावका **अनुयोगी** कहियेहै; जाका अभाव होवै सो **प्रतियोगी** कहिये है.

शंकाः—जाका निषेध करिये ताका **अभाव** कहियेहै, सोई **अभावका प्रतियोगी** कहियेहै औ पूर्व यह कह्याः—"घटः पटो न" या वाक्यतैं घटमैं पटके अभेदका निषेध करिये है; और "पटो घटो न" या वाक्यतै पटमैं घटके अभेदका निषेध करिये है; यातैं "घटः पटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अभावका प्रतियोगी पटका अभेद है पट नहीं. तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अभावका प्रतियोगी घटका अभेद है घट नहीं; यातैं दोनूं वाक्यनमैं अभेदका निषेध कहैं तौ पटमैं औ घटमैं क्रमतैं प्रतियोगिताकथनसैं विरोध होवैगा.

ताका **समाधानः**—अभेद नाम असाधारण धर्मका है. जो अपने आत्मा विना किसीपदार्थमैं नहीं रहै केवल अपनेमैंही रहै सो **अपना असाधारण धर्म** कहिये है. घटका अभेद घटमैंही रहैहे अन्यमैं नहीं, यातैं घटका अभेद घटका **असाधारण धर्म** है; सो असाधारण धर्मरूप अभेदही सकल पदार्थनका अपनेमैं संबंध है. इसरीतिसैं सारे पदार्थनका असाधारण धर्मरूप अभेदसंबंध अपनें स्वरूपमैं रहै है. जा पदार्थका जो संबंध जामैं रहैहै सो पदार्थ ता संबंधसैं तिसमैं रहै है. जैसैं घटका संयोगसंबंध भूतलमैं होवै तहां संयोगसंबंधसैं 'भूतलमैं घट रहै है' यह व्यवहार होवै है; यातैं घटका भूतलमैं संयोगसंबंध

है औ संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घट है या कहनेमैं अर्थका भेद नहीं. तैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घटाभाव है औ भूतलमैं घटसंयोगका अभाव है या कहनेमैं एकही अर्थ है; इस प्रकारतैं पटमैं अभेदसंबंधतैं घटाभाव औ घटके अभेदसंबंधका पटमैं अभाव दोनूं समनियत होनेतैं एकही पदार्थ है. समनियत अभावनका भेद होवै नहीं. जैसैं घटत्वात्यंताभाव औ घटा-न्योन्याभाव दोनूं घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमैं रहैं हैं यातैं समनियत होनेतैं परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही अभावमैं घटत्वात्यंताभावत्व औ घटान्योन्याभावत्व दो धर्म हैं. औ एकही अभावके घटत्व औ घट दोनूं प्रतियोगी हैं. घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं जिस अभावका घटत्व प्रतियोगी है तिसी अभावका घटान्योन्याभावत्वरूपतैं घटभी प्रतियोगी है. औ जिस-रीतिसैं एकही अभावके रूपभेदसैं दो प्रतियोगी हैं. तैसैं रूपभेदसैं एकही अभावके प्रतियोगितावच्छेदक दो संबंध हैं घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं प्रतियो-गितावच्छेदक समवाय संबंध है,औ घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवाय संबंध है. इसरीतिसैं पटादिक सकल पदा-र्थनमैं घटाभेदका अत्यंताभाव औ घटान्योन्याभावभी एक हैं तिस एक अभावमैं घटाभेदात्यंताभावत्व औ घटान्योन्याभावत्व दो धर्म हैं औ घटा-भेदात्यंताभावत्वरूपतैं तिस अभावका घटाभेद प्रतियोगी है, प्रतियोगि-तावच्छेदक स्वरूपसंबंध है, औ घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका घट प्रतियोगी है: प्रतियोगितावच्छेदक अभेदसंबंध है, तिस अभेद संबंधकूंही तादात्म्य कहैं हैं, तद्व्यक्तित्व कहैं हैं. इसरीतिसैं घटके अभेदके निषेधका घट प्रतियोगी है यह कथनभी संभवै है विरुद्ध नहीं.

या स्थानमैं यह निष्कर्ष है:—जिस वाक्यतैं नशब्दविना जा पदार्थमैं जा संबंधसैं जो पदार्थ प्रतीत होवै तिस वाक्यतैं नशब्दसहित ता पदार्थमैं ता संबंधसैं तिस पदार्थका निषेध प्रतीत होवै है. जैसैं "नीलो घट:" या वाक्यतैं घटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं नीलपदार्थ प्रतीत होवै है. काहेतैं? अभेदसंबंधसैं नीलविशिष्ट घट है, यह वाक्यका अर्थ है. नसहित

"घटो न नीलः" या वाक्यतैं अभेदसंबन्धतैं नीलका निषेध घटमैं प्रतीत होवै है. तैसैं "घटः पटः" या वाक्यतैं भी नशब्दविना पटपदार्थमैं अभेद-संबंधतैं घटपदार्थ प्रतीत होवैहै. काहेतैं ? जहां दोनूं पदनमैं समानविभक्ति होवैं तहां एक पदार्थमैं अभेदसंबंधसैं अपरपदार्थ प्रतीत होवैहै; यह नियम है. "नीलो घटः" या वाक्यकी नाईं "घटः पटः" या वाक्यमैं दोनूं पद समान विभक्तिवालेहैं. यातैं नशब्दविना "घटः पटः" या वाक्यतैं भी पटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं घटपदार्थ प्रतीत होवैहै. यद्यपि अभेदसंबंधसैं पटपदार्थमैं घटपदार्थ संभवै नहीं. तथापि एकपदार्थमैं अभेद संबंधसै अपरपदार्थकी प्रतीतिकी सामग्री समान विभक्ति है. सो "घटः पटः "या वाक्यमैं भी है. यातैं नशब्द विना "घटः पटः" या वाक्यतैं पटपदार्थमैं अभेद संबंधसैं घटप्रतीत होवैहै, परंतु पटपदार्थमैं अभेद संबंधसैं घटपदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप होवैगी प्रमा नहीं; यातैं नशब्द विना एक-पदार्थमैं जा संबंधसैं अपर पदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप वा प्रमा रूप होवै तहां नशब्द मिलै तौ एक पदार्थमैं ता संबंधसैं अपर पदार्थका निषेध होवै है. इस रीतिसैं एक पदार्थमैं अभेद संबंधसैं अपरपदार्थका निषेधक अभाव अन्योन्याभाव कहिये हैं.

नवीनरीतिसैं संसर्गाभावके च्यारि भेद औ तिनके लक्षण औ परीक्षा ॥ ६ ॥

तासैं भिन्न जो अभाव ताकूं संसर्गाभाव कहैहैं. संसर्गाभाव प्राचीनमतमैं च्यारिप्रकारका हैः—अनादि सांत जो अभाव सो प्रागभाव कहिये है. अपने प्रतियोगिके उपादान कारणमैं प्रागभाव रहैहै जैसैं घटके प्रागभावका प्रतियोगी घट है, ताके उपादानकारण कपालमैं घटका प्रागभाव रहै है. कपालकी उत्पत्तिसैं भी प्रथम कपालके उपादानकारणमैं घटका प्रागभाव रहैहै. इसरीतिसैं सृष्टितैं प्रथम घटारंभक परमाणुसमुदायमैं घटका प्रागभाव रहैहै. औ परमाणु घटके मध्य जो द्व्यणुकादि कपा-

सांत अवयवी हैं तिन सर्वके प्रागभाव सृष्टितें प्रथमपरमाणुमें रहेहै. इसरीतिसें प्रागभाव **अनादि** कहिये उत्पत्तिरहित है, औ **सांत** कहिये अंतवालाहै अन्त नाम ध्वंसका है जाकूं **नाश** कहेंहैं. जो घटकी उत्पत्तिकी सामग्री तासैं घटके प्रागभावका अंत होवै है यातैं घटके प्रागभावका अंत घटरूपही है. घटके प्रागभावका ध्वंस घटसैं पृथक् नहीं. यद्यपि प्रध्वंसाभाव अनंत है और घट सांत है, घटके प्रागभावका ध्वंस घटरूप होवै तौ प्रध्वंसाभावभी सांत होवैगा, प्रध्वंसाभाव अनंत है या नियमका भंग होवैगा. **ध्वंस नाश अंत** ये पर्यायशब्द हैं. सो **ध्वंस दो प्रकारका** होवैहै. एक तौ भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस होवैहै औ दूजा अभावका नाशरूप ध्वंस होवै है. भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस तौ अभावरूप होवै है; ताहीकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैंहैं. जैसैं घटादिक भावपदार्थनका नाश अभावरूप है ताकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैं हैं, औ अभाव पदार्थका नाशरूप ध्वंस भावरूप होवै है ताकूं ध्वंसप्रध्वंस तौ कहैं हैं औ ध्वंसाभाव प्रध्वंसाभाव कहैं नहीं. जैसैं घटका प्रागभाव अभाव पदार्थ है, ताका नाशरूपध्वंस घट है सो भावरूप है, ताकूं प्रध्वंसाभाव नहीं कहैंहैं; किंतु घटके प्रागभावका नाशरूप घटकूं स्वप्रागभावका ध्वंस औ **प्रध्वंसही** कहैं हैं. इसरीतिसैं **दोप्रकारका ध्वंस** होवैहै. तिनमैं भावरूपध्वंस तौ सांत है, परंतु अभावरूप ध्वंस अनंत है; यातैं घटके प्रागभावका ध्वंस घटरूप तौ सांत है तथापि प्रध्वंसाभाव अनंत है; या नियमकी हानि नहीं. इसरीतिसैं अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** कहियेहै. अनादि अभाव तौ अत्यंताभावभी है सो सांत नहीं. औ सांत अभाव सामयिकाभावभी है सो अनादि नहीं. औ **वेदांतसिद्धांतमें** अनादि औ सांत माया है सो अभाव नहीं, किंतु जगतका उपादान कारण माया है जो अभावरूप माया होवै तौ उपादान कारणता संभवै नहीं. काहेतैं? घटादिकनके उपादानकारण कपालादिक भावरूपही प्रसिद्ध हैं, अभाव किसीका उपादानकारण नहीं; यातैं माया अभावरूप नहीं किंतु भावरूप है. यद्यपि माया भावअभावसैं

विलक्षण अनिर्वचनीय है तथापि अभावरूप माया नहीं यातैं भावरूपताभी मायाविषै संभवै नहीं; यातैं प्रागभावके लक्षणमैं अभावपदके प्रवेशतैं मायामैं प्रागभावका लक्षण जावै नहीं, औ माया भावरूप नहीं या कथनका यह अभिप्राय है:-कालत्रयमैं जाका बाध न होवै सो परमार्थसत् कहिये है औ भाव कहिये है ऐसा ब्रह्म है माया नहीं. काहेतैं ? ज्ञानतैं उत्तरकालमैं मायाका बाध होवै है. यातैं परमार्थ सतस्वरूप भावतौ यद्यपि माया नहीं तथापि विधिमुखप्रतीतिका जो विषय होवै सो भी सत् कहिये है और भाव भी कहिये है. निषेधमुखप्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है. निषेधमुखप्रतीतिकी विषयता मायामैं नहीं यातैं मायाभी भावरूप है.

यद्यपि माया प्रकृति अविद्या अज्ञान ये शब्द पर्याय हैं, औ अविद्या अज्ञानशब्दनमैं अकार निषेधका वाचक है यातैं माया भी निषेधमुख प्रतीतिका विषय होनेतैं अभावरूपही कही चाहिये, तथापि अकारका केवल निषेध अर्थ नहीं है किंतु विरोधि भेदवान् अल्पभी अकारके अर्थ हैं. जैसैं अधर्म शब्दमैं अकारका विरोधी अर्थ है. धर्मविरोधीकूं अधर्म कहैंहैं. औ "अब्राह्मणो नाचार्यः" या स्थानमैं अकारका भेदवान् अर्थ है. ब्राह्मणसैं भिन्न आचार्यताके योग्य नहीं यह वाक्यका अर्थ है. औ "अनुदरा देवदत्तकन्या" या स्थानमैं अकारका अल्प अर्थ है. अल्पउदरवाली देवदत्तकी कन्याहै यह वाक्यका अर्थ है, जैसैं इतने स्थानमैं अकारका निषेध अर्थ नहीं तैसैं अविद्या शब्द औ अज्ञानशब्दमैं भी अकारका निषेध अर्थ नहीं किंतु विरोधी अर्थ है. मायाका ज्ञानसैं वध्यघातकभाव विरोध है; यातैं अज्ञान कहैं हैं. माया वध्य है औ ज्ञान घातक है. वेदांतवाक्यजन्य ब्रह्माकार वृत्तिकूं विद्या कहैं हैं, सो मायाकी विरोधिनी है यातैं अविद्या कहैं हैं अज्ञानशब्द औ अविद्याशब्दका वाच्यभी माया है तौभी अकारका विरोधी अर्थ होनेतैं माया भावरूपहै भावरूपभी ब्रह्मकी नाईं परमार्थसत रूप नहीं; किंतु विधिमुखप्रतीतिका विषय होनेतैं व्यावहारिक सत् रूप है.

प्रागभावके लक्षणमैं अभाव पद नहीं होता तौ मायामैं लक्षण की अतिव्याप्ति होती. काहेतैं? माया अनादि है औ सांत है यातैं अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** कहिये है; सादि अनंत जो अभाव सो **प्रध्वंसाभाव** कहिये है, घटादिकनका ध्वंस मुद्गरादिकनतैं होवै है यातैं सादि है औ अनंततामैं युक्तिपूर्वक ही है. अनंत अभावकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैं तौ अत्यंताभावमैं अतिव्याप्ति होवैगी, यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं सादि कह्या चाहिये. अत्यंताभाव सादि नहीं; किंतु अनादि है औ सादि अभावकूं प्रध्वंसाभाव कहैं तौ सादि अभाव सामयिकाभावभी है तहां अतिव्याप्ति होवैगी; सामयिकाभाव अनंत नहीं किंतु सांत है. सादि अनंतकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैं तौ मोक्षमैं अतिव्याप्ति होवैगी. काहेतैं ? मोक्ष होवै है यातैं सादि है औ मक्तकूं फेरि संसार होवै नहीं यातैं **अनन्त** है, परंतु मोक्ष भावरूप है अभावरूप नहीं. यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं अभाव कह्या चाहिये. यद्यपि अज्ञान औ तिसके कार्यकी निवृत्तिकूं **मोक्ष** कहैं हैं. औ **निवृत्ति** नाम ध्वंसका है यातैं मोक्षभी अभावरूप है; यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं अभावपद नहीं गेरैं तौभी मोक्षमैं अतिव्याप्तिरूप दोष नहीं. काहेतैं ? अलक्ष्यमैं लक्षण जावै ताकूं अतिव्याप्ति कहैं हैं. अज्ञान औ ताके कार्यके ध्वंस मोक्षकूं लक्ष्यता स्पष्टही है. सकलनाश ध्वंसाभावके लक्षणके लक्ष्य हैं; सकल नाशनके अंतर्भूतही कार्यसहित अज्ञानका नाशरूप **मोक्ष** है. तथापि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है. अज्ञान औ ताका कार्य कल्पित है, यातैं तिनकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है; यातैं अभावरूप मोक्ष नहीं; किंतु ब्रह्मरूप होनेतैं भावरूप है. तामैं ध्वंसका लक्षण जावै तौ अतिव्याप्ति होवैगी, यातैं सादि अनंत जो अभाव सो **प्रध्वंसाभाव** कहिये है. उत्पत्ति औ नाशवाला जो अभाव सो **सामयिकाभाव** कहिये है. जहां किसी कालमैं पदार्थ होवै औ किसी कालमैं न होवै तहां पदार्थशून्यकालमैं तिस पदार्थका सामयिकाभाव होवैहै. जैसैं भूतलादिकनमैं घटादिक किसी कालमैं होवैंहैं किसी

कालमैं नहीं होवैं हैं. तहां घटशून्यकालसंबंधी भूतलादिकनमैं घटादिकनका सामयिकाभाव है. समयविशेषमें उपजै औ समयविशेषमैं नष्ट होवै सो **सामयिकाभाव** कहिये है; भूतलसैं घटकूं अन्य देशमैं लेजावै तब घटका अभाव भूतलमैं उपजैहै औ तिसी भूतलमैं घटकूं लेआवै तब घटका अभाव भूतलमैं नष्ट होवै है, इसरीतिसैं सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवाला है. उत्पत्तिवाला अभाव प्रध्वंसाभावभी है तहां अतिव्याप्तिपरिहारवास्तै सामयिकाभावके लक्षणमैं नाश पद कह्या है. प्रध्वंसाभाव यद्यपि उत्पत्तिवाला अभाव है तथापि नाशवाला नहीं यातैं नाश पद कहै तौ अतिव्याप्ति दोष नहीं. नाशवाले अभावकूं **सामयिकाभाव** कहैं तौ प्रागभावमैं अतिव्याप्ति होवैगी, यातैं सामयिकाभावके लक्षणमैं उत्पत्ति पद कह्या है. लक्षणमैं उत्पत्ति पदके प्रवेशतैं प्रागभावमैं अतिव्याप्ति नहीं. काहेतैं? प्रागभावका नाश तो होवै है परंतु अनादि होनेतैं उत्पत्ति होवै नहीं; औ सामयिकाभावके लक्षणमैं अभाव पद नहीं गेरैं किंतु उत्पत्तिनाशवालेकूं **सामयिकाभाव** कहैं तौ घटादिकनमैं अतिव्याप्ति होवैगी. काहेतैं? घटादिकभी भूत भौतिक अनंत पदार्थ उत्पत्ति औ नाशवाले हैं, औ अभावपदके प्रवेशतैं घटादिकनकूं भावरूपता होनेतैं तिनमैं सामयिकाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं इसरीतिसैं भूतलादिकनमैं घटादिकनका उत्पत्ति औ नाशवाला अभाव **सामयिकाभाव** है. अन्योन्याभावसैं भिन्न जो उत्पत्तिशून्य औ नाशशून्य अभाव सो **अत्यंताभाव** कहिये है. जहां किसी कालमैं जो पदार्थ न होवै तहां तिसपदार्थका **अत्यंताभाव** कहिये है. जैसैं वायुमैं रूप किसी कालमैं नहीं होवै है तहां रूपका **अत्यंताभाव** है. तैसैं गंधभी वायुमैं सर्वदा नहीं होवैहै, यातैं गंधका वायुमैं अत्यंताभाव है. स्नेहगुण केवल जलमैंही रहै है अन्यमैं कदी रहै नहीं यातैं जलविना अन्यपदार्थमैं स्नेहका **अत्यंताभाव** है. आत्मामैं रूप रस गंध स्पर्श शब्द कदीभी रहै नहीं. यातैं रूपादिकनका अत्यंताभाव आत्मामैं रहैहै. पृथिवी औ जलमैं रसरहैहै अन्यमैं कदी रहै नहीं; यातैं पृथ्वीजलभिन्नपदार्थनमैं रसका **अत्यंताभाव** है पृथिवीत्व जाति केवल

पृथिवीमें रहैहै जलादिकनमें कदी रहै नहीं; यातें जलादिकनमें पृथिवीत्वका अत्यंताभाव है. ब्राह्मणभिन्न क्षत्रियादिकनमें ब्राह्मणत्व कदी रहै नहीं, यातें क्षत्रियादिकनमें ब्राह्मणत्वका अत्यंताभाव है. आकाश काल दिशा आत्मा व्यापक हैं तिनमैं कदीभी क्रिया होवै नहीं; यातें आकाशादिकनमें क्रियाका अत्यंताभाव है. पृथिवी जल तेज पवन मनमैं क्रिया होवै है औ कदाचित् क्रियाका अभाव होवैहै यातें पृथिवी आदिक निष्क्रिय होवैं तब पृथिवी जल तेज पवन मनमैं क्रियाका अत्यंताभाव नहीं. तैसें सामयिकाभावभी नहीं. काहेतें ? सामयिकाभाव केवल द्रव्यका होवैहै, क्रियाका सामयिकाभाव संभवै नहीं यह वार्ता आगे कहैंगे. यातें सामयिकाभावभी नहीं. किंतु पृथिवी आदिक पांचमैं क्रियाका प्रागभाव औ ध्वंसाभाव है.

च्यारिसंसर्गाभावका प्रतियोगीसैं विरोध औ अन्योन्याभावका अविरोध ॥ ७ ॥

इसरीतिसैं भूतलादिकनमैं जहां कदाचित घटादिक होवै, कदाचित नहीं होवै तहां सारे सामयिकाभाव है अत्यंताभाव नहीं. काहेतैं ? अभावका प्रतियोगीसैं विरोध है. जहां प्रतियोगी होवै तहां अभाव होवै नहीं; किंतु अभावका अभाव होवै है. और जहां भूतलादिकनमें कदाचित् घटादिक होवैं औ कदाचित् नहीं होवैं तहां अत्यंताभाव मानैं तौ अत्यंताभाव नित्य है यातैं घटकालमैं भी घटका अत्यंताभाव होनेतें अत्यंताभावका अपने प्रतियोगिसैं विरोध नहीं होवैगा; यातैं भूतलादिकनमैं घटादिकनका अत्यंताभाव संभवै नहीं. जैसें घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमें घटका प्रागभाव होवैहै. घटरूप प्रतियोगिके उपजे कपालमें घटका प्रागभाव रहै नहीं ताका नाश होय जावै है, यातें प्रागभावका प्रतियोगिसैं विरोध है. तैसें कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै तब घट रहै नहीं औ घट रहैहै जितने काल कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै नहीं, यातैं प्रध्वंसाभावकाभी प्रतियोगीमैं विरोध स्पष्ट

है तैसें भूतलादिकनमें संयोगसंबंधसें घटादिक रहैं. जितनें भूतलादिकनमें घटादिकनके सामयिकाभाव रहै नहीं; किंतु जितनेकाल घटादिक प्रतियोगि भूतलादिकनमें न होवें उतनेकाल सामयिकाभाव रहै है औ घटादिक प्रतियोगि आय जावें तब सामयिकाभावका नाश होवै है. आये घटकूं उठाय लेवें तब सामयिकाभाव और उपजै है; इसीवासतें सामयिकाभावके उत्पत्ति औ नाश मानें हैं इसरीतिसें सामयिकाभावकाभी प्रतियोगिसें विरोध स्पष्ट है. जैसें प्रागभावादिकनका प्रतियोगीसें विरोध है तैसें अत्यंताभावकाभी प्रतियोगीसें विरोध कह्या चाहिये. यद्यपि सकल अभावनका प्रतियोगीसें विरोध होवै तौ जिसकालमें भूतलमें घट धर्‍या होवै तिसकालमें घटका अन्योन्याभाव भूतलमें नहीं हुया चाहिये; औ घटवाले भूतलमें घटका अन्योन्याभाव रहैहै. काहेतें? भेदकूं **अन्योन्याभाव** कहैं हैं. जाकूं अपनेसें **अतिरिक्तता** कहैहैं, **भिन्नता** कहैहैं; जुदापना कहैहैं, घटवाला भूतलभी घटस्वरूप नहीं; किंतु घटसें अतिरिक्त कहियेहै, घटसें भिन्न कहिये है, घटसें जुदा कहियेहै. इसरीतिसें घटवाले भूतलमें घटका अन्योन्याभाव है; यातें घटके अन्योन्याभावका घटरूप प्रतियोगीसें विरोध नहीं, तैसें पटादिकनके अन्योन्याभावका पटादिकनसें विरोध नहीं, यातें सकल अभावनका प्रतियोगीसें विरोध कहना संभवै नहीं; किंतु किसी अभावका प्रतियोगिसें विरोध है किसीका विरोध नहीं है;

प्रागभावादिक दृष्टांतसें अत्यंताभावका प्रतियोगिसें विरोध साधै तब अन्योन्याभावदृष्टांतसें अत्यंताभावका प्रतियोगिसें अविरोधभी सिद्ध होवैगा यातें घटके अन्योन्याभावकी नाईं घटका अत्यंताभावभी घटके अधिकरणमें संभवै है.

तथापि घटके अधिकरणमें घटका अत्यंताभाव संभवै नहीं. काहेतें? **अभावके दो भेद** हैं:—एक अन्योन्याभाव है १ दूसरा संसर्गाभाव है २ संसर्गाभाव च्यारि प्रकारका है. इसरीतिसें **पंचविध अभाव** है. तिनमें अभावत्व धर्म सर्वमें समान है औ निषेधमुखप्रतीतिकी विषयताभी सर्वअभा-

वनमें समान है तथापि अन्योन्याभावसैं चतुर्विध संसर्गाभावमें विलक्षणता अनेकविध है. जिसवाक्यमें प्रतियोगि अनुयोगि बोधक भिन्न विभक्तिवाले पद होवैं तिस वाक्यसैं संसर्गाभावकी प्रतीति होवै है. जैसें उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस वाक्यमैं अनुयोगिबोधक कपालपद सप्तम्यंतहै औ प्रतियोगि-बोधक घटपद प्रथमांत है, तहां प्रागभावकी प्रतीति होवै है. तैसें मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै, तब तिसी वाक्यतैं घटध्वंसकी प्रतीति होवैहै. "वायौ रूपं नास्ति" इस वाक्यतैं वायुमें रूपात्यंताभावकी प्रतीति होवैहै, तहांभी अनुयोगिबोधक वायुपद सप्तम्यंत है औ प्रतियोगिबोधक रूपपद प्रथमांत है; तैसें "भूतले घटो नास्ति" इसवाक्यजन्य प्रतीतिका विषय सामयिका-भाव है; तहांभी अनुयोगिबोधक भूतलपद सप्तम्यंत है प्रतियोगिबोधक घट-पद प्रथमांत है औ "भूतलं न घटः" इसवाक्यसैं भूतलमें घटका अन्योन्या-भाव प्रतीत होवै है; तहां अनुयोगिकबोधक भूतलपद औ प्रतियोगि-बोधक घटपद दोनूं प्रथमांत हैं. इस रीतिसें भिन्नविभक्त्यंतपदघटित वाक्य-जन्य प्रतीतिकी विषयता संसर्गाभावमैं है अन्योन्याभावमैं नहीं, औ समानविभक्त्यंतपदघटितवाक्य जन्य प्रतीतिकी विषयता अन्योन्याभावमैं है संसर्गाभावमैं नहीं. इसरीतिसैं अन्योन्याभावतैं विलक्षण स्वभाववाला चतुर्विध संसर्गाभाव है; यातैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावके दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोधही सिद्ध होवै है, विलक्षणस्वभाववाले अन्योन्याभावके दृष्टांतसैं प्रतियोगितैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं. संसर्गाभावकी अन्योन्याभावतैं औरभी विलक्षणता है.

चतुर्विधसंसर्गाभावका परस्परविरोध औ अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोध ॥ ८ ॥

चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोध है. एक संसर्गाभावके अधिकरणमैं अपर संसर्गाभाव रहै नहीं. जैसें कपालमैं घटकी उत्पत्तिसें पूर्व घटका प्रागभाव है तहां घटका ध्वंस वा अत्यंताभाव वा

सामयिकाभाव रहै नहीं. तैसें कपालमें घटका ध्वंस होवै तब प्रागभावादिक तीनूं संसर्गाभाव रहैं नहीं. औ घटका अन्योन्याभाव कपालमें सदा रहैहै. तैसें भूतलमें घटका सामयिकाभाव रहै तहांभी घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अत्यंताभाव तीनूं रहैं नहीं; औ घटका अन्योन्याभाव तहांभी रहैहै. तैसें वायुमें रूपका अत्यंताभाव रहैहै; तामें रूपका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव सामयिकाभाव तीनूं रहैं नहीं, औ रूपका अन्योन्याभाव वायुमें रहैहै. इसरीतिसें चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोध है; अन्योन्याभावका तिनसें अविरोध है. जैसें अन्योन्याभावका अन्यअभावनतैं अविरोध होतेंभी प्रागभावादिकनके परस्पर अविरोधकी सिद्धि होवै नहीं. तैसें अन्योन्याभावका प्रतियोगीतें अविरोध देखिके किसी संसर्गाभावका प्रतियोगीसें अविरोध सिद्ध होवै नहीं.

प्राचीनमतमें अभावनके परस्पर औ प्रतियोगीसें विरोधाविरोधका विस्तारसें प्रतिपादन ॥ ९ ॥

अब अभावनका परस्पर औ प्रतियोगिसें विरोधाविरोधका विस्तारमें प्रतिपादन करैं हैं—यद्यपि प्रतियोगिके उपादान कारणमें प्रागभाव प्रध्वंसाभाव दोनूं रहैंहैं. जैसें घटके उपादान कारण कपालमें घटप्रागभाव घटकी उत्पत्तिसें प्रथम रहैहै. मुद्गरादिकनतैं घटकूं तोडै तब घटका प्रध्वंसाभाव तिसी कपालमें रहैहै; यातें प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्परविरोध कहना संभवै नहीं, तथापि एककालमें दोनूं रहैं नहीं किंतु भिन्नकालमें रहैंहैं यातें एकदा सहानवस्थानरूपविरोध प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्पर है. तैसें अत्यंताभावकाभी तिनसें विरोध मानना चाहिये. यद्यपि अन्योन्याभावका किसी अभावसें विरोध नहीं है. काहेतें ? कपालमें घटका प्रागभाव है तहां घटका अन्योन्याभावभी है. औ जब कपालमें घटका प्रध्वंसाभाव होवै तब भी घटका अन्योन्याभाव है. औ तंतुमें घटका अत्यंताभाव है तहांभी घटका अन्योन्याभाव है, भूतलमें घटका सामयिकाभाव है तहांभी घटका

अन्योन्याभाव है, इसरीतिसैं अन्योन्याभावका किसी अभावमें विरोध नहीं तथापि संसर्गाभावका यह स्वभाव है:–चतुर्विध संसर्गाभावमें एक संसर्गाभाव एककालमैं रहैहै दूसरा रहै नहीं. जैसैं कपालमें उत्पत्तिसें प्रथम घटका प्रागभाव रहैहै तिस कालमैं घटका प्रध्वंसाभाव रहै नहीं. प्रध्वंसाभाव घटका होवै तब प्रागभाव रहै नहीं औ सामयिकाभाव अत्यंताभाव कपालमें घटके कदीभी रहैं नहीं. यद्यपि कपालमैं घटके प्रागभावप्रध्वंसाभाव होवैं तब घटका अत्यंताभावभी रहैहै, तथापि एक प्रतियोगिके दो संसर्गाभाव रहैं नहीं यह नियम है. अपर प्रतियोगिका दूसरा संसर्गाभाव रहनेका विरोध नहीं तैसैं भूतलादिकनमैं घटका सामयिकाभाव रहैहै, तहां घटका अत्यंताभाव अथवा प्रागभाव तथा ध्वंसाभाव रहै नहीं; औ वायुमें रूपात्यंताभाव है तहां रूपके प्रागभावादिक रहैं नहीं.

यद्यपि संयोगसंबंधतैं कदाचित भूतलादिकनमें घट रहैहै समवायसंबंधतैं कपालविना अन्यपदार्थमैं घट कदीभी रहै नहीं, यातैं समवायसंबंधतैं घटका अत्यंताभाव भूतलादिकनमैं है औ संयोगसंबंधतैं घटका सामयिकाभाव है यातैं सामयिकाभाव औ अत्यंताभावका परस्पर विरोध संभवै नहीं, तथापि घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावका घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसें विरोध है. समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसें विरोध नहीं. यातैं यह नियम सिद्ध हुया:– जिस अधिकरणमैं जा कालमें जिस पदार्थका जा संबंधसैं एक संसर्गाभाव होवै तिस अधिकरणमैं ता कालमें तिस पदार्थका ता संबंधसें अपरसंसर्गाभाव होवै नहीं. अन्यसंबंधसैं होवै है; जा संबंधसें जो पदार्थ जहां न होवै तहां तिस पदार्थका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव कहिये है. भूतलमैं संयोगसंबंधतैं कदाचित् घट होवैहै यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका भूतलमैं कदीभी नहीं; किंतु भूतलत्व जातिमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमें संयोग संबंधतैं घट कदाचित् भी रहै नहीं काहेतैं? दो द्रव्यका संयोग होवै है, द्रव्यका औ जातिका, तैसैं द्रव्यका औ गुणका संयोग होवै

नहीं; यातैं भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिगुणनमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; औ भूतलत्वमैं तैसैं रूपादिक गुणनमैं समवायसंबंधतैंभी घट कदाचित् भी रहै नहीं. काहेतैं.

कार्य द्रव्यका अपने उपादान कारणमैं समवायसंबंध होवै है अन्यमैं नहीं गुणका समवाय गुणीमैं होवै है, जातिका समवाय व्यक्तिमैं होवै है, क्रियाका समवाय क्रियावालेमैं होवै है. अन्यस्थानमैं कहूं समवायसंबंध होवै नहीं यद्यपि परमाणुआदिक नित्यद्रव्यनमैं भी विशेषपदार्थका समवाय नैयायिक मानैं हैं तथापि विशेषपदार्थ अप्रसिद्ध है ताकी कल्पना निष्प्रयोजन है, यह अद्वैतग्रन्थनमैं स्पष्ट है. औ **दीधितिकारशिरोमणिभट्टाचार्यनैंभी** विशेषपदार्थका खंडनही कह्या है. यातैं उपादानकारण गुणी व्यक्ति क्रियावानमैंही कार्य द्रव्य गुण जाति क्रियाका क्रमतैं समवायसंबंध है औ किसीका किसीमैं समवायसंबंध नहीं. इसरीतिसैं भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमैं घटका समवायसंबंध कदीभी होवै नहीं; किंतु कपालमैंही घटका समवाय होवै है; यातैं घटके उपादानकारण कपालकूं त्यागिकै और स्थानमैं सारै घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; औ घटका अन्यसंसर्गाभाव तिस अत्यंताभावके साथि रहै नहीं. काहेतैं ? घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तौ कपालविना अन्यस्थानमैं रहैं नहीं औ सामयिकाभाव तहां होवैहै, जहां किसी कालमैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै किसी संबंधसैं जा कालमैं प्रतियोगी न होवै ता कालमैं तत्संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवै है; जहां किसी कालमैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै नहीं तहां तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही होवैहै. कपालविना अन्यपदार्थनमैं समवायसंबंधतैं घट कदाचित् रहै नहीं यातैं घटके समवायसंबंधावच्छिन्नअत्यंताभावके अधिकरणमैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव रहे नहीं;

औ विचार करै तौ द्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावही द्रव्यका प्रसिद्ध है.

काहेतें? नित्यद्रव्य तौ समवायसंबंधतें किसीमें रहै नहीं; यातैं नित्यद्रव्यका तौ समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावभी है. समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका कहूं नहीं; औ कार्य द्रव्यका अपनें उपादानकारणमें तौ प्रागभाव अथवा प्रध्वंसाभाव होवै है तहां समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अथवा समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहै नहीं. औ अपने उपादानकारणकूं त्यागिकै अन्यपदार्थमैं समवायसंबंधतें कार्यद्रव्य कदाचित् रहता होवै कदाचित् नहीं रहता होवै तौ समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवै है. औ उपादानसैं भिन्नमैं कार्यद्रव्य कदाचितभी रहै नहीं; यातैं उपादानसैं भिन्नपदार्थनमैं कार्यद्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव संभवै नहीं; किंतु तहांभी समवायसंबंधावच्छिन्नअत्यंतभावही कार्य द्रव्यका है. इसरीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका अप्रसिद्ध है.

औ गुण क्रियाभी समवायसंबंधतें जा द्रव्यमें उपजिकै नष्ट होय जावै ता द्रव्यमैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं; किंतु प्रथम प्रागभाव है. पश्चात् प्रध्वंसाभाव है, औ घटके गुणक्रिया समवायसंबंधसैं अन्यद्रव्यमैं कदीभी रहै नहीं,तहांभी तिनका समवायसंबन्धावच्छिन्नअत्यंताभावहै सामयिकाभाव नहीं;इसरीतिसैं गुण क्रियाकाभी समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है, तैसें संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावभी गुण क्रियाका अप्रसिद्ध है. काहेतें ? संयोगसंबंधतें गुणक्रिया कदाचित रहते होवैं कदाचित् नहीं रहते होवैं तौ संयोगसंबंधवाच्छिन्न सामयिकाभाव गुणक्रियाका होवै, औ संयोगसंबंधतें गुणक्रिया किसीमें कदाचित रहै नहीं यातैं गणक्रियाका संयोग संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव ही है. सो अत्यंताभाव सकलपदार्थनमैं है काहेतैं ? संयोसंबंधतें गुणक्रिया किसी पदार्थमें रहते होवैं तौ तिस पदार्थमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव गुणक्रियाका नहीं होवै. सो संयोगसंबंधतैं गुणक्रियाका आधार कोई है नहीं; यातैं गुणक्रियाका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव केवलान्वयी है. जाका अभाव कहूं न होवै

सो केवलान्वयी कहिये है. उक्त अत्यंताभाव सारे है तिस अत्यंताभावका अभाव कहूं नहीं, यातें केवलान्वयी कहिये है. इस रीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव औ संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव गुणका औ क्रियाका अप्रसिद्ध है.

तैसैं जातिकाभी सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. काहेतें ? संयोगसंबंधसें तौ जाति किसी पदार्थमैं कदाचित्‌भी रहै नहीं यातैं सकल पदार्थनमैं जातिका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. सामयिकाभाव नहीं, तैसैं अपना आश्रय जो व्यक्ति तामैं समवायसंबंधसैं जाति सदा रहै है ता व्यक्तिमैं जातिका समवायसंबंधतैं कोई अभाव रहै नहीं. जैसैं घटत्व जाति घटव्यक्तिमैं समवायसंबंधतैं रहै है तहां घटत्वका अत्यंताभाव वा सामयिकाभाव अथवा प्रागभाव तथा ध्वंसाभाव रहै नहीं. काहेतें ? प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तौ अनित्यके होवैंहै. घटत्व नित्य है ताके प्रागभाव प्रध्वंसाभाव संभवैं नहीं औ जहां प्रतियोगी कदाचित्‌भी होवै नहीं तहां अत्यंताभाव होवै है. औ जहां प्रतियोगी कदाचित होवै कदाचित् नहीं होवै तहां सामयिकाभाव होवै है. घटमैं घटत्व सदा समवायसंबंधतें रहै है; यातैं घटमैं घटत्वका समवायसंबंधावच्छिन्नात्यंताभाव औ समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव संभवै नहीं, तैसैं घटसैं भिन्न जो घटत्वके अनाधार सकल पटादिक हैं तिनमैं घटत्व जाति समवायसंबंधतें कदीभी रहै नहीं, यातैं तिनमैं भी घटत्वजातिका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं; किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. इसरीतिसैं द्रव्यसैं भिन्नपदार्थका सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. औ द्रव्यभी नित्य अनित्य भेदसैं दो प्रकारके हैं. पृथिवी जल तेज वायु द्व्यणुकादिरूप अनित्य हैं, आकाश काल दिशा आत्मा मन औ परमाणुरूप पृथिवी जल तेज वायु ये नित्य द्रव्य हैं. सो नित्यद्रव्य समवायसंबंधतें कदाचित् किसी पदार्थमैं रहैं नहीं, यातैं तिनका तौ समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव कहूं नहीं; किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारे है. तैसैं अनित्य द्व्यणुकादिद्रव्य समवायसंबंधतैं अपनें

अवयव परमाणु आदिकमैं रहैंहैं अवयव विना अन्यपदार्थमैं अनित्य द्रव्य समवायसम्बन्धसैं कदीभी रहै नहीं. अवयवनमैं अवयवीका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होवैहै, यातैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अवयवमैं कार्यद्रव्यका नहीं होवै है अवयवसैं भिन्न पदार्थनमैं समवायसंबंधतैं अवयवी कदीभी रहै नहीं; यातैं समवाय संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव तहां नहीं किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है, इस रीतिसैं द्रव्यकाभी समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है; केवल संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका प्रसिद्ध है सोभी कार्यद्रव्यका है. नित्यद्रव्यका तौ संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारै है, सामयिकाभाव कहूंभी नित्यद्रव्यका नहीं. काहेतैं ? नित्यद्रव्यका अवृत्तिस्वभाव है; यातैं संयोगसंबंधतैं नित्यद्रव्य किसी पदार्थमैं कदाचित् भी रहै नहीं. यद्यपि नित्यद्रव्यकाभी अपर द्रव्यसैं संयोग होवैहै औ जाका संयोग जामैं होवै सो तामैं संयोगसंबंधसैं रहैहै तथापि नित्यद्रव्यका संयोगवृत्ति नियामक नहीं. जैसैं कुंडवदरका संयोग वदरकी वृत्तिका नियामक है कुंडकी वृत्तिका नियामक नहीं, तैसैं नित्यद्रव्यका कार्यद्रव्यसैं संयोगभी कार्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामक है नित्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामक नहीं. इसकारणतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका अप्रसिद्ध है; संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं जो पदार्थ किसीमैं रहै नहीं सो **अवृत्ति** कहियेहै. नित्यद्रव्यमैं तौ संयोगसंबंधतैं औ समवायसंबंधतैं अन्य पदार्थ रहैहै अन्यपदार्थनमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं नित्यद्रव्य रहै नहीं, यातैं नित्यद्रव्यनकूं **अवृत्ति** कहैहैं. इसरीतिसैं संसर्गाभाव अन्योन्याभावके भेदतैं **अभाव दोप्रकारका** है; तिनमैं संसर्गाभावके च्यारि भेद हैं तिन च्यारूंका परस्पर विरोध है औ तिन च्यारिकाही अपनें प्रतियोगिसैं विरोध है. प्रतियोगिसैं विरोध इस भांति है:—जो प्रतियोगी जा संबंधसैं जहां होवै ताका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव होवै नहीं औ एक संबंधसैं प्रतियोगी होवै अन्यसंबंधतैं ताका अभावभी होवैहै. जैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घट होवै

तब समवायसंबन्धतैं घट है नहीं, यातैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैंभी घटका **समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव** है, यातैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न संसर्गाभावका प्रतियोगीसैं विरोध है. संसर्गाभावका परस्पर विरोधभी समानसंबंधसैं है, औ एक संबंधावच्छिन्न एक संसर्गाभाव जहां होवै तहां भी अन्य **संबंधावच्छिन्न अपरसंसर्गाभाव** होवैहै. जैसैं घटशून्य भूतलमैं घटका **संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव** है औ तिसी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिसी भूतलमैं रहैहै; इसरीतिसैं प्रतियोगितैं संसर्गाभावका एकसंबंधतैं विरोध है औ समानसंबंधतैं ही परस्पर संसर्गाभावनका विरोध है, औ अन्योन्याभावका तौ जैसैं प्रागभावादिकनतैं विरोध नहीं तैसैं स्वप्रतियोगिसैंभी विरोध नहीं, औ विचार करैं तौ अन्योन्याभावका अन्यभावनतैं यद्यपि विरोध नहीं तथापि अपनें प्रतियोगितैं अन्योन्याभावकाही विरोध है. औ बहुत ग्रंथनमें यह लिख्या हैः—संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है औ अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं विरोध नहीं किंतु प्रतियोगितावच्छेदक धर्मसैं विरोध है. जैसैं भूतलमैं घट होवै तिस कालमैं भी घटका अन्योन्याभाव है. काहेतें ? भेदकूं **अन्योन्याभाव** कहैहैं. घटवाला भूतलभी घटरूप नहीं किंतु घटसैं भिन्न है. घटसैं भिन्न कहिये घटके भेदवाला भूतल है. भेदवाला औ **अन्योन्याभाववाला** कहनेमैं एकही अर्थ है. घटविना और सारे पदार्थ घट भिन्न हैं घटमैं घटत्व रहैहै तहां घटका भेदरूप घटान्योन्याभाव रहै नहीं. घटविना और किसी पदार्थनमैं घटत्व रहै नहीं तहां सारै घटका अन्योन्याभाव है; इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका घटसैं विरोध नहीं; किंतु घटत्वसैं विरोध है; तहां घटान्योन्याभावका प्रतियोगी घट है औ प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है. जाका अभाव होवै सो प्रतियोगी कहिये है, औ प्रतियोगीमैं जो धर्म रहै सो **प्रतियोगितावच्छेदक** कहिये है. यद्यपि प्रतियोगीमैं रहनेवाले धर्म बहुत हैं, जैसैं घटमैं घटत्व है, औ पृथिवीत्व द्रव्यत्व पदार्थत्वादिक भी घटमें रहैहैं तिनमैं पृथ्वीत्वादिकभी घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक हुये चाहियें,

औ पृथ्वीत्वादिक घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक नहीं हैं. पृथिवी अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक पृथ्वीत्व है, द्रव्यान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्वहै, घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक नहीं हैं. औ घटरूप प्रतियोगिमैं तौ रहैहैं, यातैं घटत्वकी नाईं घटान्योन्याभावके पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक प्रतियोगितावच्छेदक कहे चाहियें; तथापि अभावबोधकपदके साथि प्रतियोगिबोधक पदके उच्चारण करें जिस धर्मकी प्रतीति होवै है सो **प्रतियोगितावच्छेदक** कहिये है. घटान्योन्याभाव कहनेमें प्रतियोगिबोधक घटपद है, तैसें "घटो घटो न" इसरीतिसैंभी प्रतियोगिबोधक घटपद है, ताके उच्चारण करें घटत्वकी प्रतीति होवै है पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिकनकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है पृथिवीत्वादिक नहीं, औ "जलं पृथिवी न" इसरीतिसैं कहैं औ पृथिवी अन्योन्याभाव कहैं तब प्रतियोगिबोधक पृथिवीपद है ताके उच्चारण करे तौ पृथिवीत्वकी प्रतीति होवै है; तहां प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्व है. "गुणो द्रव्यं न" इसरीतिसैं कहैं औ द्रव्यान्योन्याभाव कहैं तब प्रतियोगिबोधक द्रव्यपद है ताके उच्चारण करें द्रव्यत्वकी प्रतीति होवै है, तहां **प्रतियोगितावच्छेदक** द्रव्यत्व है; घटपदके उच्चारण करै घटत्वकी प्रतीति होवै है पृथिवीत्वादिकनकी नहीं. यामें यह हेतु है:— घटपदकी घटत्व विशिष्टमें शक्ति है. जिस धर्मविशिष्टमें जा पदकी शक्ति होवै तिस धर्मकी ता पदसैं प्रतीति होवै है; इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है सो घटमें रहै है घटान्योन्याभाव घटमें रहै नहीं. घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमें घटका अन्योन्याभाव रहैहै तहां घटत्व रहै नहीं; यातैं घटत्वरूप प्रतियोगितावच्छेदकमें घटान्योन्याभावका विरोध है औ घटरूप प्रतियोगिसैं विरोध नहीं औ संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है, इसरीतिसैं बहुत ग्रंथकारोंनैं लिख्या है. औ संसर्गाभाव अन्योन्याभावके लक्षणभी इसी अर्थके अनुसारी करे हैं. प्रतियोगिविरोधी जो अभाव सो **संसर्गाभाव** कहिये है, औ प्रतियोगिताव-

च्छेदक विरोधीअभाव **अन्योन्याभाव** कहिये है. इस रीतिके लक्षण कहनेतैंभी अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं अविरोधही सिद्ध होवै है; औ चतुर्विध संसर्गाभावका प्रतियोगिसैंही विरोध सिद्ध होवै है; परंतु ग्रंथकारनका यह समग्र लेख स्थूलदृष्टिसैं है विवेकदृष्टिसैं नहीं. काहेतैं ? अत्यंताभावका जिसरीतिसैं प्रतियोगितैं विरोध है तिसरीतिसैं अन्योन्याभावकाभी प्रतियोगितैं विरोध है. जा भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट होवै तिसी भूतलमैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटका अत्यंताभावकाभी प्रतियोगिसैं सर्वथा विरोध नहीं; किंतु जिस संबंधमैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवै नहीं, यातैं अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं विरोध है, प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधतैं अन्यसंबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं किसी अभावका विरोध नहीं, जिस संबंधसैं पदार्थका अभाव कहिये सो **प्रतियोगितावच्छेदक संबंध** कहिये है. अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेक हैं. काहेतैं? जिस अधिकरणमैं एक संबंधसैं जो पदार्थ होवै तिसी अधिकरणमैं अपरसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिस पदार्थका होवैहै. जैसैं पृथिवीमैं समवायसंबंधतैं गंध होवै है,संयोगसंबंधतैं कदीभी होवै नहीं; यातैं पृथिवीमैं गंधका संयोगसम्बन्धावच्छिन्न अत्यंताभाव है, तहां प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है. जलमैं संयोगसंबंधतैं वा समवाय संबंधतैं गंध नहीं; किंतु कालिकसंबंधतैं जलमैं भी गंध है, यातैं जलमैं गंधका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है औ समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; तहां प्रथम अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है द्वितीय अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंध है; औ कालिकसंबंधसैं एक एक जन्यमैं सारे पदार्थ रहैं हैं; यातैं द्व्यणुकादिरूप जलमैं गंध होनेतैं जलवृत्ति गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिक संबंध नहीं, औ नित्यपदार्थमैं कालिक संबंधसैं कोई पदार्थ रहै नहीं; यातैं परमाणु रूप जलमैं गंधका कालिक संबंधावच्छिन्न अत्यंताभावभी है; यातैं परमाणुवृत्ति गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिक संबंध है. इसरीतिसैं

अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेक हैं. अन्यअभावनका प्रतियोगितावच्छेदक संबंध एक एक है. जैसैं कपालमें घटका प्रागभाव है अन्यमें कहूं घटका प्रागभाव नहीं सो कपालमैं घटके प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंध है. प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक अन्यसंबंध नहीं. यत्संबंधावच्छिन्नप्रागभाव जाका जामैं होवै तासंबंधसैं ताकी उत्पत्ति तिसमैं होवैहै यह **नियम** है. कपालमैं घटकी उत्पत्ति समवाय संबंधतें होवैहै अन्यसंबंधमैं नहीं होवैहै; यातें कपालमें घटका समवायसंबंधावच्छिन्नप्रागभाव है. ताका प्रतियोगितावच्छेदक एक समवायसंबंध है. तैसें कपाले समवायेन घटो नष्टः" ऐसी प्रतीति ध्वंसाभावकी होवै है यातैं ध्वंसका प्रतियोगितावच्छेदकभी एक समवायसंबंध है, तैसें सामयिकाभावभी जन्यद्रव्यकाही होवै है, औ जन्यद्रव्यका भी संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावभी होवै है. समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है, यह पूर्व कही है; यातैं सामयिकाभावकाभी प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है, तैसें अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक एक अभेदसंबंध है; तिस अभेदकूं ही नैयायिक **तादात्म्यसंबंध** कहैहैं अभेदसंबंधावच्छिन्नाभावकूंही **अन्योन्याभाव** कहैं हैं, अन्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं **संसर्गाभाव** कहैहैं, अन्योन्याभाव कहैं नहीं. इसरीतिसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेकसंबंध एक तादात्म्यनामा अभेद है; और कोई संबंध अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक नहीं. औ प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका अभावसैं विरोध है; अन्य संबंधविशिष्टप्रतियोगीका तौ अत्यंताभावसैंभी विरोध नहीं यह निर्णीतही है. अन्योन्याभावका जो प्रतियोगितावच्छेदक अभेदसंबंधहै ता अभेदसंबंधसैं अपनें आत्मामैं ही घट रहैहै भूतलकपालादिकनमैं अभेदसंबंधसैं घट कदीभी रहै नहीं,जहां अभेदसंबंधसैं घट नहीं रहै तहां सारे घटका अन्योन्याभाव है. औ अपनें स्वरूपमैं अभेदसंबंधसैं घट रहै है. तहां घटका अन्योन्याभाव नहीं. इस रीतिसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका जैसैं अत्यंताभावसैं

विरोध है, तैसैं अन्योन्याभावसैंभी प्रतियोगितावच्छेदक संबन्धविशिष्ट प्रतियोगीका विरोध स्पष्ट है. प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं अत्यंताभावकी नाईं अन्योन्याभावका विरोध स्पष्ट होनेतैं प्रतियोगिसैं अविरोध कथन सकल ग्रंथकारोंनैं विवेकनेत्रनिमीलनसैं कह्या है; यातैं सकल अभावनका प्रतियोगिसैं विरोध है. प्रथम प्रसंग यह है:—जहां भूतलादिकनमैं कदाचित् घट होवै कदाचित् नहीं होवै तहां घटका सामयिकाभाव है, अत्यंताभाव नहीं. काहेतैं ? अभावका प्रतियोगिसैं विरोध होवै है सो विरोध पूर्वउक्त रीतिसैं निर्णीतहै; यातैं भूतलमैं संयोगसंबन्धतैं घट होवै तब तौ घटका संयोगसंबन्धावच्छिन्न अत्यंताभाव नहीं; औ घटकूं उठायलेवै तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावहै ऐसा मानना होवैगा. यातैं भूतलमैं घटके अत्यंताभावके उत्पत्तिनाश मानने होवैं गे. उत्पत्तिनाश माने विना कदाचित् है कदाचित् नहीं यह कहना अत्यंताभावमैं संभवै नहीं, सो उत्पत्तिनाश घटात्यंताभावके संभवैं नहीं. काहेतैं ? जहां संयोगसम्बन्धतैं घट नहीं तहां सारे घटका संयोगसम्बन्धावच्छिन्न अत्यंताभाव है, सो घटका अत्यंताभाव सारे पदार्थनमैं एक है नाना नहीं. काहेतैं? प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद होवैहै. अधिकरणभेदसैं अभावका भेद होवै नहीं यह **तार्किकसिद्धांत** है. जैसैं घटाभाव पटाभावके प्रतियोगी भिन्न हैं सो अभाव भिन्न हैं; औ भूतलमैं संयोगसम्बन्धतैं घटात्यंताभाव है तैसैं भूतलत्वमैंभी संयोगसम्बन्धतैं घट नहीं है; तैसै घटत्वजातिमैंभी संयोगसम्बन्धतैं घट नहीं, यातैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है तैसैं पटत्वादिकनमैंभी संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है. इस रीतिसैं अनंतअधिकरणमैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभावहै तिसके अधिकरण यद्यपि अनंत हैं तथापि प्रतियोगी एक घट है; यातैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव एक है, परंतु भूतलत्व घटत्वादिक जातिसैं तौ घटका संयोगसम्बन्ध कदीभी होवै नहीं; यातैं भूतलत्व घटत्वादिक जातिमैं घटका संयोगसम्बन्धावच्छिन्न अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्य है, औ भूतलादिकनमैं संयोगसम्बन्धतैं कदाचित् घट होवै है कदाचित् नहीं होवै

है; यातैं घटकालमैं भूतलवृत्ति घटात्यंताभाव नष्ट होवै है. औ घटके अपसरणकालमैं घटात्यंताभाव उपजै है; इसरीतिसैं घटत्वादिजातिमैं घटात्यंताभाव नित्य कहना सोई घटात्यंताभाव भूतलादिकनमैं उत्पत्ति-नाशवाला अनित्य है, यह कहना असंगत है; यातैं जहां संयोगसम्बन्धतैं कदाचित् घट होवै तहां घटशून्य कालमैं घटका संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाभाव कोई अनित्यअभाव मान्या चाहिये सोई **सामयिकाभाव** कहिये है. औ तिसी भूतलमैं समवायसम्बन्धतैं कदाचितभी घट होवै नहीं यातैं घटका समवायसम्बधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. तैसैं घटत्व भूतलत्वादिकनमैं संयोगसम्बन्धतैं कदाचितभी घट होवै नहीं औ समवायसम्बन्धतैंभी कपालविना अन्यपदार्थमैं घट होवै नहीं; यातैं घटत्वादिकनमैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है. औ समवायसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्य है; यातैं यह निष्कर्ष सिद्ध हुवाः—जहां कदाचित् संयोगसंबंधतैं प्रतियोगी होवै कदाचित् नहीं होवै तहां **संयोगसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव** कहियेहै. घटके सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवाले हैं; यातैं प्रतियोगिभेदविनाभी एक घटके सामयिकाभाव अनंत हैं औ जा संबंधसैं जहां घटरूप प्रतियोगी कदीभी रहै नहीं तहां घटका तत्संबंधावच्छिन्न **अत्यंताभाव** कहियेहै. सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित है यातैं नित्य है; औ घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव अनंत अधिकरणमैं एक है. तैसैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावभी अनंत अधिकरणमैं एक है. किसी अधिकरणका नाशभी होय जावै तौभी सोई अत्यंताभाव अन्यअधिकरणमैं रहैहै यातैं अत्यंताभावका नाश होवै नहीं. जैसैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तंतुमैंहै तंतुत्वजातिमैं है घटत्वमैं है पटत्वमैं है कपालत्वमैं है एक कपालकूं त्यागिकै सारे पदार्थनमैं है, तिनमैं सारै समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव एक है; तंतुआदिक अनित्यपदार्थनका नाश हुयेभी तंतुत्वादिक नित्यपदार्थनमैं सोई अत्यंताभाव रहै है, यातैं अत्यंताभाव नित्य है औ

प्रतियोगिभेदसैं अत्यंताभावका भेद होवै है. जैसैं घटात्यंताभावसैं पटात्यं-ताभाव भिन्न है औ प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधके भेदसैं प्रतियोगिभेदविना-भी अत्यंताभावका भेद होवै है. समवायसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभावका औ संयोगसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभावका प्रतीयोगी तौ एक गन्ध है; परंतु प्रतियोगितावच्छेदक संबंध दो होनेतैं दो अभाव हैं. जो दो नहीं होवैं एकही मानैं तौ पृथ्वीमैं समवाय संबंधावच्छिन्न गन्धात्यन्ताभावके नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभावभी नहीं होवैगा जो ऐसैं कहैं पृथिवीमैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यन्ताभावभी नहीं है तौ पृथिव्यां संयोगेन गन्धोनास्ति" ऐसी प्रतीति नहीं हुई चाहिये; यातैं पृथिवीमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभाव है औ समवायसंबंधाव-च्छिन्न गन्धात्यंताभाव नहीं है, यातैं प्रतियोगीभेदतैं जैसैं अत्यंताभावका भेद होवै है तैसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदतैंभी अत्यंताभावका भेद होवै है औ सामयिकाभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधके भेदविनाभी समयभेदसैं भेद होवै है. जैसैं भूतलमैं घटका संयोग जितनैं होवै नहीं तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव है औ भूतलमैं घटका संयोग होवै तब घटके प्रथमसामयिकाभावका नाश होय जावै है. जब भूतलमैं घटकूं उठाय लेवैं तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और उपजै है. तिसी घटकूं भूतलमैं फेरि ल्यावै तब दूसरा सामयिकाभाव नष्ट होवै है; फेरि तिस घटकूं उठाय लेवै तब तिसी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और तृतीय उपजै है, इस रीतिमैं प्रतियोगिभेदविना औ प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदविनाभी कालभेदसैं सामयिकाभावका भेद होवै है; यह सामयिकाभाव औ अत्यंताभावकी विलक्षणता स्पष्ट है; इसरीतिमैं **न्यायसंप्रदायमैं पांच प्रकारका अभाव है.**

नवीन तार्किककरि सामयिकाभावके स्थानमैं अनित्यअत्यं-ताभावका अंगीकार औ तामैं शंकासमाधान ॥ १० ॥

औ नवीन तार्किक सामयिकाभावकूं नहीं मानैं हैं. भूतलादिकनमैं

घटादिकनका जहां सामयिकाभाव कह्या है तहांभी सारे घटादिकनका अत्यंताभाव है और जो भूतलादिकनमैं घटादिकनका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव माननेमैं दोष कह्याहै; जाति गुणादिकनमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव नित्य है; औ भूतलादिकनमैं तिसी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अभाव अनित्य है सो नित्य अनित्य परस्पर भिन्न हैं एक नहीं. जातिगुणादिकनमैं औ भूतलादिकनमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटाभावका भेद नहीं मानैं तौ नित्यता औ अनित्यतारूप जो विरोधी धर्म तिनका संकर होवैगा ? ताका **समाधान** इसरीतिसैं गंगेशोपाध्यायादिक नवीन करैं हैं:—भूतलादिकनमैंभी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अभाव अनित्य नहीं. किंतु नित्य है. जब भूतलमैं घटका संयोग होवै तिस कालमैं भी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहै है ताका नाश होवै नहीं. यातैं अत्यन्ताभाव केवलान्वयी है. जाका अभाव कहूं न होवै किंतु सकल पदार्थनमैं सर्वदा रहै सो **केवलान्वयी** कहिये है.

और जो यह **शंका** होवैः—संयोगसंबंधतैं घटके होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव मानोगे तौ संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये.

ताका यह **समाधान** करैंहैः—यद्यपि संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैंभी निर्घट भूतलकी नाईं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका है, तथापि निर्घटभूतलमैं तौ " संयोगेन भूतले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है. औ सघट भूतलमैं उक्त प्रतीति होवै नहीं. काहेतैं ? उक्त प्रतीतिका विषय केवल घटका अत्यंताभाव नहीं है किंतु भूतलसंबंधी घटके आधारकालतैं अतिरिक्त काल औ संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव ये दोनूं जहां होवैं तहां "संयोगेन घटो नास्ति"ऐसी प्रतीति होवैहै. भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट नहीं होवै तब भूतलसंबंधीघटाधार काल नहीं है किंतु भूतलअसंबंधी जो घट ताका अनाधारकाल है; यातैं भूतलसंबंधी घटके आधारकालसैं अतिरिक्त काल

है. औ संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभावहै, यातैं "संयोगेन घटो नास्ति ऐसी प्रतीति होवैहै, औ जहां भूतलमैं संयोगसम्बन्धतैं घट है तहांभी अत्यंताभावकूं नित्यता होनेतैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव तौ है परंतु भूतल सम्बंधी जो घट ताका आधार काल है, यातैं भूतलसंबंधी घटाधारकालमैं अतिरिक्त काल नहीं है; यातैं संयोगसम्बन्धतैं घट होनेतैं "संयोगेन भूतले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै नहीं. इसरीतिसैं अत्यंताभाव तौ सारे देशमैं प्रतियोगीके होनेतैं औ नहीं होनेतैं सर्वदा रहै है, परंतु अभावका घटादिक प्रतियोगिका संबंधि जो भूतलादिक अनुयोगी ताका आधारकाल प्रतियोगीके होनेतैं होवै है. प्रतियोगिसंबंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्त काल होवै है नहीं, यातैं प्रतियोगी 'नास्ति' ऐसी प्रतीति प्रतियोगीके होनेतैं होवै नहीं औ प्रतियोगी नहीं होवै तब प्रतियोगिसंबंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्तकाल औ अत्यंताभाव दोनूं हैं, यातैं "भूतले संयोगेन घटो नास्ति"ऐसी प्रतीति होवै है इसरीतिसैं जहां प्राचीन सामयिकाभाव मानैं हैं तहांभी सारे अत्यंताभाव है औ अत्यंताभावकूं अनित्यता होवै नहीं. औ उक्तकालके अभावतैं प्रतियोगीके होनेतै अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं.

नवीनतार्किकके उक्तमतका खंडन ॥ ११ ॥

यह नवग्रंथकारोंका मत है सो समीचीन नहीं. प्राचीनमतही समीचीन है:— काहेतैं? प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभाव मानैं तौ प्रतियोगी अभावका परस्पर विरोध है या कथाका उच्छेद हुया चाहिये. और जो नवीन ऐसैं कहैं विरोध दो प्रकारका होवै है:—एक तौ सहानवस्थानरूप होवै है औ दूजा सहाप्रतीतिरूप विरोध होवै है. एक अधिकरणमैं एक कालमैं नहीं रहैं तिनका **सहानवस्थानरूप विरोध** कहिये है. जैसैं आतप शीतताका है. ऐसा विरोध अभाव प्रतियोगीका नहीं है. काहेतैं? प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभाव रहै है; किंतु अभाव प्रतियोगीका **सहाप्रतीतिरूप विरोध** है. एक कालमैं एक अधिकरणमैं जिनकी प्रतीति न होवै तिनका **सहाप्रतीतिरूप विरोध**

कहिये है. प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं प्रतियोगी अभावका सहाप्रतीतिरूप विरोध है. सहानवस्थानरूप विरोध नहीं, इसरीतिमैं नवीनका समाधान सर्व लोकशास्त्रतें विरुद्ध है. काहेतें ? अभावका अभाव **प्रतियोगी** कहिये है. जहां अभाव न होवै तहां अभावका अभाव होवै है. जैसें घटवाले देशमैं घटका अभाव नहीं है किंतु घटाभावका अभाव है सोई घट है औ घटाभावका प्रतियोगी है, इस रीतिमैं अभावके अभावकूं सर्व शास्त्रनमैं **प्रतियोगी** कहें हैं; नवीन रीतिमैं सो कथन असंगत होवैगा. काहेतैं ? नवीन मतमैं घटवाले देशमैं घटका अभावभी है यातैं घटाभावका अभाव कहना बनैं नहीं. यद्यपि वक्ष्यमाण रीतिमैं घटतें भिन्नही घटाभावाभाव है घटरूप नहीं तथापि घटके समनियत घटाभावाभाव है; यह वार्ता निर्विवाद है. औ नवीन रीतिमैं घटवाले देशमैं घटाभाव है यातैं घटाभावका अभाव नहीं होनेतैं दोनूंकी समनियतता संभवै नहीं यातैं नवीनमत शास्त्रविरुद्ध है औ प्रतियोगी अभाव समानाधिकरण होवै नहीं यह सर्व लोकमैं प्रसिद्ध है; ता लोकप्रसिद्ध अर्थका नवीन कल्पनासैं बाध होवैगा औ घटके अधिकरणमैं घटका अत्यंताभाव मानना प्रमाणशून्य है, किसी प्रमाणसैं सिद्ध होवै नहीं. जहां घट नहीं है तहां 'घटो नास्ति' इस प्रतीतिमैं अत्यंताभाव सिद्ध होवै है. घटवाले देशमैं 'घटो नास्ति' ऐसी प्रतीति होवै नहीं औ कोई प्रतीति घटवाले देशमैं अत्यंताभावकी साधक है नहीं यातैं प्रतियोगिदेशमैं अत्यंताभावका अंगीकार प्रमाणसिद्ध नहीं उलटा घटवाले देशमैं "घटात्यंताभावो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है. ता प्रतीतिसैं विरुद्ध अत्यंताभावका अंगीकार है, औ घटवाले देशमैं जो घटात्यंताभावकूं मानैं ताकूं **वृद्धिवांछाकरिके चले पुरुषका मूलभी नष्ट होयगया इसन्यायकी** प्राप्ति होवैगी. काहेतैं ? अत्यंताभावकूं केवलान्वयी साधनेवास्तै औ नित्यता साधनेवास्तै घटवाले देशमैं घटात्यंताभाव मान्या है, परंतु घटवाले देशमैं घटात्यंताभाव मानैं सो अत्यंताभावही निष्फल औ निष्प्रमाण होय जावैगा. तथाहि सर्व पदार्थनका फलव्यवहार सिद्ध है.

'घटो नास्ति' इसव्यवहारकी सिद्धिविना और तौ घटात्यंताभावका फल संभवै नहीं. उक्तव्यवहारकी सिद्धिही फल है, औ 'घटो नास्ति' या प्रतीतिसैंही घटात्यंताभाव सिद्ध होवै है उक्तप्रतीतिविना घटात्यंताभावके होनेमैं कोई प्रमाण नहीं. नवीन मतमैं घटात्यंताभावसैं 'घटो नास्ति' इस व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं; किंतु घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त कालसैं उक्त-व्यवहारकी सिद्धि होवै है. काहेतैं ? घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्तकाल होवै तब 'घटो नास्ति' यह प्रतीति होवै है. घटसंबंधी भूतलाधिकरण काल होवै तब "घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै नहीं, इसरीतिसैं 'घटो नास्ति' या प्रतीतिसैं घटसंबंधी भूतलाधिकरण-कालतैं अतिरिक्त कालकी सिद्धि होवै है, घटात्यंताभावकी सिद्धि होवै नहीं. प्रतीतिकी नाईं 'घटो नास्ति' इस व्यवहारकी सिद्धि नवीनमतमैं घटात्यंताभावसैं होवै नहीं; किंतु उक्तकालसैं 'घटो नास्ति' यह व्यवहार होवै है; यातैं घटात्यंताभाव नवीनमतमैं निष्फल औ निष्प्रमाण है. शब्द-प्रयोगकूं **व्यवहार** कहैहैं, ज्ञानकूं **प्रतीति** कहैं हैं, इसरीतिसैं नवीनमतसैं अत्यंताभावकूं नित्यता माननेवास्तै प्रतियोगीवाले देशमैं अत्यंताभाव मानैं तौ मूलतैं अत्यंताभावकी हानि होवैगी, यातैं घटवाले देशमैं घटात्यंता-भाव संभवै नहीं. औ जहां भूतलमैं कदाचित् घट होवै तहां अत्यंताभाव होवै तौ अत्यंताभाव यह संज्ञाभी निरर्थक होवैगी. जहां अत्यंताभाव होवै तीनि कालमैं प्रतियोगी न होवै सो अत्यंताभाव संज्ञाकी रीतिसैं सिद्ध होवै है. यातैं जहां कदाचित् प्रतियोगी होवै कदाचित् न होवै तहां त्रिकालमैं प्रतियोगीका अभाव नहीं यातैं अत्यंताभाव नहीं तासैं भिन्न कोई अभाव है ताकूं **सामयिकाभाव** कहैं हैं.

न्यायसंप्रदायमें घटके प्रध्वंसके प्रागभावकी घट औ घटप्रागभावरूपता ॥ १२ ॥

इस रीतिसैं च्यारिप्रकारका संसर्गाभाव औ अन्योन्याभाव मिलिकै **पांच प्रकारका अभाव है; सो अभाव एक एक दो प्रकारका है:—एक**

भावप्रतियोगिक होवै है दूसरा अभावप्रतियोगिक होवै है. भावका अभाव **भावप्रतियोगिक अभाव** कहिये है, अभावका अभाव **अभावप्रतियोगिक अभाव** कहिये है, जैसें **प्रागभाव दो प्रकारका है,** घटादिकनका कपालादिकनमैं **प्रागभाव भावप्रतियोगिक** है, जैसें भावपदार्थका प्रागभाव है तैसें अभावकाभी **प्रागभाव** होवै है, परंतु सादिपदार्थनका प्रागभाव होवै है अनादिका प्रागभाव होवै नहीं. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव प्रागभाव तौ अनादि हैं, यातें तिनका तौ प्रागभाव संभवै नहीं प्रध्वंसाभाव अनंत तौ है परंतु सादि है यातें प्रध्वंसाभावका प्रागभाव होवै है; सो प्रध्वंसाभावका प्रागभाव प्रतियोगिरूप औ प्रतियोगीका प्रागभावरूप होवै है. जैसें मुद्गरादिकनतें घटका नाश होवै ताकूं घटका प्रध्वंसाभाव कहै हैं; सो प्रध्वंसाभाव मुद्गरादिजन्य है. मुद्गरादिकनके व्यापारतें पूर्व घटकालमें औ घटके प्रागभाव कालमैं नहीं होनेतैं सादि है, यातें मुद्गरादिव्यापारतें पूर्व घटध्वंसका प्रागभाव है सो ध्वंसका प्रागभाव घटकालमें है औ घटकी उत्पत्तिमैं पूर्वघटके प्रागभाव कालमैं है; यातें घटध्वंसका प्रागभाव घटकालमैं तौ घटरूप है औ घटकी उत्पत्तिमैं पूर्व घटका प्रागभावरूप है. इसरीतिसैं घटध्वंसका प्रागभाव घट औ घटके प्रागभावके अंतर्भूत है; तिनतें न्यारा नहीं, यह सांप्रदायिक मत है.

उक्तमतका खंडन औ घटप्रध्वंसके अभाव-प्रतियोगिक प्रागभावकी सिद्धि ॥ १३ ॥

परंतु यह मत युक्तिविरुद्ध है:—काहेतें ? घट तौ भावरूप है औ सादि है घटका प्रागभाव अभावरूप है औ अनादि है. एकही घटध्वंसप्रागभावकूं कदाचित्भावरूपता कदाचिदभावरूपता कहना विरुद्ध है, तैसें कदाचित् सादिरूपता औ कदाचिदनादिरूपता कहनाभी विरुद्ध है औ घटकालमैं "कपाले समवायेन घटोऽस्ति, घटप्रध्वंसो नास्ति" इस रीतिसें विधिरूप औ निषेधरूप दो प्रतीति विलक्षण होवैहैं तिनके विषयी परस्पर विलक्षण दो

पदार्थ मानने चाहियें. तैसैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वभी "कपाले घटो नास्ति, घटप्रध्वंसो नास्ति" इसरीतिसैं दोप्रतीति होवैं हैं. यद्यपि सो दोनूं प्रतीति निषेधमुख हैं तथापि विलक्षण हैं. काहेतैं ? प्रथम प्रतीतिमैं तौ नास्ति कहनेसैं प्रतीति जो होवैहै अभाव ताका प्रतियोगी घट प्रतीत होवैहै. औ दूसरे प्रतीतिमैं नास्ति कहनेमैं प्रतीत हुये अभावका घटप्रध्वंस प्रतियोगी प्रतीत होवैहै; यातैं प्रतियोगीका भेद होनेतैं घटप्रागभावका घटप्रध्वंस प्रागभावका अभेद संभवै नहीं; किंतु घट औ ताके प्रागभावतैं घटप्रध्वंसका प्रागभाव न्यारा मानना योग्य है अनुभवसिद्ध पदार्थका लाघवबलसैं लोप संभवै नहीं, यातैं सांप्रदायिक रीतिसैं घटप्रध्वंसप्रागभावका घट औ ताके प्रागभावमैं अंतर्भाव मानैं तौ लाघवभी अकिंचितकर है. इसरीतिसैं प्रध्वंसाभावका प्रागभाव अभावप्रतियोगिक प्रागभाव अभाव है.

सामयिकाभावके प्रागभावकी अभावप्रतियोगिता ॥ १४ ॥

तैसैं सामयिकाभाव भी सादि होवै है; ताका प्रागभावभी अभावप्रतियोगिक प्रागभाव होवैहै.

प्राचीनप्रागभावके प्रध्वंसकी प्रतियोगि प्रतियोगी औ प्रतियोगिप्रतियोगीके ध्वंसमें अंतर्भावका नवीनकरि खंडन औ ताकी अभावप्रतियोगिता ॥१५॥

औ प्रध्वंसाभावभी अत्यंताभाव अन्योन्याभावका तौ होवै नहीं. काहेतैं ? दोनूं अभाव अनादि अनंत हैं तैसैं प्रध्वंसाभावभी अनंत है. ताकाभी प्रध्वंस संभवै नहीं, परंतु प्रागभाव औ सामयिकाभावका प्रध्वंस होवै है. सांप्रदायिक रीतिमैं प्रागभावध्वंसभी प्रतियोगिप्रतियोगी औ प्रतियोगिप्रतियोगीके ध्वंसके अंतर्भूत है तिनतैं पृथक् नहीं. जैसैं घटके प्रागभावका ध्वंस होवै है. सो घटकालमैं औ घटके ध्वंसकालमैं है. घटकालमैं तौ घटप्रागभावकाध्वंसप्रतियोगीस्वरूपहै. काहेतैं ? घटप्रागभावके ध्वंसका प्रतियोगी घट-

प्रागभावका है औ घटप्रागभावका प्रतियोगी घट है. यातैं घटकालमैं घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगिका प्रतियोगीस्वरूप है, औ मुद्गरादिकनतैं घटका नाश होवै तिसकालमैं भी घटप्रागभावका ध्वंस है औ घट है नहीं यातैं तिसकालमैं घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगि प्रतियोगीका ध्वंसरूप है. काहेतैं ? घटप्रागभावध्वंसका प्रतियोगी जो घटप्रागभाव ताका प्रतियोगी घट है; ता घटका ध्वंसही घट प्रागभावका ध्वंस है. घटध्वंसतैं पृथक् घटप्रागभाव ध्वंस नहीं. इसरीतिमैं प्रागभावका ध्वंस कदाचित अपनें प्रतियोगीका प्रतियोगीरूप है औ कदाचित अपने प्रतियोगीके प्रतियोगीका ध्वंसरूप है प्रागभावध्वंस पृथक् नहीं.

यह सांप्रदायिक रीतिभी युक्तिविरुद्ध है. काहेतैं ? घट तौ सांत है. औ भावरूप है. औ घटध्वंस अनंत है अभावरूप है. एकही घटप्रागभाव ध्वंसकूं सांत औ अनंतसैं अभेदकथन तैसैं भाव औ अभावमैं अभेद कथन विरुद्ध है. औ घटकी उत्पत्ति होवै तब 'घटो जातः' औ घटप्रागभावो नष्टः' इसरीतिसैं दो विलक्षणप्रतीति होवैहैं: तिनमैं 'घटो जातः' या प्रतीतिका विषय उत्पन्न घट है औ 'घटप्रागभावो नष्टः' या प्रतीतिका विषय घटप्रागभावका ध्वंस है. तिनका अभेदकथन संभवै नहीं. तैसैं मुद्गरादिकनसैं घटका ध्वंस होनेसैं ही ऐसी प्रतीतिहोवैहै "इदानीं घटध्वंसो जातः, घटप्रागभावध्वंसः पूर्वं घटोत्पत्तिकाले जातः" तहां वर्तमानकालमैं घटध्वंसकी उत्पत्ति औ 'अतीतकालमैं घटप्रागभावध्वंसकी उत्पत्ति सिद्ध होवै है. वर्तमानकालमैं उत्पत्तिवालेसैं अतीतकालकी उत्पत्तिवालेका अभेद संभवै नहीं, यातैं घटप्रागभावका ध्वंस घट औ घटके ध्वंसतैं पृथक् है. यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक अद्वैत ग्रंथनमैंभी ध्वंसप्रागभाव और प्रागभावका ध्वंस पृथक् नहीं लिखे किंतु पूर्वोक्तन्यायसंप्रदायकी रीतिमैं अंतर्भावही लिख्या हैं, तथापि श्रुति सूत्र भाष्य तौ इसनिरूपणमैं उदासीन हैं; यातैं जैसा अर्थ युक्ति अनुभवके अनुसार होवै सो मानना चाहिये. युक्ति अनु-

भवसैं विरुद्ध आधुनिक ग्रंथकारलेख प्रमाण नहीं, यातैं पूर्व उक्त अर्थ-प्रमाणविरुद्ध नहीं; उलटा पृथक् माननाही युक्ति अनुभवके अनुसार है. इस रीतिसैं प्रागभावका ध्वंस अभावप्रतियोगिक प्रध्वंसाभाव है.

घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकी घटत्वरूपता औ तामैं दोष ॥ १६ ॥

सामयिकाभाव केवल द्रव्यकाही होवै है यह पूर्व प्रतिपादन किया है यातैं अभावप्रतियोगिक सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. अभावप्रतियोगिक अत्यंताभावके तौ अनेक उदाहरण हैं. कपालमैं घटका प्रागभाव औ प्रध्वंसाभाव है तंतुमैं नहीं; यातैं तंतुमैं घटप्रागभावका अत्यंताभाव है औ घटप्रध्वंसाभावका अत्यंताभाव है तैसैं कपालमैं घटका सामयिकाभाव औ घटका अत्यंताभाव नहीं यातैं कपालमैं घटके सामयिकाभावका अत्यंताभाव है औ घटात्यंताभावका अत्यंताभाव है, तैसैं कपालमैं कपालका अन्योन्याभाव नहीं. तहां कपालान्योन्याभावका अत्यंताभाव है. तैसैं घटमैं घटका अन्योन्याभाव नहीं, तहां घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है, परंतु अन्योन्याभावका अत्यंताभाव पृथक् नहीं, किंतु अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप है. जैसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्म घटत्व है सो केवल घटमैंही रहैहै औ घटान्योन्याभावका अत्यंताभावभी घटमैंही रहै है घटसैं भिन्न सकलपदार्थनमैं घटान्योन्याभाव रहै है; यातैं घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव घटसैं भिन्नपदार्थनमैं रहै नहीं. इस रीतिसैं घटत्वके समनियत घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव होनेतैं घटत्वरूपही घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है.

इस रीतिका प्राचीन लेखभी श्रद्धायोग्य नहीं. काहेतैं ? "घटे समवायेन घटत्वम्" या प्रतीतिका विषय घटत्व है औ "घटे घटान्योन्याभावो

नास्ति" या प्रतीतिका विषय घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है यातैं अन्योन्याभावका अत्यंताभाव अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप नहीं तासैं पृथक् ही अभावरूप है.

अत्यंताभावके अत्यंताभावकी प्रथमात्यंताभावकी प्रतियोगिरूपताका प्रतिपादन औ खंडन ॥ १७ ॥

तैसें अत्यंताभावके अत्यंताभावकूं भी प्रथम अभावका प्रतियोगिरूप प्राचीन मानैं हैं ताका खंडन तौ नवीन न्यायग्रंथनमें स्पष्ट है. तथाहि:— जहां घट कदीभी न होवै तहां घटका अत्यंताभाव है, जहां घट होवै तहां घटात्यंताभाव नहीं है, यातें ताका अत्यंताभाव है. इसरीतिसें घटात्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगी जो घट ताके समनियत होनेतें घटस्वरूप है तासें पृथक् नहीं; औ घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूप नहीं मानैं, पृथक् मानैं, तौ अत्यंताभावनकी अनवस्था होवैगी. जैसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव पृथक् है तैसें द्वितीय अत्यंताभावका तृतीय अत्यंताभाव, तृतीयका चतुर्थ अत्यंताभाव, ताका पंचम, इसरीतिसें अत्यंताभावनकी कहूं समाप्ति न होवै ऐसी अनन्त धारा होवैंगी. औ द्वितीय अत्यंताभावकूं प्रथम अत्यंताभावका प्रतियोगिस्वरूप मानैं तब अनवस्था दोष नहीं. काहेतें ? घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूप मानैं द्वितीयात्यन्ताभावका अत्यंताभावभी घटात्यंताभावही है. काहेतें ? द्वितीय अत्यंताभाव घटरूप है; यातें ताका अत्यंताभाव घटकाही अत्यंताभाव है. तैसें तृतीय अत्यंताभावका चतुर्थ अत्यंताभाव फेरि घटरूप है, चतुर्थ अत्यंताभावका पंचम अत्यंताभाव घटात्यंताभावरूप है. इस रीतिसैं प्रतियोगी और एक अत्यंताभावके अंतर्भूत सारै अत्यंताभाव होवै है. अनवस्था दोष होवै नहीं; यातैं अत्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगीस्वरूप प्राचीनोंनै मान्या है.

तहां नवीन ग्रंथकारोंनै यह दोष लिख्याहै:— जहां भूतलमैं घट होवै

तहां " भूतले घटो नास्ति, भूतले घटात्यंताभावो नास्ति" इसरीतिसैं विलक्षण प्रतीति होवै है. विधिमुख प्रतीति औ निषेधमुख प्रतीतिका एक विषय संभवै नहीं, यातैं विधिमुख प्रतीतिका विषय घट है और निषेधमुख प्रतीतिका विषय घटात्यंताभावका अत्यंताभाव है सो घटरूप नहीं; किंतु अभावरूप है यातैं घटसैं पृथक् है.

औ द्वितीय अत्यंताभावकूं पृथक् मानैं तौ अनवस्था दोष कह्या है. ताका यह समाधान हैः—द्वितीय अत्यंताभाव प्रथम अत्यंताभावके प्रतियोगीके समनियत है औ तृतीयाभाव प्रथमाभावके समनियत है औ प्रतियोगीके समान देशमैं जो द्वितीयाभाव ताके समनियत चतुर्थाभाव है. प्रथमतृतीयके समनियम पंचम अभाव है; इसरीतिसैं युग्मसंख्याके सारे अभाव द्वितीयाभावके समनियत हैं; औ विषम संख्याके सारे अभाव प्रथमाभावके समनियत हैं. तहां द्वितीयाभाव यद्यपि प्रथमाभावके प्रतियोगीके समनियत है, तथापि भाव अभावकी एकता बनैं नहीं; यातैं घटके समनियतभी घटात्यंताभावाभाव घटसैं पृथक् है. औ प्रथमाभावके समनियत तृतीयाभाव तौ प्रथमाभावस्वरूप है पृथक् नहीं. काहेतैं ? 'घटो नास्ति' ऐसी निषेधमुख प्रतीतिका विषय प्रथमाभाव है, औ 'घटात्यंताभावाभावो नास्ति' ऐसी निषेधमुखप्रतीतिकाही विषय तृतीयाभाव है, यातैं तृतीयाभाव प्रथमाभावरूप है. तैसैं 'घटात्यंताभावो नास्ति' ऐसी निषेधमुख प्रतीतिका विषय द्वितीयाभाव है औ 'तृतीयाभावो नास्ति' इसरीतिसैं चतुर्थाभावभी निषेधमुख प्रतीतिका विषय है; यातैं द्वितीयाभावके समनियत चतुर्थाभाव द्वितीयाभावरूप है; परंतु घटके समनियतभी द्वितीयाभावाभावरूप घटसैं पृथक् अभावरूप है; इसरीतिसैं प्रथमाभाव औ द्वितीयाभावके अंतर्भूत सारी अभावमाला होवै है अनवस्था दोष नहीं.

यद्यपि प्राचीन रीतिसैं प्रतियोगी औ अभावके अंतर्भूत सारे अभाव होवैहै यातैं एकही अभाव मानना होवैहै. नवीन रीतिसैं दो अभाव मानना होवैं हैं; यातैं नवीनमतमैं गौरव है तथापि भावाभावकी एकता बनैं नहीं.

यातैं प्राचीनमत प्रमाणविरुद्ध है, औ नवीनमत अनुभवानुसारी है; यातैं प्रमाणसिद्ध गौरव दोषकर नहीं; इसरीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभावभी अभावप्रतियोगिक अभाव है: इसरीतिसैं अभावप्रतियोगिक संसर्गाभावके उदाहरण कहे.

अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण औ उक्तार्थका अनुवाद ॥ १८ ॥

औ अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण अति स्पष्ट हैं. जैसैं प्रागभावका अन्योन्याभाव प्रागभावमें नहीं औ सकल पदार्थनमें है, काहेतें ? भेदकूं अन्योन्याभाव कहैं हैं, स्वरूपमें भेद रहै नहीं. स्वरूपातिरिक्त सर्वमें सर्वका भेद रहैहै, यातें प्रागभावभिन्नपदार्थनमैं प्रागभावका अन्योन्याभाव है प्रध्वंसाभावतैं भिन्नमें प्रध्वंसाभावका अन्योन्याभाव है, अत्यंताभावसें भिन्नमें अत्यंताभावका अन्योन्याभाव है, अन्योन्याभावमें भिन्नमें अन्योन्याभावका अन्योन्याभाव है, अन्योन्याभावसे भिन्न च्यारि प्रकारका संसर्गाभाव औ सारे भावपदार्थ हैं. काहेतैं ? संसर्गाभाव औ भावपदार्थ अन्योन्याभावरूप नहीं, यातें अन्योन्याभावसैं भिन्न हैं. जो जासैं भिन्न होवै तामें तिसका अन्योन्याभाव होवैहै. यातें संसर्गाभावमें और सकल भाव पदार्थनमें अन्योन्याभावका अन्योन्याभाव है.

इसरीतिसें पंचविध अभावमें सामयिकाभाव तौ केवल द्रव्यकाही होवैहै यातें अभावप्रतियोगिक है नहीं. च्यारि अभावनके अभाव प्रतियोगिकके उदाहरण कहे. अभावप्रतियोगिक अभावकूं कितनी जगहमें प्राचीनभावरूप मानैंहैं. जैसैं घटप्रागभावके ध्वंसकूं घटरूप मानैं हैं, घटध्वंसके प्रागभावकूं घट मानैंहैं, घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकूं घटत्व मानैंहैं, घटात्यंताभावके अत्यंताभावकूं घट मानैंहैं, ताका खंडन कऱ्या; यातें अभावप्रतियोगिकभी अभाव है औ भावप्रतियोगिक अभाव तौ अतिप्रसिद्ध है. इसरीतिसैं अभावका निरूपण न्यायशास्त्रकी रीतिसैं किया औ कहूं प्राचीनमतमैं वा नवीनमतमैं दोष कहे सोभी न्यायकी मर्यादा लेकै दोष कहेहैं.

उक्त न्यायमतमैं वेदांतसैं विरुद्ध आशंकाप्रदर्शन औ अनादिप्रागभावका खण्डन ॥ १९ ॥

औ उक्त प्रकारसैं अभावका निरूपण वेदांतशास्त्रसैंभी विरुद्ध नहीं. औ जितना अंश वेदांतविरुद्ध है सो दिखावैंहैं. कपालमैं घटके प्रागभावकूं अनादि कहैं हैं सो प्रमाणविरुद्ध है, यातैं वेदांतके अनुसारी नहीं. काहेतैं? घटप्रागभावका अधिकरण कपाल सादि औ प्रतियोगी घटभी सादि प्रागभावकूं अनादिता किसरीतिसैं होवै औ मायामैं सकल कार्यके प्रागभावकूं अनादिता कहैं तौ संभवै है काहेतैं? माया अनादि है, परंतु मायामैं कार्यका प्रागभाव मानना व्यर्थ है, औ सिद्धांतमैं इष्टभी नहीं. काहेतैं? घटकी उत्पत्ति कपालमैं होवैहै अन्यमैं नहीं; तैसैं पटकी उत्पत्ति तंतुमैं होवै है कपालमैं नहीं. यातैं घटका प्रागभाव कपालमैं है तंतुमैं नहीं. पटका प्रागभाव तंतुमैं है कपालमैं नहीं. जाका जिसमैं प्रागभाव है ताकी तिसमैं उत्पत्ति होवै है, अन्यमैं होवै नहीं. सर्वसैं सर्व कार्यकी उत्पत्ति मत होवै इस वास्तै प्रागभावका अंगीकार है.

औ मुख्य प्रयोजन प्रागभावका नैयायिक यह कहैं हैः—कपाल तंतु-आदिकनके घटपटादिक परिणाम तौ हैं नहीं; किंतु कपालमैं घटका आरंभ होवै है तंतुमैं पटका आरंभ होवै है औ घटपटादिक होवैं तब पूर्वकी नाई कपाल तंतुभी विद्यमान रहैं हैं. जो परिणामवाद होवै तौ घटाकारकूं प्राप्तहुयां पाछै स्वरूपसैं कपाल रहै नहीं. तैसैं पटाकारकूं प्राप्त हुयां पाछै तंतु रहै नहीं, सो परिणामवाद तौ है नहीं, आरंभवाद है. कपाल ज्यूं का त्यूं रहैहै औ अपनेंमैं घटकी उत्पत्ति करैहै. जब घट उत्पन्न होयलेवै तबभी घटकी सामग्री पूर्वकी नाई बनी रहैहै. परिणामवादमैं तौ कार्यकी उत्पत्ति हुयां उपादानकारण रहै नहीं. काहेतैं? परिणामवादमैं उपादानकारणही कार्य-रूपकूं प्राप्त होवै है; यातैं घटरूपकूं प्राप्त हुयां कपाल घटकी सामग्री नहीं औ आरंभवादमैं उपादानकारण अपनें स्वरूपकूं त्यागै नहीं; उपादानसैं भि-

न्न कार्यकी उत्पत्ति होवै है; अपने स्वरूपसैं उपादानकारण बन्या रहै है, यातैं घटकी उत्पत्ति हुयांभी ज्यूंकी त्यूं सामग्री होनेतैं फेरि घटकी उत्पत्ति चाहिये यद्यपि एक घटकी उत्पत्ति हुयां अन्यघटकी उत्पत्तिमैं तौ प्रथम घट प्रति-बंधक है घटसैं निरुद्ध कपालमैं अन्यघटकी उत्पत्ति होवै नहीं तथापि प्रथम उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति हुयी चाहिये. जो प्रथम उत्पत्तिकी फेरि उत्पत्ति मानें तौ जैसें उत्पत्तिकालमें "घट उत्पद्यते" यह व्यवहार होवै है,तैसें उत्पत्ति-कालसें उत्तरकालमैंभी "घट उत्पद्यते" यह व्यवहार हुया चाहिये. सिद्ध घटका जो आधारकाल सो घटकी उत्पत्तिकालसें उत्तरकाल है. सिद्ध घटके आधारकालमें "उत्पन्नो घटः" यह व्यवहार होवै है औ "उत्पद्यते घटः" ऐसा व्यवहार एक उत्पत्तिक्षणमें होवै है घटके आधार द्वितीयादि क्षणमैं 'उत्पद्यते' ऐसा व्यवहार होवै नहीं. काहेतें ? वर्तमान उत्पत्तिवाला घटहै यह अर्थ "घट उत्पद्यते" या कहनेसें प्रतीत होवै है. 'उत्पन्नो घटः'यह कहनेतैं अतीत उत्पत्तिवाला घट है यह अर्थ प्रतीत होवै है. उत्पन्नकी उत्पत्ति मानैं तौ घटकी सिद्ध दशामैंभी कोई उत्पत्ति वर्तमान रहैगी; यातें उत्पन्न घटमैं भी 'उत्पद्यते घटः' ऐसा व्यवहार चाहिये; यातैं उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति नहीं देखनेतें घटकी उत्पत्तिकी सामग्री रहै है, ऐसा मानना चाहिये; तहां और सामग्री कपालादिक तौ हैं तिस घटका प्रागभाव नहीं रहै है. घटके प्रागभावका घट उत्पत्ति क्षणमैं ध्वंस होवै है; सो घटका प्रागभाव घटकी उत्पत्तिमें कारण है, ताके अभावतें उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं; यह प्रागभावका मुख्य प्रयोजन है.

सो मायामें घटादिकनके प्रागभावका प्रथमप्रयोजन तौ संभवै नहीं. काहेतें ? घटादिकनका साक्षात् उपादान माया नहीं; किंतु कपालादिक हैं औ मायाकूं सर्व पदार्थनकी साक्षात् उपादानता सिद्धांतपक्षमें मानी है तौभी कार्यकी उत्पत्तिमैं दूसरे कारणकी अपेक्षा करै नहीं. अद्भुतशक्ति मायामैं है, यातैं प्रागभावादिरूप अन्यकारणकी अपेक्षा नहीं, यातैं मायामैं किसीका

प्रागभाव नहीं औ कपालमैं घटकी उत्पत्ति होवै है पटकी नहीं. यामैं प्रागभाव हेतु कह्या सोभी बनै नहीं.कपालमैं घटकी कारणता है पटकी नहीं काहेतैं ? अन्वयव्यतिरेकसैं कारणताका ज्ञान होवै है. औ कपालके अन्वय कहिये सत्ता होवै तौ घटका अन्वय होवैहै. कपालके व्यतिरेक कहिये अभावतैं घटका व्यतिरेक होवैहै. इसरीतिसैं कपालके अन्वयव्यतिरेकतैं घटका अन्वयव्यतिरेक देखियेहै पटका नहीं; यातैं कपालमैं घटकी कारणता है पटकी नहीं; इसवासतैं कपालसैं घटही होवैहै पटादिक होवैं नहीं. पटादिकनकी व्यावृत्तिवासतैं घटका प्रागभाव कपालमैं संभवै नहीं; औ जो मुख्य प्रयोजन प्रागभावका कह्या कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं अनंतर उत्पत्ति हुई चाहिये. सोभी परिणामवादमैं दोष नहीं. काहेतैं ? स्वरूपसैं स्थित कपाल घटकी उत्पत्ति करैहै. कार्यरूपकूं प्राप्तहुये कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं; यातैं परिणामवादमैं प्रागभाव निष्फल है.

औ विचार करैं तौ आरंभवादमैंभी प्रागभाव निष्फल है. काहेतैं ? घटकी उत्पत्ति हुयां फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये. जो ऐसैं कहै ताकूं यह पूछना चाहियेः—घटांतरकी उत्पत्ति हुई चाहिये अथवा जो घट जिस कपालमैं उपज्या है तिसकी उत्पत्ति हुई चाहिये ? जो ऐसैं कहै अन्य घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये सो तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? जिस कपालसैं जो घट होवैहै तिस कपालमैं तिसी घटकी कारणता है; घटांतरकी कारणता कपालांतरमैं है, यातैं अन्य घटकी उत्पत्तिकी प्राप्ति नहीं औ जो ऐसैं कहैं जो घट पूर्व उपज्या है तिसीकी उत्पत्ति होवैगी सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? जहां कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै तहां प्रथम उत्पत्ति अन्य उत्पत्तिकी प्रतिबंधक है, यातैं फेरि उत्पत्तिकी प्रतीति नहीं प्रागभाव निष्फल है.

औ उत्पत्तिके स्वरूपका सूक्ष्मविचार करैं तौ फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये यह कथनहीं विरुद्ध है. काहेतैं ? आद्यक्षणसैं संबंधकूं उत्पत्ति कहैं हैं घटका आद्यक्षणसैं संबंध घटकी उत्पत्ति कहिये है. घटाधिकरणक्षणके

ध्वंसका अनधिकरण जो क्षण सो घटका आद्यक्षण कहिये है. घटके अधिकरण अनंतक्षण हैं; तिनमैं घटके अधिकरण जो द्वितीयादि क्षण तिनमैं घटाधिकरण प्रमथ क्षणका ध्वंस रहैहै. औ प्रथम क्षणमैं घटाधिकरणक्षणका ध्वंस है नहीं, यातैं घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण घटका प्रथमक्षण है ताक्षणसैं संबंधही घटकी उत्पत्ति कहिये है. द्वितीयादिक्षणमैं प्रथमक्षणसैं संबंध होवै नहीं, यातैं प्रथमक्षणमैंही ' उत्पद्यते ' ऐसा व्यवहार होवै है द्वितीयादिक्षणमें नहीं. इसरीतिसें प्रथमक्षणसंबंधरूप उत्पत्ति फेरि हुई चाहिये; ऐसा कहना "मम जननी वंध्या " इसवाक्यतुल्य है. काहेतें ? घटकी उत्पत्तिसैं उत्तरक्षण घटाधिकरणके ध्वंसका अधिकरणही होवैगा; यातें घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण फेरि संभवै नहीं: यातैं उत्पन्नकी उत्पत्ति हुई चाहिये यह कहना विरुद्ध है. इसरीतिसें प्रागभाव निष्फल है. "कपाले समवायेन घटो नास्ति" या प्रतीतिका विषय सामयिकाभावही संभवै है, औ " कपाले घटो भविष्यति " या प्रतीतिका विषयभी घटका भविष्यतकाल है, प्रागभाव असिद्ध है.

औ अपनें शास्त्रके संस्कारसै नैयायिक प्रागभावकूं मानै तौभी सादि मानना चाहिये, अनादि संभवै नहीं. काहेतैं?अन्यमतमें तौ सारे अभावनका अधिकरणभेदमैं भेद होवै है. औ नैयायिकमतमैं अधिकरणभेदसैं अभावका भेद नहीं; किंतु प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद होवैहै. यातैं एक प्रतियोगिक अभाव नाना अधिकरणमें एकही होवैहै, परंतु प्रागभाव तौ नैयायिक मतमैं भी अधिकरण भेदसैं भिन्नही होवै है,काहेतैं ? घटका प्रागभाव घटके उपादान कारण कपालमैं ही रहै है. तिनमैं भी जो घट तिस कपालमैं होवै ताघटका प्रागभाव तिस कपालमैं है, अन्यघटका प्रागभाव अन्यकपालमैं है इसरीतिसैं एक प्रागभाव एकही अधिकरणमैं रहैहै. सो कपालादिक प्रागभावके अधिकरण सादि हैं, तिनमैं रहनेवाला प्रागभाव किसी रीतिमैं अनादि संभवै नहीं. जो अनादि अधिकरणमैं औ सादिमैं एक प्रागभाव रहता होवै

तौ अनादि कहना भी संभवै सो नाना अधिकरणमैं प्रागभाव संभवै नहीं, यातैं कपालमात्रवृत्ति घटप्रागभावकूं अनादिता संभवै नहीं.

औ जो ऐसें कहैं कपालकी उत्पत्तिसैं पूर्व कपालके अवयवनमैं घटका प्रागभाव रहैहै, तिसतैं पूर्व अवयवके अवयवनमैं रहै है; इसरीतिसैं अनादि परमाणुमैं घटका प्रागभाव अनादि है.

सो संभवै नहीं:—काहेतैं ? अपनें प्रतियोगीके उपादानकारणमैं प्रागभाव रहै है अन्यमें नहीं; यह **नैयायिकनका नियम** है. कपालके अवयव कपालके उपादानकारण हैं घटके नहीं, यातैं कपालावयवमैं कपालकाही प्रागभाव संभवै है घटका प्रागभाव कपालमैं ही है, कपालावयवमैं संभवै नहीं इस रीतिसैं परमाणु केवल द्व्यणुकका उपादानकारण है, यातैं द्व्यणुकका प्रागभावही परमाणुमैंही रहै है. द्व्यणुकसैं आगे त्र्यणुकादिक घटपर्यंतके प्रागभाव परमाणुमैं संभवै नहीं औ परमाणुमैं द्व्यणुक भिन्नपदार्थनकाभी प्रागभाव मानैं तौ परमाणुसैंभी घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये.

औ परिणामवादमैं तौ कार्यकारणका अभेद है, यातैं द्व्यणुकसैं लेकै अंत्यावयवी घटपर्यंत कार्यकारणधाराका भेद नहीं. तिसमतमैं तौ परमाणुमैं द्व्यणुकका प्रागभावही घटपर्यंत कार्यधाराका प्रागभाव है; यातैं परमाणुमैं घटादिकनके प्रागभाव कहना संभवै, सो आरंभवादमैं कार्यकारणका अभेद तौ है नहीं; किंतु कार्यकारणका परस्पर अत्यंतभेद है, यातैं कपालावयवमैं घटका प्रागभाव नहीं. तैसैं परमाणुमैं द्व्यणुकके कार्यका प्रागभाव संभवै नहीं; इसरीतिसैं सादिकपालादिकनमैं घटादिकनके प्रागभावकूं अनादिताकथन असंगत है.

अनंतप्रध्वंसाभावका खंडन ॥ २० ॥

तैसैं नैयायिकमतमैं प्रध्वंसाभावभी अपने प्रतियोगीके उपादानमैं ही रहैहै यातैं घटका ध्वंस कपालमात्रवृत्ति है सो अनंत है यह कथन असंगत है. घटध्वंसका अधिकरण जो कपाल ताके नाशतैं घटध्वंसका नाश होवै है.

औ घटध्वंसका नाश माननेमें नैयायिक यह दोष कहैहैं:—घटध्वंसका ध्वंस होवै तौ घटका उज्जीवन हुया चाहिये. काहेतें ? प्रागभावप्रध्वंसाभावका अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम है. जा कालमें घटध्वंसका ध्वंस होवै सो काल घटध्वंसका अनाधार होवैगा औ प्रागभावका अनाधार होवैगा, यातें घटका आधार होवैगा; इसरीतिसें ध्वंसका ध्वंस मानें तौ घटादिकप्रतियोगीका उज्जीवन होवैगा, यह दोषभी नहीं. काहेतें ? प्रागभावकूं अनादिता औ ध्वंसकूं अनंतता मानैं तौ उक्त नियमकी सिद्धि होवै औ उक्त नियम मानैं तौ प्रागभावकूं अनादिताकी औ ध्वंसकूं अनंतताकी सिद्धि होवै. औ सिद्धांतपक्षमें प्रागभाव सादि है; यातें प्रागभावकी उत्पत्तिमें पूर्वकाल घटके प्रागभावका औ घटके ध्वंसका अनाधार है. घटका आधार नहीं. अथवा मुख्यसिद्धांतमें सर्वथा प्रागभावका अंगीकार नहीं यातें घटकी उत्पत्तिसें पूर्वकाल घटके प्रागभावका अनाधार है, औ घटके ध्वंसका अनाधार है, घटरूप प्रतियोगीका अनाधार है, घटरूप प्रतियोगीका आधार नहीं, यातें प्रागभावध्वंसका अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम संभवै नहीं; यातें घटध्वंसकाभी ध्वंस होवै है औ उक्त नियमकी असिद्धिसें घटका उज्जीवन होवै नहीं.

अन्योन्याभावकी सादि सांतता और अनादिताका अंगीकार ॥ २१ ॥

तैसें अन्योन्याभावभी सादि सांत अधिकरणमें सादि सांत है; जैसें घटमें पटका अन्योन्याभाव है, ताका अधिकरण घट है सो सादि है और सांत है, यातें घटवृत्ति पटान्योन्याभावभी सादि सांत है. अनादि अधिकरणमें अन्योन्याभाव अनादि है, परंतु अनादिभी सांत है अनंत नहीं. जैसें ब्रह्ममें जीवका भेद है सो जीवका अन्योन्याभाव है; ताका अधिकरण ब्रह्म है सो अनादि है यातें ब्रह्ममें जीवका भेदरूप अन्योन्याभाव अनादि

है; औ ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा भेदका अंत होवै है यातैं सांत है.

अनादिपदार्थकीभी ज्ञानसैं निवृत्ति अद्वैतवादमैं इष्ट है इसीवासतैं शुद्धचेतन १ जीव २ ईश्वर ३ अविद्या ४ अविद्याचेतनका संबंध ५ अनादिका परस्पर भेद ६ ये **षट् पदार्थ अद्वैतमतमैं स्वरूपसैं अनादि** कहे हैं; औ शुद्धचेतनविना पांचकी ज्ञानसैं निवृत्ति मानैं हैं.

यामैं यह **शंका** होवै है:—जीव ईश्वरकूं अद्वैतवादमैं मायिक कहैं हैं; मायाका कार्य **मायिक** कहिये है; जीव ईश मायाके कार्य हैं औ अनादि हैं यह कहना विरुद्ध है.

ता शंकाका **यह समाधानः**—है जीव ईश मायाके कार्य हैं यह मायिक पदका अर्थ नहीं है; किंतु मायाकी स्थितिके अधीन जीव ईशकी स्थिति है. मायाकी स्थितिविना जीव ईशकी स्थिति होवै नहीं, यातैं **मायिक** हैं. औ मायाकी नाईं अनादि हैं; इसरीतिसैं अनादि अन्योन्याभावभी सांत है अन्योन्याभाव अनंत नहीं. तैसैं अत्यंताभावभी आकाशादिकनकी नाईं अविद्याका कार्य है औ विनाशी है इसरीतिसैं अद्वैतवादमैं सारे अभाव विनाशी हैं, कोई अभाव नित्य नहीं. औ अद्वैतवादमैं अनात्म पदार्थ सारे मायाका कार्य हैं यातैं आत्मभिन्नकूं नित्यता संभवै नहीं. जैसैं घटादिक भावपदार्थ मायाके कार्य हैं तैसैं अभावभी मायाके कार्य हैं.

यद्यपि अद्वैतवादमैं मायाकूं भावरूप कहैं हैं, यातैं अभाव पदार्थकी उपादानता मायाकूं संभवै नहीं. कार्यके सजातीय उपादान होवै है, अभावके सजातीय माया नहीं; किंतु माया औ अभावभावत्व अभावत्वसैं विजातीय हैं मायामैं भावत्व है औ अभावमैं अभावत्व है, तथापि सकल अभावनका उपादान मायाही है. काहेतैं? अनिर्वचनीयत्व मिथ्यात्व ज्ञाननिवर्त्यत्व अनात्मत्वादिक धर्मनतैं माया औ अभाव सजातीय हैं. औ सकल धर्मनसैं उपादान औ कार्यकी सजातीयता कहैं तौ घटकपालमैंभी घटत्व कपालत्व विजातीय धर्म होनेतैं घटका उपादान कपाल नहीं होवैगा जैसैं मृन्मयत्वादिक

धर्मनसैं घट कपाल सजातीय हैं तैसैं अनिर्वचनीयत्वादिक धर्मनसैं अभाव मायाभी सजातीय हैं. यातैं सकल अभाव मायाके कार्य हैं यातैं मिथ्या हैं.

औ कोई ग्रंथकार अद्वैतवादी एक अत्यंताभावकूं मानैंहैं औ अभावनकूं अलीक कहैंहैं:–जैसें घटका प्रागभाव कपालमैं कहैंहैं सो अलीक है. काहेतैं ? घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकालसंबंधी कपालही "घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषय है. घटका प्रागभाव अप्रसिद्ध है तैसें मुद्गरादिकनसैं चूर्णीकृत कपाल अथवा विभक्त कपालमैं पृथक् घटध्वंसभी अप्रसिद्ध है. तैसैं घटासंबंधी भूतलही घटका सामयिकाभाव है. घट होवै तब घटका संबंधी भूतल है; यातैं घटासंबंधी भूतल नहीं. इसरीतिसैं सामयिकाभाव अधिकरणमैं पृथक् नहीं तैसें घटमैं पटके भेदकूं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव कहैंहैं सो दोनूंके अभेदका अत्यंताभावरूप है. दो पदार्थनके अभेदात्यंताभावसैं पृथक् अन्योन्याभाव अप्रसिद्ध है. इस रीतिसैं एक अत्यंताभावही है, और कोई अभाव नहीं. इसरीतिमैं अभावके निरूपणमैं बहुत विचार है. ग्रंथवृद्धिके भयतैं रीतिमात्र जनाई है.

अभावकी प्रमाके हेतुप्रमाणका निरूपण औ अभावज्ञानके भेदपूर्वकन्यायमतमें भ्रमप्रत्यक्षमें विषयानपेक्षा ॥ २२ ॥

अभावका स्वरूपनिरूपण किया तामैं **प्रमाणनिरूपण** करियेहैः– **अभावका ज्ञान दोप्रकारका** है. एक भ्रमरूप है दूसरा प्रमारूप है. **भ्रमज्ञानभी प्रमाकी नाई प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दोप्रकारका** है. घटवाले भूतलमैं इंद्रियका संयोग हुयेंभी किसी प्रकारतैं घटकी उपलब्धि न होवै. तहां घटाभावका **प्रत्यक्षभ्रम** होवैहै, परंतु विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं. **अन्यथाख्यातिवादीके मतमैं** तौ भ्रमप्रत्यक्षमैं विषयकी अपेक्षा नहीं; किंतु अन्यपदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञानकूं **अन्यथाख्याति** कहैं हैं, यातैं जा पदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञान होवै तिसकी तौ अपेक्षा है. जैसें रज्जुका सर्पत्वरूपतैं ज्ञान होवै है तामैं रज्जुकी अपेक्षा है, तथापि जिस विषयका

ज्ञानमैं आकार प्रतीत होवै तिसकी अपेक्षा अन्यथाख्यातिवादीके मतमैं नहीं. जैसैं सर्पका आकार भ्रममैं भासै है ताकी अपेक्षा नहीं.

सिद्धांतमें परोक्षभ्रममैं विषयकी अनपेक्षा औ अपरोक्षभ्रममें अपेक्षा ॥ २३ ॥

तथापि सिद्धांतमें अनिर्वचनीय ख्याति है. जहां प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां भ्रमज्ञानकी नाईं अनिर्वचनीय विषयकीभी उत्पत्ति होवै है. यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमैं प्रातिभासिक घटाभाव अनिर्वचनीय उपजै है. व्यावहारिक घटका व्यावहारिक घटाभावतैं विरोध है, प्रातिभासिक घटाभावतैं व्यावहारिक घटका विरोध नहीं, यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमैं अनिर्वचनीय घटाभाव औ ताका अनिर्वचनीय ज्ञान दोनूं उपजैं हैं, तहां घटाभावका प्रत्यक्षभ्रम कहियेहै. जहां अंधकूं विप्रलंभक वचनतैं घटवाले भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै सो अभावका परोक्षभ्रम है, परोक्षज्ञानमैं विषयकी अपेक्षा नहीं. काहेतैं ? अतीतका औ अनागतकाभी परोक्षज्ञान होवैहै, यातैं अभावका जहां परोक्षभ्रम होवै तहां प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं, केवल अभावाकारवृत्तिरूप ज्ञानकीही उत्पत्ति होवैहै.

सिद्धांतमैं अभावभ्रमआदि स्थानमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार ॥ २४ ॥

अथवा परोक्षभ्रमकी नाईं जहां अभावका प्रत्यक्ष भ्रम होवै तहांभी प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं; किंतु अभावका भ्रम अन्यथाख्यातिरूप है. काहेतैं ? रज्जु आदिकनमैं सर्पादिभ्रमकूं अन्यथाख्यातिरूप मानैं तौ यह दोष है:—रज्जुमैं सर्पत्वधर्मकी प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैं हैं सो संभवै नहीं. काहेतैं ? इंद्रियका संबंध रज्जुसैं औ रज्जुत्वसैं है सर्पत्वसैं इंद्रियका संबंध नहीं. औ विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं. यातैं रज्जुका सर्पत्वधर्मसैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं.

इसरीतिसैं प्रत्यक्षभ्रमस्थलमैं अन्यथाख्यातिका निषेध करिके अनिर्वचनीयख्याति मानीहै, ताकी रीति पूर्व कही है.

परंतु जहां अधिष्ठान औ आरोप्य दोनूं इंद्रियसंबंधी होवैं तहां उक्त दोष संभवै नहीं; यातैं **सिद्धांतग्रंथनमैं भी तहां अन्यथाख्यातिही लिखी है.** जैसैं पुष्पके उपरि धरे स्फटिकमैं रक्तताका प्रत्यक्षभ्रम होवैहै तहां पुष्पकी रक्ततासैं भी नेत्रका संयुक्तसमवाय अथवा संयुक्ततादात्म्यसंबंध है. औ स्फटिकसैं नेत्रका संयोगसंबंध है तहां रक्तता आरोप्य है. औ स्फटिक अधिष्ठान है. तहां पुष्पकी व्यावहारिक रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवैहै, स्फटिकमैं अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतैं ? जो रक्ततासैं सर्पत्वकी नाईं नेत्रका संबंध नहीं होता तौ विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं; यह दोष होता. नेत्रमैं रक्तताका संबंध होनेतैं उक्त दोष संभवै नहीं; यातैं आरोप्यके सन्निधानस्थलमैं अन्यथाख्यातिही संभवै है.

तैसैं घटवाले भूतलमैं घटाभावभ्रम होवै तहांआरोप्यअधिष्ठानका सन्निधान होनेतैं आरोप्यसैं भी अधिष्ठानकी नाईं इंद्रियका संबंध है. काहेतैं ? अधिष्ठान भूतल है औ आरोप्य घटाभाव भूतलमैं तौ नहीं है, परंतु भूतलवृत्ति भूतलत्वमैं घटाभाव है. औ भूतलवृत्ति जो रूपस्पर्शादि गुण हैं तिनमैं घटाभाव है भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमैं घटका संयोग कदीभी होवै नहीं. काहेतैं ? **दो द्रव्यनका संयोग** होवै है. घट तौ द्रव्य है भूतलत्व द्रव्य नहीं किंतु जाति है, तासैं घटका संयोग संभवै नहीं भूतलके रूपस्पर्शादिकभी द्रव्य नहीं किंतु गुण हैं, तिनमैंभी घटका संयोग संभवै नहीं. औ जामैं जाका संयोगसंबंध नहीं होवै तौ तिसमैं तिसपदार्थका **संयोगसंबन्धावच्छिन्नअत्यंताभाव** होवैहै; इसरीतिसैं भूतलमैं सयोगसंबंधतैं घट होतेभी भूतलत्वमैं औ भूतलके गुणनमैं संयोगसंबंधतैं घट नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है; तहां

अधिष्ठान भूतल है औ आरोप्य घटात्यंताभाव है, ताका भूतलसैं स्वाधिक-रण समवायसंबंध है स्वकहिये घटात्यंताभाव ताका अधिकरण भूतलत्व औ भूतलके रूपादि गुण तिनका समवाय भूतलमैं है औ भूतलका घटात्यंताभावसैं स्वसमवेतवृत्तित्वसंबंध है स्वकहिये भूतल तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधसैं रहनेवाले भूतलत्व औ गुण तिनमैं वृत्तित्व कहिये आधेयता अत्यन्ताभावकी है. इसरीतिसैं आरोप्य अधिष्ठानके परस्परसंबंध होनेतैं **सन्निधान** है. यातैं भूतलत्ववृत्ति औ रूपस्पर्शादिवृत्ति जो व्यावहारिक घटात्यंताभाव ताकी भूतलमैं प्रतीति होनेतैं अभावका भ्रम अन्यथाख्यातिरूप है. प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति निष्प्रयोजन है. इसरीतिसैं प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं **अभावभ्रम दोप्रकारका** है.

प्रत्यक्षपरोक्षयथार्थभ्रमरूप अभावप्रमाकी इंद्रिय औ अनुपलंभादि सामग्रीका कथन ॥ २५ ॥

तैसैं अभावकी **प्रमाभी प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दो प्रकारकी** है:— **नैयायिकमतमैं** तौ इंद्रियजन्यज्ञानकूं **अपरोक्षज्ञान** कहै हैं तासैं भिन्न ज्ञानकूं **परोक्षज्ञान कहैं** हैं, औ अभावसैंभी इंद्रियका विशेषणता अथवा स्वसंबंधविशेषणतासंबंध जहां होवै तहां अभावकी **प्रत्यक्षप्रमा** औ **परोक्षप्रमा** कहिये है. जैसैं श्रोत्रसैं शब्दाभावका विशेषणतासंबंध है तहां शब्दाभावकी श्रोत्रजन्य **प्रत्यक्षप्रमा** है, तैसैं भूतलमैं घटाभाव होवै तहां नेत्रसंबद्ध भूतलमैं विशेषणतासंबंध अभावका होनेतैं नेत्रजन्यप्रत्यक्षप्रमा घटाभावकी होवै है, परंतु पुरुषशून्यभूतलमैं जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै है तहां पुरुषाभाव है औ पुरुषाभावतैं नेत्रका स्वसंबद्धविशेषणतासंबन्धभी है तथापि पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रियकरण है प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है. जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै तहां प्रतियोगीका अनुपलंभ नहीं है किंतु पुरुषरूप प्रतियोगीका उपलंभ कहिये ज्ञान है. जैसैं घटादिक द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं नेत्रकरण है औ अंधकारमैं

घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं, यातैं नेत्रजन्यचाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी है; यातैं अंधकारस्थ घट होवै तहां नेत्र इंद्रिय है औ नेत्रइंद्रियका घटमैं संयोगभी है. तथापि घटका आलोकसैं संयोगरूप सहकारी नहीं, यातैं अंधकारस्थ घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोक संयोग सहकारी है.तहां इंद्रियसैं आलोकका संयोग हेतु नहीं किंतु विषयसैं आलोकसंयोग हेतु है,यातैं प्रकाशमैं स्थितपुरुषकूं अंधकारस्थ घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं तहां इंद्रियमैं तौ आलोकसंयोग है विषय जो घट तामैं आलोकसंयोग नहीं औ अंधकारस्थपुरुषकूं प्रकाशस्थ घटका प्रत्यक्ष होवै है. तहां इंद्रियमैं तौ आलोकका संयोग नहीं है;विषयतैं आलोकका संयोग है, यातैं विषय औ आलोकसंयोग नेत्रजन्यज्ञानमैं सहकारी है. तथापि घटके पूर्वदेशमैं आलोकका संयोग होवै, पश्चिमदेशमैं नेत्रका संयोग होवै, तहां घटका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै नहीं, हुया चाहिये.काहेतैं? विषयतैं आलोकका संयोगरूप सहकारी है औ संयोगरूप व्यापारवाला नेत्र इंद्रिय करणभी है यातैं जिस घटके देशमैं नेत्रका संयोग होवै तिसीदेशमैं आलोकसंयोग सहकारी है. यह मानना चाहिये. दीपसूर्यादिकनकी प्रभाकूं आलोक [illegible]. जैसैं द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी है, तैसैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करण है औ प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है; यातैं स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै है तहां पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं; तैसैं जहां भूतलमैं घट नहीं होवै औ घटके सदृश अन्य पदार्थ धर्या होवै तामैं घटभ्रम होय जावै तौ भूतलमैं घटाभाव है औ घटाभावसैं इंद्रियका स्वसम्बद्ध विशेषणता संबंधभी है.काहेतैं? घटका तौ भ्रम हुया है औ घट है नहीं किंतु घटाभाव है ताका भूतलमैं विशेषणतासंबंध है, तिस भूतलसैं इंद्रियका संयोग है यातैं इन्द्रियसंबद्ध कहिये इंद्रियसैं संबद्धवाले भूतलमैं अभावका विशेषणतासंबंध है,यातैं संबंधरूपव्यापारवाला इंद्रिय करण तौ है,प्रतियोगीका अनुपलम्भसहकारी नहीं.काहेतैं? ज्ञानकूं उपलंभ कहैं हैं सो ज्ञान भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै यामैं विशेष नहीं जहां घटका भ्रम होवै तहां घटाभावका प्रतियोगी जो

घट ताका अनुपलंभ नहीं; किंतु भ्रमरूप उपलंभ कहिये ज्ञान है. इसरीतिसैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करण है औ प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है. केवल प्रतियोगीके अनुपलम्भकूं सहकारी कहैं तौभी निर्वाह होवै नहीं. काहेतें ? स्तंभमैं पिशाचका भेद तौ प्रत्यक्ष है औ स्तंभमैं पिशाचका अत्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं. यह स्तंभ पिशाच नहीं ऐसा अनुभव सर्व लोकनकूं होवै है औ स्तंभमैं पिशाच नहीं ऐसा निश्चय होवै नहीं. तहां प्रथम अनुभवका विषय स्तंभवृत्तिपिशाचान्योन्याभाव है, औ द्वितीय अनुभवका विषय पिशाचात्यंताभाव है. दोनूं अभावनका प्रतियोगी पिशाच है ताका अनुपलंभ है, औ इंद्रियसंबद्धस्तंभ है; तामैं पिशाचान्योन्याभाव औ पिशाचात्यंताभाव दोनूं विशेषणतासंबंधसैं रहैहैं; यातैं पिशाचान्योन्याभावकी नाईं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं आत्मामैं सुखाभावदुःखाभावका प्रत्यक्ष होवैहै औ धर्माभावअधर्माभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. यह वार्ता सर्वके अनुभवसिद्ध है "इदानीं मयि सुखं नास्ति, इदानीं मयि दुःखं नास्ति" इसरीतिका अनुभव सर्वकूं होवैहै. सो अनुभव न्याय मतमैं मानस प्रत्यक्षरूप है. मनका सुखाभावतैं औ दुःखाभावतैं स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंध है. काहेतें ? स्व कहिये मन तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा तामैं विशेषणतासंबंधसैं सुखाभाव दुःखाभाव रहैहैं, तैसैं धर्माभावअधर्माभावसैं भी मनका स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंध है, तथापि प्रत्यक्ष होवै नहीं. "मयि धर्मो नास्ति, मयि अधर्मो नास्ति" ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव किसीकूं होवै नहीं औ सुखाभावदुःखाभावके प्रतियोगी सुखदुःख हैं तिनका जैसैं अनुपलंभ अभावकालमैं होवैहै, तैसैं धर्माभावअधर्माभावके प्रतियोगी जो धर्म अधर्म तिनकाभी अनुपलंभ होवैहै; यातैं प्रतियोगीका अनुपलंभरूप सहकारीसहित मनसैं सुखाभावदुःखाभावका प्रत्यक्ष होवैहै; तैसैं धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभरूप सहकारीसहित मनसैं धर्माधर्मके अभावकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष है औ गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं है. रूपाभावका प्रतियोगी रूप है, गुरुत्वा-

भावका प्रतियोगी गुरुत्व है, तिन दोनूंका वायुमैं अनुपलंभ है. औ नेत्रका वायुसैं संयोगसंबंध होवैहै, नेत्रसंयुक्तवायुमैं रूपाभाव गुरुत्वाभाव विशेषणतासंबंधसैं रहैंहैं यातैं स्वसंबद्धविशेषणतासंबंधसैं जैसैं वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै, तैसैं स्वसंबद्ध विशेषणतासंबंध गुरुत्वाभावसैं भी नेत्रका है; यातैं "वायौ रूपं नास्ति" इस चाक्षुषप्रतीतिकी नाईं "वायौ गुरुत्वं नास्ति" ऐसी चाक्षुषप्रतीति भी हुई चाहिये. यातैं इंद्रियजन्य अभावके प्रत्यक्षमैं केवल अनुपलंभ सहकारी नहीं है; किंतु योग्यानुपलंभ सहकारी है वायुमैं अनुपलंभ जैसैं रूपका है तैसैं गुरुत्वकाभी अनुपलंभ है, परंतु योग्यानुपलंभ रूपका है गुरुत्वका योग्यानुपलंभ नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षयोग्यकी अप्रतीतिकूं **योग्यानुपलंभ** कहैंहैं. रूप तौ प्रत्यक्षयोग्य है औ गुरुत्व प्रत्यक्षयोग्य नहीं. काहेतैं ? तराजूके ऊर्द्ध्वादिभावसैं गुरुत्वकी अनुमिति होवैहै, किसी इंद्रियसैं गुरुत्वका ज्ञान होवै नहीं; यातैं प्रत्यक्षयोग्य गुरुत्व नहीं होनेतैं ताका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं तैसैं आत्मामैं सुखाभाव दुःखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवैहै; तहांभी प्रत्यक्षयोग्य सुखका अनुपलंभ और प्रत्यक्षयोग्य दुःखका अनुपलंभ होनेतैं योग्यानुपलंभ सहकारीका संभवै है; औ धर्माभाव अधर्माभावका आत्मामैं मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं, तहांभी धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तौ है, परंतु धर्माधर्म केवल शास्त्रवेद्य हैं प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं धर्माधर्मका योग्यानुपलंभ नहीं, ताके अभावतैं धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं.

स्तंभमैं पिशाचके दृष्टांतसैं शंकासमाधानपूर्वक अनुपलंभका निर्णय ॥ २६ ॥

तैसैं स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं, तहांभी पिशाचरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तौ है परंतु प्रत्यक्षयोग्य पिशाच नहीं, यातैं योग्यानुपलंभ नहीं. प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीके अनुपलंभकूं **योग्यानुलंभ** कहैं हैं. पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं पिशाचका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं.

यामैं यह शंका रहै हैः—स्तंभमैं पिशाचका भेदभी प्रत्यक्ष नहीं चाहिये. काहेतैं ? पिशाचान्योन्याभावकूं पिशाच भेद कहैं हैं. ताका प्रतियोगीभी पिशाच है, सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं योग्यानुपलंभके अभावतैं पिशाचात्यंताभावकी नाईं पिशाचान्योन्याभावभी अप्रत्यक्ष हुया चाहिये, जो सिद्धांती ऐसैं कहैंः—उक्तरूप योग्यानुपलंभ नहीं है किंतु प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीके अनुपलंभकूं **योग्यानुपलंभ** कहैं हैं प्रतियोगी चाहै प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अप्रत्यक्ष होवै. अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य चाहिये; तामैं **प्रतियोगीका** अनुपलंभ चाहिये. स्तंभमैं जो पिशाचान्योन्याभाव ताका प्रतियोगी पिशाच है सो तौ प्रत्यक्षयोग्य नहीं है औ तामैं प्रत्यक्षयोग्यताकी अपेक्षाभी नहीं, तथापि पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभ है सो प्रत्यक्षयोग्य होनेतैं योग्यानुपलंभका सद्भाव है; यातैं पिशाचका अन्योन्याभाव स्तंभमैं प्रत्यक्ष संभवै है. सिद्धांतीका यह समाधान संभवै नहीं. काहेतैं ? उक्त रीतिसैं यह सिद्ध होवै हैः—अभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा प्रत्यक्षके अयोग्य होवै, जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य होवै तामैं प्रतियोगीका अनुपलंभ होवै औ सो **योग्यानुपलंभ** अभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है ऐसा अर्थ मानैं तौ स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं आत्मामैं धर्माभाव अधर्माभावभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? स्तंभवृत्तिपिशाचात्यंताभावका अधिकरण स्तंभ है, सो प्रत्यक्षयोग्य है. आत्मवृत्ति धर्माभावअधर्माभावका अधिकरण आत्मा प्रत्यक्षयोग्य है, परंतु इतना भेद है स्तंभ तौ बाह्यइंद्रियजन्यप्रत्यक्षयोग्य है, यातैं स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका बाह्य इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष हुया चाहिये, औ आत्मा मानसप्रत्यक्ष योग्य है, यातैं आत्मामैं धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो वायुकूं प्रत्यक्षयोग्यता मानैं तौ वायुवृत्ति गुरुत्वाभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो वायुकूं प्रत्यक्षयोग्यता नहीं मानैं तौ वायुवृत्तिरूपाभावकाभी प्रत्यक्ष नहीं हुया

चाहिये औ वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष है यह **सिद्धांत** है, औ अनुभव-सिद्ध है. यह अर्थ आगै स्पष्ट होवैगा. औ जो सिद्धांती इसरीतिसैं समाधान करैः—**योग्यानुपलंभ दो प्रकारका** है. एक तौ प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीका अनुपलंभ **योग्यानुपलंभ** है औ दूसरा प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभ **योग्यानुपलंभ** है. अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रथम योग्यानुपलंभ सहकारी है, यातैं अधिकरण तौ प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै. जिस अत्यंताभावका प्रतियोगी प्रत्यक्ष योग्य होवै ताका अनुपलंभ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है. औ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं **द्वितीय योग्यानुपलंभ** सहकारी है: यातैं अन्योन्याभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै. प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है; यातैं कहूंभी दोष नहीं; स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी पिशाचप्रत्यक्ष योग्य नहीं, यातैं स्तंभवृत्ति पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्ष है; औ स्तंभवृत्ति पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभ है सो प्रत्यक्ष है. यातैं स्तंभमैं पिशाचान्योन्याभाव प्रत्यक्ष है. आत्मवृत्ति सुखात्यंताभाव दुःखात्यंताभावके प्रतियोगी सुखदुःख मानसप्रत्यक्षयोग्य हैं तिनके अत्यंताभावनका मानसप्रत्यक्ष होवै है. धर्मअधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं तिनके अत्यंताभावनका प्रत्यक्ष होवै नहीं. रूपगुण तौ प्रत्यक्षयोग्य है यातैं वायुमैं रूपात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै है. गुरुत्व गुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं वायुमैं गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं; इसरीतिसैं यह अर्थ सिद्ध हुयाः—अधिकरणमैं प्रत्यक्षयोग्यता औ प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी हैं. औ प्रतियोगीमैं प्रत्यक्षयोग्यता औ प्रतियोगीका अनुपलंभ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी हैं. ऐसा नियम सिद्धांती कहैं सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणकी योग्यताहेतु होवै तौ वायुमैं रूपवद्भेदका प्रत्यक्ष होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. "वायू रूप-

वान्" ऐसा प्रत्यक्ष सर्वकूं होवै है औ वक्ष्यमाण रीतिसैं ऐसा प्रत्यक्ष संभवै है. तहां अन्योन्याभावका अधिकरण वायु है सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं औ वायुकूं आग्रहसैं प्रत्यक्षयोग्यता मानैं तौ वायुमैं गुरुत्ववद्भेदकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये औ"वायुर्गुरुत्ववान्"ऐसा प्रत्यक्ष किसीकूं होवै नहीं वक्ष्यमाण रीतिसैं संभवै नहीं, औ स्तंभमैं पिशाचवद्भेद अप्रत्यक्ष है अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणकी योग्यता हेतु होवै तौ पिशाचवद्भेदका अधिकरण स्तंभ है. ताकूं प्रत्यक्षयोग्य होनेतैं पिशाचवदन्योन्याभावरूप पिशाचवद्भेद प्रत्यक्ष हुया चाहिये औ "स्तंभः पिशाचवान्"ऐसा प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभरूप योग्यानुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है यह नियम संभवै नहीं. तैसैं अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रतियोगीकी योग्यताकूं सहकारी मानैं तौ जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. काहेतैं? जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वके अत्यंताभावका प्रतियोगी पृथिवीत्व है. ताका घटादिकनमैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है; यातैं प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगी है औ ताका जलपरमाणुमैं उपलंभ कहिये प्रतीति होवै नहीं. यातैं अनुपलंभ है. औ जलपरमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै यातैं जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वात्यन्ताभावसैं नेत्रका स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंधभी है औ जो ऐसैं कहैं परमाणु निरवयव है तासैं नेत्रका संयोग संभवै नहीं. काहेतैं? पदार्थके एकदेशमैं संयोग होवै है, अवयवकूं देश कहैं हैं, परमाणुके अवयवरूप देश संभवै नहीं. सकल परमाणुमैं संयोग कहैं तौ अव्याप्यवृत्ति संयोगका स्वभाव नहीं होवैगा. एकदेशमैं होवै एकदेशमैं नहीं होवै सो अव्याप्यवृत्ति कहियेहै. यातैं परमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै नहीं सो संभवै नहीं:—काहेतैं? परमाणुका संयोग नहीं होवै तौ द्व्यणुक नहीं होवैगा औ परमाणुमैं महत्त्वात्यंताभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै सो नहीं होवैगा. परमाणुमैं महत्त्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै यह आगे स्पष्ट होवैगा यातैं नेत्रसंयुक्त

विशेषणतासंबंधसैं जैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै, तैसैं नेत्रसंयुक्तविशेषणतासंबंधसैं पृथ्वीत्वाभावकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. नेत्रसंयुक्त परमाणुमैं महत्त्वाभावकी नाई पृथिवीत्वाभावका विशेषणतासंबंध है परमाणुका संयोग व्याप्यवृत्ति होवैहै यह मंजूषाकी टीकामैं लिख्याहैः—यातैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं ताकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये; औ वक्ष्यमाण रीतिसैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं सकल अभावनके प्रत्यक्षमैं एकरूप योग्यानुपलंभ संभवै नहीं, औ अन्योन्याभाव अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं भिन्न भिन्न रूपवाला योग्यानुपलंभ सहकारी कहनाभी संभवै नहीं.

या शंकाका यह **समाधान** हैः—"योग्ये अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा सप्तमीसमास करैं तौ अधिकरणमैं प्रत्यक्षयोग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवैहै. औ "योग्यस्य अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा षष्ठीसमास करैं तौ प्रतियोगिमैं प्रत्यक्ष योग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवै है, तहां एक एक प्रकारके योग्यानुपलंभ माननेमैं दोष कह्या; तैसैं अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणयोग्यताका साधक सप्तमीसमासवाला योग्यानुपलंभ मानैं औ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रतियोगीकी योग्यतासाधक षष्ठीसमासवाला योग्यानुपलंभ सहकारी मानैं तौ अभावभेदसैं दोनूंका अंगीकार होवै तामैंभी दोष कह्या; यातैं अन्य प्रकारका योग्यानुपलंभ सहकारी है औ योग्यानुपलंभ शब्दमैं सप्तमीसमास औ षष्ठीसमास नहीं किंतु "नीलो घटः" या शब्दकी नाई प्रथमासमास है सो इसरीतिसैं हैः—जैसैं "नीलश्चासौ घटो नीलघटः" या शब्दमैं प्रथमासमास है, ताकूं व्याकरणमैं **कर्मधारय** कहैं हैं. जहां कर्मधारयसमास होवै तहां पूर्वपदार्थका उत्तरपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है. जैसैं "नीलघटः" या शब्दमैं कर्मधारयसमास करैं तब नीलपदार्थका घटपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है तैसैं "योग्यश्चासौ अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" इसरीतिसैं कर्मधारय

समास करैं तौ योग्यानुपलंभशब्दसैं योग्यपदार्थका अनुपलंभ पदार्थसैं अभेद प्रतीत होवैहै. यातैं अभावके प्रतियोगी औ अधिकरण चाहै जैसैं होवैं तिनकी योग्यतासैं प्रयोजन नहीं. अनुपलंभमैं योग्यता चाहिये. जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवैहै;जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ अयोग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. अनुपलंभमैं योग्यता अयोग्यता इस प्रकारकी है:—उपलंभाभावकूं **अनुपलम्भ** कहैंहैं **प्रतीति ज्ञान उपलंभ** ये पर्याय शब्द हैं. प्रतियोगीकी प्रतीतिका अभाव **अनुपलंभशब्दका** अर्थ है, यातैं इंद्रियसैं घटाभावके प्रत्यक्षमैं घटकी प्रतीतिका अभाव सहकारी है. तहां घटाभावका ज्ञान प्रमारूप फल है औ घटज्ञानका अभाव घटाभावप्रमाका सहकारी कारण है. सो घटज्ञानका अभाव योग्य चाहिये; घटज्ञानाभावकूंही घटानुपलंभ कहैं हैं, तिस अभावरूप अनुपलंभमैं अन्यप्रकारकी तौ योग्यता संभवै नहीं किंतु जा अनुपलंभका उपलंभरूप प्रतियोगी योग्य होवै सो **अनुपलंभयोग्य** कहिये है. जा अनुपलंभका प्रतियोगी उपलंभ अयोग्य होवै सो **अनुपलंभ अयोग्य** कहिये है यातैं यह सिद्ध हुआ:—योग्य उपलंभका अभावरूप योग्यानुलंभ सहकारी है, इसरीतिसैं अनुपलंभकी योग्यता कहनेका उपलंभकी योग्यतामैं पर्यवसान होवै है, यातैं उपलंभमैं योग्यता चाहिये. योग्य उपलंभका अभाव **योग्यानुपलंभ** कहिये है. उपलंभकी योग्यताका अनुपलंभमैं व्यवहार होवै है.यद्यपि प्रथमही योग्य उपलंभके अभावकूं योग्यानुपलंभ कहैं तौ लाघव है; उपलंभरूपप्रतियोगीद्वारा अनुपलंभकूं योग्य कहना निष्फल है, तथापि व्याकरणकी मर्यादासैं योग्यानुपलंभ शब्दका अर्थ करैं तब अनुपलंभमैं योग्यता प्रतीत होवै है; यातैं उपलंभवृत्ति मुख्य योग्यताका अनुपलंभसैं आरोप कह्या है; यातैं यह सिद्ध अर्थ है जहां प्रतियोगीके योग्य उपलंभका अभाव होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै है. जहां प्रतियोगीकी सत्तासैं नियमकारिकै प्रतियोगीके उपलंभकी सत्ता होवै सो **उपलंभयोग्य**

है ताका अभाव अनुपलंभभी योग्य कहिये है. जहां प्रतियोगी हुयेंभी नियम करिकै प्रतियोगीका उपलंभ न होवै सो उपलंभ अयोग्य है. ताका अभाव अनुपलंभ भी अयोग्य कहिये हैं. जैसें आलोकमैं घटकी सत्ता होवै तब नियमकारिकै घटका उपलंभ होवै है, तहां घटका उपलंभ योग्य है ताका अनुपलंभभी योग्य कहिये है, तैसें संयोगसंबंधसैं जहां पिशाच होवै तहां पिशाचसत्तामैं नियमकारिकै पिशाचका उपलंभ होवै नहीं, यातैं पिशाचका उपलंभ अयोग्य है; ताका अभाव पिशाचानुपलंभभी अयोग्य कहिये है. इसरीतिसैं घटानुपलंभ योग्य है सो घटाभावके प्रत्यक्षमें हेतु है औ पिशाचानुपलंभ योग्य नहीं, यातैं पिशाचानुपलंभतैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. यद्यपि घटाभावाधिकरणमैं घटकी सत्ता औ घटोपलंभकी सत्ता संभवै नहीं तथापि घटका औ घटोपलंभका ऐसा आरोप होवै है. "यदि भूतले घटः स्यात । तदा घटोपलंभः स्यात्" यातैं घटाभावाधिकरणमैंभी आरोपित घटकी सत्ता औ घटानुपलंभ होतेंभी आरोपित घटोपलंभकी सत्ता संभवै है. यातैं यह निष्कृष्ट अर्थ है:–जिस अभावके अधिकरणमैं प्रतियोगीका आरोप करें प्रतियोगीके उपलंभका नियमतैं आरोप होवै सो उपलम्भ योग्य है. तिसका अनुपलंभभी योग्य कहिये औ तिस अधिकरणमैं सो अभाव प्रत्यक्ष है; जिस अभावके अधिकरणमैं जिस अभावके प्रतियोगीका आरोप करै तिस प्रतियोगीके उपलंभका आरोप होवै नहीं. सो अभाव अप्रत्यक्ष है जैसैं अंधकारमैं घटाभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? अंधकारमैं "यदि अत्र घटः स्यात् तदा तस्योपलंभः स्यात" इस रीतिसैं घटके आरोपतैं घटके उपलंभका नियमतैं आरोप संभवै नहीं; यातैं अंधकारमैं घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं. स्तंभमैं पिशाचका भेद प्रत्यक्ष है, काहेतैं ? "यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभे स्यात्तदा उपलभ्येत" इस रीतिसैं स्तंभवृत्ति तादात्म्यसंबन्धसैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप नियमसैं होवैहै. काहेतैं ? स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधमैं स्तंभ

ताका नियमतैं उपलंभ होवैहै; तैसैं पिशाचभी तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमैं होवै तौ स्तंभकी नाईं ताकाभी नियमतैं उपलंभ होवै. ता उपलंभके अभावतैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच नहीं; यातैं पिशाचका स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभाव है. तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं ही **अन्योन्याभाव** कहैं हैं. औ स्तंभमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव तथा समवायसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? "स्तंभे यदि संयोगेन पिशाचः स्यात् समवायेन वा पिशाचः स्यात् तदा तस्योपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं संयोगसंबंधतैं अथवा समवायसंबंधतैं पिशाचका स्तंभमैं आरोप करें पिशाचका उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? जहां श्मशानके वृक्षादिकनमैं संयोगसंबन्धसैं पिशाच रहै है औ अपने अवयवनमैं समवायसंबंधसैं पिशाच रहै है, तहांभी पिशाचका उपलंभ होवै नहीं, औ जो स्तंभमैं संयोगसंबंधसैं अथवा समवायसंबंधसैं होवै तिन सर्वका उपलंभ होवै तौ स्तंभमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप होवै; औ स्तंभमें ही द्व्यणुकादिकनका संयोग है. औ वायुका संयोग है, यातैं द्व्यणुक वायु संयोगसंबंधसैं स्तंभवृत्ति है तिनका उपलंभ होवै नहीं, औ समवाय संबंधसैं गुरुत्वादिक अप्रत्यक्ष गुण रहैहैं तिनका स्तंभमैं उपलंभ होवै नहीं, यातैं स्तंभमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप होवै नहीं; यातैं स्तंभमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव औ समवायसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्ष हैं. यद्यपि जहां तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच होवै तहां पिशाचका नियमतैं उपलंभ होवै नहीं, काहेतैं ? तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचमैं पिशाच है औ उपलंभ होवै नहीं; यातैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचके आरोपतैंभी नियमतैं पिशाचोपलंभका आरोप संभवै नहीं, अत्यंताभावकी रीतिही अन्योन्याभावमैं है, तथापि अन्य प्रकारसैं भेद है. स्तंभमैं जो तादात्म्यसंबंधसैं होवै ताका नियमतैं उपलंभ होवैहै.

स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभ है अन्य नहीं. औ स्तंभका नियमतैं उपलंभ होवैहै. जो और कोई पदार्थ स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं रहै तौ स्तंभकी नाई ताकाभी उपलंभ चाहिये, यातैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमैं पिशाचके आरोपतैं ताके उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै. "यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभःस्यात्तदा तस्य स्तंभस्यैव उपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं स्तंभमैं तादात्म्यसैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचोपलम्भका आरोप होवैहै, यातैं स्तंभमैं पिशाचभेद प्रत्यक्ष होवैहै, तिसीस्तंभमैं पिशाचवत्का भेद अप्रत्यक्ष है. काहेतैं ? " यदि तादात्म्येन स्तंभः पिशाचवत् स्यात्तदा पिशाचवत्त्वेन स्तंभस्योपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं स्तंभमैं तादात्म्यसैं पिशाचवत्के आरोपतैं पिशाचवत्के उपलंभका आरोप संभवै नहीं. काहेतैं ? पिशाचवत् वृक्षादिकनमैं पिशाचवत्ताका उपलंभ होवै नहीं, यातैं स्तंभमैं पिशाचवत्ताका भेद अप्रत्यक्ष है. पिशाचके भेदकी नाई प्रत्यक्ष नहीं. इस प्रकारसैं बुद्धिमान् अनुभवसैं देखिलेवै. प्रतियोगीके उपलंभका आरोप जहां संभवै सो अभावप्रत्यक्ष होवै है.

उपलंभके आरोप औ अनारोप करिकै अभावकी प्रत्यक्षता औ अप्रत्यक्षतामैं उदाहरण ॥ २७ ॥

तैसैं "आत्मनि यदि सुखं दुःखं वा स्यात्तदा सुखस्य च दुःखस्य च उपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं आत्मामैं सुखदुःखके आरोपतैं तिनके उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै. काहेतैं ? कदीभी अज्ञात सुखदुःख होवैं नहीं ज्ञातही होवैं हैं; यातैं सुखदुःखका आरोप हुये तिनका उपलंभका नियमतैं आरोप होवै है, यातैं आत्मवृत्ति सुखाभाव दुःखाभाव प्रत्यक्ष है. औ "आत्मनि धर्मो यदि स्यात अधर्मो वा स्यात्तदा तस्य उपलंभः स्यात" इसरीतिसैं धर्माधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्ष ज्ञानकूं उपलंभ कहैं हैं. यद्यपि ज्ञान प्रतीति उपलंभ ये शब्द पर्याय हैं, यातैं ज्ञानमात्रका नाम उपलंभ है, तथापि इस प्रसंगमैं जा इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै ता इंद्रियजन्य ज्ञानका उपलंभशब्दसैं ग्रहण

जानना. जैसें सुखाभावका मनसैं प्रत्यक्ष होवै तहां सुखके आरोपतैं सुखके उपलंभका आरोप कहिये मानसप्रत्यक्षका आरोप होवैहै, तैसें वायुमें रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. तहां रूपके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप कहिये चाक्षुषप्रत्यक्षका आरोप होवैहै. इसरीतिसैं अन्यइंद्रियतें जहां अभावका प्रत्यक्ष होवै तहां अन्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षही उपलंभ शब्दका अर्थ जानना औ धर्म अधर्म केवल शास्त्रवेद्य हैं, तिनका उपलंभ इंद्रियजन्य ज्ञान कदीभी होवै नहीं, यातैं धर्म अधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं. यातैं धर्माभाव अधर्माभाव प्रत्यक्ष नहीं. तैसें वायुमैं गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं, औ वायुमें रूपात्यंताभाव प्रत्यक्ष है. काहेतें ? वायुमें जो गुरुत्व होता तौ ताका उपलंभ होता. इसरीतिसैं गुरुत्वके आरोपतैं गुरुत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतें ? जहां पृथिवी जलमैं गुरुत्व है तहांभी गुरुत्वका प्रत्यक्षरूप उपलंभ होवै नहीं; किंतु अनुमितिज्ञान गुरुत्वका होवैहै, यातें गुरुत्वके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै नहीं इस कारणतैं वायुमें गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं औ जो वायुमैं रूप होता तौ घटरूपकी नाई वायुरूपका उपलंभ होता; केवलरूपकाही उपलंभ नहीं होता वायुकाभी उपलंभ होता. काहेतैं ? जा द्रव्यमें महत्त्व गुण होवै औ उद्भूतरूप होवै सो द्रव्य प्रत्यक्ष होवै है. औ जा द्रव्यमैं महत्त्व होवै ताका रूप प्रत्यक्ष होवै है. परमाणु द्व्यणुकमें महत्त्व नहीं तिनका रूप प्रत्यक्ष नहीं, यातैं त्र्यणुकादिरूप वायुमें महत्त्व है तामैं रूप होता तौ त्र्यणुकादिरूप वायुका प्रत्यक्ष होता औ ताके रूपकाभी प्रत्यक्ष होता. इसरीतिसैं परमाणु द्व्यणुकरूप वायुकूं त्यागिकै त्र्यणुकादि वायुमैं रूपके आरोपतैं रूपके उपलंभका आरोप होवै है, यातैं त्र्यणुकादिरूप वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष है,परमाणु द्व्यणुकरूप वायुमैं रूपका आरोप हुयेभी महत्त्वके नहीं होनेतैं रूपके उपलंभके आरोपके नहीं होनेतैं परमाणु द्व्यणुक वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष नहीं,तैसें जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वाभाव

प्रत्यक्ष नहीं. काहेतें? जलपरणुमैं पृथिवीत्व होवै तौ ताका उपलंभ होवै; इसरीतिसैं पृथिवीत्वके आरोपतैं पृथिवीत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतें ? आश्रय प्रत्यक्ष होवै तौ जातिका प्रत्यक्ष होवै; यातैं जलपरमाणुमैं जलत्व है. जैसैं जलत्वका प्रत्यक्ष नहीं तैसैं आरोपितपृथिवीत्वके उपलंभका आरोप संभवै नहीं; यातैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वका अभाव प्रत्यक्ष नहीं, औ परमाणुमैं महत्त्वका अभाव प्रत्यक्ष है. काहेतें ? परमाणुम चाक्षुषप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूतरूप है औ त्वाचप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूतस्पर्शभी है, परंतु महत्त्व नहीं है; यातैं परमाणुका प्रत्यक्ष होवै नहीं औ परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य रूपादिक गुणनकाभी महत्त्वाभावतैं प्रत्यक्ष होवै नहीं महत्त्ववाले द्रव्यके रूपादिकगुण प्रत्यक्ष होवैंहै जो परमाणुमैं महत्त्व होता तौ परमाणुका प्रत्यक्ष होता औ परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी प्रत्यक्षहोता घटादिकनका महत्त्व प्रत्यक्ष है,यातैं रूपादिकनकी नाईं महत्त्वगुणभी प्रत्यक्षयोग्य है. आकाशादिकनमैं महत्त्व तौ है परंतु उद्भूतरूप समानाधिकरण महत्त्वका प्रत्यक्ष होवैहै. आकाशादिकनमैं उद्भूतरूप है नहीं यातैं तिनके महत्त्वका प्रत्यक्ष होवै नहीं, तथापि महत्त्वगुण प्रत्यक्षयोग्य है. इस रीतिसैं परमाणुमैं महत्त्वविना अन्य सामग्री प्रत्यक्षकी है. जो महत्त्व होता तौ परमाणु औ ताके गुणनका प्रत्यक्ष होता, यातैं परमाणुमैं महत्त्वके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप संभवै है. महत्त्वके आरोपतैं केवल महत्त्वके उपलंभका आरोप नहीं होवैहै, किंतु परमाणुके उपलम्भका औ परमाणुमैं समवेत प्रत्यक्षयोग्य गुणादिकनके उपलम्भका आरोप होवैहै.जो परमाणुमैं महत्त्व होवै तौ परमाणुका उपलम्भ होवै औ परमाणुमैं समवेत प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी उपलंभ होवै औ प्रत्यक्षयोग्य जातिका तथा क्रियाकाभी उपलंभ होवै सो परमाणु आदिकनका उपलंभ नहीं, यातैं परमाणुमैं महत्त्व नहीं. इसरीतिसैं परमाणुमैं महत्त्वाभाव प्रत्यक्ष है, इस रीतिसैं जिस अधिकरणमैं जा अभावके प्रतियोगीके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै तिस अधिकरणमैं सो अभाव प्रत्यक्ष है.

जिस इन्द्रियतैं उपलंभका आरोप तिस इंद्रियतैं उपलंभके आरोपतैं अभावका प्रत्यक्ष ॥ २८ ॥

परंतु जिस इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवैहै. जैसैं भूतलमैं घट होवै तौ नेत्रसैं घटका उपलंभ हुया चाहिये उपलंभ होवै नहीं; यातैं घट नहीं. इस रीतिसैं जहां नेत्रजन्य उपलंभका आरोप होवै तहां घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. औ भूतलमैं घट होवै तौ त्वक्इंद्रियतैं घटका उपलंभ हुया चाहिये. इसरीतिसैं अंधकूं अथवा अंधकारमैं त्वक्इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तहां घटाभावका त्वाच-प्रत्यक्ष होवैहै इस रीतिसैं जिस इंद्रियके उपलंभका आरोप होवै तिसी इंद्रि-यतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै है. वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै त्वाच प्रत्यक्ष होवै नहीं. काहेतैं ? वायुमैं रूप होता तौ रूपका नेत्रइंद्रिय-जन्य उपलंभ होता आ उपलंभ होवै नहीं, यातैं वायुमैं रूप नहीं. इसरी-तिसैं नेत्रइंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवै है औ वायुमैं रूप होता तौ त्वक्सैं ताका उपलंभ होता. इस रीतिसैं त्वक्इंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? रूपसाक्षात्कारका हेतु केवल नेत्र है त्वक् नहीं, तैसैं रसनादिइंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोपभी होवै नहीं; यातैं रूपाभावका चाक्षुष प्रत्यक्षही होवैहै. तैसैं मधुरद्रव्यमैं तिक्तरसाभावका रासनप्रत्यक्षही होवैहै. काहेतैं ? सितामैं तिक्तरस होता तौ ताका रसन-इंद्रियतैं उपलंभ होता औ उपलंभ होवै नहीं, यातैं सितामैं तिक्त रस नहीं. इस रीतिसैं सितामैं तिक्त रसके आरोपतैं रस-नजन्य तिक्तरसोपलंभका आरोप होवै है अन्यइंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै नहीं; यातैं रसनेंद्रियजन्यही रसाभावका प्रत्यक्ष होवै है, तैसैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष त्वक्जन्यही होवै है. काहेतैं ? अग्निमैं शीतस्पर्श होता तौ ताका त्वक्इंद्रियतैं उपलंभ होता, औ अग्निमैं शीतस्पर्शका त्वक्सैं उपलंभ होवै नहीं, इसरीतिसैं अग्निमैं शीतस्पर्शके आरोपतैं त्वक्जन्य

उपलंभका आरोप होवै है, यातैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष केवल त्वक्जन्य होवै है तैसें परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्षही होवै है. काहेतैं ? परमाणुका भेद महत्त्व है औ परिमाणगुणका ज्ञान चक्षु औ त्वचा दोनूंसें होवै है यह अनुभवसिद्ध है. घटका छोटापना बडापना नेत्रसें औ त्वचासें जानिये है; यातैं दोनूं इंद्रियका विषय महत्त्व है, तथापि अपकृष्टतममहत्त्वका त्वचासें ज्ञान होवै तौ त्र्यणुकके महत्त्वका त्वचासें ज्ञान हुया चाहिये. यातैं अपकृष्टतममहत्त्वका केवल नेत्रसें ज्ञान होवै है औ परमाणुमैंभी अपकृष्टतममहत्त्वका ही आरोप होवैगा. ता अपकृष्टतममहत्त्वका-त्वाचप्रत्यक्ष तौ होवै नहीं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, यातैं परमाणमें महत्त्वके आरोपनतैं नेत्रजन्य उपलंभकाही आरोप होनेतैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है. त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं. जो परमाणुमैं महत्त्व होता तौ त्र्यणुक महत्त्वकी नाई नेत्रसें ताका उपलंभ होता. इसरीतिसें चाक्षुष उपलंभका आरोप होवैहै त्वाच उपलंभका नहीं. आत्मामैं सुखाभावादिकनका मानस प्रत्यक्षही होवैहै. काहेतैं ? आत्मामैं सुख होता तौ मनसें सुखका उपलंभ होता. इसकालमैं सुखका उपलंभ होवै नहीं यातैं इसकालमैं मेरेविषै सुख नहीं. इसरीतिसें आत्मामैं सुखके आरोपतैं ताके मानस उपलंभका आरोप होवैहै यातैं सुखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवैहै; तैसें दुःखाभाव इच्छाभाव द्वेषाभावकाभी मानसप्रत्यक्ष होवैहै;परंतु अपने सुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष हैं परसुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष नहीं; किंतु शब्दादिकनमैं तिनका परोक्षज्ञान होवैहै. काहेतैं ? अन्यकूं सुखादिक हुयेंभी तिनका उपलंभ दूसरेकूं होवै नहीं यातैं अन्यमैं सुख होता तौ मेरेकूं उपलंभ होता. इसरीतिसें अन्यवृत्ति सुखादिकनका आपकूं उपलम्भका आरोप होवै नहीं, यातैं अन्यवृत्तिसुखादिकनका अभाव प्रत्यक्ष नहीं इसरीतिसें प्रतियोगीके आरोपतैं जहां उपलम्भका आरोप होवै सो अभाव प्रत्यक्ष है. ऐसें उपलम्भका अभावरूप अनुपलम्भकूं योग्यानुपलंभ कहैं हैं, यातैं प्रतियोगीके आरोपतैं जिस उप-

लम्भका आरोप होवै सो उपलम्भ जाका प्रतियोगी होवै, ताकूं **योग्यानुपलंभ** कहें हैं. या अर्थमें कोई दोष नहीं. इसरीतिसैं जा अधिकरणमैं जिसपदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलम्भ संभवै तिस अधिकरणमैं ताका अभाव प्रत्यक्ष है, एकही पिशाचका भेद स्तंभमें प्रत्यक्ष है औ परमाणुमैं अप्रत्यक्ष है. यातैं जिस अधिकरणमें कह्या जिस पदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलम्भ संभवै तिसके अभावकूं प्रत्यक्ष कहतें तौ पिशाचका इन्द्रियजन्य आरोपित उपलम्भभी स्तंभमैं होवैहै; परमाणुमैं भी पिशाचका भेद प्रत्यक्ष होवैगा; यातैं अधिकरणका नाम लेकै कह्या है. स्तंभाधिकरणमें उपलम्भका आरोप तौ होवै है स्तंभमें ही पिशाचभेद प्रत्यक्ष है औ परमाणुमें तादात्म्यसंबंधसें पिशाच हुयाभी परमाणकी नाई ताका उपलम्भ संभवै नहीं, यातैं परमाणुमें पिशाचभेद प्रत्यक्ष नहीं. औ जिसपदार्थका ऐसा कहनेतैं वायुमैं रूपात्यन्ताभावकी नाई गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं. जो जिस अधिकरणमें इंद्रियजन्य आरोपित उपलम्भ संभवै तिस अधिकरणमैं अभावप्रत्यक्ष है इतनाही कहैं तौ वायुअधिकरणमैं रूपका इंद्रियजन्य आरोपित उपलम्भ संभवै है. गुरुत्वाभावभी प्रत्यक्ष होवैगा, यातैं जिसपदार्थका उपलम्भ संभवै ताका अभाव प्रत्यक्ष कह्या, यातैं रूपके आरोपित उपलम्भसैं वायुमैं गुरुत्वका अभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं. इसरीतिसैं जहां प्रतियोगीका जा इंद्रियजन्य आरोपित उपलम्भ होवै, तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवैहै. औ जहां उक्त रीतिसैं उपलम्भ नहीं संभवै तहां अभावका परोक्षज्ञान होवैहै यह **नैयायिकमत है.**

उक्तरीतिसैं न्यायमतमैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करण है, इंद्रियमैं विशेषणता औ इंद्रियसंबंधमैं विशेषणता अभावमैं इंद्रियका संबंध है सो व्यापार है, अभावकी प्रत्यक्षप्रमा फल है, औ **योग्यानुपलंभ** इंद्रियका **सहकारी कारण** है करण नहीं.

न्यायमतमैं सामग्रीसहित अभावप्रमाका कथन ॥ २९ ॥

जैसैं घटादिकनके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी कारण है औ नेत्र इंद्रिय करण है तैसैं अभावके प्रत्यक्षमैं भी योग्यानुपलंभ सहकारी है औ अभावके चाक्षुष प्रत्यक्षमैं कभी आलोकसंयोग सहकारी नहीं; यद्यपि अंधकारमैं घटाभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं; आलोकमैं घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै; यातैं अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं अन्वयव्यतिरेकतैं आलोकसंयोग सहकारी कह्या चाहिये; तथापि घटमैं कुलालपिताकी नाईं अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग अन्यथासिद्ध है; जैसैं घटके कारण कुलालकी सिद्धि करिकै कुलालका पिता कारणसामग्रीतैं बाह्य रहैहै घटका कारण नहीं कहियेहै; किंतु घटके कारणका कारण है, तैसैं अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण योग्यानुपलंभ है; ताकी सिद्धि करिकै अभाव प्रत्यक्षकी कारणसामग्रीतैं आलोकसंयोग बाह्य रहै है काहेतैं ? अनुपलंभका प्रतियोगी जो उपलंभ ताका जहां आरोप संभवै सो **अनुपलंभयोग्य** कहिये है. घटके चाक्षुष उपलंभका आरोप आलोकमैं होवै है अंधकारमैं चाक्षुषउपलंभका आरोप होवै नहीं यातैं घटाभावके चाक्षुष प्रत्यक्षका सहकारी कारण जो योग्यानुपलंभ ताका साधक आलोक है. घटाभावके चाक्षुष प्रत्यक्षका साक्षात्कारण नहीं होनेतैं कारणसामग्रीतैं बाह्य है; यातैं कुलालपिताकी नाईं अन्यथासिद्ध है. जैसैं कुलालपिता घटका कारण नहीं तैसैं आलोकसंयोगभी अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण नहीं किंतु चाक्षुष प्रत्यक्षका कारण जो योग्यानुपलंभ ताका उक्त रीतिसैं साधक है.

औ प्राचीनग्रन्थनमैं तौ **योग्यानुपलंभ** इसरीतिसैं कह्याहैः–जहां प्रतियोगीविना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री होवै औ उपलंभ होवै नहीं तहां **योग्यानुपलंभ** है. जैसैं आलोकमैं घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ है.काहेतैं? घटाभावका प्रतियोगी घट नहीं है ता विना आलोकसंयोग

द्रष्टाके नेत्ररूप घटके चाक्षुष उपलंभकी सामग्री होनेतैं योग्यानुपलंभ है. औ अंधकारमैं जहां घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगीके चाक्षुष उपलंभकी सामग्रीमैं आलोकसंयोग है ताका अभाव है; तैसैं स्तंभमैं तादात्म्य संबंधसैं जो रहै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभ-वृत्ति उद्भूतरूप महत्त्व है; यातैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचका अनु-पलंभ योग्य है, औ संयोगसंबंधसैं जो स्तंभवृत्ति होवै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभके उद्भूतरूप औ महत्त्व नहीं हैं; किंतु संयोगसंबंधसैं रहने-वालेमैं उद्भूतरूप महत्त्व चाहिये सो पिशाचमैं है नहीं; यातैं संयोगसंबंधा-वच्छिन्न पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच ताके उपलंभकी सामग्री पिशाचवृत्ति उद्भूतरूपके अभावतैं संयोगसंबधसैं पिशाचका अनु-पलंभ योग्य नहीं इसरीतिसैं प्रतियोगी विना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री हुयां उपलंभ नहीं होवै सो योग्यानुपलंभ अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण है; इसरीतिसैं जहां योग्यानुपलंभ होवै औ इन्द्रियका अभावतैं संबंध होवै तहां इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमा अभावकी होवै है. जहां योग्यानुपलंभ नहीं होवै तहां अभावका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं, किंतु अनुमानादिकनतैं परोक्षज्ञान होवै है. नैयायिकरीतिसैं अभाव प्रत्यक्षमैं योग्यानुपलंभ सहकारी हैं. इन्द्रिय करण है.

भट्ट औ वेदांतमतमें न्यायमततैं अभावप्रमाकी सामग्रीविषै विलक्षणता ॥ ३० ॥

औ भट्टमतमैं तथा अद्वैतमतमैं योग्यानुपलंभही करण है. अभावज्ञानमैं इंद्रियकूं करणता नहीं; इसवासतैं अनुपलब्धि नाम भिन्नप्रमाण भट्ट-नैं मान्या है, तिसके अनुसारीही अद्वैतग्रन्थनमैं भी अभावप्रत्यक्षका हेतु अनुपलब्धि नाम भिन्नप्रमाणही लिख्या है. अनुपलंभकूं ही अनुपल-ब्धि कहैं हैं जैसा योग्यानुपलंभ नैयायिकनै सहकारी मान्या है तैसाही योग्यानुपलंभ भट्टमत अद्वैतमतमैं प्रमाण है. नैयायिकमतमैं अभावप्रत्यक्षके कारण इंद्रिय औ योग्यानुपलंभ दोनूं है;तिनमैं इंद्रिय तौ करण है,यातैं अभाव

प्रमामें प्रमाण है औ अनुपलम्भकूं अभावप्रमाकी सहकारीकारणता मानैं हैं. करणता नहीं मानैं हैं; यातैं अनुपलम्भ प्रमाण नहीं. औ भट्टादिमतमैं अनुपलब्धिही प्रमाण है.

यद्यपि अभावप्रमाकी उत्पत्तिमैं अनुपलब्धिका व्यापार कोई संभवै नहीं औ व्यापारवाला जो प्रमाका कारण सो **प्रमाण** कहिये है; यातैं अनुपलब्धिकूं प्रमाणता संभवै नहीं. तथापि व्यापारवाले प्रमाके कारणकूंही प्रमाणता होवै है; यह नियमभी नैयायिक मतमैं है. औ भट्टादिकनके मतमैं तौ सकल प्रमाणोंके भिन्न भिन्न लक्षण हैं. किसीके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश है किसी प्रमाणके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहींहै. जैसें प्रत्यक्षप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण **प्रत्यक्षप्रमाण** कहिये है, अनुमितिप्रमाका व्यापारवाला असाधारणकारण **अनुमान** कहिये है, शाब्दीप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण **शब्दप्रमाण** कहिये है; इसरीतिसैं तीनि प्रमाणोंके लक्षणमैं तौ व्यापारका प्रवेश है औ तिन्ह प्रमाणोंके निरूपणमैं तीनूं स्थानमैं व्यापारका संभव कहि आये. औ उपमान अर्थापत्ति उपलब्धि इनके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं. उपमितिके असाधारणकारणकूं **उपमानप्रमाण** कहैं हैं; उपपादक कल्पनाका असाधारण हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान **अर्थापत्ति प्रमाण** कहिये है, अभावकी प्रमाका असाधारण कारण **अनुपलब्धिप्रमाण** कहिये है. यद्यपि अभावका परोक्षज्ञानभी अनुमानादिकहनेतें होवैहै; यह पूर्वकही है, यातैं अनुपलब्धिके लक्षणकी अभावज्ञानके जनक अनुमानादिकनमैं अतिव्याप्ति होवै है, तथापि अनुमानादिक प्रमाण भावकी प्रमाके औ अभावकी प्रमाके साधारण कारण हैं, अभावकी प्रमाके असाधारण कारण नहीं. औ अनुपलब्धिसैं केवल अभावकाही ज्ञान होवै है यातैं अभावप्रमाका असाधारण अनुपलब्धि प्रमाण है अन्य नहीं. इसरीतिसैं तीनि प्रमाणोंके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं यातैं व्यापारकी अपेक्षा तीनि प्रमाणोंमैं नहीं; अनुलब्धिप्रमाणसैं अभावका ज्ञान होवै सो तौ प्रत्यक्ष होवै

है. औ अनुमानसैं तथा शब्दसैं जो अभावका ज्ञान सो परोक्ष होवै है. जितने स्थानोंमैं नैयायिक इंद्रियजन्य अभावका ज्ञान कहैं हैं उतनैं ज्ञानही अनुपलब्धिप्रमाणजन्य हैं. काहेतें ? नैयायिकमतमैं भी अभावज्ञानका सहकारीकारण अनुपलब्धि है. जैसें योग्यानुपलब्धिकूं नैयायिक इंद्रियका सहकारी मानैं हैं सोई योग्यानुपलब्धि भट्टादिमतमैं स्वतंत्रप्रमाणतें विनाही भेद है. नैयायिकमतमैं तौ अभावप्रमाका प्रमाण इंद्रिय है. वेदांतमतमैं प्रमाण अनुपलब्धि है औ वेदांतमतमैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी नैयायिकमतकी नाईं प्रत्यक्ष है परोक्ष नहीं.

वेदांतरीतिसैं इंद्रिय अजन्यप्रत्यक्षके लक्षणका निर्णय ॥ ३१ ॥

इहां ऐसी शंका होवैहै:—इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै है अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यताका निषेध करिकै प्रत्यक्षता कहना बनै नहीं ताका यह समाधान है:—इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै तौ ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं चाहिये. काहेतें ? न्यायमतमैं तौ ईश्वरका ज्ञान नित्य है यातें इंद्रियजन्य नहीं औ वेदांतमतमैं ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूप है इंद्रियजन्य नहीं और ग्रंथनमें इंद्रियजन्यज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमैं अनेक दूषण लिखे हैं, यातें इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं है; किंतु प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै जहां विषय सन्मुख होवै तहां कहूं तौ इंद्रियविषयके संबंधतें इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति घटदेशमैं जावैहै जायके घटके समानाकार होयके घटसैं वृत्ति मिलैहै तहां वृत्त्यवच्छिन्नचेतन प्रमाणचेतन कहियेहै, विषयमैं आया चेतन विषयचेतन कहिये है, प्रमाणचेतन औ विषयचेतन स्वरूपसैं तौ सदा एकही है, उपाधिभेदसैं चेतनका भेद होवैहै. उपाधिभी भिन्नदेशमैं होवै तौ उपहितका भेद होवैहै, एक देशमैं होय तौ उपहितका भेद होवै नहीं, जैसैं घटका रूप औ घट एकदेशमैं होवैहैं तहां घटरूपोपहित आकाश औ घटोपहित आकाश एकही है; औ मठके अंतर घट होवै तहां घटोप-

हित आकाश मठाकाशतैं भिन्न नहीं. यद्यपि मठाकाश तौ घटाकाशतैं भिन्नभी है. काहेतें ? घटशून्यदेशमैं भी मठ है, तथापि मठशून्यदेशमैं घट नहीं, यातैं मठाकाशतें घटाकाश भिन्न नहीं. इसरीतिसैं वृत्ति औ विषय भिन्न देशमैं रहैं इतने तौ वृत्त्युपहित चेतन औ विषयोपहित चेतन भिन्न होवें हैं. औ वृत्तिविषय देशमैं होवै तब विषयचेतनभी वृत्तिचेतन होवैहै, यातें विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं भेद रहै नहीं; किंतु अभेद होवैहै. यद्यपि विषयदेशमें वृत्ति जावै तब द्रष्टाके शरीरके अंतर अंतःकरणसें लेके विषय-पर्यंत वृत्तिका आकार होवैहै; यातें विषयदेशतें बाह्यभी वृत्तिका स्वरूप होनेतें विषय चेतनसैं भिन्नभी वृत्तिचेतन है, तथापि तिस कालमैं वृत्तिसैं भिन्नदेशमैं विषय नहीं, यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसें अभेद कहैं हैं. औ जो दोनूंका परस्पर अभेद कहूं लिख्या होवे तौ ताका अभिप्राय यहहैः—जितना वृत्तिभाग घटदेशमें है उतना वृत्तिभा उपहित चेतन घटचेतनसें पृथक् नहीं; इसरी-तिसैं जहां विषयचेतनका वृ।त्तचेतनसें अभेद होवै सो ज्ञान **प्रत्यक्ष** कहियेहै.

प्रत्यभिज्ञा औ अभिज्ञा प्रत्यक्षज्ञान औ स्मृतिआ-दिपरोक्षज्ञानोंका सामग्रीसहित निर्णय ॥ ३२ ॥

जहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होवै सो **ज्ञान परोक्ष** कहियेहै संस्कारजन्य स्मरणरूप अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतरही होवैहै; ताका विषय देशांतरमें होवैहै. अथवा नष्ट हो जावै है. यातें विषयचेतनका वृत्तिचेतनमें अभेद नहीं होनेतें स्मृतिज्ञान परोक्ष है औ जिसपदार्थके पूर्वअनुभवके संस्कार होवें औ इंद्रियका संयोग होवै तहां "सोयम्" ऐसा ज्ञान होवैहै, ताकूं **प्रत्यभिज्ञा ज्ञान** कहैहैं. तहांभी इंद्रियजन्य वृत्ति विषय देशमें जावैहै, यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होनेतें प्रत्यभिज्ञाज्ञानभी प्रत्यक्षही होवैहै. केवल इंद्रियजन्यवृत्ति होवै तहां "अयम्" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै; ताकूं **अभिज्ञाप्रत्यक्ष** कहैं हैं. औ मुख्य सिद्धांतमैं तौ पूर्व अनुभूतका सोयम् यह ज्ञानभी "तत्ता" अंशमें स्मृतिरूप होनेतें परोक्ष है "अयम्" अंशमैं प्रत्यक्ष

है, यातैं "सोयम्" इस ज्ञानमैं केवल प्रत्यक्षत्व नहीं किंतु अंशभेदसैं परोक्षत्व औ प्रत्यक्षत्व दो धर्म हैं.

केवल संस्कारजन्यवृत्ति होवै ताका "सः" ऐसा आकार होवै है, ताकूं **स्मृति** कहैं हैं. जा पदार्थका पूर्व इंद्रियतैं अथवा अनुमानादिकनतैं ज्ञान हुया होवै ताकी स्मृति होवै है; यातैं स्मृतिज्ञानमैं पूर्व अनुभव करण है औ अनुभवजन्य संस्कार व्यापार है. काहेतैं ? जिस पदार्थका पूर्वज्ञान होवै ताकी वर्षके अंतरायसैंभी स्मृति होवै है; तहां स्मृतिके अव्यवहित पूर्वकालमैं अनुभव तौ है नहीं औ अव्यवहित पूर्वकालमें होवै सो हेतु होवैहै यातैं पूर्व अनुभव स्मृतिका साक्षात् कारण संभवै नहीं, किसी द्वारा कारण कह्या चाहिये, यातैं ऐसा मानना योग्य है.जा पदार्थका पूर्वअनुभव नहीं हुया ताकी तौ स्मृति होवै नहीं, जो पूर्व अनुभव स्मृतिका कारण नहीं होवै तौ जाका अनुभव नहीं हुया ताकी भी स्मृति हुई चाहिये औ होवै नहीं इसरीतिसैं पूर्वअनुभवसैं स्मृतिका अन्वयव्यतिरेक है. पूर्वअनुभव हु स्मृति होवै है यह अन्वय है, पूर्वअनुभव नहीं होवै तौ स्मृति होवै नहं यह व्यतिरेक है. एकके होनेसैं अपरका होना अन्वय कहियेहै. एकके नहं होनेतैं अपरका नहीं होना व्यतिरेक कहियेहै. अन्वयव्यतिरेकसैं कारण कार्यभाव जानिये है, पूर्वअनुभव स्मृतिके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं तिनक कारणकार्यभाव तौ अवश्य है, परंतु अव्यवहित पूर्वकालमैं पूर्वअनुभ मिलै नहीं, यातैं स्मृतिकी उत्पत्तिमैं पू. अनुभवका कोई व्यापार मानन चाहिये. जहां प्रमाणबलतैं कारणताका निश्चय होवै औ अव्यवहि पूर्वकालमैं कारणकी सत्ता संभवै नहीं तहां व्यापारकी कल्पना होवै है जैसैं शास्त्ररूपी प्रमाणतैं स्वर्गकी साधनताका यागमैं निश्चय होवै औ अन्त्य आहुतिकूं **याग** कहैं हैं तिस यागके नाश हुये बहुत काल अंतरायतैं स्वर्ग होवै है, सुखविशेषकूं स्वर्ग कहैं हैं. स्वर्गके अव्य वहित पूर्वकालमैं यागके अभावतैं कारणता यागकूं संभवै नहीं. यातैं शास्त्र

निर्णीतकारणताके निर्वाहवास्तैं यागका व्यापार अपूर्व मानैं हैं. जब अपूर्व अंगीकार किया तब दोष नहीं. काहेतें ? कार्यके अव्यवहित पूर्वकालमें कारण अथवा व्यापार एक चाहिये कहूं दोनूंभी होवैं हैं; परन्तु एक अवश्य चाहिये जिसकूं धर्म कहैं हैं सो यागजन्य अपूर्व है यागमैं अपूर्व उत्पन्न होवै है औ यागजन्य जो स्वर्ग ताका जनक है यातैं व्यापार है. जैसें यागकूं स्वर्गसाधनताके निर्वाहवास्तैं अपूर्व व्यापार मानिये है सो अपूर्व सदा परोक्ष है तैसें अन्वयव्यतिरेकके बलतैं सिद्ध जो पूर्व अनुभवकूं स्मृतिकी कारणता ताके निर्वाहवास्तैं संस्कार मानियेहै. सो संस्कार सदा परोक्ष है. जा अंतःकरणमैं पूर्व अनुभव होवैहै औ स्मृति होवैगी ता अंतःकरणका धर्म संस्कार है. नैयायिकमतमें अनुभव संस्कारस्मृति आत्माके धर्म हैं. अनुभवजन्य संस्कारकूं नैयायिक भावना कहैं हैं. सो संस्कार पूर्वअनुभवजन्य है औ पूर्वअनुभवजन्य जो स्मृति ताका जनक है यातैं व्यापार कहियेहै. इस रीतिसैं पूर्वअनुभव स्मृतिका करण है, संस्कार व्यापार है, स्मृतिकी उत्पत्तिमैं अव्यवहित पूर्वकालमैं पूर्वअनुभवका तौ नाश होनेतैं अभाव है; तथापि ताका व्यापार संस्कार है; यातैं पूर्व अनुभवके नाश हुयां भी स्मृति उपजै है. सो संस्कार प्रत्यक्ष तौ है नहीं. अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं संस्कारकी सिद्धि होवैहै, यातैं जितनैं पूर्व अनुभूतकी स्मृति होवै उतनेंकाल संस्कार रहैहै. जा स्मृतिसैं उत्तरस्मृति न होवै सो चरमस्मृति कहियेहै. चरमस्मृतिसैं संस्कारका नाश होवै है, यातैं फेरि तिसपदार्थकी स्मृति होवै नहीं. इसरीतिसैं पूर्वअनुभवजन्य संस्कारसैं अनेक स्मृति होवैंहैं. जितनें चरमस्मृति होवै इतनें एक ही संस्कार रहै है. स्मृतिमैं चरमता कार्यसैं जानी जावै है; जा स्मृतिके हुयां फेरि सजातीय स्मृति न होवै ता स्मृतिमैं चरमताका अनुमानसैं ज्ञान होवैहै. अंत्यकूं चरम कहैं हैं. औ कोई ऐसैं कहैं हैंः–पूर्वअनुभवजन्यसंस्कारसैं प्रथम स्मृति होवैहै औ प्रथम स्मृतिकी उत्पत्तिसैं पहले संस्कारका

नाश होवैहे स्मृतिसैं और संस्कार उपजै है. तासैं फेरि सजातीय स्मृति उपजैहै. ता स्मृतिसैं स्वजनकसंस्कारका नाश होवै है, अन्यसंस्कार उपजैहै, तासैं तृतीय स्मृति होवै है. इसरीतिसैं स्मृतिसैं भी संस्कारकी उत्पत्ति होवैहै. जा स्मृतिसैं उत्तर सजातीय स्मृति न होवै सो स्मृति संस्कारकी हेतु नहीं. या मतमैं संस्कारद्वारा स्मृतिज्ञानभी उत्तरस्मृतिका करण है, औ प्रथम स्मृतिका करण अनुभव है, दोनूं स्थानमैं संस्कार व्यापार है; औ पहले मतमैं स्मृतिज्ञानका करण स्मृति नहीं। किंतु पूर्वानुभवसैं संस्कार होवैहै सो एकही संस्कार चरमस्मृतिपर्यंत रहैहै यातैं पूर्वानुभवही स्मृतिका करण है; और पूर्वानुभवजन्य संस्कारही सकल सजातीय स्मृतिमैं व्यापार है. दोनूं पक्षनमैं स्मृतिज्ञान प्रमा नहीं. काहेतैं ? प्रथम पक्षमैं तौ स्मृतिज्ञानका करण पूर्वानुभव है सो षट्प्रमाणसैं न्यारा है. प्रमाणजन्यज्ञानकूं **प्रमा** कहैं हैं. पूर्वानुभव प्रमाण नहीं द्वितीयपक्षमैं प्रथमस्मृतिका करण तौ पूर्वानुभव है औ द्वितीयादि स्मृतिका करण स्मृति है सो स्मृतिभी **षट्प्रमाणमैं** नहीं, यातैं स्मृतिकूं प्रमा नहीं कहैं हैं; तथापि यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति **दो प्रकारकी** है. भ्रमरूप अनुभवके संस्कारनमैं उपजै सो अयथार्थ है. प्रमारूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो यथार्थ है, इसरीतिमैं दोपक्ष ग्रन्थनमैं लिखेहैं; तिनमैं दूषण भूषण अनेक हैं ग्रन्थविस्तारभयतैं उपराम होयके प्रसंग लिखैहैं. जैसैं पूर्वअनुभवजन्य स्मृतिज्ञान परोक्ष है, तैसैं अनुमानादिप्रमाणजन्य ज्ञानभी परोक्ष है. काहेतैं? जैसैं स्मृतिका विषय वृत्तिसैं व्यवहित होवैहै तैसैं अनुमानादिजन्य ज्ञानका विषयभी वृत्तिदेशमैं होवै नहीं; किंतु व्यवहित पर्वतादिदेशमैं होवैहै औ अतीत अनागत पदार्थकाभी अनुमानादिकनतैं अनुमितिसैं आदि लेके वर्तमान ज्ञान होवै है. यातैं अनुमानादिजन्य ज्ञानके देशमैं औ कालमैं विषय होवै नहीं। किंतु अनुमितिआदिज्ञानके देश औ कालतैं भिन्नदेश औ भिन्नकालमैं तिनके विषय होवैहैं.

इन्द्रियजन्यताके नियमसैं रहित प्रत्यक्षज्ञानका अनुसंधान २३॥

इंद्रियजन्यज्ञानके विषय ज्ञानके देशकालतैं भिन्न देश भिन्न कालमैं होवैं नहीं; किंतु ज्ञानके देशकालमैंही होवैं हैं, यातैं इंद्रियजन्यज्ञान सारे प्रत्यक्षही होवैहै. अद्वैतमतमैं अंतःकरणका परिणाम जो वृत्ति ताकूं **ज्ञान** कहैं हैं; यातैं ज्ञानविषय एकदेशमैं होवैं अथवा वृत्तिविषय एकदेशमैं होवैं या कहनेमैं एकही अर्थ है. इन्द्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं. जहां अन्यप्रमाणजन्य वृत्तिदेशमैंभी विषय होवै तहां प्रत्यक्षज्ञानही होवै है. जैसैं "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं उत्पन्नहुई वृत्तिके देशमैं विषय है यातैं शब्द-प्रमाणजन्य ज्ञानभी कहूं प्रत्यक्ष होवैहै. महावाक्यजन्य ब्रह्माकारवृत्ति औ ब्रह्मात्मा दोनूं एकदेशमैं होवैंहैं: यातैं **महावाक्यजन्य ब्रह्मात्मज्ञान प्रत्यक्ष** है. तैसैं ईश्वरज्ञानका उपादान कारण मायाके देशमैं सर्व पदार्थ हैं. यातैं इंद्रियजन्य नहीं तौभी ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी प्रत्यक्ष है. काहेतैं ? जहां भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां भूतलसैं नेत्रका संबंध होयकै भूतलदेशमैं अंतःकरणकी वृत्ति जावै है. "भूतले घटो नास्ति" ऐसा वृत्तिका आकार है तहां भूतलअंशमैं तौ वृत्ति नेत्रजन्य है औ घटाभाव अंशमैं अनुपलब्धिजन्य है. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह वृत्ति पर्वतअंशमैं नेत्रजन्य है वह्निअंशमैं अनुमानजन्य है; तैसैं एकही वृत्ति अंशभेदसैं इंद्रिय औ अनुपलब्धि दो प्रमाणसैं उपजै है; तहां भूतलावच्छिन्न चेतनका वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभेद होवै है औ भूतलाव-च्छिन्न चेतनही घटाभावावच्छिन्न चेतन है; यातैं घटाभावावच्छिन्नचेतनका-भी वृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं अभेद होवै है; यातैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य भी घटाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष है, परंतु जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य है. अधिकरणके प्रत्यक्षमैं इंद्रियका व्यापार होवै है तहां उक्तरीतिका संभव है.

औ जहां अधिकरणके प्रत्यक्षमैं इंद्रियका व्यापार नहीं होवै तहां अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं; किंतु परोक्ष है.

जैसें वायुमें रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसें निमीलित नयनकूंभी ज्ञान होवै है औ परमाणुमें योग्यानुपलब्धिसें नेत्रका उन्मीलनव्यापार विनाही महत्त्वाभावका ज्ञान होवै है, तहां विषयदेशमें वृत्ति जावै नहीं; यातें अनुपलब्धिप्रमाणजन्य वायुमें रूपाभावका ज्ञान तैसें परमाणुमें महत्त्वाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष है. इसरीतिसें अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान कहूं प्रत्यक्ष है, कहूं परोक्ष है; औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रन्थनमें अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका प्रत्यक्ष लिख्या है, अनुपलब्धिजन्य परोक्षज्ञानका उदाहरण नहीं लिख्या, सो तिनमें न्यूनता है; लिख्या चाहिये. जो परोक्षका उदाहरण लिखेविना अनुपलब्धिजन्यज्ञान परोक्ष होवै नहीं ऐसा भ्रम होवैहै.

अभावके ज्ञानकी सर्वत्र परोक्षताका निर्णय. ॥ ३४ ॥

औ सूक्ष्मदृष्टिसें विचार करें तौ अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान सर्वत्र परोक्ष है कहूंभी प्रत्यक्ष नहीं. काहेतें ? प्रमाणचेतनसें विषयचेतनका अभेद हुयेंभी जो प्रत्यक्षयोग्य विषय नहीं ताका परोक्षही ज्ञान होवै है. जैसें शब्दादिकप्रमाणतें धर्माधर्मका ज्ञान होवै तब प्रमाणचेतनसें विषयचेतनका भेद नहीं. काहेतें ? अंतःकरणदेशमें धर्माधर्म रहैं हैं यातें अंतःकरण औ धर्माधर्मरूप उपाधि भिन्नदेशमें नहीं होनेतें धर्माधर्मावच्छिन्न चेतनप्रमाण चेतनसें भिन्न नहीं, तथापि धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं. यातें शब्दादिजन्य धर्माधर्मका ज्ञान कदीभी प्रत्यक्ष नहीं. अनुभवके अनुसार विषयमें योग्यता अयोग्यता जाननी. जैसें धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं तैसें अभावपदार्थभी प्रत्यक्षयोग्य नहीं. जो अभावपदार्थ प्रत्यक्ष होवै तौ वादियोंका विवाद नहीं हुया चाहिये. मीमांसक अभावकूं अधिकरणरूप मानैहैं, नैयायिकादिक अधिकरणसें भिन्न मानैं हैं; तैसें नास्तिक अभावकूं तुच्छ औ अलीक मानैहैं, आस्तिक अभावकूं पदार्थ मानैहैं, इसरीतिसें अभावके स्वरूपमें विवाद है. औ प्रत्यक्षयोग्य जो घटादिक तिनके

स्वरूपमें अधिकरणसैं भिन्न वा नहीं इत्यादिक विवाद होवै नहीं; यातैं अभावपदार्थ प्रत्यक्षयोग्य नहीं इसकारणतें जहां भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां प्रमाणचेतनसैं घटाभावावच्छिन्न चेतनका अभेद है तौ भी अभावांशमें यह ज्ञान परोक्ष है, भूतलांशमें अपरोक्ष है. जैसें "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वतअंशमें अपरोक्ष है औ वह्निअंशमैं परोक्ष है; इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावके ज्ञानकूं सर्वत्र परोक्ष मानैं तौ भट्टसैंभी विरोध नहीं. भट्टमतमें अनुपलब्धिजन्य अभावका ज्ञान परोक्षही है.

औ अभावके ज्ञानकूं जो नैयायिक इंद्रियजन्य मानिके प्रत्यक्ष कहे हैं सो सर्वथा असंगत हैः—काहेतें ? वायुमें रूपाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है औ परमाणुमें महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै यह नैयायिकनका सिद्धांत है सो बनैं नही. काहेतें ? वायुमें रूपाभावके ज्ञानवास्ते कोईभी नेत्रका उन्मीलनव्यापार करे नहीं; किंतु निमीलितनेत्रकूंभी वायुमैं रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं ज्ञान होवै है तैसें परमाणुमें महत्त्वाभावका ज्ञानभी उन्मीलित नेत्रकी नाईं निमीलितनेत्रकूंभी होवै है औ निमीलितनेत्रकूं घटादिकनका चाक्षुषज्ञान कदीभी होवै नहीं; यातैं वायुमें रूपाभावका औ परमाणुमें महत्त्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष बनै नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धिसें तिनका परोक्ष ज्ञान होवै है.

औ जो नैयायिक कहै हैं अभावज्ञानमैं इंद्रियके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं अभावज्ञानमें इंद्रिय हेतु है औ याका जो भेदधिक्कारादिक ग्रन्थनमैं समाधान लिख्याहैः—इन्द्रियका अन्वयव्यतिरेक अधिकरणके ज्ञानमें चारितार्थ है. जैसें भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां नेत्रइंद्रियसैं अभावसैं अधिकरण भूतलका ज्ञान होवैहै, ता नेत्रसें ज्ञातभूतलमें घटाभावका योग्यानुपलब्धिसें ज्ञान होवैहै; इसरीतिसैं घटाभावका अधिकरण जो भूतल ताके ज्ञानमें इंद्रिय चारितार्थ कहिये सफल है. सो शंका औ समाधान दोनूं असंगत हैंः—काहेतें ? वायुमैं रूपाभावका औ परमाणमैं महत्त्वाभावका नेत्र-

व्यापारसैं विनाभी ज्ञान होवैहै; यातैं किसी अभावज्ञानमैं इंद्रियके अन्वय व्यतिरेक हूयें इंद्रियकूं कारणता सिद्ध होवै नहीं, सकल अभावके ज्ञानमैं इंद्रियका अन्वयव्यतिरेक असिद्ध है. इस रीतिसैं शिथिलमूल शंकाका समाधानकथनभी असंगत है.

औ जो नैयायिक इस रीतिसैं शंका करैं:—"घटानुपलब्ध्या इंद्रियेणाभावं निश्चिनोमि" ऐसी प्रतीति होवैहै, यातैं अनुपलब्धि औ इंद्रिय दोनूं घटादिकनके अभावज्ञानके हेतु हैं. या शंकाका उक्त समाधान करैं "घटाभावके अधिकरणका ज्ञान इंद्रियतैं होवैहै औ घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवै है" सोभी समाधान संभवै नहीं:—काहेतैं ? जहां इंद्रिययोग्य अधिकरण है तहां तो उक्त समाधान संभवै है औ जहां अधिकरण इंद्रिययोग्य नहीं तहां उक्त समाधान संभवै नहीं. जैसें "वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि" इसरीतिसैं वायुमैं रूपाभावकी अनुपलब्धिजन्य औ नेत्रजन्य प्रतीति भासैहै तहां वायुकी प्रतीति नेत्रजन्य है औ रूपाभावकी प्रतीति अनुपलब्धिजन्य है यह कहना संभवै नहीं. काहेतैं ? वायुमैं रूपके अभावतैं नेत्रकी योग्यता नहीं.

यातैं अभावज्ञानकूं केवल अनुपलब्धिजन्य मानें उभयजन्यताकी प्रतीतिसैं विरोधका **अद्वैतवादीका यह समाधान** है:—"भूतले अनुपलब्ध्या नेत्रेण घटाभावं निश्चिनोमि" या कहनेका अनुपलब्धिसहित नेत्रतैं भूतलमैं घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह अभिप्राय नहीं है, किन्तु भूतलमैं इंद्रियजन्य घटकी उपलब्धिके अभावतैं घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य है; अभावके निश्चयका हेतु अनुपलब्धि है औ अनुपलब्धिका प्रतियोगी जो उपलब्धि तामैं इंद्रियजन्यता भासै है, यातैं निषेधनीय उपलब्धिमैं इंद्रियजन्यता प्रतीत होनेतैं इंद्रिय जन्य उपलब्धिके अभावतैं घटाभावका निश्चय उपजै है यह सिद्ध हुवा. तैसैं " वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि " या कहनेकाभी रूपकी अनुपलब्धिस-

हित नेत्रतैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य नहीं है. काहेतैं? नेत्रके व्यापारविनाभी रूपाभावका निश्चय होवै है किन्तु नेत्रजन्य रूपकी उपलब्धिके अभावतैं वायुमैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य है; यातैं जिस उपलब्धिका अभाव रूपाभावके निश्चयका हेतु ता उपलब्धि मैं नेत्रजन्यता प्रतीत होवै है. इसरीतिसैं सारै अभावनिश्चयका हेतु जो अनुपलब्धि ताके प्रतियोगी उपलब्धिमैं इंद्रियजन्यता कहियेहै औ विवेक विना अभावनिश्चयमैं इंद्रियजन्यता प्रतीत होवै. है नैयायिककी शंकाका यह समाधान सर्वत्र व्यापक है. औ अधिकरणज्ञानकी इंद्रियजन्यता अभावज्ञानमैं भासै है, यह भेदधिक्कार वेदांतपरिभाषादिकनका समाधान सर्वत्र व्यापक नहीं; किन्तु जहां प्रत्यक्षयोग्य भूतलादिक अभावके अधिकरण हैं तहां तौ यह समाधान संभवै है; औ जहां प्रत्यक्षअयोग्य वायु आदिक अभावके अधिकरण हैं, तहां उक्त समाधान संभवै नहीं, औ "अनुपलब्ध्या रसनेंद्रियेणाम्लरसाभावमाम्रे जानामि" या स्थानमैंभी अधिकरणका ज्ञान रसनेंद्रियजन्य संभवै नहीं. काहेतैं ? अम्लरसके अभावका अधिकरण आम्रफल है ताके ज्ञानकी सामर्थ्य रसनेंद्रियमैं नहीं; रसनेंद्रियमैं केवल रसज्ञानकी सामर्थ्य है, द्रव्यज्ञानकी सामर्थ्य नहीं; यातैं रसनेंद्रियजन्याम्लरसोपलब्धिके अभावतैं आम्रफलमैं रसके अभावका निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्यसैं उक्तव्यवहार होवैहै. यद्यपि उक्त वाक्यके अक्षर मर्यादासैं उक्त अर्थ क्लिष्ट है, तथापि अन्यगतिके असंभवतैं उक्त अर्थ ही मानना चाहिये, यातैं नैयायिककी शंकाका अस्मदुक्त ही समाधान है. इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावका निश्चय होवैहै यह पक्ष निर्दोष है. औ जो **नैयायिक शंका** करैः—अभावप्रमाका पृथक् प्रमाण माननेमैं गौरव है औ घटादिकनकी प्रत्यक्ष प्रमामैं इंद्रियकी प्रमाणता निर्णीत है, ता निर्णीत प्रमाणसैं अभावप्रमाकी उत्पत्ति मानैं तौ लाघव है.

अनुपलब्धिप्रमाणके अंगीकारमैं नैयायिककी शंका औ सिद्धांतीका समाधान ॥ ३८ ॥

ताशंकाका यह समाधान है:—इंद्रियकूं प्रमाणता कहनेवाले नैयायिकभी अनुपलब्धिकूं कारणता तौ मानैं हैं अनुपलब्धिकूं करणता नहीं कहै हैं. अद्वैतवादी इंद्रियकूं अभावकी करणता नहीं मानैं हैं. यातैं इंद्रियका अभावतैं स्वसंबद्ध विशेषणता औ शुद्ध विशेषणतासंबंध नहीं मानना होवै है. नैयायिककूं अप्रसिद्ध संबंधकी कल्पना गौरव है औ अनुपलब्धिमैं सहकारी कारणता तौ नैयायिक भी मानैं हैं, तिसकूं अद्वैतवादी कारणतानाम धरिकै प्रमाणता कहैं हैं; यातैं नैयायिकमतमैं ही गौरव है अद्वैत मतमैं नहीं.

और वेदांतपरिभाषाका टीकाकार मूलकारका पुत्र हुया है तिसकूं अद्वैतशास्त्रके संस्कार न्यून हुये हैं औ न्यायशास्त्रके संस्कार अधिक रहेहैं यातैं मूलका व्याख्यान करिकै नैयायिकमतका तिसनैं इसरीतिसैं उज्जीवन लिख्या है:—अनुपलब्धि पृथक् प्रमाण नहीं, अभावका ज्ञान इंद्रियतैं ही होवै है औ जो कहै अभावके साथ इंद्रियका संबंध नहीं है, विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं, विशेषणता औ स्वसंबद्ध विशेषणता जो नैयायिक संबंध मानैं हैं सो अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्धकी कल्पना गौरव है सो असंगत है:—काहेतैं ? "घटाभाववद्भूतलम्" यह प्रतीति सर्वकूं संमत है. या प्रतीतिसैं घटाभावमैं आधेयता भासैहै औ भूतलमैं अधिकरणता भासैहै. परस्पर संबंधविना आधाराधेयभाव होवै नहीं, यातैं भूतलादिक अधिकरणमैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्ट है. जो अभावकूं प्रत्यक्ष नहीं मानैं तौ तिनकूं भी अभावका अंगीकार है, यातैं अधिकारणसैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्ट है. ता संबंधका व्यवहारवासतैं कोई नामकह्या चाहिये यातैं अधिकरणमैं अभावके संबंधकूं विशेषणता कहैं हैं. इसरीतिसैं विशेषणतासंबंध अप्रसिद्ध नहीं; यातैं अप्रसिद्ध कल्पनारूप गौरव

नैयायिक मतमैं नहीं; अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वमतसिद्ध होनेतैं स्वसंबद्धविशेषणता दोनूं संबंध अप्रसिद्ध नहीं औ "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै; यातैं भूतलादिकनमैं अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्य है. जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहां ही 'पश्यामि'ऐसा अनुव्यवसाय होवै है; यातैं भूतलादिकनमैं अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्य है. जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहांही 'पश्यामि' ऐसा अनुव्यवसाय होवै है औ अद्वैतमतमैं भूतलका ज्ञान नेत्रजन्य है, घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिजन्य है नेत्रजन्य नहीं, यातैं अनुव्यवसाय ज्ञानमैं अपनें विषय व्यवसायकी विलक्षणता भासी चाहिये. जैसें "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वत अंशमैं प्रत्यक्ष है, वह्नि अंशमैं अनुमिति है, ताका "पर्वतं पश्यामि वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, तामैं व्यवसायकी विलक्षणता भासै है सो विलक्षणता इहां नेत्रजन्यत्व औ अनुमानजन्यत्व है, तैसें अभावज्ञानमैं नेत्रजन्यत्व औ अनुपलब्धिजन्यत्वरूप विलक्षणता होवै तौ अनुव्यवसायमैं भासी चाहिये. औ केवल नेत्रजन्यत्वही अनुव्यवसायमैं भासै है, यातैं, अभावका ज्ञानभी इन्द्रियजन्य है पृथक् प्रमाणजन्य नहीं. औ अभावज्ञानकूं इन्द्रियजन्य नहीं मानैं तौभी अद्वैतवादी अनुपलब्धि जन्यमानिकै प्रत्यक्षरूप कहैहैं. सोभी असंगत है:—काहेतैं ? जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै या नियमका बाध होवैगा; यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्य है. इसरीतिसैं वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं नैयायिकमतका उज्जीवन सकल अद्वैतग्रंथनसैं विरुद्ध लिख्याहै:—सो युक्तिसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? प्रथम जो कह्या अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वकूं इष्ट है, यातैं अप्रसिद्ध कल्पना नहीं सो असंगत है. काहेतैं ? अभाव औ अधिकरणका संबंध तौ इष्ट है परंतु विशेषणतासंबंधमैं प्रत्यक्षज्ञानकी कारणता अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? जो अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यता मानैं तिसीके मतमैं विशेषणतासंबंध इंद्रियजन्यज्ञानका कारण मानना होवैहै, अन्यमतमैं विशेषणतासंबंधमैं इंद्रियजन्यज्ञानकी कारणता माननी होवै नहीं; यातैं अप्रसिद्ध कल्पनाका

परिहार नैयायिकमतमें होवै नहीं. औ जो अभावज्ञानकूं पृथक् प्रमाणजन्यता माननेमैं दोष कह्या "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय नहीं हुया चाहिये सोभी संभवै नहीं:—काहेतें ? घटाभावविशिष्ट भूतलके चाक्षुषज्ञानवाला मैं हूं ऐसा अनुव्यवसाय होवै. उक्त वाक्यकाभी यही अर्थ है, या अनुव्यवसायमें घटाभाव विशेषण है भूतल विशेष्य है; ता विशेष्यभूतलमें चाक्षुषज्ञानकी विषयता है घटाभाव विशेषणमें नहीं है तौभी घटाभाव विशिष्ट भूतलमैं प्रतीत होवै है; कहूं विशेषणमात्रका धर्म, कहूं विशेष्यमात्रका धर्म, कहूं विशेषणविशेष्य दोनूंका धर्म, विशिष्टमैं प्रतीत होवै है, जैसें "दंडी पुरुषः" या ज्ञानमैं दंड विशेषण है औ पुरुष विशेष्य है. जहां दंड नहीं है पुरुष है तहां "दंडी पुरुषो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवैहै,यातें दंडरूप विशेषणका अभाव है पुरुषरूपविशेष्यका अभाव नहीं; तथापि विशेषणमात्रवृत्ति अभाव दंडविशिष्ट पुरुषमें प्रतीत होवैहै. जहां दंड है पुरुष नहीं है तहां विशेष्यमात्रका अभाव है; औ "दंडी पुरुषो नास्ति" इसरीतिसैं दंडविशिष्टपुरुषमैं प्रतीत होवैहै. जहां दंड नहीं औ पुरुषभी नहीं है. तहां विशेषणविशेष्य दोनूंका अभाव विशिष्टमैं प्रतीत होवैहै तैसैं विशेष्यभूतलमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयता है औ विशेषण तौ घटाभाव तामें नहीं है तौ भी घटाभावविशिष्ट भूतलमें प्रतीत होवैहै. जैसें "वह्निमन्तं पर्वतं पश्यामि" इसरीतिसैं पर्वतके प्रत्यक्षका अनुव्यवसाय होवैहै, तहां चाक्षुषज्ञानकी विषयता विशेष्य पर्वतमें है औ विशेषण जो वह्नि तामें नहीं है, तथापि वह्निविशिष्टपर्वतमें चाक्षुषज्ञानकी विषयता प्रतीत होवै है औ जो दोष कह्या घटाभाव औ भूतल विजातीयज्ञानके विषय होवें तौ "पर्वतं पश्यामि वह्निमनुमिनोमि" इसरीतिसैं विलक्षण व्यवसायज्ञानकूं विषय करनेवाला अनुव्यवसाय हुया चाहिये. यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके शिथिलसंस्कारवालेका है:—काहेतें ? अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है इस अर्थकूं जो मानैं ताकूं "घटानुपलब्ध्या घटाभावं निश्चिनोमि । नेत्रेण भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय अबाधित होवैहै; तासैं व्यवसायज्ञानकी विषयता घटाभावमैं औ भूतलमैं विलक्षण मानैं हैं; औ जो

दोष कह्या हैः—अनुपलब्धिजन्यता मानिकै अद्वैतवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानैंहै औ जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै; यातें उक्त नियमका अनुपलब्धिवादिके मतमें बाध होवैगा; सोभी सिद्धांतके अज्ञानतें है, यातैं असंगत है. काहेतें ? अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावज्ञान सारे प्रत्यक्ष नहीं है; किंतु कोई ज्ञान प्रत्यक्ष है औ वायुमें रूपाभावका ज्ञान परमाणुमें महत्त्वाभावका ज्ञान इत्यादि अनुपलब्धिजन्य हैं तथापि परोक्ष है, अथवा अनुपलब्धिप्रमाणजन्यभी अभावका ज्ञान सारे परोक्ष है. यह पूर्व प्रतिपादन करि आयेहैं. यातै अनुपलब्धिवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानैं यह धर्मराजके पुत्रका कथन सिद्धांतके अज्ञानसें है. औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें जो कहूं अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहीहै. सो प्रौढिवादसें कही है. जो अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिलेवै तौभी वक्ष्यमाण रीतिसैं अभावज्ञानमें इंद्रियजन्यता सिद्ध होवै नहीं. यह ग्रंथकारनका प्रौढिवाद है; प्रतिवादीकी उक्ति मानिके भी स्वमतमें दोषका परिहार करै ताकूं प्रौढिवाद कहैहैं. औ अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिकै इंद्रियजन्यता नहीं मानैं तौ प्रत्यक्षज्ञान इंद्रियजन्य होवैहै, या नियमका बाध होवैगा; यह कथनभी असंगत हैः—काहेतें ? ताकूं यह पूछैं हैः—जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै इंद्रियजन्यसैं भिन्न प्रत्यक्ष होवै नहीं; ऐसा नियम है. अथवा जो इंद्रियजन्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवैहै. प्रत्यक्षसैं भिन्न इंद्रियजन्य होवै नहीं यह नियम है. तिनमें प्रथमपक्ष कहैं तौ असंगत है; ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है इन्द्रियजन्य नहीं है. न्यायमतमें नित्य है औ सिद्धांतमतमें मायाजन्य है. ईश्वरके इंद्रियनका अभावहै यातें ताका ज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं. औ "दशमस्त्वमसि" या वाक्यतें उत्पन्न हुया ज्ञान प्रत्यक्ष है इन्द्रियजन्य नहीं जो ऐसैं कहै दशमपुरुषकूं अपनें शरीरमें दशमताका ज्ञान होवै है सो शरीर नेत्रके योग्य है, यातें दशमका ज्ञानभी नेत्रइन्द्रियजन्य है, सो संभवै नहींः—काहेतें ? निमीलितनयनकूंभी वाक्य सुनिकै दशमका ज्ञान होवैहै. जो नेत्रजन्य होवै तौ नेत्रव्यापारविना नहीं हुया चाहिये; यातें

दशमका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं औ जो ऐसैं कहै दशमका ज्ञान मनोजन्य है यातैं इन्द्रियजन्य है, सोभी संभवै नहीं:—काहेतैं ? देवदत्तयज्ञदत्तादिक नाम आत्माके नहीं; किंतु न्यायमतमैं शरीरविशिष्ट आत्माके औ वेदांतमतमैं सूक्ष्मविशिष्ट स्थूल शरीरके हैं; तैसैं त्वम् अहम् यह व्यवहारभी सूक्ष्मविशिष्ट स्थूल शरीरमैं होवैहै ता स्थूलशरीरका ज्ञान मनसैं संभवै नहीं. बाह्यपदार्थके ज्ञानका मनमैं सामर्थ्य नहीं, जो ऐसैं कहै:—मनका अवधान होवै तौ वाक्यसैं दशमका ज्ञान होवै, विक्षिप्तमनवालेकूं होवै नहीं; यातैं अन्वयव्यतिरेकतैं दशमज्ञानका हेतु मन होनेतैं दशमका ज्ञान मानस है यातैं इन्द्रियजन्य है; सोभी संभवै नहीं—इसरीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं सकल ज्ञानोंका हेतु मन है. विक्षिप्तमनवालेकूं किसी प्रमाणतैं ज्ञान होवै नहीं. सावधानमनवालेकूं सकल ज्ञान होवैं हैं, यातैं सारे ज्ञान मानस कहे चाहियें. यातैं सर्व ज्ञानका साधारणकारण मन है इन्द्रिय अनुमानादिक सकल प्रमाणका सहकारी हैं. मनसहित नेत्रतैं जो ज्ञान होवै सो **चाक्षुषज्ञान** कहिये है, मनसहित अनुमानप्रमाणतैं होवै सो **अनुमितिज्ञान** कहियेहै, मनसहित शब्दप्रमाणतैं होवै सो **शाब्दज्ञान** कहियेहै, अन्यप्रमाण विना केवल मनतैं जो ज्ञान होवै सो **मानसज्ञान** कहियेहै, सो केवल मनतैं आंतरपदार्थ सुखादिकनका ज्ञान होवै; यातैं आंतरपदार्थका ज्ञानही मानस होवैहै. बाह्यपदार्थका इन्द्रियानुमानादिक विना केवल मनतैं ज्ञान होवै नहीं यातैं दशमका ज्ञान मानस है यह कहना संभवै नहीं. आंतर पदार्थका ज्ञान मानस होवैहै यहभी नैयायिकरीतिसैं कह्या है, सिद्धांतमैं तौ कोई ज्ञान मानस नहीं. काहेतैं? शुद्ध आत्मा तौ स्वयंप्रकाश है, ताके प्रकाशमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं यातैं आत्माका ज्ञान मानस नहीं औ सुखादिक साक्षीभास्य हैं. जिस कालमैं इष्ट पदार्थके संबन्धतैं सुखाकार अन्तःकरणका परिणाम होवै अनिष्टपदार्थके सम्बंधतैं दुःखाकार अन्तःकरणका परिणाम होवै तिसीसमय सुखदुःखकूं विषय करनेवाला अंतःकरणके सत्त्वगुणका परिणामवृत्ति होवै है.

ता वृत्तिमैं आरूढसाक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशै है, सुखदुःखकी उत्पत्तिमैं इष्टसंबंध औ अनिष्टसंबंध निमित्त है, तिसी निमित्तसैं सुख औ दुःखकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवै है; ताकी उत्पत्तिमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं; यातैं सुखदुःख साक्षीभास्य हैं;यद्यपि घटादिकनका प्रकाशभी केवल वृत्तिसैं होवै नहीं किंतु वृत्तिमैं आरूढचेतनसैंही सर्वका प्रकाश होवै है यातैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य कहे चाहियें, तथापि घटादिकनका ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति उपजै तामैं इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणकी अपेक्षा है. औ सुखादिकनके ज्ञानरूपवृत्तिकी उत्पत्तिमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं इतना भेद है. जा वृत्तिमैं आरूढ साक्षी विषयकूं प्रकाशै सो वृत्ति जहां इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणसैं होवैं तहां विषयकूं साक्षीभास्य नहीं कहैंहैं; किंतु प्रमाणजन्यज्ञानका विषय कहैं हैं. जहां प्रमाणके व्यापारविना वृत्तिकी उत्पत्ति होवै तावृत्तिमैं आरूढसाक्षी जिसकूं प्रकाशै सो साक्षीभास्य कहियेहै. घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणतैं होवैहै; ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी प्रकाशै है, तथापि घटादिक प्रमाणगोचर कहियेहै साक्षीभास्य नहीं. औ सुखादिगोचरवृत्ति प्रमाणजन्य नहीं किंतु सुखादिजनक धर्मादिजन्य है; यातैं सुखादिक साक्षीभास्य हैं. इस रीतिमैं सुखादिक औ तिनके ज्ञान समान सामग्रीसैं होवैंहैं, यातैं अज्ञात सुखादिक होवैं नहीं किंतु ज्ञातही होवैंहैं औ सुखादिकनके प्रत्यक्षके हेतु सुखादिक नहीं जो पूर्वकालमें सुखादिक होवें तौ स्वज्ञानके हेतु होवें, सुखादिक औ तिनका ज्ञान समानकालमें समान सामग्रीतें होवें हैं, यातैं परस्पर कार्यकारणभाव तौ नहीं औ घटादिकनके प्रत्यक्षज्ञानमैं घटादिक हेतु हैं. काहेतें ? प्रत्यक्ष ज्ञानतैं प्रथम घटादिक उपजें हैं, यातैं स्वगोचर प्रत्यक्षके घटादिक हेतु हैं. घटादिकनके जहां अनुमिति आदि ज्ञान होवैं तिनके हेतु घटादिक नहीं अनुमिति ज्ञानमैं तैसैं शाब्दज्ञानमैं जो विषयभी कारण होवै तौ अतीत अनागत पदार्थके अनुमितिआदिक

ज्ञान नहीं हुये चाहियें; यातें अनुमिति ज्ञान शाब्दज्ञानादिकनमैं विषय कारण नहीं. तैसें सुखादिकभी स्वगोचरज्ञानके कारण नहीं. पूर्व प्रसंग यह है:—सुखादिकनका ज्ञान मानस नहीं किंतु सुखादिक साक्षी-भास्य हैं. यातें मनका असाधारण विषय मिलै नहीं. इसकारणतें सर्वज्ञानोंका उपादानरूप अंतःकरण तौ है औ ज्ञानका स्वतंत्रकरणरूप इंद्रिय जो मनकूं नैयायिककहैं हैं सो असंगत है; यातें दशमका ज्ञान मानस नहीं किंतु वाक्यजन्य है औ प्रत्यक्ष है इसरीतिसें जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै यह नियम संभवै नहीं. औ जो ऐसें कहै:—जो इंद्रियजन्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवै; इंद्रियजन्यज्ञान कोई अप्रत्यक्ष नहीं होवैहै या नियमसें सिद्धांतकी हानि नहीं. काहेतें ? इंद्रियजन्यज्ञानकूं अप्रत्यक्षता हमभी नहीं कहैं हैं; इंद्रियजन्यज्ञान तौ सारे प्रत्यक्ष है, कहूं शब्दादिकनतैंभी प्रत्यक्ष होवैहै यह सिद्धांत है; यातें उक्त नियमका विरोध नहीं. इसरीतिसें नैयायिकानुसारी धर्मराजके पुत्रकी उक्ति असंगत है.

यातें अभावज्ञान इंद्रियजन्य नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धिनामपृथक्प्रमाणजन्य है. जहां "प्रतियोगी होता तौ ताका उपलंभ होता" इसरीतिसें प्रतियोगीके आरोपतें उपलंभका आरोप होवै तहां तौ अभावका ज्ञान योग्यानुपलब्धिप्रमाणजन्य है औ अंधकारमैं घटाभावका ज्ञान अनुमानादिजन्य है काहेतें ? "अंधकारमैं घट होता तौ ताका उपलंभ होता" इसरीतिसें घटरूप प्रतियोगिके आरोपतैं घटके उपलंभका आरोप संभवै नहीं इसरीतिसैं अन्यमतमैं जितने अभावनके ज्ञान इंद्रियजन्य हैं उतनेही ज्ञान वेदांतमतमैं केवल अनुपलब्धिजन्य हैं. नैयायिकमतमैं इंद्रिय करण है, अनुपलब्धि सहकारी कारण है, यातैं इंद्रियमैं प्रमाणता है अनुपलब्धिमैं प्रमाणता नहीं है. वेदांत मतमैं अनुपलब्धिमैं प्रमाणता अधिक माननी होवै है. अनुपलब्धिस्वरूपसैं दोनूं मतमैं सिद्ध है तैसैं न्यायमतमैं विशेषणतासंबंधकूं ज्ञानकी करणता अधिक माननी होवै है

औ विशेषणता संबंध स्वरूपसैं अधिकरण अभावका दोनूं मतमैं सिद्ध है इसरीतिसैं वेदांतीकूं अनुपलब्धिमैं प्रमाणता अधिक माननी औ नैयायिककूं विशेषणतासंबंधमैं ज्ञानकी कारणता अधिक माननी; यातैं लाघव गौरव किसीकूं नहीं, दोनूंकी समानकल्पना है, तथापि अभावज्ञानकी करणता इन्द्रिय मैं नैयायिक अधिक कहैहैं; यह तिनके मतमैं गौरव है औ वायुमैं रूपाभावका ज्ञान नेत्रव्यापारसैं विना होवैहै. औ ताकूं नैयायिक चाक्षुषज्ञान कहैं हैं. तैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका ज्ञानभी नेत्रव्यापारसैं विना होवै है, ताकूं भी नैयायिकचाक्षुषज्ञान कहैहैं, इसरीतिसैं अनेक स्थानमैं जिस इन्द्रियके व्यापार विना जो अभावका ज्ञान होवै ताकूं तिस इन्द्रियजन्य कहैं हैं. सो अनुभवविरुद्ध है. जिस इन्द्रियव्यापारतैं जो ज्ञान होवै तिस इन्द्रियजन्य सो ज्ञान होवैहै. जिसइन्द्रियके व्यापारविना जो ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यता ज्ञानकूं मानैं तौ सकलज्ञान सकल इंद्रियजन्य हुये चाहियें; यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्य है यह नैयायिकमत समीचीन नहीं. इसरीतिसैं अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है, परंतु अभावज्ञानकी उत्पत्तिमैं व्यापारहीन असाधारण कारण अनुपलब्धि है; यातैं अभावज्ञानकी असाधारणकारणता अनुपलब्धिप्रमाणका लक्षण है.

अनुपलब्धिप्रमाणके निरूपणका जिज्ञासुकूं उपयोग ॥२६॥

अनुपलब्धि निरूपणका जिज्ञासुकूं यह उपयोग है:—"नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक श्रुतिप्रपंचका त्रैकालिक अभाव कहैं हैं. अनुभवसिद्ध प्रपंचका त्रैकालिक निषेध बनै नहीं; यातैं प्रपंचका स्वरूपसैं निषेध नहीं करैं हैं किंतु प्रपंच पारमार्थिक नहीं; यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका त्रैकालिक अभाव श्रुति कहैं हैं. इसरीतिसैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका अभाव श्रुतिसिद्ध है औ अनुपलब्धिप्रमाणसेभी सिद्ध है. जो पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंच होता तौ जैसैं प्रपंचकी स्वरूपसैं उपलब्धि होवैहै तैसैं पारमार्थिक प्रपंच-

कीभी उपलब्धि होती औ स्वरूपसैं तौ प्रपंचकी उपलब्धि होवैहै पारमार्थिकरूपतैं प्रपंचकी उपलब्धि होवै नहीं; यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका अभाव है. इसरीतिसैं प्रपंचाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवैहै; औरभी अनेक अभावनका ज्ञान जिज्ञासुकूं इष्ट है ताका हेतु अनुपलब्धिप्रमाण है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठः प्रकाशः समाप्तः॥ ६ ॥

वृत्तिभेद अनिर्वचीयख्यातिमंडन ख्यातिखंडन औ स्वतः प्रमात्वप्रमाणनिरूपण नाम सप्तमप्रकाशप्रारम्भ ।

उपादान (समवायि), असमवायि, निमित्तकारण अरु संयोगका लक्षण ॥ १ ॥

ग्रंथके आरंभमैं वृत्ति किसकूं कहैं हैं या वचनतैं वृत्तिके लक्षण औ भेदका प्रश्न है. वृत्तिका कारण कौन है यह वृत्तिकी सामग्रीका प्रश्न है. तीसरा प्रश्न वृत्तिके प्रयोजनका है; तिनमैं वृत्तिके प्रयोजनका निरूपण अष्टम प्रकाशमैं करैंगे. औ कारण समुदायकूं **सामग्री** कहैं हैं. **कारण दोप्रकारका** होवैहै; एक उपादान कारण होवैहै औ द्वितीय निमित्तकारण होवैहै. जाके स्वरूपमैं कार्यकी स्थिति होवै तिसकारणकूं **उपादानकारण** कहैं हैं. उपादानकारणकूंही **समवायिकारण**कहैं हैं. जैसैं घटका उपादानकारण कपाल है. औ कार्यसैं तटस्थ हुवा कार्यका जनक होवै सो **निमित्तकारण** कहियेहै. जैसैं घटके निमित्तकारण कुलालचक्रदंडादिक हैं औ **न्यायवैशेषिकमतमैं** समवायी असमवायी निमित्तभेदसैं **कारण**

तीनप्रकारका कहैं हैं.कार्यके समवायिकारणसैं संबंधी जो कार्यका जनक ताकूं असमवायिकारण कहैं हैं.जैसैं घटका असमवायिकारण कपालसंयोग है. पटका असमवायिकारण तंतुसंयोग है; घटके समवायिकारण कपालसैं संबंधी औ घटका जनक कपालसंयोग है, तैसैं पटके समवायिकारण तंतुसैं संबंधी औ पटका जनक तंतुसंयोग है. जो समवायिकारणके संयोगकूं कार्यका जनक नहीं मानैं तौ वियुक्त कपालनतैं घटकी औ वियुक्त तंतुवोंतैं पटकी उत्पत्ति हुई चाहिये. इसरीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमें अवयवनका संयोग कारण है; सो अवयवसंयोगमैं कार्यकी स्थिति नहीं किंतु अवयवनमैं कार्यद्रव्यकी स्थिति होवै है, यातैं अवयवसंयोगमैं समवायिकारणता संभवै नहीं औ कार्यसैं तटस्थ रहै नहीं; किंतु अवयवसंयोग औ कार्यद्रव्य अवयवमैं समानाधिकरण होवै है यातैं निमित्तकारणताभी अवयव संयोगमै सम्भवै नहीं,यातैं समवायिकारण औ निमित्तकारणसैं विलक्षण असमवायिकारण होनेतैं **कारण तीनि प्रकारका** होवैहै. जैसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं अवयवसंयोग **असमवायिकारण** है तैसैं गुणकी उत्पत्तिमैं कहूं तौ गुण असमवायिकारण है, कहूं क्रिया असमवायिकारण है. तथाहि; नील-तंतुसैं नीलपटकी उत्पत्ति होवैहै पीतकी नहीं, यातैं पटके नीलरूपमैं तंतुका नीलरूप कारण है. तिसपटके नीलरूपका समवायिकारण पट है तंतुका नीलरूपताका समवायिकारण नहीं. तैसैं तंतुका नीलरूप पटके नीलरूपसैं तटस्थ नहीं किंतु तंतुका नीलरूप तंतुमैं रहैहै. औ पटका नीलरूपभी तंतुमैं रहैहै यातैं दोनूं समानाधिकरण होनेतैं संबंधी हैं औ असंबंधीकूं **तटस्थ** कहैं हैं. यद्यपि पटका नीलरूप समवायसंबंधसैं पटमैं रहैहै. तथापि स्वसमवायि समवायसंबंधसैं पटका नीलरूप तंतुमैंही रहैहै. स्व कहिये पटका नीलरूपताका समवायी जो पट ताका समवाय तंतुमैं है; इसरीतिसैं पटके नीलरूपसैं तंतुका नीलरूप **समानाधिकरण** है. तंतुका नीलरूप साक्षात्संबंधसैं तंतुमैं ही है तिसमैं पटद्वारा पर-

परासंबंधसैं पटका नीलरूप है; यातैं पटके नीलरूपतैं तंतुका नीलरूप तटस्थ नहीं होनेतैं निमित्तकारण संभवै नहीं; किंतु पटके नीलरूपका समवायिकारण जो पट ताका संबंधी तंतुका नीलरूप है औ पटके नीलरूपका जनक होनेतैं ताका असमवायिकारण तंतुका नीलरूप है; तंतुका नीलरूप औ पट दोनूं तंतुमैं समवायसंबंधसैं रहै हैं, यातैं समानाधिकरणसंबंधसैं तंतुका नीलरूप पटका संबंधी है. जैसैं कार्यके रूपका असमवायिकारण उपादानका रूप है, तैसैं रस गंध स्पर्शमैं भी जानना औ सकल गुणनकी उत्पत्तिमैं जिसरीतिसैं गुणका क्रिया असमवायिकारण है सो न्यायवैशेषिक ग्रंथनमैं स्पष्ट है. अनुपयोगी जानिकै विस्तारभयतैं लिख्या नहीं.

संयोगका प्रसंग अनेक स्थानमैं आवै है, यातैं गुणकी उत्पत्तिमैं क्रिया असमवायिकारणका उदाहरण कहनेकूं संयोगकी उत्पत्ति कहैं हैः—संयोग दो प्रकारका होवै है; एक कर्मज संयोग है द्वितीय संयोगज संयोग है. जाकी उत्पत्तिमैं क्रिया असमवायिकारण होवै सो कर्मज संयोग कहियै है. संयोगरूपअ समवायिकारणतैं होवै सो संयोगज संयोग कहियै है. कर्मजसंयोगभी अन्यतरकर्मज औ उभयकर्मज भेदतैं दोप्रकारका है. संयोगके आश्रय दो होवैंहैं. तिनमैं एककी क्रियासैं जो संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहियेहै. जैसैं पक्षीकी क्रियातैं वृक्षपक्षीका संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहिये है. तहां वृक्ष औ पक्षी समवायकारण हैं औ संयोगके समवायिकारण पक्षीमैं ताकी क्रियाका समवायसंबंध होनेतैं पक्षीरूप समवायिकारणकी संबंधिनी औ पक्षी वृक्षके संयोगकी जनक पक्षीकी क्रिया है. यातैं पक्षिवृक्षके संयोगकी असमवायिकारण पक्षीकी क्रिया है. यह अन्यतरकर्मजसंयोगका उदाहरण है. मेषद्वयकी क्रियातैं जो मेषद्वयका संयोग होवै सो उभयकर्मजसंयोग है. मेषद्वयके संयोगमैं दोनूं मेष समवायिकारण हैं औ तिनकी क्रिया असमवायिकारण है. जहां हस्तकी क्रियातैं हस्ततरुका संयोग होवै तहां हस्ततरु

परस्पर संयुक्त हैं, इस व्यवहारकी नाईं काय तरु संयुक्त हैं; ऐसा व्यवहारभी होवैहै. **संयुक्त** कहिये संयोगवाले हैं; तिस स्थानमें हस्त तरुके संयोगमें तौ हस्तकी क्रिया असमवायिकारण है औ काय वा तरुमैं क्रिया होवै तौ काय तरुका संयोगभी क्रियाजन्य संभवै. औ तरुकी नाईं कायमैंभी क्रिया है नहीं. काहेतें ? सकल अवयवनमैं क्रिया होवै जहां अवयवीकी क्रिया होवैहै. हस्तसें इतर सकल अवयव निश्चल होनेतें कायमें क्रियाकथन संभवै नहीं, यातें कायतरुके संयोगमें क्रिया असमवायिकारण है यह कथन संभवै नहीं; किंतु अन्यतरकर्मज हस्ततरुसंयोगही कायतरुसंयोगका असमवायिकारण है. काहेतें ? कायतरुसंयोगका समवायिकारण जो काय तामें स्वसमवायिसमवेतत्वसंबंधसैं संबंधी हस्ततरुसंयोग है औ **कायतरुसंयोगका** जनक है. यातें असमवायिकारण है. स्व कहिये हस्ततरुसंयोग ताका समवायी हस्त है तामैं **समवेत जो काय** तिसके समवेतत्वधर्मही संबंध है इस-रीतिके परंपरासंबंधका सामानाधिकरण्य संबंधमें पर्यवसान होवैहै. एक अधि-करणमें वर्तनेकूं **सामानाधिकरण्य** कहे हैं. जिनकी एक अधिकरणमैं वृत्ति होवै तिनकूं **समानाधिकरण** कहे हैं इहां हस्ततरुसंयोग समवायसंबंधमैं हस्तमें रहेहै, औ कायभी समवायसंबंधमें हस्तमें रहै है यातें दोनूं समाना-धिकरण हैं. तिनका **सामानाधिकरण्यसंबंध** है. इहां काय औ संयोग हस्तमैं साक्षात संबंधसें रहैं हैं; यातें समानाधिकरण है. तैसैं एक साक्षात संबंधमैं रहै औ दूजा परंपरासंबंधसें रहै सोभी **समानाधिकरण** कहिये है. औ तिनका **सामानाधिरण्य संबंध** कहिये है. यह प्रत्यक्ष प्रमाणमैं कह्या है. हस्ततरु संयोगकी प्रतीति होनेसैंही कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवै है औ हस्ततरुके संयोगकूं नहीं देखै तिसकूं कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं कायतरुसंयोगका हस्ततरुसंयोग कारण है. यह **संयोगजसंयोगका** **उदाहरण** है. इसी संयोगकूं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्य-संयोग** कहैहैं. इहां दो संयोग हैं. एक हस्ततरुका संयोग है सो हेतुसंयोग

है औ कायतरुका संयोग **फलसंयोग** है या स्थानमैं कारणशब्दसैं फलसंयोगके आश्रयके समवायिकारणका ग्रहणहै यातैं फलसंयोगके आश्रय काय तरु दो हैं तिनमैं कायका समवायिकारण हस्त है, यातैं कारणशब्दसैं हस्तका ग्रहण है, अकारण शब्दसैं तरुका ग्रहण है. काहेतैं ? कायका वा तरुका समवायिकारण तरु नहीं होनेतैं अकारण है. तैसैं हेतुसंयोगके आश्रयतैं जन्यका कार्यशब्दसैं ग्रहण है, हेतुसंयोगके आश्रयतैं अजन्यका-अकार्यशब्दसैं ग्रहण है. हेतु संयोगके आश्रय हस्त औ तरु हैं तिनमैं हस्तजन्य जो काय सो **कार्य** है. औ हस्तसैं तथा तरुसैं अजन्य जो तरु सो **अकार्य** है. इस रीतिसैं कारण जो हस्त औ अकारण तरु तिनके संयोगतैं कार्य जो काय औ अकार्य तरु तिनका संयोग उपजै है; यातैं इस संयोगकूं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग** कहैहैं. **संयोगजसंयोग** इसी प्रकारका होवै है. अन्यथा कर्मजसंयोगही है. जहां कपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै औ कपालसंयोगतैं कपालाकाशका संयोग होवै तहांभी **कर्मजही संयोग** है, **संयोगजसंयोग** नहीं. काहेतैं ? जिसकपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै तिस कपालकर्मतैं ही कपालआकाशका संयोग उपजै है, कपालद्वयका संयोग औ कपाल आकाशका संयोग दोनूं एक क्षणमैं होवै हैं. तिनका परस्पर कार्यकारणभाव संभवै नहीं, यातैं कपालद्वयके संयोगकी नाईं कपाल-आकाशसंयोगभी कपालकी क्रियातैंही उपजनेतैं कर्मजही संयोग है. उक्त प्रकारसैं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग** औ **अन्यतरकर्मजसंयोग** तैसैं **उभयकर्मजसंयोग** भेदतैं **तीनही प्रकारका संयोग** है औ कोई ग्रंथकार **सहजसंयोग** भी मानैहैं जैसैं सुवर्णमैं पीतरूप औ गुरुत्वके आश्रय पार्थिवभागका औ अग्निसंयोगसैं जाका नाश होवै नहीं ऐसैं द्रव्यत्वके आश्रयतैं तैजसभागका **सहजसंयोग**है. संयोगीके जन्मके साथ उपजै ताकूं **सहजसंयोग** कहैहैं. सुवर्णकूं केवल पार्थिव कहैं तौ जंतु आदि-

कपार्थिवके द्रव्यत्वका अग्निसंयोगतैं नाश होनेतैं सुवर्णके द्रव्यत्वका अग्नि-संयोगतैं नाश हुया चाहिये. औ केवल तैजस मानैं तो पीतरूप औ गुरुत्वका अभाव चाहिये.यातैं सुवर्णमैं तैजस पार्थिवभाग संयुक्त है औ **मीमांसक** नित्य संयोगभी मानैं हैं.

इसरीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं **असमवायिकारण** अवयवसंयोग है, औ गुणकी उत्पत्तिमैं कहूं गुण कहूं क्रिया **असमवायिकारण**है.समवायिकारण औ निमित्तकारणके लक्षण तामैं संभवैं नहीं; किंतु समवायिकारणमैं संबंधी जो कार्यका जनक सो तीसरा असमवायिकारण होनेतैं समवायी असमवायी निमित्त भेदसैं **कारण तीन प्रकारका** है; यह नैयायिक वैशेषिकके अनुसारी ग्रंथनमैं लिख्या है.

उभयकारणके अंगीकारपूर्वक तीसरे असमवायिकारणका खण्डन ॥ २ ॥

तथापि न्याय वैशेषिकभिन्न मतमैं उपादानकारण औ निमित्तकारणभेदसैं दो प्रकारकाही कारण मानैं हैं. जाकूं नैयायिक असमवायिकारण कहैं हैं ताकूं निमित्तकारणही कहैंहैं. औ जो पूर्व कह्या निमित्तकारणका लक्षण असमवायिकारणमैं नहींहै **ताका यह समाधान** हैः—कार्यमैं तटस्थ होवै औ कार्यका जनक होवै यह **निमित्तकारणका लक्षण त्रिविधकारणवादीकी** रीतिमैं कह्याहै.**द्विविधकारणवादीकी** रीतिसैं तौ उपादानकारणतैं भिन्न जो कारण सो **निमित्तकारण** कहियेहै,सो निमित्तकारण अनेकविध है. कोई तौ कार्यके उपादानमैं समवेत है, जैसैं घटका निमित्तकारण कपालसंयोग है सो घटके उपादानकारण कपालमैं समवेत है; औ कोई निमित्तकारणही कार्यके उपादानके उपादानमैं समवेत है; जैसैं पटके रूपका निमित्तकारण तंतुका रूप हैं सो पटरूपका उपादान जो पट ताके उपादान तंतुमैं समवेत है; तैसैं कोई निमित्तकारण कर्त्तारूप चेतनहै सो स्वतंत्रहै. जैसैं घटका निमित्तकारण कुलाल है औ कोई निमित्तकारण जड हैं सो कर्ताके

व्यापारके अधीन हैं; जैसें घटके कारण दंडादिक हैं. इसरीतिसें निमित्त कारणके अनेक भेद हैं. किंचित् विलक्षणतासैं असमवायिकारणता पृथक्‌मानें तौ घटके कारण कपालसंयोगमें औ घटरूपके कारण कपालरूपमैंभी कारणताका भेद मानना चाहिये. काहेतें? घटका कारण कपालसंयोग तौ कार्यके उपादानमैं समवेत है औ घटरूपका कारण कपालरूप कार्यके उपादानके उपादानमें समवेत है; इसरीतिसें विलक्षण कारण है. तौ भी इन दोनूंकूं **असमवायिकारण** ही नैयायिक कहै हैं; तिनमैं परस्पर विलक्षण-कारणता मानैं नहीं. तैसें चेतन जड भेदतैं विलक्षणता हुयेंभी **निमित्त-कारण**ही तिनकूं कहैं हैं; परस्पर विलक्षणकारणता तिनमैंभी मानैं नहीं औरभी **निमित्तकारणमें अनेक विलक्षणता** है. कोई तौ कार्यकाल-वृत्ति होवै है औ कोई कार्यकालसें पूर्वकालवृत्ति होवै है. जैसें जलपात्रके सन्निधानमैं भित्तिमें सूर्यकी प्रभाका प्रतिबिंब होवैहै; तामैं सन्निहित जल-पात्र **निमित्तकारण** है; ताके अपसारणतें प्रतिबिंबका अभाव होनेतें सन्निहित जलपात्र कार्यकालवृत्ति **निमित्तकारण** है औ प्रत्यक्षज्ञानमें विषय **निमित्तकारण** होवैहै, सोभी कार्यकालवृत्ति होवैहै, औ दंडादिक घटके **निमित्तकारण** हैं सो कार्यकालसें पूर्वकालमें वृत्ति **निमित्तकारण** हैं; इसरीतिसें निमित्तकारणमैं औ असमवायिकारणमें अवांतर अनेक भेद होनेतें भी समवायिकारणसें भिन्नमैं द्विविधकारणताही मानी है. कहूं असमवायिकारणता है, कहूं निमित्तकारणता है, तैसें समवायिकारणसैं भिन्न सकल कारणमैं एकविधकारणताही माननी चाहिये, तासमवायि-कारणसैं भिन्न कारणकूं असमवायिकारण कहो अथवा निमित्तकारण कहो, समवायिकारण संबंधित्व असंबंधित्व अवांतरभेदसें पृथक् संज्ञाकरण निष्प्रयोजन है; यातैं समवायिकारण निमित्तकारण भेदसैं **कारण दो प्रकारका** है.

और जो ऐसें कहैं:—जैसें असमवायिकारण निमित्तकारणकी पृथक् संज्ञा

निष्प्रयोजन है तैसैं समवायिकारण औ निमित्तकारणकी परस्पर विलक्षणता ज्ञानसैंभी पुरुषार्थ प्राप्ति होवै नहीं औ लोकमैंभी कारणतामात्रही प्रसिद्ध है. समवायिकारणता निमित्तकारणता; प्रसिद्ध नहीं, यातैं लोकव्यवहारका ज्ञानभी द्विविध कारणता निरूपणका प्रयोजन नहीं; किंतु कार्य कारण-भावका व्यवहार लोकमैं होवै है; यातैं जिसके होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति होवै औ जिसके नहीं होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति नहीं होवै ऐसा जो कार्यके अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति सो कारण कहिये है, इसरीतिसैं कारणका साधारणलक्षणही कह्या चाहिये. ताके भेदद्वयका निरूपणभी निष्प्रयोजनहै या शंकाका यह समाधान है:—यद्यपि कारणके भेदद्वयनिरूपणमैं पुरुषार्थसिद्धि वा लोकव्यवहारसिद्धि प्रयोजन नहीं है, तथापि पुरुषार्थका हेतु अद्वैतज्ञान है ताका उपयोगी द्विविधकारण निरूपण है, तथाहि:— सर्वजगतका कारण ब्रह्म है औ कारणसैं अभिन्न कार्य होवैहै यातैं सकल जगत् ब्रह्म है, तासैं पृथक् नहीं, इसकूं सुनिकै जिज्ञासुकै ऐसी शंका होवैहै:—कारणसैं पृथक् कार्य नहीं होवै तौ दंडकुलालादिकनतैंभी घट पृथक् नहीं चाहिये? ताका यह समाधान है:—उपादान औ निमित्त-भेदसैं कारण दोप्रकारका होवैहै, तिनमैं उपादानकारणसैं अभिन्न कार्य होवै है जैसैं मृतपिंडसैं अभिन्न घट है औ सुवर्णसैं अभिन्न कटककुंडलादिक हैं, लोहेसैं अभिन्न नखनिकृन्तन क्षुरादिक हैं; औ निमित्तकारणसैं अभिन्न कार्य होवै नहीं; किंतु भिन्न होवै है. तैसैं ब्रह्मभी जगत्का उपादानकारण है यातैं सकल जगत् ब्रह्मही है तासैं भिन्न नहीं; इसरीतिसैं कारणके भेदद्वयका निरूपण अद्वैतज्ञानका उपयोगी है. अन्यविधकारणकी परस्पर विलक्षणता निरूपण अफल है, यातैं तत्त्वज्ञानोपयोगी पदार्थनिरूपणके ग्रन्थनमैं कारणका तृतीयभेदनिरूपण असंगत है.

न्यायवैशेषिक अनुसारी ग्रन्थनमैं तत्त्वज्ञानोपयोगी पदार्थ निरूपणकी प्रतिज्ञा करिकै तत्त्वज्ञानमैं अत्यंत अनुपयोगी पदार्थनका विस्तारसैं निरूप-

णतैं प्रतिज्ञाभंग होवै है जो इसरीतिसैं तार्किक कहै:—तत्त्वज्ञानका हेतु मनन है, "आत्मा इतरपदार्थभिन्नः आत्मवत्त्वात् । यो न इतरभिन्नः किंतु इतरः स नात्मा यथा घटः" इस व्यतिरेकी अनुमानतैं आत्मामैं इतर भेदका अनुमितिज्ञान होवै सो **मनन** कहिये है. औ इतर पदार्थनके ज्ञानविना आत्मामैं इतरभेदका ज्ञान संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगीज्ञानविना भेद-ज्ञान होवै नहीं, यातैं आत्मामैं इतर भेदकी अनुमितिरूप मननका उपयोगी इतर पदार्थनका निरूपणभी तत्त्वज्ञानका उपयोगी है, सो संभवै नहीं. काहेतैं ? श्रुत अर्थके निश्चयके अनुकूल प्रमेयसंदेहनिवर्तक युक्तिचिंतनकूं **मनन** कहैं हैं औ भेदज्ञानसैं अनर्थ होवैहै "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि-वाक्यनतैं अभेदसैं सकल वेदका तात्पर्य है. "द्वितीयाद्वै भयं भवति । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" इत्यादिवाक्यनतैं भेदज्ञानकी निंदा करी है; यातैं भेदज्ञानकूं साक्षात् वा तत्त्वज्ञानद्वारा पुरुषार्थजनकता संभवै नहीं औ मननपदसैंभी आत्मासैं इतर भेदकी प्रतीति होवै नहीं. मननपदका चिंतनमात्र अर्थ है, वाक्यांतरके अनुरोधसैं अभेदचिंतनमैं मनन शब्दका पर्यवसान होवैहै; किसी प्रकारसैं आत्मासैं इतर भेद मननशब्दका अर्थ संभवै नहीं. किंचः—इतरपदार्थनके ज्ञानसैं ही जो पुरु-षार्थसाधन तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होवै तौ सकल पुरुषनकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई चाहिये, अथवा किसीकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होवैगी. तथाहि:—जो इतर पदार्थनका सामान्यज्ञान अपेक्षित होवै तौ सामान्यज्ञान सर्व पुरुषनकूं है, यातैं इतरज्ञानपूर्वक इतरभेदज्ञानतैं सर्वकूं तत्त्वज्ञान हुया चाहिये. औ सर्व पदार्थनका असाधारण धर्मस्वरूप विशेषरूपतैं इतर ज्ञान अपेक्षित होवै तौ सर्वज्ञ ईश्वर विना असाधारण धर्मतैं सकल इतरका किसीकूं ज्ञान संभवै नहीं; यातैं इतरज्ञानके असंभवतैं इतरभेद ज्ञानके अभावतैं तत्त्वज्ञान किसीकूं नहीं होवैगा; यातैं प्रमाणादिक निरूपण विना बहुतपदार्थनका निरूपण निष्प्रयोजन होनेतैं कारणमैं तृतीयभेद निरूपण अनपेक्षित है.

औ जो तार्किक कहैहैं—भावकार्यकी उत्पत्ति त्रिविध कारणसैं होवैहै **पंचविध अभाव** है, तिनमैं **प्रागभाव** तौ अनादि सांत है, यातैं ताका नाश तौ होवैहै उत्पत्ति होवै नहीं. **अन्योन्याभाव अत्यंताभाव** अनादि अनंत हैं. यातैं तिनकी भी उत्पत्ति होवै नहीं. **सामयिकाभाव** सादि सांत है, ताके उत्पत्ति नाश दोनूं होवैहैं, **प्रध्वंसाभाव** अनन्त सादि है, यातैं ताका नाश तौ होवै नहीं उत्पत्ति होवैहै. इसरीतिसैं दो अभावकी उत्पत्ति होवैहै, यातैं दोनूं कार्य हैं; तिनके समवायिकारण असमवायिकारण तौ संभवैं नहीं, काहेतें ? जामें समवायसंबंधसैं कार्य उपजै सो **समवायिकारण** कहियेहै; किसीमैं समवायसंबंधसैं अभाव रहै नहीं, यातैं ताका समवायिकारण संभवै नहीं. औ समवायिकारणमैं संबंधी जो कार्यका जनक सो **असमवायिकारण** कहिये है, समवायिकारणके अभावतैं तामें संबंधी जनकके असंभवतैं असमवायिकारणभी अभावका संभवै नहीं; यातैं केवल निमित्तकारणसैं सामयिकाभाव औ प्रध्वंसाभाव उपजैं हैं. भूतलादिदेशमैं घटके सामयिकाभावका भूतलादिदेशतैं घटका अपसारण निमित्तकारण है. घटके प्रध्वंसाभावका निमित्तकारण घट है. तैसैं घटमैं मुद्गरादिकनका संयोगभी घटध्वंसका निमित्तकारण है; इसरीतिसैं अभावकार्य तौ निमित्तकारणमात्रजन्य है, तथापि यावत् भावकार्य त्रिविधकारणजन्य है **यह नियम** है. इस तार्किकवचनका सर्गके आदिकालमें जो ईश्वरकी चिकीर्षासैं परमाणुमें क्रिया होवै तामैं व्यभिचार है. काहेतें ? तिस परमाणुकी क्रियाका परमाणु समवायिकारण है औ ईश्वरेच्छादिक निमित्तकारण हैं. परमाणुमें संबंधी कोई क्रियाका जनक होवै तौ असमवायिकारण होवै सो परमाणुमें संबंधी तिस क्रियाका जनक कोई है नहीं; यातैं सर्गारंभमैं परमाणुकी क्रिया कारणद्वयजन्य है कारणत्रयजन्य नहीं; यातैं तार्किकका उक्तनियम संभवै नहीं; औ **सिद्धांतमतमैं** तौ यावत भावकार्य उपादाननिमित्तकारणजन्य है. **यह नियम** है ताका कहूंभी

व्यभिचार नहीं. जहां कारणत्रयजन्य कार्य कहैं हैं तहांभी तार्किक अभिमत असमवायिकारणभी निमित्तकारणही है; यातैं सकल भावकार्यकूं द्विविधकारणजन्यता है; इसरीतिसैं उपादान औ निमित्तभेदतैं **कारण दो प्रकारका** होवैहै. साधारण असाधारण भेदसैं भी **कारणके दो भेद** कहैं हैं, ईश्वरादिक **नव साधारणकारण** हैं, तिनसैं भिन्न घटादिकनके कपालादिक **असाधारणकारण** हैं, तिनमैं भी कोई निमित्तकारण है कोई उपादानकारण है. उपादानकारण निमित्तकारणसैं भिन्न कारण अलीक हैं.

वृत्तिज्ञानका उपादाननिमित्तकारण औ सामान्यलक्षण ॥ ३ ॥

अंतःकरणकी ज्ञानरूपवृत्तिका **उपादानकारण** अंतःकरण है औ प्रत्यक्षादिक प्रमाण तथा इंद्रियसंयोगादिक व्यापार **निमित्तकारण** है; औ ईश्वरके ज्ञानरूपवृत्तिका **उपादानकारण** माया है; अदृष्टादिक **निमित्तकारण** हैं; भ्रमवृत्तिका उपादान कारण अविद्याहै, निमित्तकारण दोष है; यह वार्ता ख्यातिनिरूपणमैं स्पष्ट होवैगी; इसरीतिसैं वृत्तिके कारण जानने.

वृत्तिका लक्षण ग्रंथके आरंभमैं कह्या है. विषयप्रकाशका हेतु अंतःकरण औ अविद्याका परिणाम **वृत्ति** कहिये है; यह **वृत्तिका लक्षण** कह्या है औ कितने ग्रंथनमैं अज्ञान नाशक परिणाम वृत्ति कहैं हैं, औ परोक्ष ज्ञानसैंभी असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश होवै है, अथवा विषयचेतनस्थ अज्ञानका नाश तौ अपरोक्षज्ञानविना होवै नहीं. प्रमातृचेतनस्थ अज्ञानका नाश परोक्षज्ञानसैं भी होवै है, यातैं परोक्षवृत्तिमैं उक्तलक्षणकी व्याप्ति नहीं तथापि सुखदुःखके ज्ञानरूपवृत्तिमैं औ मायावृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानमैं तथा शुक्तिरजतादिगोचर भ्रमरूप अविद्यावृत्तिमैं उक्त लक्षणकी व्याप्ति है, काहेतैं ? प्रथम अज्ञात सुखादिक उपजैं पाछे तिनका ज्ञान होवै तौ सुखादिज्ञानतैं तिनके अज्ञानका नाश संभवै सो अज्ञात सुखादिक हैं नहीं; किंतु सुखादिक औ तिनका ज्ञान एक कालमैं उपजैंहैं, यातैं अज्ञात सुखादिकनके अभावतैं सुखादिगोचरवृत्तिसैं अज्ञानका नाश संभवै नहीं; तैसैं ईश्वरकूं असाधारण

रूपतें सकल पदार्थ सदा प्रत्यक्ष प्रतीत होवैं हैं, यातें अज्ञानके अभावतें मायाकी वृत्तिरूप ज्ञानतैंभी अज्ञानका नाश संभवै नहीं शुक्ति रजतादिक मिथ्या पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकीभी एककालमैं उत्पत्ति होवै है, यातैं भ्रमवृत्तिसैंभी अज्ञानका नाश होवै नहीं. तैसैं धारावाहिक वृत्ति होवै तहांभी उक्त लक्षणकी द्वितीयादिवृत्तिमें अव्याप्ति है. काहेतें? ज्ञानधारा होवै तहां प्रथम ज्ञानसैं अज्ञानका नाशहुये द्वितीयादिक ज्ञानकूं अज्ञानकी नाशकता संभवै नहीं. यातें प्रकाशक परिणामकूं **वृत्ति** कहैहैं. याका भाव यह है:— अस्ति व्यवहारका हेतु जो अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम सो **वृत्ति** कहिये है. प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहैं भी अज्ञातपदार्थगोचरवृत्तिमें ही प्रकाशकता है औ अनावृतगोचर वृत्तिमैं प्रकाशकता है नहीं. काहेतें ? अनावृतचेतनके संबंधसैं ही विषयप्रकाशके संभवतें वृत्तिमैं प्रकाशकता-कल्पना अयोग्य है; यातैं वृत्तिमैं अज्ञाननाशकतासैं विना अन्यविध प्रकाशकताके असंभवतें द्वितीयलक्षणकी भी प्रथमलक्षणकी नाई सुखादि-गोचर वृत्तिमें अव्याप्ति होवैगी यातें अस्तिव्यवहारका हेतु अविद्या अंतःक-रणका परिणाम **वृत्ति** कहियें हैं, परोक्षवृत्तिमेंभी अस्तिव्यवहारकी हेतुता स्पष्ट है. घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्तिकूं घटादिज्ञान कहैहैं, यद्यपि अद्वैत सिद्धांतमैं वृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं **ज्ञान** कहैं हैं, अबाधितवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं **प्रमाज्ञान** कहैं हैं, बाधित जो रज्जु सर्पादिक तद्गोचरवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं **अप्रमाज्ञान** कहैहैं; तथापि चेतनमैं ज्ञानशब्दका प्रयोग तथा प्रमाशब्दका औ अप्रमा शब्दका प्रयोग वृत्तिसंबंधतें होवै है; यातैं वृत्तिकूंभी बहुत स्थानमैं **ज्ञान** कहैहैं; इसरीतिसैं प्रमा अप्रमा भेदमैं **दोप्रकारकी वृत्ति कही.**

प्रत्यक्षके लक्षणसहित प्रमाअप्रमारूप वृत्तिज्ञानका भेद ॥४॥

अप्रमाभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकी कही. ईश्वरका ज्ञान सुखादिगोचर ज्ञान **यथार्थअप्रमा** है, शुक्तिरजतादिक भ्रम **अय-थार्थ अप्रमा** है, जो प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान होवै सो **प्रमा** होवैहै, ईश्वर

ज्ञानादिक प्रमाणजन्य नहीं, यातैं प्रमा नहीं; दोषजन्य नहीं. यातैं भ्रमभी नहीं, औ बहुत ग्रंथनमैं तौ प्रमाका अन्यही लक्षण कह्या है, ताके अनुसार तौ ईश्वर ज्ञानादिकभी यथार्थज्ञान प्रमा हैं, परंतु यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति दो प्रकारकी है, सो दोनूं प्रकारकी प्रमा नहीं है; तिनके मतमैं प्रमाका यह लक्षण है. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान सो प्रमा कहिये है; शुक्तिरजतादिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न हैं, अबाधित अर्थकूं विषय करैं नहीं; किंतु बाधित अर्थकूं विषय करैंहैं, यातैं प्रमा नहीं. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला स्मृति ज्ञानभी है. औ स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहार है नहीं; यातैं स्मृतिभिन्न जो अबाधित अर्थगोचरज्ञान सो प्रमा कहियेहै. यद्यपि अन्य यथार्थ ज्ञानकी नाईं यथार्थ स्मृति भी संवादिप्रवृत्तिकी जनक होनेतैं स्मृति साधारणही प्रमाका लक्षण चाहिये; तथापि संवादि प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैं भी है; सो प्रवृत्तिका उपयोगिप्रमात्व तौ अबाधित अर्थ गोचरत्वरूप है. प्रमाव्यवहारकी उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैं नहीं है; काहेतैं? लौकिक शास्त्रीय भेदमैं व्यवहारके दो भेद हैं. शास्त्रसैं बाह्य जो लोक शब्द प्रयोग करै सो लौकिक व्यवहार कहिये है; शास्त्रकी परिभाषासैं जो शब्दप्रयोग सो शास्त्रीयव्यवहार कहिये है; शास्त्रसैं बाह्य तौ कोई प्रमाव्यवहार करै नहीं; औ कोई पंडित तथा शब्दप्रयोग करै है तौ शास्त्रकी परिभाषाके संस्कारतैं करै है, यातैं केवल शास्त्रीय प्रमाव्यवहार है; औ प्राचीन ग्रंथकारोंनैं स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ ज्ञानमैंही प्रमाव्यवहार किया है, यातैं स्मृतिमैं व्यावृतही प्रमाका लक्षण कह्या चाहिये "यथार्थानुभवः प्रमा" यह प्रमाका लक्षण प्राचीन आचार्योंनैं लिख्या है, स्मृतिभिन्न ज्ञानकूं अनुभव कहैं हैं, यातैं स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं, औ प्रत्यक्षादि ज्ञानोंसैं विलक्षण स्मृति ज्ञान है. प्रत्यक्षादि सकल ज्ञानोंमैं अनुभवत्व है स्मृतिमैं नहीं है; यातैं अनुभवत्वके सत्त्वासत्त्वतैं प्रत्यक्षादिक औ स्मृति परस्पर विजातीय हैं; जैसैं प्रत्यक्ष

अनुमिति शाब्दादि ज्ञानोंमैं प्रत्यक्षत्व अनुमितित्व शाब्दत्वादिक विलक्षण धर्म होनेतैं प्रत्यक्षादिज्ञान परस्पर विजातीय है, विजातीय प्रमाके करणरूप प्रमाणभी प्रत्यक्ष अनुमान शब्दादिक भिन्न हैं, तैसें सकल अनुभवमैं विजातीय स्मृति है, ताका कारण अनुभव है, सो किसी प्रमाका करण नहीं यातैं प्रमाण नहीं. यद्यपि व्याप्तिका प्रत्यक्ष अनुमितिका करण होनेतैं अनुमान प्रमाण है तैसें पदका प्रत्यक्ष शब्दप्रमाण गवयमैं गोसादृश्यका प्रत्यक्ष उपमान प्रमाण है, औ प्रत्यक्ष ज्ञानभी अनुभवकाही विशेष है, यातें अनुभव प्रमाण नहीं. यह कथन असंगत है, तथापि व्याप्तिज्ञानत्वरूपतें व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु है,अनुभवत्वरूपतें व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु नहीं. तैसें पद-प्रत्यक्ष औ सादृश्य ज्ञानभी अनुभवत्वरूपतें शाब्दी प्रमा औ उपमिति प्रमाके हेतु नहीं स्मृतिज्ञानमैं अनुभवत्वरूपतैं पूर्वानुभव स्मृतिका हेतु है, यातें प्रमाण नहीं. जो स्मृतिज्ञानकूंभी **प्रमा** कहैं तौ विजातीयप्रमाका करण पृथक् प्रमाण होवैहै,यातें न्यायशास्त्रमैं तौ अनुभव नाम पंच प्रमाण कह्या चाहिये. भट्ट औ वेदांतमतमैं सप्तमप्रमाण कह्या चाहिये, यातें सकलग्रंथकारनकूं स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं औ जो कोई यथार्थज्ञानमात्रमैं प्रमाव्यवहार मानैं तौ तिसके अनुसार प्रमाके लक्षणमैं स्मृतिभिन्न ऐसा निवेश नहीं करना. अबाधित अर्थकूं विषयकरनेवाला ज्ञान **प्रमा** कहियेहै. भ्रम अनुभवजन्य अयथार्थस्मृति तौ बाधित अर्थकूं विषय करै है, यातें तामैं अतिव्याप्ति नहीं; औ यथार्थ अनुभवजन्य स्मृतिमैं लक्षण जावै तहां प्रमाव्यवहार इष्ट है, यातैं अतिव्याप्ति नहीं. अलक्ष्यमैं लक्षणका गमन होवै तौ **अतिव्याप्ति** होवै. यथार्थस्मृतिभी लक्ष्य है, यातैं अतिव्याप्ति नहीं; या मतके अनुसार यथार्थ अयथार्थ भेदसैं **वृत्ति दो प्रकारकी** है. यथार्थकूं **प्रमा** कहैं है, अयथार्थकूं **अप्रमा** कहैहैं: यामतमैं **प्रमाके सप्तभेद** हैं:—प्रत्यक्ष १ अनुमिति २ शाब्दी ३ उपमिति ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ ये षट् भेद हैं. तैसें यथार्थस्मृतिभी प्रमाका सप्तम भेद है, परंतु सकल ग्रंथनकी तौ-

यह मर्यादा है, स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार नहीं; यातैं प्रत्यक्षादि भेदतैं **प्रमारूपवृत्ति षट् प्रकारकी** है. बाह्य आंतरभेदमैं **प्रत्यक्ष प्रमा दो प्रकारकी** है. अबाधित बाह्यपदार्थगोचरवृत्ति **बाह्यप्रत्यक्षप्रमा** कहियेहै; औ श्रोत्रादि पंचइंद्रियतैं **पंचविध बाह्यप्रत्यक्षप्रमा** होवैहै. कहूं शब्दसैं भी बाह्यगोचर अपरोक्ष वृत्ति होवैहै, जैसें "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं स्थूल शरीरका अपरोक्ष ज्ञान है; इसरीतिसैं कारणभेदतैं **बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद** हैं. औ कितने ग्रंथकार अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभाव गोचर वृत्तिकूंभी अपरोक्षवृत्ति कहैं हैं, तिनके मतमैं श्रोत्रादिपंच इंद्रिय औ शब्द तथा अनुपलब्धि ये सप्त बाह्य प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं; यातैं बाह्य प्रत्यक्षप्रमा सप्तविध है, परंतु यह अर्थ पूर्व लिख्या है. धर्माधर्मकी नाईं प्रत्यक्षयोग्यता अभावमैं नहीं, यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतनमैं अभावावच्छिन्न चेतनका अभेद हुयेंभी अभावगोचरवृत्ति अपरोक्ष नहीं है, किंतु अनुमित्यादिकनकी नाईं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावगोचरवृत्ति प्रत्यक्ष वृत्तिसैं विलक्षण है, यातैं बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद हैं सप्त नहीं **आंतरप्रत्यक्षप्रमाभी दो प्रकारकी** है एक आत्मगोचर है दूसरी अनात्मगोचर है. **आत्मगोचरभी दो प्रकारकी** है. एक शुद्धात्मगोचर है दूसरी विशिष्टात्मगोचर है. **शुद्धात्म गोचरभी दो प्रकारकी** है. एक तौ ब्रह्मागोचर है दूसरी ब्रह्मगोचर है. त्वंपदार्थबोधक वेदांतवाक्यमैं "शुद्धः प्रकाशोऽहम" ऐसी अन्तःकरणकी वृत्ति होवै है, तावृत्तिदेशमैं ही अन्तःकरणउपहित शुद्धचेतन है; यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतन औ विषयावच्छिन्न चेतनका अभेद होनेतैं वह वृत्ति अपरोक्ष है, औ ता वृत्तिके विषय शुद्धचेतनमैं ब्रह्मताभी है परंतु ब्रह्माकार वृत्ति हुई नहीं. काहेतैं ? अवांतरवाक्यसैं वृत्ति हुई है, महावाक्यमैं होती तौ ब्रह्माकारभी होती. काहेतैं **शब्दजन्यज्ञानका यह स्वभाव** हैः—सन्निहित पदार्थकूं जिस रूपतैं शब्दबोधन करै तिस रूपकूंही विषय करै है औ जिस रूपतैं शब्द कहै. नहीं तिस रूपतैं शब्दजन्यज्ञान विषय करै नहीं. जैसैं दशमपुरुषकूं "दश-

मोऽस्ति" इसरीतिसैं कहै तब "दशमोऽहम्" इसरीतिसैं श्रोताकूं ज्ञान होवै नहीं. जैसैं दशममैं आत्मता है तथापि आत्मताबोधक शब्दाभावतैं आत्मताका ज्ञान होवै नहीं; तैसैं आत्मामैं ब्रह्मता सदा है तौभी ब्रह्मताबोधक शब्दाभावतैं ज्ञान होवै नहीं, यातैं उक्तवृत्ति **ब्रह्मागोचर शुद्धात्मगोचर आंतर प्रत्यक्षप्रमा** है.

प्रत्यक्षके संगतैं यह **शंका** होवैहैः--सिद्धांतमैं इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै इसका तौ अंगीकार नहीं; किंतु वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं विषयावच्छिन्नचेतनका अभेदही **ज्ञानकी प्रत्यक्षताका हेतु** है. जहां इंद्रियसंबंध घटादिक होवैं तहां इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाह्य जायकै विषयकै आकारकै समानाकार होयकै विषयतैं संबंधवती होवै है; यातैं वृत्तिचेतनकी औ विषयचेतनकी उपाधि एक देशमैं होनेतैं उपहित चेतनकाभी अभेद होवैहै तैसैं सुखादिकनका ज्ञान यद्यपि इंद्रियजन्य नहीं औ शुद्धात्मज्ञानभी शब्दजन्य है इंद्रियजन्य नहीं तथापि विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका भेद नहीं. काहेतैं ? सुखाकार वृत्ति अंतःकरणदेशमैं है औ सुखभी अंतःकरणमैं है; यातैं वृत्त्युपहित चेतन विषयोपहित चेतनका अभेद है. तैसैं आत्माकार वृत्तिका उपादानकारण अंतःकरण है औ अंतःकरण उपहित चेतनकै अभिमुख हुई है यातैं आत्माकार वृत्तिभी अंतःकरण देशमैं होवै है; सो अंतःकरणही शुद्ध आत्माकी उपाधि है; इसरीतिसैं दोनूं उपाधि एकदेशमैं होनेतैं वृत्तिचेतन विषयचेतनका अभेद होवै है, यातैं सुखादिज्ञान शुद्धात्मज्ञान प्रत्यक्षरूप हैं. इहां यह निष्कर्ष हैः—जहां विषयका प्रमातासैं वृत्तिद्वारा अथवा साक्षात्संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान **प्रत्यक्ष** है, सो विषयभी **प्रत्यक्ष** कहिये है; जैसैं घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब घट प्रत्यक्ष है ऐसा व्यवहार होवै है. बाह्यपदार्थनका वृत्तिद्वारा प्रमातासैं संबंध होवै है. सुखादिकनका प्रमातासैं साक्षात्संबंध है. अतीत सुखादिकनका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध नहीं, यातैं अतीत सुखादिकनका

ज्ञान स्मृतिरूप है प्रत्यक्षरूप नहीं. अतीत सुखादिकनकाभी प्रमातासैं संबंध तौ हुया है; तथापि प्रत्यक्ष लक्षणमें वर्त्तमानका निवेश है, प्रमातासैं वर्तमानसंबंधी योग्य विषय **प्रत्यक्ष** कहिये है, प्रमातासैं वर्तमानसंबन्धी योग्यविषयका ज्ञान **प्रत्यक्ष ज्ञान** कहिये है, योग्य नहीं कहैं तौ धर्मादिक सदा प्रमाताके संबंधी हैं; यातैं सदाही प्रत्यक्ष कहे चाहिये औ तिनका शब्दादिकनसैं ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष ज्ञान कह्या चाहिये धर्मादिक प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं लक्षणमें योग्यपदके निवेशतैं दोष नहीं; योग्यता अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय है, जा वस्तुमें प्रत्यक्षताका अनुभव होवै तामें **योग्यता** औ जामें प्रत्यक्षताका अनुभव नहीं होवै तामैं **अयोग्यता** यह अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं ज्ञान होवैहै; योग्यता अयोग्यता इसरीतिसैं नैयायिकनकूं भी माननी चाहिये; तिनके मतमैं सुखादिक औ धर्मादिक आत्माके धर्म हैं, तिनमें मनःसंयुक्त समवायसंबन्ध सर्वसैं मनका है तथापि योग्यता होनेतैं सुखादिकनका मानस साक्षात्कार होवै है; औ योग्यताके अभावतैं धर्मादिकनका साक्षात्कार होवै नहीं; यातैं योग्यता अयोग्यता सर्वमतमैं अंगीकरणीय है; इसरीतिसैं प्रत्यक्षयोग्य वस्तुका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध होवै तहां प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै

या अर्थमैं **यह शंका** है:—ब्रह्मगोचरज्ञान परोक्ष नहीं हुयाचाहिये. काहेतें ? ब्रह्मका प्रमातासैं असंबन्ध होवै तौ बाह्यादि ज्ञानकी नाई ब्रह्मज्ञानभी परोक्ष होवै. जब अवांतर वाक्यसैं सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनंतस्वरूप ब्रह्म है ऐसी वृत्ति होवै तिसकालमैंभी ब्रह्मका प्रमातासैं संबंध है, यातैं अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी प्रत्यक्षही हुया चाहिये औ सिद्धांतमें अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं किंतु **परोक्ष** है सो उक्त रीतिसैं संभवै नहीं.

या शंकाका **यह समाधान** है:—प्रत्यक्ष लक्षणमें विषयका योग्यताविशेषण कह्या है तैसैं योग्यप्रमाणजन्यता ज्ञानका विशेषण है यातैं उक्त दोष नहीं. काहेतैं? प्रमातासैं वर्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका योग्यप्रमाणज-

न्यज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. या लक्षणमैं उक्तदोष नहीं. काहेतें? वाक्यका यह स्वभाव है. श्रोताके स्वरूपबोधक पदघटित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै; श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहितवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है, विषयसन्निहित होवै औ प्रत्यक्षयोग्य होवै तौभी स्वरूपबोधक पदरहित वाक्यतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं. जैसैं दशमबोधक द्विविध वाक्य है एकतो "दशमोऽस्ति" ऐसा वाक्य है औ दूसरा "दशमस्त्वमसि" ऐसा वाक्य है. तिनमैं प्रथम वाक्य तौ श्रोताके स्वरूप बोधक पदरहित है. औ दूसरा वाक्य श्रोताके स्वरूपका बोधक जो त्वंपद तासैं घटित कहिये युक्त है; तिनमैं प्रथमवाक्यसैं श्रोताकूं दशमका परोक्षज्ञान ही होवै है,वाक्यजन्यज्ञानका विषय दशम पुरुष है सो दोनूं स्थानमैं अतिसन्निहित है. जो स्वरूपसैं भिन्न होवै औ संबंधी होवै सो सन्निहित होवैहै. दशम पुरुष श्रोताके स्वरूपसैं भिन्न नहीं, किंतु श्रोताका स्वरूप है, यातैं अतिसन्निहित है औ प्रत्यक्षयोग्य है. जो प्रत्यक्षयोग्य नहीं होवै तौ द्वितीयवाक्यसैं भी दशमका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं चाहिये औ द्वितीयवाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है यातैं प्रत्यक्षयोग्य है. इसरीतिसैं अतिसन्निहित औ वाक्यजन्य प्रत्यक्ष योग्य दशमका जो वाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं वह वाक्य अयोग्य है.द्वितीय वाक्यसैं तिसी दशमका अपरोक्ष ज्ञान होवैहै, यातैं द्वितीय वाक्य योग्य है.वाक्यनकी योग्यता अयोग्यतामैं और तौ कोई हेतु है नहीं,स्वरूपबोधक पदघटितत्व औ स्वरूपबोधक पदरहितत्वही योग्यताके औ अयोग्यताके संपादक हैं. इसरीतिसैं "दशमस्त्वमसि"यह वाक्य तो योग्य प्रमाण है तिसतैं जन्य"दशमोऽहम्"यह प्रत्यक्ष ज्ञान है तैसैं"दशमोऽस्ति" यह वाक्य अयोग्यप्रमाण है, तिसतैं जन्य कहिये उत्पन्न जो "दशमः कुत्रचिदस्ति" ऐसा दशमका ज्ञान सो परोक्ष है. तैसैं ब्रह्मबोधकवाक्यभी दो प्रकारके हैं. ("सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म") इसरीतिके अवांतरवाक्य हैं. ("तत्त्वमसि") इस रीतिके महावाक्य हैं अवांतरवाक्यनमैं श्रोताका स्वरूपबोधक पद नहीं है यातैं प्रत्यक्षज्ञानके जननमैं योग्य अवांतरवाक्य नहीं औ महावाक्यनमैं श्रोताके स्वरूपके

बोधक त्वमादिपद हैं यातैं प्रत्यक्ष ज्ञानजननमैं योग्य महावाक्य है; इस-रीतिसैं योग्यप्रमाण महावाक्य है तिनसैं उत्पन्न हुया **ज्ञान प्रत्यक्ष** है. औ अयोग्यप्रमाण "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादि वाक्य हैं; तिनसैं उपज्या ब्रह्मका **ज्ञान परोक्ष** होवै है. **अवांतर वाक्यभी दोप्रकारके** हैं; तत्पदा-र्थके बोधक हैं औ त्वंपदार्थके बोधक हैं. तिनमैं तत्पदार्थबोधक वाक्य तौ अयोग्य हैं, औ "य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" इत्यादिक त्वंपदार्थबोधक अवांतरवाक्यभी महावाक्यनकी नाईं योग्य है अयोग्य नहीं. काहेतैं? श्रोताके स्वरूपके बोधक तिनमैं पद हैं, यातैं त्वंपदार्थबोधक अवांतर वाक्यनतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है परंतु वह अपरोक्ष ज्ञान ब्रह्माभेदगोचर नहीं, यातैं परम पुरुषार्थका साधक नहीं; किंतु परम पुरुषार्थका साधक जो अभेदज्ञान तामैं पदार्थशोधनद्वारा उपयोगी है. इसरीतिसैं प्रमातासैं संबंधीभी ब्रह्म है औ योग्य है, तथापि अयोग्य जो अवांतर वाक्य तिनसैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै है.

या कहनेमैं **अन्यशंका** होवैहैः—प्रमातासैं वर्तमान सम्बंधवाला—जो यो-ग्यविषय ताका योग्य प्रमाणजन्य ज्ञान **प्रत्यक्षज्ञान** कहियेहै. या कहनेमैं सुखादिकनके प्रत्यक्षमैं उक्त लक्षणका अभाव है. काहेतैं? सुखादि प्रत्यक्षमैं प्रमाणजन्यताके अभावतैं योग्य प्रमाणजन्यता सर्वथा सम्भवै नहीं. यातैं उक्त लक्षणमैं अव्याप्ति दोष है.

या शंका यह **समाधान** हैः—योग्यप्रमाणजन्यताका लक्षणमैं प्रवेश नहीं; किंतु अयोग्यप्रमाणजन्यताका प्रवेश है. यातैं अव्याप्ति नहीं; काहेतैं? प्रमातासैं वर्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका जो अयोग्य-प्रमाणसैं अजन्यज्ञान सो **प्रत्यक्ष ज्ञान** कहिये है; इसरीतिसैं कहे अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानकी व्यावृत्ति होवैहै. उक्तरीतिसैं ब्रह्ममात्रके बोधक अवांतरवाक्य अयोग्यप्रमाण हैं. "ब्रह्मास्ति" यह परोक्ष ज्ञान तिनतैं जन्य है अजन्य नहीं, यातैं परोक्ष ज्ञानमैं लक्षण जावै नहीं. औ सुखादिगोचर

ज्ञानका संग्रह होवै है. काहेतैं ? सुखादिगोचर ज्ञान किसी प्रमाणतैं जन्य नहीं, यातैं अयोग्यप्रमाणतैं अजन्य है. औ इंद्रियजन्य घटादिज्ञान तैसैं महावाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान योग्य प्रमाण जन्य होनेतैं अयोग्य प्रमाणसैं अजन्य है, यातैं **प्रत्यक्ष ज्ञानका उक्त लक्षण** दोषरहित है.

पूर्व प्रसंग यह है:—**शुद्धात्मगोचरप्रमा दो प्रकारकी** है. एक ब्रह्मागोचर है दूसरी ब्रह्मगोचर है. **ब्रह्मगोचर** कहि आये महावाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इसरीतिसैं ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माकूं जो विषय करै सो **ब्रह्मगोचर शुद्धात्मगोचर प्रत्यक्ष प्रमा** है.

"अहं ब्रह्मास्मि" या ज्ञानकूं **वाचस्पति मनोजन्य** कहै हैं औरनके मतमें यह ज्ञान वाक्यजन्य है तामैंभी इतना भेद है. **संक्षेपशारीरकका यह सिद्धांत** है:—महावाक्यतै ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवैहै कदीभी परोक्ष ज्ञान महावाक्यतैं होवै नहीं. अन्य ग्रंथकारोंका यह मत है:—विचारसहित महावाक्यतैं अपरोक्ष ज्ञान होवैहै, विचाररहित केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है, सर्वके मतमैं "अहं ब्रह्मास्मि"यह ज्ञान **शुद्धात्मगोचर** है औ ब्रह्मगोचर है तैसैं प्रत्यक्ष है, या अर्थमैं किसीका विवाद नहीं. **शुद्धात्मगोचरप्रमाके दो भेद** कहे औ **विशिष्टात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाके** अनंत भेद हैं, "अहमज्ञः, अहं कर्ता, अहं सुखी, अहं दुःखी अहं मनुष्य" इमते आदि अनंत भेद हैं. यद्यपि अबाधित अर्थकूं विषय करै सो ज्ञान प्रमा कहिये है, "अहं कर्ता" इत्यादिक ज्ञानका "अहं न कर्ता" इत्यादिक ज्ञानसै बाध होवै है. ताकूं प्रमा कहना संभवै नहीं. तथापि संसारदशामैं अबाधित अर्थकूं विषय करै सो **प्रमा** कहिये है. संसारदशामैं उक्तज्ञानोंका बाध होवै नहीं यातैं **प्रमा** है, इसरीतिसैं **आत्मगोचर आंतरप्रत्यक्षप्रमाके** भेद कहे. औ "मयि सुखम् मयि दुःखम्" इत्यादिक सुखादिगोचर ज्ञानभी **आत्मगोचरप्रत्यक्ष प्रमा** है परंतु "अहं सुखी, अहं दुःखी" इत्यादिक प्रमामैं तौ अहंपदका अर्थ आत्मा विशेष्य है और सुखदुःखादिक विशेषण हैं. "मयि सुखं मयि

दुःखम्" इत्यादिक प्रमामैं सुखदुःखादिक विशेष्य हैं आत्मा विशेषण है; यातैं "मयि सुखम्, मयि दुःखम्"इत्यादिक ज्ञानकूं आत्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा नहीं कहैहैं किंतु सुखादिक विशेष्य होनेतैं अनात्मगोचर आंतरप्रत्यक्ष प्रमा कहैं हैं. वाचस्पतिके मतमैं विशिष्टात्मज्ञान औ सुखादिज्ञान मनोजन्य हैं. औ सिद्धांतमैं अंतःकरणविशिष्ट आत्मामैं अन्तःकरणभाग साक्षीभास्य है औ चेतनभाग स्वयंप्रकाश है; तैसें सुखादिकभी साक्षीभास्य हैं. कोई ज्ञान मनोजन्य नहीं, यातैं मन इंद्रिय नहीं; इस रीतिसैं स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ वृत्तिकूं प्रमा कहैं हैं; ताके भेद कहे; स्मृतिरूप अंतःकरणकी वृत्तिभी यथार्थअयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकी है तिनमैं यथार्थ स्मृति दो प्रकारकी है; आत्मस्मृति औ अनात्मस्मृति तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य अनुभवतैं आत्मतत्त्वकी स्मृति यथार्थ आत्मस्मृति है, व्यावहारिक प्रपंचका मिथ्यात्वअनुभव हुयां ताके संस्कारतैं मिथ्यात्वरूपतैं प्रपंचकी स्मृति यथार्थ अनात्मस्मृति है; तैसें अयथार्थ स्मृतिभी दो प्रकारकी है: एक आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति है औ अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. अहंकारादिकनमैं आत्मत्वभ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं अहंकारादिकनमैं आत्मत्वकी स्मृति आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. तैसें आत्मामें कर्तृत्व अनुभवके संस्कारतैं 'आत्मा कर्ता है' यह स्मृतिभी आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. औ प्रपंचमैं सत्यत्व भ्रमके संस्कारतैं 'प्रपंच सत्य है' यह स्मृति अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. यथार्थअयथार्थभेदसैं वृत्ति दो प्रकारकी कही, स्मृतिभिन्न यथार्थवृत्ति प्रमा कही, यथार्थअनुभवजन्य स्मृति यथार्थ कही औ अयथार्थअनुभवजन्य स्मृति अयथार्थ कही. अनुभवमैं यथार्थता अबाधित अर्थकृत है; अबाधित अर्थविषयक अनुभव यथार्थ कहियेहै, प्रमा कहियेहै; यातैं अबाधित अर्थके अधीन अनुभवमैं यथार्थता है औ स्मृतिमैं यथार्थता औ अयथार्थता अनुभवके अधीन है; स्मृतिसैं भिन्न जो ज्ञान ताकूं अनुभव कहैहैं, सोभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो

प्रकारका है. यथार्थानुभव तौ कह्या अब **अयथार्थानुभवका निरूपण** करैहैं अयथार्थस्मृतिका निरूपण तौ पूर्व कह्या है सोभी अनुभवके अयथार्थता अधीन है; यातैं अयथार्थानुभवका निरूपण कह्या चाहिये.

संशयरूपभ्रमका लक्षण और भेद ॥ ८ ॥

अयथार्थानुभव दो प्रकारका हैः-एक संशयरूप है औ दूसरा निश्चयरूप है. अयथार्थकूंही **भ्रम** कहै हैं, संशय ज्ञानभी **भ्रम** है. काहेतें ? स्वभावाधिकरणमें अवभासकूं **भ्रम** कहैहैं औ संशय ज्ञानभी परस्पर विरुद्ध उभयविषयक होवै है. तिनमें एकका अभाव होवै है यातें संशयमें भ्रमका लक्षण है. एक विशेष्यमें विरुद्ध दो विशेषणका ज्ञान **संशय** कहियेहै. जैसें स्थाणुका "स्थाणुर्न वा" ऐसा ज्ञान होवै अथवा "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा ज्ञान होवै दोनूंकूं **संशय** कहै हैं. तहां स्थाणु विशेष्य है स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभाव विशेषण है. दोनूं विरुद्ध हैं. एक अधिकरणमैं साथि रहैं नहीं, यातैं स्थाणुरूप एक विशेष्यमें स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभावरूप विरुद्ध उभयविशेषणका ज्ञान होनेतें प्रथम संशयमें लक्षण संभवै है, तैसें द्वितीय संशयमैंभी लक्षण संभवै है. काहेतें ? स्थाणुरूप एक विशेष्यमैं स्थाणुत्व पुरुषत्वरूप विरुद्ध उभय विशेषणका ज्ञान है. जैसें स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभावका परस्पर विरोध है तैसें स्थाणुत्व पुरुषत्वकाभी विरोध अनुभवसिद्ध है. यातैं प्रथम संशय तौ विरुद्ध भावाभाव उभयगोचर है तैसें द्वितीयसंशय विरुद्ध उभयभावगोचर है. औ **न्यायके ग्रंथनमैं** तौ यह लिख्याहैः-भावाभावगोचरही **संशयज्ञान** होवैहै, केवल भावगोचर संशय होवै नहीं. जहां "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा संशय होवै तहांभी स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभाव पुरुषत्व औ पुरुषत्वाभाव ये च्यारि कोटि हैं. यातें द्विकोटिक औ चतुष्कोटिक **दो प्रकारका संशय** होवै है. "स्थाणुर्न वा" यह द्विकोटिक संशय है "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" यह **चतुष्कोटिक संशय** है. एक धर्मीमें प्रतीत धर्मकूं **कोटि** कहै हैं, यातैं

केवल भावगोचरसंशय न्यायमतमैं अप्रसिद्ध है; सर्व प्रकारसैं संशयज्ञान भ्रमरूप है. दो विरुद्ध विशेषण एकमैं होवैं नहीं एकका अभावही होवैगा. जैसैं स्थाणुमैं स्थाणुत्व है औ स्थाणुत्वका अभाव नहीं है, यातैं स्थाणुत्वाभावरहित स्थाणुमैं स्थाणुत्वका अभावज्ञान भ्रमरूप है, परंतु एक अंशमैं संशयज्ञान भ्रम होवै है, सकलअंशमैं भ्रम होवै नहीं. जहां स्थाणुमैं "स्थाणुर्न वा" यह संशय होवै तहां अभावअंशमैं भ्रम है, और जहां पुरुषमैं "स्थाणुर्न वा" ऐसा संशय होवै तहां अभाव अंश तौ पुरुषमैंहै स्थाणुत्व अंश नहीं है यातैं भाव अंशमैं भ्रम है; इसरीतिमैं भावाभावगोचर संशय होवै है, तिनमैं एक अवश्य रहैगा, यातैं संशयज्ञान एक अंशमैं भ्रम होवै. औ विरोधी उभयभावगोचरभी संशय मानैं तौ सकल अंशमैंभी संशयकूं भ्रमत्व संभवै है. जैसैं "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" या संशयकूं चतुष्कोटिक नहीं मानैं उभयकोटिकही मानैं औ स्थाणु औ पुरुषतैं भिन्न किसी पदार्थमैं "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा संशय होवै तहां संशयके धर्मीमैं "स्थाणुत्व पुरुषत्व दोनूं नहीं हैं. यातैं दोनूंका ज्ञान भ्रम है. संशयमैं जो विशेष्य होवै सो संशयमैं धर्मी कहिये है औ विशेषणकूं धर्म कहै हैं, यातैं एकधर्मीमैं विरुद्ध नानाधर्मका ज्ञान संशय कहिये है, या लक्षणतैं उक्त लक्षणका भेद नहीं; परंतु इतना भेद है:— उक्त लक्षणमैं उभय पद हैं, यातैं चतुष्कोटिक संशयमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है. काहेतैं ? चतुष्कोटिक संशयमैं एक विशेष्यमैं च्यारि विशेषण प्रतीत होवैहैं उभय विशेषण नहीं यद्यपि जहां च्यारि होवैं तहां तीनि औ दो तथा एकभी होवै है; तथापि अधिक संख्यासैं न्यूनसंख्याका बाध होवै है. इसीवास्ते जहां पंच ब्राह्मण होनेतैं कोई च्यारि ब्राह्मण कहै तौ उसकूं मिथ्यावादी कहैं हैं, न्यूनसंख्या यद्यपि अधिक संख्याके अन्तर्भूत है तथापि न्यूनसंख्याका व्यवहार होवै नहीं; यातैं उभयपदघटित लक्षणकी चतुष्कोटिक संशयमैं अव्याप्ति होनेतैं नाना पद कह्या है एकसैं भिन्नकूं नाना कहैं हैं. द्विकोटिक संशयकी नाईं चतुष्कोटिक

संशयभी ज्यार्धर्म गोचर होनेतैं नानाधर्मगोचर है यातें अव्याप्ति नहीं इसरीतिसैं संशयभी भ्रम है.

भ्रमके भेदनिरूपणतैं उत्तर निश्चयभ्रमका विस्तारसैं लक्षण कहैंगे. संशय निश्चयरूप भ्रम अनर्थका हेतु है, यातें निवर्तनीय है. जिज्ञासुकूं निवर्तनीय जो भ्रम ताके भेद कहै हैं:—संशयरूप भ्रम दो प्रकारकाहै. एक प्रमाणसंशय है औ दूसरा प्रमेयसंशय है. प्रमाणगोचर संदेह **प्रमाणसंशय** कहिये है ताहीकूं **प्रमाणगत असंभावना** कहैहैं, वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मविषै प्रमाण हैं वा नहीं हैं यह **प्रमाणसंशय** है:ताकी निवृत्ति शारीरकके प्रथमाध्यायके पठनमैं वा श्रवणतैं होवैहै. **प्रमेयसंशयभी आत्मसंशय और अनात्मसंशयभेदतैं दो प्रकारका** है. **अनात्मसंशय अनंतविध** है ताके कहनेमैं उपयोग नहीं. **आत्मसंशयभी अनेकप्रकारका** है.

आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है अथवा भिन्न है ? अभिन्न होवै तौभी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमैंही अभिन्न होवैहै? सर्वदा अभिन्न नहीं. सर्वदा भिन्न होवै तौभी आनंदादिक ऐश्वर्यवान है अथवा आनंदादिक रहित है ? आनंदादिक ऐश्वर्यवान होवै तौ भी आनंदादिक गुण हैं अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप है इसतैं आदिलेके तत्पदार्थाभिन्न त्वंपदार्थविषै अनेकप्रकारका संशय है

तैसैं केवल त्वंपदार्थगोचर संशयभी **आत्मगोचर संशय** है. आत्मा देहादिकनतैं भिन्न है वा नहीं ? भिन्न कहैं तौभी अणुरूप है वा मध्यमपरिमाण है वा विभुपरिमाण है? जो विभु कहैं तौभी कर्ता है अथवा अकर्ता है ? अकर्ता कहैं तौभी परस्पर भिन्न अनेक है अथवा एक है ? इसरीतिके **अनेक संशय केवल त्वंपदार्थगोचर** हैं

तैसैं केवल **तत्पदार्थगोचरभी अनेक प्रकारके संशय** हैं. वैकुंठादिकलोकविशेषवासी ईश्वर परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवसहित शरीर है अथवा शरीररहित विभु है ? जो शरीररहित विभु कहैं तौभी परमाणुआदिक सापेक्ष जगत्का कर्ता है अथवा निरपेक्ष कर्ता है? परमाणु आदिकनिरपेक्ष

कर्ता कहैं तौभी केवल कर्ताहै अथवा अभिन्न निमित्तोपादानरूप कर्ताहै? जो अभिन्न निमित्तोपादान कहैं तौभी प्राणिकर्मनिरपेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषवाला है अथवा प्राणिकर्म सापेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषरहित है? इसतैं आदि **अनेकप्रकारके तत्पदार्थगोचरसंशय** हैं, सो सकल संशय **प्रमेयसंशय** कहियेहैं, तिनकी निवृत्ति मननसैं होवैहै. **शारीरकके** द्वितीयाध्यायके अध्ययनसैं वा श्रवणतैं मनन सिद्ध होवैहै, तामैं **प्रमेयसंशयकी** निवृत्ति होवैहै.

ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशयभी **प्रमेयसंशय** है. काहेतैं? प्रमाके विषयकूं **प्रमेय** कहैहैं, ज्ञानसाधन मोक्षसाधनभी प्रमाके विषय होनेतैं **प्रमेय** है, यातैं ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशयभी **प्रमेय संशय** है; ताकी निवृत्ति शारीरकके तृतीय अध्यायसैं होवैहै.

तैसैं मोक्षके स्वरूपका संशयभी प्रमेयसंशय है ताकी निवृत्ति शारीरकके चतुर्थाध्यायसैं होवैहै. यद्यपि शारीरकके चतुर्थाध्यायमैं प्रथम साधनविचारही है उत्तर फलविचार है; मोक्षकूं फल कहैहैं, तथापि चतुर्थाध्यायमैं साधनविचार जितनेमैं है उतने चतुर्थाध्यायसहित तृतीयाध्यायसैं साधनसंशयकी निवृत्ति होवैहै. शिष्ट चतुर्थाध्यायमैं फलसंशयकी निवृत्ति होवैहै.

निश्चयरूपभ्रमज्ञानका लक्षण ॥ ६ ॥

संशयनिश्चयभेदसैं **भ्रमज्ञान दो प्रकारका** है. संशयभ्रमका निरूपण किया; अब **निश्चयभ्रम** कहैहैं:—संशयसैं भिन्नज्ञानकूं **निश्चय** कहैहैं. शुक्तिका शुक्तित्वरूपसैं यथार्थज्ञान औ शुक्तिका रजतत्वरूपतैं भ्रम ज्ञान दोनूं संशयतैं भिन्नज्ञान होनेतैं निश्चयरूप हैं. बाधित अर्थ विषयक जो संशयतैं भिन्न ज्ञान सो निश्चय है, शुक्तिमैं रजतविनिश्चयका विषय रजत है सो बाधित है. काहेतैं? संसारदशामैंही शुक्तिके ज्ञानतैं रजतका बाध होवैहै. ब्रह्मज्ञानविना जाका बाध न होवै सो **अबाधित** कहिये है. औ ब्रह्मज्ञानविना ही शुक्तिआदिकनके ज्ञानतैं जाका बाध होवै सो **बाधित**

कहियेहै, अथवा प्रमाताके बाधविना जाका बाध नहीं होवै सो **अबाधित** कहिये है. प्रमाताके होनेतें जाका बाध होवै सो **बाधित** कहियेहै,**अबाधित दो प्रकारका** होवैहै. एक तौ सर्वदा अबाधित होवैहै दूसरा व्यावहारिक अबाधित होवै है. जिसका सर्वदा बाध नहीं होवै, ऐसा चेतन है; व्यवहार-दशामें बाध नहीं होवै ऐसा अज्ञान औ महाभूत तथा भौतिक प्रपंच है. सुखादिक प्रातिभासिक हैं, तौभी ब्रह्मज्ञानविना सुखादिकनका बाध होवै नहीं; यातैं अबाधित हैं, तिनका ज्ञान भ्रम नहीं तैसें **बाधित अर्थभी दो प्रकारका** होवैहै, एक तौ व्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है, दूसरा प्रातिभासिक पदार्थावच्छिन्नचेतनका विवर्त है, शुक्तिमें रजतव्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है. काहेतें?शुक्ति-रजतका अधिष्ठान शुक्त्यवच्छिन्न चेतन है शुक्ति व्यावहारिक है; औ स्वप्नमें शुक्ति प्रतीत होयके तामें रजतभ्रम होवै तिस रजतका स्वप्नमैंही शुक्तिज्ञानमें बाध होवै, ता रजतका अधिष्ठान स्वप्नशुक्त्यवच्छिन्न चेतन है, स्वप्नकी शुक्ति प्रातिभासिक है, इसरीतिसैं बाधितपदार्थ दो प्रकारके हैं तिनका निश्चय कहिये **भ्रमनिश्चय** कहिये है.

अध्यासका लक्षण औ भेद ॥ ७ ॥

भ्रमज्ञानमैं शास्त्रकारनका अनेकधा वाद है. तिनके मतमें विलक्षण भाष्यकारने **भ्रमका असाधारण लक्षण** कह्या है:—जैसा भ्रमका स्वरूप अन्यशास्त्रवाले मानैहैं, तिसमें यह वक्ष्यमाण लक्षण संभवै नहीं, यातैं असाधारण है. अन्यसैं असाधारणलक्षण कथनतें भाष्यकारका अन्याभिमत भ्रमके स्वरूपसें अस्वरस है. अधिष्ठानमें विषमसत्तावाला **अवभास अध्यास** कहियेहै, जहां शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिदेशमैं रजत उपजै है, ताका ज्ञान औ तात्कालिक रजत इन दोनूंकूं सिद्धांतमें **अवभास** औ **अध्यास** कहैहैं अन्यशास्त्रनमें रजतकी उत्पत्ति मानैं नहीं यह सर्वसें विलक्षणता है. एक सतख्यातिवादमैं रजतकी उत्पत्ति मानी है, ताके मतसैं

भी विलक्षणता आगे कहेंगे. व्याकरणकी रीतिसैं अध्यासपदके औ अव-भास पदके विषय औ ज्ञान दोनूं वाच्य हैं.

यातैं अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यासके भेदतैं **अध्यास दो प्रकारका** है, **अर्थाध्यास अनेक प्रकारका** है, कहूं केवल संबंधमात्रका अध्यास है, कहूं संबंधविशिष्ट संबंधीका अध्यास है, कहूं केवल धर्मका अध्यास है, कहूं धर्मविशिष्ट धर्मीका अध्यास है, कहूं अन्योन्याध्यास है, कहूं अन्यतराध्यास है **अन्यतराध्यासभी दो प्रकारका** है, एक आत्मामैं अनात्माध्यास है दूसरा अनात्मामें आत्माध्यास है; इसरीतिसैं अर्थाध्यास अनेक प्रकारका है. उक्त लक्षणका सर्वत्र समन्वय है तथाहि:—मुख्यसिद्धांतमैं तौ **सकल अध्यासका अधिष्ठान चेतन** है. रज्जुमें सर्प प्रतीत होनेतैं तहांभी इदमा-कार वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभिन्न रज्जुअवच्छिन्न चेतनही सर्पका अधिष्ठान है. रज्जु अधिष्ठान नहीं यह अर्थ विचारसागरमैं स्पष्ट है. तहां चेतनकी परमार्थसत्ता है, अथवा ताकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होनेतैं रज्जुअवच्छिन्न चेतनकी व्यावहारिक सत्ता है. दोनूं प्रकारसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी प्रातिभासिक सत्ता होनेतैं अधिष्ठानकी सत्तासैं विषम-सत्तावाला अवभास सर्प औ ताका ज्ञान है, यातैं दोनूंकूं **अध्यास** औ **अवभास** कहैंहैं. ज्ञान औ ज्ञानके विषयकूं **अवभास** कहैंहैं इसरीतिसैं सर्वत्र अध्यासका अधिष्ठान चेतन कहैं तब तौ अधिष्ठानकी परमार्थसत्ता औ अध्यस्तकी प्रातिभासिकसत्ता होनेतैं अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाला अवभास कहिये ज्ञान औ ताका विषय स्पष्टही है; औ रजतका अधि-ष्ठान शुक्ति है, यह व्यवहार लोकमें होवैहै, यातैं अवच्छेदकतासंबंधसैं शुक्ति-भी रजतका आश्रय है; काहेतैं ? चेतनमें रजतकी अधिष्ठानताका अवच्छे-दक शुक्ति होनेतैं तामें रजतका अवच्छेदकता संबंध है, अवच्छेदकता संबंधसैं शुक्तिकूं रजतका अधिष्ठान कहैं तौ शुक्तिकी व्यावहारिक सत्ता है, रजतकी प्रातिभासिक सत्ता है, यातैंभी अधिष्ठानमैं विषमसत्ता है, इसरीतिसैं सर्व अध्या सोंमैं आरोपितसैं अधिष्ठानकी विषमसत्ता है. जा पदार्थमैं आधारता प्रतीत

होवै सो **अधिष्ठान** कहियेहै यह आधारता परमार्थमैं होवै अथवा आरोपित होवै; औ परमार्थसैं आधार होवै सो **अधिष्ठान** कहियेहै, ऐसा आग्रह या प्रसंगमैं नहीं है. काहेतैं? जैसैं आत्मामैं अनात्माका अध्यास है, तैसैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है, औ अनात्मामैं परमार्थसैं आत्माकी आधारता है नहीं किंतु आरोपित आधारता है; यातैं अधारमात्रकूं या प्रसंगमैं अधिष्ठान कहैहैं. जहां अनात्मामैं आत्माका अध्यास है तहां अधिष्ठान अनात्मा है, ताकी व्यावहारिक सत्ता है औ आत्माकी पारमार्थिक सत्ता है, यातैं अधिष्ठानसैं विषम सत्तावाला अवभास है.

अन्योन्याध्यासमैं शंकासमाधान ॥ ८ ॥

यद्यपि आत्माका अधिष्ठान अनात्मा है या कहनेमैं आत्मा आरोपित है यह सिद्ध होवै है. जो आरोपित होवै सो कल्पित होवै है. यातैं आत्माभी कल्पित होवैगा; यातैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है यह कहना संभव नहीं; **तथापि** भाष्यकारनें शारीरकके आरंभमें आत्मा अनात्माका अन्योन्याध्यास कह्या है. यातैं अनात्मामैं आत्माके अध्यासका निषेध तो बनै नहीं, परस्पर अध्यासकूं **अन्योन्याध्यास** कहैहैं; यातैं अनात्मामैं आत्माध्यास मानिकै उक्तशंकाका समाधान कह्या चाहिये.

सो **समाधान इसरीतिसैं** है:—अध्यास **दोप्रकारका** होवैहै, एक तो स्वरूपाध्यास होवै है दूसरा संसर्गाध्यास होवैहै. जा पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजै ताकूं **स्वरूपाध्यास** कहैहैं. जैसैं शुक्तिमैं रजतका **स्वरूपाध्यास** है औ आत्मामैं अहंकारादिक अनात्माका **स्वरूपाध्यास** है; तैसैं जा पदार्थका स्वरूप तौ प्रथम सिद्ध होवै व्यावहारिक होवै अथवा पारमार्थिक होवै, औ अनिर्वचनीयसंबंध उपजै सो **संसर्गाध्यास** कहिये है जैसैं मुखसैं दर्पणका उक्त रीतिसैं कोई संबंध है नहीं औ दोनूं पदार्थ व्यावहारिक हैं, तहां दर्पणमैं मुखका संबंध प्रतीत होवै है; यातैं **अनिर्वचनीयसम्बन्ध** उपजैहै तैसैं रक्त वस्त्रमैं "रक्तः पटः" यह प्रतीति होवै है

रक्तरूपवाला पट है.या प्रतीतिसें रक्तरूपवाले पदार्थका पटमैं तादात्म्यसंबंध भासै है औ रक्तरूपवाला कुसुंभद्रव्य है, यातैं रक्तरूपवत्का तादात्म्य कुसुम्भद्रव्यमें है पटमैं नहीं. इसरीतिसें रक्तरूपवत् कुसुम्भद्रव्य औ पट तौ व्यावहारिक हैं, तिनका तादात्म्यसंबंध अनिर्वचनीय उपजै है. तैसें "लोहितः स्फटिकः"या प्रतीतिमैं लोहितका तादात्म्यसंबंध स्फटिकमैं भासै है, औ लोहितका तादात्म्य पुष्पमें है स्फटिकमैं नहीं. रक्तरूपवालेकूं लोहित कहैहैं. रक्तरूपवाला पुष्प है स्फटिक नहीं; यातैं स्फटिकमैं **अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध** लोहितका उपजै है; इसरीतिसें अनेक स्थानोंमें संबंधी तौ व्यावहारिक है. तिनके संबंधनके ज्ञान अनिर्वचनीय उपजैं हैं. तिनकूं **संसर्गाध्यास** कहैहैं, तैसै चेतनका अहंकारमैं अध्यास नहीं; किंतु चेतन तौ पारमार्थिक है, ताके संबंधका अहंकारमैं अध्यास है, आत्मता-चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवैहै; यातैं आत्माका तादात्म्य चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवैहै;यातैं आत्मचेतनका तादात्म्यसंबंध अहंकारमैं अनिर्वचनीय है, अथवा आत्मवृत्ति तादात्म्यका अहंकारमैं अनिर्वचनीय संबंध है. यातैं चेतन कल्पित नहीं किंतु चेतनका अहंकारमें तादात्म्यसंबंध कल्पित है अथवा आत्मचेतनके तादात्म्यका संबंध कल्पित है. **यद्यपि** अद्वैतग्रंथनमैं उक्त उदाहरणोंमें अन्यथाख्याति कही है, तथापि **ब्रह्मविद्याभरणमें** उक्तरीतिसें सारे अनिर्वचनीयख्याति मानिकै निर्वाह कऱ्या है, अन्यथाख्याति प्रसिद्ध नहीं; औ विचारसागरमें तथा इस ग्रंथमैंभी पूर्व यह लिख्या है,जहां अधिष्ठानमैं आरोप्यका संबंध होवै तहां **अन्यथाख्याति** है; सो ग्रंथांतरकी रीतिसैं लिख्या है.औ अधिष्ठानसें आरोप्यका संबंध होवै तहां अन्यथाख्यातिकाही आग्रह होवै तौ अहंकारमैंभी चेतनका तादात्म्य अन्यथाख्यातिसें प्रतीत होवै है या कहनेमैं कोई बाधक नहीं; इसरीतिमैं जहां पारमार्थिक पदार्थका अभाव हुयां तिसकी जहां प्रतीति होवै तहां पारमार्थिक पदार्थका तौ व्यावहारिक पदार्थमें अनिर्वचनीय संबंध उपजै है औ ताका अनिर्वचनीयही ज्ञान उपजै है. औ व्यावहारिक पदार्थका

अभाव हुयां जहां प्रतीति होवै तहां अनिर्वचनीयही और संबंधी उपजै है; और संबंधीका अनिर्वचनीय ज्ञान उपजै है, और कहूं संबंधमात्र और संबन्धीका अनिर्वचनीयज्ञान उपजै है. सारैंही अधिष्ठानमें अध्यस्तकी **विषमसत्ता अनिर्वचनीयसत्ता** है आत्माका अनात्मामैं अध्यास होवै तहांभी अधिष्ठान अनात्मा व्यावहारिक है औ अध्यस्त आत्मा नहीं किंतु आत्माका संबन्ध अनात्मामें अध्यस्त है, यातैं अनिर्वचनीय है.

अनात्मामें अध्यस्त आत्माकी परमार्थसत्ताविषे तात्पर्य ॥ ९ ॥

औ पूर्व यह कह्याहै, अनात्मामैं आत्माध्यास होवै तहां अध्यस्तकी परमार्थ सत्ता होनेतैं विषमसत्ता है,औ ब्रह्मविद्याभरणमें उक्त स्थलमें अध्यस्तकी परमार्थ सत्ताही कहीहै, ताका यह तात्पर्य हैः—शुद्धपदार्थमें विशिष्ट भिन्न होवै है, यातैं अनात्मामैं आत्माके संबन्धका अध्यास कह्या तहां संबन्धविशिष्ट आत्माकाही अध्यास है, औ स्वरूपसैं आत्मा सत्य है, यातैं अध्यस्तकी परमार्थसत्ता स्वरूपदृष्टिसैं कहैहैं औ अध्यस्त कल्पित होवैहै, यातैं अनात्मसंबन्धविशिष्ट कल्पित होवै तौभी शुद्ध कल्पित होवै नहीं. काहेतैं ? शुद्धसैं विशिष्टकूं भिन्न होनेतैं विशिष्टकी कल्पितता शुद्धमें होवै नहीं, औ केवल आत्मसंबन्धके अध्यास कहनेतैं संबन्धविशिष्ट आत्माका अध्यास कहना औ अध्यस्तकी परमार्थसत्ता कहनाही श्रेष्ठ है. काहेतैं ? केवलसंबन्धका अध्यास कहैं तौ अधिष्ठानकी आरोपितमें विषमसत्ता संभवै नहीं. काहेतैं ? आत्माका संबन्ध अन्तःकरणमें अध्यस्त है औ स्फुरणरूपचेतनका तादात्म्यसंबंध घटादिकनमैं अध्यस्त है. काहेतैं ? "घटः स्फुरति" यह व्यवहार घटमें स्फुरणसंबंधसैं प्रतीत होवैहै. चेतनके संबंधके अधिष्ठान अंतःकरण औ घटादिक व्यावहारिक हैं; तिनमैं चेतनका संबंधभी व्यावहारिक है. प्रातिभासिक नहीं; चेतनका संबंध प्रातिभासिक होवै तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध हुया चाहिये औ बाध होवै नहीं; यातैं आत्मसंबंधकी औ अधिष्ठान अनात्माकी व्यावहारिक

सत्ता होनेतैं विषमसत्ता नहीं होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै नहीं यातैं संबन्धविशिष्ट आत्माका अनात्मामैं अध्यास है औ विशेष्य भागकी परमार्थ सत्ता होनेतैं विशिष्टकी परमार्थ सत्ता है. अधिष्ठानकी व्याव-रिक सत्ता है; यातैं दोनूंकी विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै है, औ स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी है ताकी स्वरूपसैं पारमार्थिक सत्ता है, औ पदार्थनकी प्रातिभासिक सत्ता है यातैं अधिष्ठानतैं विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै है.

यद्यपि सत्तास्वरूप चेतन है,ताका भेद कहना संभवै नहीं,तथापि चेत-नस्वरूपसत्तासैं सत्ता नाम भिन्न पदार्थ है,तामैं उत्कर्ष अपकर्ष हैं ताके पार-मार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक तीनि भेद हैं. प्रातिभासिकमैंभी उत्कर्षा-पकर्ष हैं.स्वप्नमैं कितने पदार्थ प्रतीत होवैंहैं,तिनका स्वप्नमैं ही बाध होवैहै. जिनका जाग्रतमैं बाध होवै तिनमैं स्वप्नमैं बाधितपदार्थनकी अपकृष्टसत्ता है; इसरीतिसैं चेतनस्वरूपसत्तासैं भिन्नसत्ताका स्वरूप श्रुतिमैं लिख्याहै "सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यमिति" औ रजतकी सत्तासैं शुक्तिकी सत्ता उत्कृष्ट है यह सर्वकूं अनुभव होवै है, यातैं उत्कर्षापकर्ष-वाली सत्ता चेतनसैं भिन्न है; इसरीतिसैं अध्यासका लक्षण कह्या.

अध्यासका अन्यलक्षण ॥ १० ॥

और अध्यासका अन्यलक्षण यह हैः—अपने अभावके अधिकरणमैं आभासकूं अध्यास कहैंहैं. शुक्तिमैं रजतका पारमार्थिक औ व्यावहारिक अभाव है औ रजत अनिर्वचनीय है, यातैं रजताभावका अधिकरण जो शुक्ति तामैं रजतकी प्रतीति औ ताका विषय होनेतैं रजतावभास है, यातैं अध्यास है. इसरीतिसैं कल्पितके अधिकरणमैं कल्पितका अभाव होनेतैं सारे अध्यासमैं यह लक्षण संभवै है.

एक अधिकरणमैं भावाभावके विरोधका शंका औ समाधान ११॥

यद्यपि एक अधिकरणमैं भावाभावका विरोध होवैहै. संयोग औ ताका

अभावभी एक अधिकरणमैं मूलादिक देशके भेदसैं रहैहै एक देशमैं रहै नहीं; यातैं एक अधिकरणमैं भावाभाव संभवै नहीं, तथापि पदार्थनका विरोध अनुभवके अनुसार कहियेहै. केवल भावाभावका विरोध नहीं है, किंतु घटत्व पटत्व दोनूं भाव हैं, एक अधिकरणमैं रहै नहीं तिनका विरोध है, औ द्रव्यत्व घटत्वका विरोध नहीं, तैसें घटके अधिकरण भूतलमैं अतीत कालविशिष्ट घटका अभाव है, यातैं शुद्ध घटाभावतैं घटका विरोध है;विशिष्टघटाभावतैं घटका विरोध नहीं; तैसैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटाभाव है, तासैं घटका विरोध नहीं. तैसैं समानसत्तावाले प्रतियोगी अभाव एक अधिकरणमैं रहै नहीं; विषम सत्तावाले प्रतियोगीका अभावसैं विरोध नहीं,कल्पितके अभावकी पारमार्थिक सत्ता है अथवा व्यावहारिक सत्ता है. कल्पितकी प्रतिभासिक सत्ता है यातैं विरोध नहीं जहां शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां व्यावहारिक रजत है नहीं, यातैं रजतका व्यावहारिक अभाव है. औ पारमार्थिक रजत तौ कहूं भी नहीं होनेतैं रजतका पारमार्थिक अभाव **केवलान्वयी** है, यातैं शुक्तिमैं रजतका पारमार्थिक अभावभी है औ अनिर्वचनीय रजत औ ताका ज्ञान एककालमैं उपजै है, औ एक कालमैं दोनूंका नाश होवैहै; यातैं रजत प्रातिभासिक है. प्रतीतिकालमैं जाकी सत्ता होवै प्रतीतिशून्यकालमैं होवै नहीं ताकूं **प्रातिभासिक** कहैहैं. इसरीतिसैं भ्रमज्ञान औ ताके विषय अनिर्वचनीय उपजैं हैं. सत् असत्सैं विलक्षणकूं **अनिर्वचनीय** कहैहैं. औ ताका अभाव व्यावहारिक है, यातैं प्रतियोगी अभावका परस्पर विरोध नहीं व्यावहारिक अभावका व्यावहारिक प्रतियोगीमैं विरोध है.

अध्यासके प्रसंगमैं च्यारि शंका ॥ १२ ॥

या प्रसंगमैं च्यारि शंका होवैहैं. स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान साक्षी है यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? जिस अधिष्ठानमैं जो आरोपित होवै तिस अधिष्ठानसैं संबद्ध प्रतीत होवैहै जैसैं शुक्तिमैं आरोपित रजत है सो "इदं

रजतम्" इस रीतिसैं शुक्तिकी इदंतासैं संबद्ध प्रतीत होवै है, आत्मामैं कर्तृत्वादिक आरोपित हैं सो "अहं कर्ता"इसरीतिसैं संबद्ध प्रतीत होवै है; तैसैं स्वप्नके गजादिक साक्षीमैं आरोपित होवैं तौ "अहंगजः मयि गजः" इसरीतिमैं साक्षीसैं संबद्ध गजादिक प्रतीत हुये चाहियें.

औ दूसरी शंका यह हैः—शुक्तिमैं रजताभाव व्यावहारिक है औ पारमार्थिक है, यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? अद्वैतवादमैं एक चेतनही पारमार्थिक है तासैं भिन्नकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतवादकी हानि होवैगी. पारमार्थिक रजत है नहीं, यातैं पारमार्थिक रजतका अभाव है यह कहना तौ संभवै है, औ पारमार्थिक अभाव है यह कहना संभवै नहीं.

तृतीय शंका यह हैः—शुक्तिमैं अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति नाश होवैहै, यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? जो रजतके उत्पत्ति नाश होवैं तौ घटके उत्पत्तिनाशकी नाईं रजतकी उत्पत्तिनाश प्रतीत हुये चाहियें. जैसे घटकी उत्पत्ति होवै तब घट उपजै है इसरीतिसैं घटकी उत्पत्ति प्रतीत होवै है औ घटका नाश होवैहै, तब घटका नाश हुया इसरीतिमैं घटका नाश प्रतीत होवैहै; तैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति होवै तब रजतकी उत्पत्ति हुई इसरीतिसैं उत्पत्ति प्रतीत हुई चाहिये औ रजतका ज्ञानमैं नाश होवै तब रजतका शुक्तिदेशमैं नाश हुया. इसरीतिसैं नाश प्रतीत हुया चाहिये. औ शुक्तिमैं केवल रजत प्रतीत होवैहै ताके उत्पत्तिनाश प्रतीत होवैं नहीं, यातैं शास्त्रांतरकी रीतिमैं अन्यथाख्याति आदिक ही समीचीन हैं अनिर्वचनीयख्याति संभवै नहीं.

चतुर्थ शंका यह हैः—सत् असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय रजतादिक उपजैंहैं यह पूर्व कह्या सो सर्वथा असंगत है. सत्सैं विलक्षण असत होवैहै औ असतमैं विलक्षण सत् होवैहै. सत्सैं विलक्षणता है औ असत नहीं यह कथन विरुद्ध है, तैसैं असत्सैं विलक्षण है औ सत् नहीं यह कथनभी विरुद्ध है ये च्यारि शंका हैं

उक्तच्यारि शंकाके समाधान ॥ १३ ॥

तिनके क्रमतें ये समाधान हैं:—साक्षीमैं स्वप्नअध्यास होवै तौ "अहं गजः, मयि गजः" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये. **या शंकाका यह समाधान** है: पूर्व अनुभवजनित संस्कारसें अध्यास होवैहै. जैसा पूर्व अनुभव होवै तैसाही संस्कार होवै है, औ संस्कारके समान अध्यास होवैहै. सर्व अध्यासोंका उपादानकारण तौ अविद्या समान है;परंतु निमित्तकारण पूर्वानुभवजन्य संस्कार है, सो विलक्षण है. जैसा अनुभवजन्यसंस्कार होवै तैसाही अविद्याका परिणाम होवैहै, जिसपदार्थका अहमाकारज्ञानजन्य संस्कार सहित अविद्या होवै तिसपदार्थका अहमाकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है. जिसका ममताकार अनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका ममताकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवैहै. जिस पदार्थका इदमाकार अनुभवजन्य संस्कारसहित अविद्या होवै तिसपदार्थका इदमाकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है. स्वप्नके गजादिकनका पूर्व अनुभव इदमाकारही हुया है; अहमाकारादिक अनुभव हुया नहीं; यातें अनुभवजन्यसंस्कारभी गजादिगोचर इदमाकारही होवैहै, यातें "अयं गजः" ऐसी प्रतीति होवैहै, "मयि गजः, अहं गजः" ऐसी प्रतीति होवै नहीं. संस्कार अनुमेय है, कार्यके अनुकूल संस्कारकी अनुमिति होवैहै, संस्कारजनक पूर्व अनुभवभी अध्यासरूप है, ताका जनक संस्कारभी इदमाकारही होवैहै, औ अध्यासप्रवाह अनादि है यातें प्रथम अनुभवके इदमाकारतामैं कोई हेतु नहीं यह शंका संभवै नहीं काहेतें ? अनादिपक्षमें कोई अनुभव प्रथम नहीं, पूर्वपूर्वसें उत्तर सारे अनुभव हैं

औ अभावकूं पारमार्थिक मानें तौ अद्वैतकी हानि होवैगी; **या द्वितीयशंकाका यह समाधान** है:—सकल पदार्थ सिद्धांतमैं कल्पित हैं; तिनका अभाव पारमार्थिक है, सो ब्रह्मरूप है, यह भाष्यकारकूं संमत है; यामैं युक्ति आगे कहैंगे, इसकारणतें अद्वैतकी हानि नहीं.

औ शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति मानैं तौ उत्पत्तिकी प्रतीति हुई चाहिये याका यह समाधान है:—शुक्तिमैं तादात्म्यसंबन्धसैं रजत अध्यस्त है औ शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्त है; यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसैं रजत प्रतीत होवै है. जैसैं शुक्तिके इदंताका संबन्ध रजतमैं अध्यस्त है, तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है, रजतप्रतीतिकालतैं प्रथम सिद्धकूं प्राक्सिद्ध कहैं हैं. रजतप्रतीतिकालतैं प्रथम सिद्ध शुक्ति है, इसरीतिसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है ताके संबन्धका अध्यासभी रजतमैं होवैहै; इसीवास्तै "इदानीं रजतम्" यह प्रतीति नहीं होवैहै, "प्रागूजातं रजतं पश्यामि" यह प्रतीति होवैहै, या प्रतीतिका विषय प्रागूजातत्व है सो रजतमैं है नहीं; किंतु रजतमैं इदानींजातत्व है औ प्रागूजातत्व रजतमैं प्रतीत होवैहै. तहां रजतमैं अनिर्वचनीय प्रागूजातत्वकी उत्पत्ति मानैं तौ गौरव होवैहै; शुक्तिके प्रागुजातत्वकी रजतमैं प्रतीति मानैं तौ अन्यथा-ख्याति माननी होवैहै औ ऐसे स्थानमैं अन्यथाख्यातिकूं मानैं भी हैं, तथापि शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वधर्मका अनिर्वचनीय संबन्ध रजतमैं उपजैहै, यह पक्ष समीचीन है. इसरीतिसैं शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वके संबन्धकी प्रतीतिसैं उत्पत्ति प्रतीतिका प्रतिबंध होवै है. काहेतैं ? प्राक्सिद्धता औ वर्तमान उत्पत्ति दोनूं परस्पर विरोधि हैं. जहां प्राक्सिद्धता होवै तहां अतीत उत्पत्ति होवैहै. वर्तमान उत्पत्ति होवै तहां प्राक्सिद्धता होवै नहीं; इसरीतिसैं शुक्तिवृत्ति प्राक्सिद्धत्वके संबन्धकी प्रतीतिसैं उत्पत्ति प्रतीतिका प्रतिबन्ध होनेतैं रजतकी उत्पत्तिहुयेभी उत्पत्तिकी प्रतीति होवै नहीं. औ जो कह्या रजतका नाश होवै तौ ताकी प्रतीति हुई चाहिये, ताका यह समाधान है:—अधिष्ठानका ज्ञान होवै तब रजतका नाश होवै है सो अधिष्ठानज्ञानतैं रजतका बाध निश्चय होवै है; शुक्तिमैं कालत्रयमैं रजत नहीं इस निश्चयकूं बाध कहैं हैं, ऐसा निश्चय नाश प्रतीतिका विरोधी है. काहेतैं ? नाशमैं प्रतियोगी कारण होवै है औ बाधमैं प्रति-योगीका सर्वदा अभाव भासैहै, जाका सर्वदा अभाव है ऐसा ज्ञान होवै

ताकी नाशबुद्धि संभवै नहीं किंवा जैसा घटादिकनका मुद्गरादिकनसैं चूर्णीभावरूप नाश होवैहै तैसा कल्पितका नाश होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानके ज्ञानतैं अज्ञानरूप उपादानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै. अधिष्ठानमात्रका अवशेषही अज्ञानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै सो अधिष्ठान शुक्ति है ताका अवशेषरूप रजतका नाश अनुभवसिद्ध है; यातैं रजतके नाशकी प्रतीति होवै नहीं यह कथन साहसतैं है.

औ सत असतमैं विलक्षण कथन विरुद्ध है. या चतुर्थ शंकाका यह **समाधान** है:—जो स्वरूपरहितकूं सद्विलक्षण कहैं औ विद्यमानस्वरूपकूं असद्विलक्षण कहैं तौ विरोध होवै. काहेतैं? एकही पदार्थमैं स्वरूपराहित्य औ स्वरूपसाहित्य संभवै नहीं, यातैं सदसद्विलक्षणका उक्त अर्थ नहीं; किंतु कालत्रयमैं जाका बाध नहीं होवै ताकूं **सत्** कहैं हैं. जाका बाध होवै सो **सद्विलक्षण** कहिये है. शशशृंग वंध्यापुत्रकी नाईं स्वरूपहीनकूं असत् कहैं हैं तासैं विलक्षण स्वरूपवान् होवै है; इसरीतिसैं बाधके योग्यस्वरूपवाला सदसद्विलक्षण शब्दका अर्थ है. सद्विलक्षण शब्दका बाध योग्य अर्थ है; स्वरूपवाला इतना अर्थ **असद्विलक्षण** शब्दका है.

पूर्व उक्त अध्यासके भेदका अनुवाद औ तामैं उदाहरण ॥ १४ ॥

इसरीतिसैं जहां भ्रमज्ञान है तहां सारे अनिर्वचनीय पदार्थकी उत्पत्ति होवैहै, कहूं संबंधीकी उत्पत्ति होवै है. जैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति है, औ रजतमैं शुक्तिवृत्ति तादात्म्यके संबंधकी उत्पत्ति होवै है, शुक्तिवृत्ति स्वतादात्म्यकी रजतमैं अन्यथाख्याति नहीं; तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है, ताके अनिर्वचनीय संबंधकी रजतमैं उत्पत्ति होवैहै ताकीभी अन्यथाख्याति नहीं, इसरीतिसैं अन्योन्याध्यासकाभी यह उदाहरण है. औ संबंधाध्यासका यह उदाहरण है, संबंधीअध्यासकाभी यह उदाहरण है; औ अनिर्वचनीय वस्तुकी प्रतीतिकूं **ज्ञानाध्यास** कहैं हैं; औ ज्ञानके अनिर्वचनीयविषयकूं

अर्थाध्यास कहैं हैं; यातैं ज्ञानाध्यास अर्थाध्यासका भी यह उदाहरण है; औ रजतत्वधर्मविशिष्ट रजतका शुक्तिमैं अध्यास है, यातैं धर्मी अध्यासकाभी यह उदाहरण है, जहां अन्योन्याध्यास होवै तहां दोनूंका परस्पर स्वरूपसैं अध्यास नहीं होवै है, किंतु आरोपितका स्वरूपसैं अध्यास होवै है औ सत्यवस्तुका धर्म अथवा संबंध अध्यस्त होवै है संबंधाध्यासभी दो प्रकारका होवै है, कहूं धर्मके संबंधका अध्यास होवै है. जैसैं उक्त उदाहरणमैं शुक्तिवृत्ति इदंतारूप धर्मके संबंधका रजतमैं अध्यास है औ "रक्तः पटः" या स्थानमैं कुसुंभवृत्ति रक्तरूप धर्मके संबंधका पटमैं अध्यास है, औ दर्पणमैं मुखके संबंधका अध्यास होवैहै, अंतःकरणका आत्मामैं स्वरूपमैं अध्यास है, औ अंतःकरणमैं आत्माका स्वरूपसैं अध्यास नहीं; किंतु आत्मसंबंधका अध्यास होनेतैं आत्माका संसर्गाध्यास है, ज्ञानस्वरूप आत्मा है अंतःकरण नहीं; औ ज्ञानका संबंध अंतःकरणमैं प्रतीत होवै है, यातैं आत्माके संबंधका अंतःकरणमैं अध्यास है; तैसें "घटः स्फुरति, पटः स्फुरति" इसरीतिसैं स्फुरणसंबंध सर्व पदार्थनमैं प्रतीत होवै है, यातैं आत्मसंबंधका निखिलपदार्थनमैं अध्यास है, आत्मामैं काणत्वादिक इंद्रिय धर्म प्रतीत होवैं हैं, यातैं काणत्वादिक धर्मनका आत्मामैं अध्यास है औ इंद्रियनका आत्मामैं तादात्म्य अध्यास नहीं है; काहेतैं ? "अहं काणः" ऐसी प्रतीति होवैहै. औ "अहं नेत्रम्" ऐसी प्रतीति होवै नहीं; यातैं नेत्रधर्म काणत्वका आत्मामैं अध्यास है; नेत्रका अध्यास नहीं. धर्माध्यासका उदाहरण है. यद्यपि नेत्रादिक निखिल प्रपंचका अध्यास आत्मामैं है, तथापि ब्रह्मचेतनमैं समग्र प्रपंचका अध्यास है, त्वंपदार्थमैं निखिल प्रपंचका अध्यास नहीं, अविद्याका ऐसा अद्भुत महिमा है, एकही पदार्थका एक धर्मविशिष्टका अध्यास होवैहै, अपर धर्मविशिष्टका अध्यास होवै नहीं. जैसैं ब्राह्मणत्वादि धर्मविशिष्ट शरीरका आत्मामैं तादात्म्याध्यास होवै है शरीरत्वविशिष्ट शरीरका अध्यास होवै नहीं. इसीवास्ते विवेकीभी "ब्राह्मणोहम् मनुष्योहम्" ऐसा व्यवहार करैहै. औ "शरीरमहम्" ऐसा व्यवहार विवेकीका होवै नहीं; यातैं अवि-

याका अद्भुत महिमा होनेतें इंद्रियके अध्यासविना आत्मामैं काणत्वादिक धर्मनका अध्यास संभवै है; यह **धर्माध्यासका उदाहरण** है. अन्याश्रित होवै स्वतंत्र होवै नहीं. ताकूं **धर्म** कहैहैं यातें, संबंधभी धर्मही है; ताका अध्यासभी **धर्माध्यास** ही है, परंतु **धर्म दो प्रकारका** होवैहैः—एक तौ प्रतियोगी अनुयोगीकी प्रतीतिके अधीन प्रतीतिका विषय होवैहै, औ कोई धर्म अनुयोगी मात्रकी प्रतीतिके अधीन प्रतीतिका विषय होवै है, औ कदाचित् अनुयोगीकी प्रतीति विना केवल धर्मकीभी प्रतीति होवैहै; जैसें घटत्वादिकनकी प्रतीतिमें अनुयोगी मात्रकी प्रतीतिकी अपेक्षा है, औ घटत्व नित्य है इत्यादिवाक्यजन्य प्रतीतिमें अनुयोगी प्रतीतिकीभी अपेक्षा नहीं इसरीतिसें दो प्रकारका धर्म होवैहै, अनुयोगी प्रतियोगीकी प्रतीतिविना जाकी प्रतीति होवै नहीं. ऐसे धर्मकूं **संबंध** कहैहैं औ घटत्वादिकनकूं **केवल धर्म** कहैं हैं संबंध कहै नहीं; इसरीतिसें संबंधाध्यासभी धर्माध्यासही है, उक्तरीतिसें सकलभ्रममें दोनूं लक्षण संभवें है; अधिष्ठानमें विषमसत्तावाला **अवभास अध्यास** कहियेहै. अथवा स्वभावाधिकरणमें **अवभास** अध्यास कहियेहै, भ्रमकालमें अनिर्वचनीय विषय औ ताका ज्ञान उपजै है, यातें दोनूं लक्षण अध्यासके संभवै हैं, परंतु परोक्ष अपरोक्ष भेदसें **भ्रम दो प्रकारका** हैः—अपरोक्ष भ्रमके उदाहरण तौ कहे औ जहां वह्निशून्य देशमें वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो **परोक्ष भ्रम** है, सो इसरीतिसे होवै हैः—महानसत्व वह्निका व्याप्य नहीं है औ महानसमें बारंबार वह्निदेशके महानसत्वका व्याप्यताभ्रम होय जावे, तहां वह्निशून्यकालमें ऐसा अनुमान होवै "इदं महानसं वह्निमत्, महानसत्वात्, पूर्वदृष्टमहानसवत्" इसरीतिसें महानसमें वह्निका **अनुमितिरूप भ्रमज्ञान** होवै है औ विप्रलंभक वाक्यसें वह्निका शब्दभ्रम होवैहै सो दोनूं परोक्ष ज्ञान हैं. जहां परोक्षभ्रम होवै तहां अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति मानी नहीं; किंतु तिस देशमें असत् वह्निकी प्रतीति होवैहै, यातें अध्यासलक्षणका

लक्ष्य तौ परोक्षभ्रम नहीं है. औ वह्निके अभावाधिकरणमैं वह्निकी प्रतीति होनेतैं स्वभावाधिकरणमैं अवभास है, विषय औ ज्ञानकूं **अवभास** कहै हैं, वह्निके अभावाधिकरणमैं वह्निका परोक्ष ज्ञानरूप अवभास होनेतैं उक्त लक्षणकी **यद्यपि** अतिव्याप्ति होवैहै **तथापि** लक्षणमैं अवभासपदसैं अपरोक्ष ज्ञानका ग्रहण है; यातैं परोक्षभ्रमविषै अध्यासलक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं. जहां परोक्षभ्रम होवै, तिसस्थानमैं तौ जिसरीतिसैं नैयायिकादिक अन्यथाख्यात्यादिकनसैं निर्वाह करैं हैं, तासैं विलक्षण कहनेमैं अद्वैतवादीका आग्रह नहीं है, अपरोक्ष भ्रमविषै ही पारिभाषिक अध्यास विलक्षण मानैं हैं. काहेतैं? कर्तृत्वादिक अनर्थभ्रम अपरोक्ष है, ताके स्वरूपमैं ज्ञाननिवर्त्यताके अर्थ अध्यासका निरूपण है, यातैं अपरोक्ष भ्रमकूं ही दृष्टांतताके अर्थ अध्यासताप्रतिपादनमैं आग्रह है. परोक्ष भ्रमविषै शास्त्रांतरसैं विलक्षणता कहनेमैं प्रयोजन नहीं औ अपरोक्षभ्रमविषै उक्तरीतिमैं लक्षणका समन्वय होवैहै.

सिद्धांतसंमतअनिर्वचनीय ख्यातिकी रीति सांप्रदायिकमत ॥ १९ ॥

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीय ख्याति है ताकी यह रीति है:—जहां रज्जु आदिकनमैं सर्पादिक भ्रम होवै तहां अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु है; यातैं रज्जुका इदमाकार **सामान्यज्ञान** होवैहै, सो सामान्यज्ञान दोषसहित नेत्ररूपप्रमाणसैं उपजैहै यातैं **प्रमा** है. तिस दोषसहित नेत्रजन्य इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्न चेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्पज्ञान होवैहै, ताकूं **ज्ञानाभास** कहैहैं, दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध हुयें अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति तौ रज्जुदेशमैं गई, यातैं प्रमातृचेतन औ इदमवच्छिन्न चेतनकी उपाधि एकदेशमैं होनेतैं प्रमातृचेतनसैं इदमवच्छिन्नचेतनका भेद रहै नहीं; यातैं रज्जुका सामान्य इदंरूप प्रत्यक्षहै औ प्रत्यक्ष विषयका इदमाकार ज्ञानभी प्रत्यक्ष है जिस विषयका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै सो **विषय**

प्रत्यक्ष कहिये है. औ प्रत्यक्ष विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है, अथवा प्रमाण चेतनसैं विषयचेतनका अभेदही ज्ञानके प्रत्यक्षत्वका प्रयोजन कहैं उक्तस्थलमैं प्रमातृचेतनका अभेदही वृत्तिद्वारा हुया है; यातैं वृत्तिरूप प्रमाणचेतनका विषयचेतनसैं अभेदभी अबाधित है. जैसैं तडागजलका कुलीद्वारा केदारजलसैं अभेद होवै. तहां कुलीजलकाभी केदारजलमें अभेद होवै है इहां तडागजलसमान **प्रमातृचेतन** है, कुलीसमानवृत्ति औ कुलीजलसमान **वृत्तिचेतन** है, केदारसमान विषय औ केदारस्थजलसमान विषयचेतन है. **यद्यपि** उक्त दृष्टांतमें विषयचेतनका तौ प्रमातृचेतनसैं अभेद संभवै है, परंतु प्रमातृचेतनसैं घटादिक विषयका अभेद संभवै नहीं. जैसैं तडागजलसैं कुलीद्वारा केदारजलका अभेद होवै है औ पार्थिवकेदारका तडागजलसैं अभेद होवै नहीं, यातैं घटादिक विषयके प्रत्यक्षमें प्रमातृचेतनमें अभेद हेतु कह्या सो संभवै नहीं. **तथापि** प्रमातृचेतनसैं अभेद विषयके प्रत्यक्षत्वका हेतु है; या कहनेतैं प्रमातृचेतनकी औ विषयकी एकता विवक्षित नहीं है; किंतु प्रमातृचेतनकी सत्तामैं विषयकी पृथक् सत्ता नहीं होवै; किंतु प्रमातृचेतनकी सत्ताही जा विषयकी सत्ता होवै सो **विषय प्रत्यक्ष** होवैहै, यह अर्थ विवक्षित है. घटका अधिष्ठान घटावच्छिन्न चेतन है, रज्जुका अधिष्ठान रज्ज्ववच्छिन्न चेतन है; इसरीतिसैं सकल विषयनका अधिष्ठान विषयावच्छिन्नचेतन है औ अधिष्ठानकी सत्तासैं पृथक् अध्यस्तकी सत्ता होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानकी सत्ताही अध्यस्तकी सत्ता होवैहै, यातैं विषयावच्छिन्न चेतनकी सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नहीं है. औ अन्तःकरणकी वृत्तिद्वारा प्रमातृचेतनका विषयचेतनसैं अभेद होवै तब प्रमातृचेतनभी विषयचेतनसैं अभिन्न हुवा विषयका अधिष्ठान होवैहै, यातैं अपरोक्षवृत्तिके विषयका अधिष्ठान जो प्रमातृचेतन ताकी सत्तासैं विषयकी भिन्न सत्ताका अभाव ही प्रमातृचेतनसैं विषयका अभेद कहिये है. सो उक्तरीतिसैं संभवै है, इसीवास्तै अपरोक्ष स्थलमैं विषय देशमैं

वृत्तिका निर्गमन मान्य है. जैसें कुलीके संबंधविना तडागजलकी औ केदारजलकी एकता होवै नहीं. तैसें वृत्तिसंबन्धविना प्रमातृचेतन औ विषयचेतनकी एकता होवै नहीं यातैं जैसें परोक्षज्ञानकालमैं प्रमातृचेतन औ विषयचेतनके भेदतें प्रमातृचेतनसें भिन्न सत्तावाला विषय होनेतें प्रमातृचेतनसें अभिन्नसत्तावाला विषय नहीं होवै है, तैसें वृत्तिके निर्गमनविना अपरोक्षज्ञानकालमैंभी भिन्नसत्तावाला विषय होवैगा यातैं विषयदेशमैं वृत्तिका निर्गमन मान्या है; इस रीतिसें "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इत्यादिक अपरोक्षभ्रम ज्ञानकी उत्पत्ति होवै तहां भ्रमसें अव्यवहित पूर्व कालमैं भ्रमका हेतु अधिष्ठानका सामान्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्षरूपप्रमा होवैहै, तिसतें सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान उपजै है यह सांप्रदायिक मत है.

उक्त अनिर्वचनीयख्यातिरूप अर्थमैं शंका औ संक्षेप शारीरकका समाधान ॥ १६ ॥

परंतु अपरोक्ष प्रमासें अज्ञानकी निवृत्ति नियमतें होवैहै यह वार्ता अष्टमप्रकाशमैं प्रतिपादन करैंगे; यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनकी इदमाकार अपरोक्ष प्रमासेंभी विषयचेतनके अज्ञानकी निवृत्ति हुयातैं उपादानके अभावतैं सर्पादिक औ तिनके ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं.

याका समाधान संक्षेपशारीरकानुसारी इसरीतिसें कहैं हैं:—इदमाकार वृत्तिसें विषयके इदंअंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै; औ रज्जुत्वशुक्तित्वादिक विशेषअंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; औ रज्जुत्वशुक्तित्वादिक विशेप अंशके ज्ञानतैंही अध्यासकी निवृत्ति होनेतैं विशेषअंशका अज्ञानही अध्यासका हेतु है. सामान्यअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं जो सामान्यअंशका अज्ञानभी अध्यासका हेतु होवै तौ इदमाकार सामान्य ज्ञानसैंभी अध्यासकी निवृत्ति हुई चाहिये. काहेतैं ? जिसके अज्ञानसैं भ्रम होवै तिसके ज्ञानसैं नष्ट होवै है **यह नियम** है, यातैं अंशकेइदम्

अज्ञानकी अध्यासमैं अपेक्षा नहीं, प्रत्युत इदमाकार नेत्रप्रमाकी अपरोक्ष अध्यासमैं अपेक्षा है. काहेतैं? रज्जुआदिकनतैं नेत्रका संयोग होवै तौ सर्पादिकनका अपरोक्षभ्रम होवै है, नेत्रके संयोगविना होवै नहीं; यातैं नेत्रजन्य अपरोक्ष प्रमारूप अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका हेतु है, तहां अन्य प्रकारसैं तौ सामान्यज्ञानका अध्यासमैं उपयोग संभवै नहीं. अध्यासके उपादान अज्ञानका क्षोभ सामान्यज्ञानसैं होवैहै यह मानना चाहिये. इस रीतिमैं अधिष्ठानके सामान्य ज्ञानकूं अध्यासमैं कारणता होनेतैं इदंताअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं.

कवितार्किकचक्रवर्त्तिनृसिंह भट्टोपाध्यायके मतका अनुवाद औ अनादर ॥ १७ ॥

औ कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायनैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमैं हेतुताका निषेध कह्या है; औ अधिष्ठानसैं नेत्रसंयोग होवै तौ सर्पादिक अध्यास होवै,नेत्रसंयोग नहीं होवै तो सर्पादिक अध्यास होवै नहीं. इसरीतिसैं इन्द्रिय अधिष्ठानके संयोगके अन्वयव्यतिरेकतैं जो सामान्य ज्ञानकूं अध्यासकी कारणता पूर्व कही है तिस अन्वयव्यतिरेकसैंभी इंद्रिय-अधिष्ठानके संयोगकूंही अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै है. इंद्रियसंयोग जन्य सामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं? अन्वय व्यतिरेकसैं कारणताका निश्चय होवैहै, साक्षात्कारणता संभवै, जहां परंपरातैं कारणता कल्पन अयोग्य है; यातैं इंद्रिय संयोगके अन्वयव्यतिरेकसैं अध्यासमैं इंद्रिय अधिष्ठानके संयोगकूंही साक्षात्कारणता उचित है. अधिष्ठानके समान्यज्ञानद्वारा इंद्रियसंयोगकूं कारणता कहना उचित नहीं, जैसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानसैं अविद्यामैं क्षोभ मान्या है तैसैं अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैंही क्षोभ मानना चाहिये. औ अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमैं हेतु नहीं मानैं तौ अध्यासतैं पूर्व इदमाकार अपरोक्षप्रमा होनेतैं जो अज्ञान-निवृत्तिकी शंका है औ समाधान है सोभी निर्मूल होवै है. यहभी अनुकूल

लाघव है. इसरीतिसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकी अध्यासमैं कारणताका निषेध कवि तार्किक चक्रवर्त्ती नृसिंहभट्टोपाध्यायने कह्या है सोभी अद्वैतवादी है, तथापि सांप्रदायिक वचनतैं ताकी उक्ति विरुद्ध है; यातैं ताकी उक्तिका खंडन इसी प्रसंगमैं विस्तारसैं कहैंगे.

यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु होनेतैं इदंताअंशके अज्ञानकी अध्यासमैं अपेक्षा नहीं; इसीवास्तै संक्षेपशारीरकमैं अधिष्ठान आधारका भेद कह्या है, सविलास अज्ञानका विषय **अधिष्ठान** कहिये है. कार्यकूं **विलास** कहैंहैं,सर्पादिक विलाससहित अज्ञानका विषय रज्जु आदिक विशेषरूप होनेतैं सर्पादिकनका अधिष्ठान रज्जु आदिक विशेषरूप है, अध्यस्तमैं अभिन्न होयकै जाका स्फुरण होवै सो **आधार** कहिये है. "अयं सर्पः, इदं रजतम्"इत्यादिक भ्रमप्रतीतिमैं अध्यस्त सर्परजतादिकनतैंअभिन्न होयकै सामान्य इदंअंशका स्फुरण होनेतैं सामान्य अंश आधार है यामतमैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता होवैहै, या नियमके स्थानमैं आधार अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता होवै है, यह **नियम** है; जो अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता मानैं तौ रज्जुशुक्ति आदिक विशेषरूपकूं अधिष्ठानता होनेतैं "रज्जुः सर्पः शुक्ती रूपम्"ऐसा भ्रम हुया चाहिये, औ सामान्य इदंअंशकूं आधारता है अधिष्ठानता नहीं, यातैं "अयं सर्पः इदं रजतम्" ऐसा भ्रम नहीं चाहिये, यातैं विशेषअंशका अज्ञानही अध्यासका हेतु है, या मतमैं आधार अध्यस्तकूं ही एक ज्ञान की विषयता माननी चाहिये.

अध्यासकी कारणतामें पंचपादिका विवरणकारका मत ॥ १८ ॥

औ पंचपादिकाविवरणकारके मतको अनुसारी तौ यह कहै हैंः—आवरणविक्षेपभेदसैं **अज्ञानकी दो शक्ति** हैं, आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध होनेतैं नाश होवैहै, विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध नहीं; यातैं ज्ञानसैं ताका नाश होवै नहीं यह वार्ता अवश्य

अंगीकरणीय है. अन्यथा जलप्रतिबिंबित वृक्षके ऊर्ध्वभागमें अधोदेशस्थत्व भ्रम होवै तहां वृक्षका विशेषरूपतें ज्ञानहुयेभी ऊर्ध्वभागमें अधोदेशस्थत्व अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं, तैसें जीवन्मुक्त विद्वानकूं ब्रह्मात्मका विशेषरूपतें ज्ञानहुयेंभी अंतःकरणादिरूप विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं, तहां उक्त स्थलकी नाई समान्यरूपसें ज्ञान औ विशेषरूपसें अज्ञान तौ कहना संभवै नहीं. विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकी ज्ञानसें निवृत्ति होवै नहीं. आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशकीही ज्ञानसें निवृत्ति होवे है, यही समाधान है. तैसें रज्जुशुक्ति आदिकनके सामान्यज्ञानतें इदंअंशके आवरणका हेतु अज्ञानांशका नाश होवै है, औ सर्परजतादिक विक्षेप हेतु अज्ञानांशका नाश होवै नहीं; यातें इदमाकार सामान्यज्ञान हुयेभी सर्पादिक विक्षेपका हेतु इदंअंशका अज्ञानभी संभवै है. इस रीतिसें इदमाकार सामान्यज्ञान हुयेंभी सविलास अज्ञानका विषय रज्जु आदिक सामान्य अंश संभवैं हैं, यातें अधिष्ठानताका इदंअंशमें संभव होनेतें अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता संप्रदायसैं प्राप्त है ताकाभी विरोध नहीं.

पंचपादिका औ संक्षेपशारीरकके मतकी विलक्षणता औ तामैं रहस्य ॥ १९ ॥

संक्षेपशारीरककी रीतिसें विशेष अंशमें अधिष्ठानता है सामान्यअंशमें अधिष्ठानता नहीं. औ विशेष अंशमैं आधारता नहीं, या मतमें सामान्य अंशमैं अधिष्ठानता है; इतना भेद है. औ विशेष अंशमैं आधारताका अभाव इसमतमैंभी समान है. काहेतें? अध्यस्तसैं अभिन्न होयके प्रतीत होवै सो आधार कहियेहै. "रज्जुः सर्पः" इसरीतिसें जो प्रतीति होवै तौ अध्यस्तसैं अभिन्न होयके विशेष अंश प्रतीति होवै, उक्त रीतिसैं प्रतीत होवै नहीं यातैं विशेषरूपतें रज्जु आधार नहीं इस रीतिसैं प्रथमपक्षमैं इदंत्वरूपतैं रज्जुमैं औ शुक्तिमैं प्रमाणजन्यज्ञानकी प्रमेयता है औ रज्जुत्वरूपतें तथा शुक्तित्वरूपतैं प्रमेयताके अभावतें अज्ञातत्व होनेतैं सर्प औ रजतकी अधिष्ठानता है.

औ द्वितीय पक्षमैं आवरणशक्ति विरोधिप्रमाकी विषयतारूप प्रमेयता इदंत्वरूपतैं है तथापि विक्षेपशक्तिवाले अज्ञानकी विषयता ज्ञातमैंभी संभवै है यातैं इदंत्वरूपतैं ही रजतादिकनकी अधिष्ठानता है.

या स्थानमें यह रहस्य है:—अज्ञानकृत आवरण चेतनमैं होवैहै औ स्वभावसें आवृतरूप जन्मांधके समान जडपदार्थनमैं अज्ञानकृत आवरणका अंगीकार नहीं, तैसें प्रमाणजन्यज्ञानकी विषयतारूप प्रमेयताभी चेतनमैं है घटादिक जडपदार्थनमैं आवरण होवै तौ ताकी निवृत्तिके अर्थ प्रमेयताका अंगीकार होवै, चेतनमें अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता होनेतैं चेतनमैंही ज्ञातता औ प्रमेयता है, तैसैं सकल अध्यासका अधिष्ठानभी चेतन है. जड पदार्थ आप अध्यस्त हैं, अन्यके अधिष्ठान संभवैं नहीं; यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनमैं अज्ञातता तथा ज्ञातता औ अधिष्ठानता किसी प्रकारसैं संभवै नहीं तथापि मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तौ निरवयवच्छिन्न विभु-चेतनमैं है, परंतु मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तिसतिस विषयावच्छिन्न चेतनमैं है, यह अर्थ अष्टमप्रकाशमैं कहैंगे तैसैं ब्रह्मज्ञानकी विषयतारूपज्ञातता तौ निरवयवच्छिन्न चेतनमैं है औ घटादिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञातता घटाद्यवच्छिन्न चेतनमैं है.तैसें अविद्याकी अधिष्ठानता निरवयवच्छिन्न चेतनमैं है.औ भूतभौतिक प्रपंचकी अधिष्ठानता अज्ञानावच्छिन्नमें है. औ प्रातिभासिक सर्परजतादिकनकी अधिष्ठानता रज्जुअवच्छिन्न शुक्तिअवच्छिन्नादिक चेतनमैं है. इसरीतिसें चेतनमें अज्ञातता ज्ञातता अधिष्ठानतादिकनके अवच्छेदक जडपदार्थ हैं; यातैं अवच्छेदकता संबंधसैं जडपदार्थनमैंभी अज्ञातता-दिकनका संभव होनेतैं रज्जु अज्ञात है, ज्ञात है सर्पका अधिष्ठान है इसरी-तिसैंभी व्यवहार संभवैहै. इसरीतिसैं सर्पादिभ्रमका हेतु रज्जुआदिकनतैं इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूप अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, तिस सामान्यज्ञानतैं क्षोभवती अविद्याका सर्पादिरूप परिणाम औ सर्पादिकनका ज्ञानरूप परिणाम होवै है. रज्जुआदिक विषयउपहित चेतनस्थ

अविद्यांशका सर्पादिकै विषयाकार परिणाम होवै है, इदमाकारवृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्यांशका ज्ञानाकार परिणाम होवै है, रज्जुअवच्छिन्नचेतन सर्पका अधिष्ठान है औ इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतन सर्पज्ञानका अधिष्ठान है.

विषयउपहित औ वृत्तिउपहितचेतनके अभेदमैं शंकासमाधान२०

यद्यपि इदमाकार प्रत्यक्षवृत्ति होवै तहां विषयोपहितचेतन औ वृत्त्युपहितचेतनका अभेद होवै है. यातैं उक्तरीतिसैं विषय औ ज्ञानके उपादानका भेदकथन औ अधिष्ठानका भेदकथन संभवै नहीं, औ सर्पादिक विषयके अधिष्ठानतैं ज्ञानके अधिष्ठानकूं भिन्न मानोंगे तौ सर्पादिकनके अधिष्ठान ज्ञानतैं सर्पादिकनके ज्ञानकी निवृत्ति नहीं होवैगी. काहेतैं ? अपने अधिष्ठानके ज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवै है,अन्यके अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवै तौ सर्पके अधिष्ठान रज्जुके ज्ञानतैं अध्यस्तसंसारकी निवृत्ति हुई चाहिये; यातैं एकके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय औ तिनके ज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ दोनूंका अधिष्ठान एकही मानना योग्य है.

या शंकाका यह समाधान हैः-जहां एक वस्तुका उपाधिकृत भेद होवै तौ उपाधिकी निवृत्तिमैं अभेद होवै है औ दोनूं उपाधि एकदेशमैं होवैं तहांभी उपहितका अभेद होवैहै, परंतु उपाधिके एक देशस्थत्वमैं जहां उपहितका अभेद होवै है तहां एकही धर्मीमैं तत्त्व उपहितत्व दो धर्म रहैहैं जैसैं. एक आकाशका घट मठ उपाधिभेदसैं भेद होवै तहां घट मठके नाशतैं अभेद होवै है औ मठदेशमैं घटके स्थापनतैंभी घटाकाशमठाकाशतैं भेद रहै नहीं, तौभी घटाकाशमैं घटोपहितत्व औ मठोपहितत्व दो धर्म रहै हैं औ धर्मी एक है तथापि जितनैं घट मठ दोनूं रहैं उतनेकाल घटाकाश मठाकाश यह दोनूं व्यवहार होवैं हैं; तैसैं रज्जुआदिक विषय देशमैं वृत्तिके निर्गमनकालमैं वृत्त्युपहितचेतनसैं विषयचेतनका यद्यपि अभेद होवैहै तथापि दोनूं उपाधिके सद्भावतैं वृत्त्युपहितत्व रज्जूपहितत्व दो धर्म रहैं हैं; तिनमैं सर्पा-

दिकविषयकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म रज्जूपहितत्व है. औ सर्पादिकनके ज्ञानकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म वृत्त्युपहितत्व है इस रीतिसैं सर्पादिक विषयोपादान अज्ञानांशकी चेतनमैं अधिकरणताका अवच्छेदक रज्जूपहितत्व है. औ भ्रांतिज्ञानोपादान अज्ञानांशकी चेतनमैं अधिकरणताका अवच्छेदक वृत्त्युपहितत्व है इसरीतिसैं एकदेशमैं उपाधिके होनेतें उपहितका अभेद हुयेंभी धर्मनका भेद रहैहै. यातें वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्न चेतननिष्ठ अज्ञानांशमैं भ्रमज्ञानकी उपादानता है, औ रज्जुआदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसीचेतननिष्ठ अज्ञानांशमैं भ्रमके विषयकी उपादानता है. तैसैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्नचेतनमैं भ्रमज्ञानकी अधिष्ठानता है; औ रज्जु आदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतनमैं सर्पादिक विषयकी अधिष्ठानता है. या प्रकारतें उपाधिके सद्भावकालमैं एकदेशस्थ उपाधिके होनेतें उपहितका अभेद हुयेंभी उपाधिपुरस्कारतें भेदव्यवहारभी होवैहै; औ भिन्नदेशमैं उपाधि होवै तब केवल भेदव्यवहार होवैहै, उपाधिकी निवृत्ति होवै तब भेदव्यवहार होवै नहीं. केवल अभेदव्यवहार होवैहै, याप्रकारतें वृत्ति औ विषय दोनूं एकदेशस्थ होवैं तब चेतनका अभेद हुयेंभी उपाधिपुरस्कारतें पूर्व उक्त उपादान औ अधिष्ठानका भेदकथन असंगत नहीं. औ स्वरूपसैं उपहितका अभेद है यातैं एक अधिष्ठानके ज्ञानतें सर्पादिक विषय औ तिनके ज्ञानकी निवृत्तिभी संभवै है.

रज्जुआदिकनकी इदमाकार प्रमातें सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तामैं दो पक्ष ॥ २१ ॥

रज्जु आदिकनकी इदमाकार प्रमातें सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तहां दो पक्ष हैं:—कोई तो कहै है "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसैं अधिष्ठानगत इदंताकूं औ ताके सर्प रजतादिकनमैं संबंधकूं विषय कर्ता हुवा सर्परजतादिगोचरभ्रम होवैहै. अधिष्ठानकी इदंताकूं औ इदंताके संबंधकूं त्यागिकै केवल सर्परजतादिगोचर अपरोक्ष भ्रम होवै नहीं; जो केवल

अध्यस्त गोचरही भ्रम होवै तौ "सर्पः, रजतम्" ऐसा आकार भ्रमका हुया चाहिये. औ "इमं सर्पं जानामि, इदं रजतं जानामि" ऐसा भ्रमका अनुव्यवसायभी इदंपदार्थसैं तादात्म्यापन्न सर्परजतादिगोचरव्यवसायकूं विषय करै है, औ कल्पित सर्पादिकनमैं इदंता है नहीं. काहेतें ? वर्तमान-काल औ पुरोदेशका संबन्ध इदंता होवै है. व्यावहारिक देशकालका प्राति-भासिकसैं व्यावहारिक संबंध संभवै नहीं, औ अधिष्ठानकी इदंताकी कल्पि-तमैं प्रतीतिसैं व्यवहारिका निर्वाह होनेतें कल्पितमैं इदंताका अंगीकार निष्फल है; औ अन्यथाख्यातिमैं विद्वेष होवै तौ अधिष्ठानकी इदंताकी कल्पितमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है कल्पितमैं इदंताका अंगीकार नहीं. तथापि संबंधीकूं त्यागिके केवल संबंधका ज्ञान होवै नहीं; यातें अधिष्ठानकी इदंताकूं त्यागिके केवल अध्यस्तगोचर अपरोक्षभ्रम होवै नहीं. इसरीतिसैं इदं पदार्थकी द्विधा प्रतीति होवैहै, एक तौ इन्द्रियअधिष्ठानके संयोगतें इदमाकार प्रमा अंतःकरणकी वृत्तिरूपप्रतीति होवै है, औ दूसरी वृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्प रजतादि गोचरभ्रम प्रतीति होवैहै. सोभी अध्यस्तमैं इदं पदार्थके तादात्म्यकूं विषय करती हुई इदं-गोचर होवैहै, इसरीतिसैं सारे अपरोक्षभ्रम इदमाकार हुये अध्यस्ताकार होवै है कोई आचार्य ऐसैं मानै है.

और बहुत ग्रंथकार यह कहै हैः—अधिष्ठान इन्द्रियके संयोगतें इदमा-कार अन्तःकरणकी वृत्तिरूप प्रमातें क्षोभवाली अविद्याका केवल अध्यस्ता-कार परिणाम होवै है अविद्याका इदमाकार परिणाम होवै नहीं. काहेतें ? व्यावहारिक पदार्थाकार अविद्याका परिणाम संभवै नहीं; साक्षात् अविद्या-जन्य प्रातिभासिक पदार्थाकारही अविद्याका परिणाम भ्रमज्ञान होवै है, यातें अधिष्ठानकी इदंतामैं भ्रमज्ञानकी विषयता नहीं, केवल अध्यस्तमैंही भ्रमकी विषयता है.

और जो पूर्वमतमैं कह्या है "अयं सर्पः, इदं रजतम्" ऐसा भ्रमका

आकार होवै है; तैसैं "इदं रजतं जानामि" यह भ्रमका अनुव्यवसाय होवै है. जो अध्यस्तमात्रगोचर भ्रम होवै तौ "सर्पः रजतम्", ऐसा भ्रमका आकार हुया चाहिये. औ "रजतं जानामि" ऐसाही अनुव्यवसाय हुया चाहिये.

ताका यह समाधान है:-जैसैं सर्प रजतादिकनके अधिष्ठानगत इदंताका अध्यस्तमैं भान होवै अथवा अधिष्ठानगत इदंताका अध्यस्त सर्पादिकनमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजैहै, तैसैं सर्पादिज्ञानाभासका अधिष्ठान इदमाकार प्रमावृत्ति है, ता प्रमावृत्तिमैं इदंपदार्थ विषयकत्व है. ताकी प्रतीति सर्पादिभ्रममें होवै है, अथवा प्रमावृत्तिरूप अधिष्ठानमैं जो इदंपदार्थ विषयकत्व ताका अनिर्वचनीय संबंध सर्पादिज्ञाननमैं उपजै है; यातैं इदमाकारत्व शून्यभ्रम ज्ञानमैं इदमाकारत्वकी प्रतीति होवै है; यद्वा इदमाकारवृत्ति उपहित चेतनही सर्पादिज्ञानाभासका अधिष्ठान है, उक्तवृत्त्युपलक्षित जो अधिष्ठान होवै तौ उक्त वृत्तिसैं दो च्यारि घटिकाके व्यवधान हुयेंभी सर्पादिक भ्रम हुया चाहिये. काहेतें? उपलक्षणवालेकूं **उपलक्षित** कहें हैं. औ उपलक्षणमैं वर्तमानत्वकी अपेक्षा नहीं यह अर्थ आगे कहैंगे. औ वक्ष्यमाण रीतिसैं उपाधिमैं वर्तमानत्वकी अपेक्षा है, इदमाकार वृत्ति जाकी उपाधि होवै सो **इदमाकारवृत्त्युपहित** कहिये है, यातैं सर्परजतादिकनका भ्रमज्ञान होवै तिसकालमैं अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति भी रहैहै यह अवश्य मानना चाहिये. काहेतें? अधिष्ठानकी सत्ताकालसैं अतिरिक्तकालमैं अध्यस्त होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानके समयमैं वृत्त्युपहितचेतनकी अधिष्ठानताकी उपयोगिनी इदमाकार अंतःकरणकी वृत्ति रहै है, औ रजताकार अविद्यावृत्ति होवै है. इसरीतिसैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" यह दो ज्ञान हैं, इदमाकार प्रमावृत्ति है, औ सर्प रजतादिक आकारवाली भ्रमवृत्ति है, अवच्छेदकतासंबंधसैं भ्रमवृत्तिका इदमाकारप्रमावृत्ति अधिष्ठान है, अध्यस्तका अभेद संबंध होवैहै. जैसैं ब्रह्म औ प्रपंचका "सर्वमिदं ब्रह्म"

इस प्रतीतिका विषय अभेद है यातें "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसैं उभयवृत्तिका अभेद प्रतीत होवै है. यद्यपि उक्तरीतिसैं वृत्तिद्वय होवै तौ अधिष्ठान अध्यस्त दोनूं एक ज्ञानके विषय होवैं हैं, यह प्राचीनवचन असंगत होवैगा, तथापि एक ज्ञानके विषय होवै है; याका यह अर्थ नहीं. एक वृत्तिके विषय होवैं हैं; किंतु अधिष्ठान औ अध्यस्त एक साक्षीके विषय होवैं हैं यह प्राचीनवचनका अर्थ है, रज्जुशुक्ति आदिकनके देशमैंही सर्प रजतादिक होवैं हैं, औ इदमाकारवृत्तिभी रज्जु शुक्ति आदिकदेशमें जावै है यातैं इदमाकारवृत्ति उपहित साक्षीके अधिष्ठान औ अध्यस्त विषय हैं. इस रीतिसैं अधिष्ठान औ अध्यस्त एक ज्ञानके विषय होवें हैं. इस प्राचीन वचनमें ज्ञानपदका साक्षी अर्थ है वृत्ति नहीं, यातें भ्रमवृत्तिकूं अध्यस्तमात्र गोचरता माननेमें बहुत आचार्योंकी संमति है.

कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत ॥ २२ ॥

औ **कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्याय** तौ यह कहैं हैं:—भ्रांतिज्ञानसैं विना प्रमारूप इदमाकार ज्ञान भ्रमका हेतु होवै नहीं किंतु "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसें भ्रमरूप एकही ज्ञान होवैहै. काहेतें ? भ्रमसें पूर्व इदंपदार्थाकार प्रमारूप सामान्य ज्ञान रज्जुशुक्ति आदिकनका मानैं ताकूं यह पूछें हैं:—अनुभवके अनुसारतें ज्ञानद्वयका अंगीकार है अथवा भ्रमरूप कार्यकी अनुपपत्तिसे भ्रमभिन्न सामान्यज्ञानका अंगीकार है ? जो अनुभवके अनुसारतें ज्ञान द्वय कहैं तौ संभवै नहीं. काहेतें ? प्रथम मतमें तौ इदं पदार्थगोचर दो वृत्ति कही हैं. एक तौ प्रमारूप अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति कही औ दूसरी अविद्याकी भ्रमरूप वृत्ति इदं पदार्थकूं विषयकरती हुई रजतगोचर "इदं रजतम्"इस रीतिसैं कही. या मतमैं इदंपदार्थकी द्विधा प्रतीति कही, सो किसीके अनुभवमैं आरूढ होवै नहीं. सर्प रजतादि ज्ञानकी नाईं इदंगोचरज्ञानभी एकही अनुभवसिद्ध है; यातैं प्रथममत अनुभवानुसारी नहीं. औ द्वितीय मतमैं

इदंपदार्थके दो ज्ञान तौ नहीं माने परंतु "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इत्यादिक दो ज्ञान माने हैं. इदमाकार तौ प्रमा मानी है. औ सर्परजतादिगोचर भ्रम मान्या है; सोभी अनुभवसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? रज्जु शुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतके बाधसैं उत्तर कोई पूछैः—तेरेकूं कैसा भ्रम हुयाथा ताका यह उत्तर कहैं हैंः—"अयं सर्पः, इदं रजतम्" ऐसा भ्रम मेरे कूं होता भया. औ इदमाकार प्रमा हुई. सर्पाकार रजताकार भ्रम हुया ऐसा उत्तर कोई कहै नहीं, यातैं द्वितीयमतकी रीतिमैंभी ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवविरुद्ध है, यातैं इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप इदमाकारज्ञान प्रमा है, औ इदमाकार ज्ञानजन्य सर्परजतादिगोचर इदंपदार्थविषयक अथवा इदंपदार्थविषयक अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञानाभास है.इसरीतिमैं ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवानुसारी नहीं.

उपाध्यायके मतमैं सामान्यज्ञान (धर्मिज्ञान) वादीकी शंका औ समाधान ॥ २३ ॥

औ जो सामान्यज्ञानवादी यह कहैः—रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोग होवै तौ सर्पादिक अध्यास होवै है, इंद्रियसंयोग नहीं होवै तौ अध्यास होवै नहीं; इस रीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं इंद्रियका अधिष्ठानमैं संयोगकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै है, औ अधिष्ठान इंद्रियके संयोगकूं अधिष्ठानके ज्ञानद्वाराही कारणता संभवै है, अन्य प्रकारसैं अधिष्ठान इंद्रियसंयोगका अध्यासमैं उपयोग संभवै नहीं. जो अध्यासकी कारणता कहैं तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठान इंद्रियके संयोगविनाभी अहंकारादिक अध्यास होवै है; यातैं अध्यासमात्रमैं अधिष्ठानज्ञानका सामान्यज्ञानहेतु है. अहंकारादिक अध्यासका अधिष्ठान प्रत्यक्स्वरूप आत्मा है सो स्वयंप्रकाश है. सर्पादिक अध्यासके अधिष्ठानका सामान्यज्ञान इंद्रियसंयोगतैं होवैहै, इस रीतिसैं निजप्रकाशशून्य अधिष्ठानके सामान्यज्ञानद्वाराही इंद्रिय संयोगका अध्यासमैं उपयोग है; साक्षात् उपयोग नहीं; यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका कारण है, अध्यास कार्य है. जहां कार्य प्रतीत होवै औ

कारण प्रतीत होवै नहीं तहां कार्यकी अन्यथाअनुपपत्तिमैं कारणकी कल्पना होवै है. भ्रमस्थलमैं इदमाकार प्रमा यद्यपि अनुभवसिद्ध नहीं है; तथापि भ्रमरूप कार्यकी सामान्यज्ञानरूप कारणविना अनुपपत्ति होनेतैं सामान्य ज्ञानकी कल्पना होवै है.

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहै तौ संभवै नहीं. अध्यासके हेतु सामान्यज्ञानकूं **धर्मिज्ञान** कहैहैं, या प्रसंगमैं सामान्यज्ञानकूं अध्यास कारण मानैं सो पूर्वपक्षी है. औ सामान्यज्ञानका **अपलापी उपाध्याय सिद्धांती** है, ताकी उक्ति कहै हैं:—सामान्यज्ञानविना कोईभी अध्यास नहीं होवै तौ अध्यासकी कारणता सामान्यज्ञानमैं संभवै अधिष्ठानके सामान्यज्ञानविना घटादिक अध्यास होवै है, यातैं अध्यासमात्रमैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं कारणता नहीं. धर्मिज्ञानवादी जो घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामन्यज्ञान कहै ताकूं यह पूछ्या चाहिये, घटादिक अध्यासका हेतु अधिष्ठानतैं नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप सामान्यज्ञान है अथवा चेतनस्वरूप प्रकाशही सामान्यज्ञान है ? जो प्रथमपक्ष कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? घटादिक अध्यासका अधिष्ठान अज्ञानावच्छिन्न ब्रह्म नीरूप है, यातैं ब्रह्मगोचर अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं औ द्वितीय पक्ष कहै तौ स्वरूपप्रकाश आवृत है, तिस आवृत प्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं भी अध्यासका हेतु मानैं तौ रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोगविनाभी सर्पादिक अध्यास हुया चाहिये, यातैं आवृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं. इसरीतिसैं घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्य ज्ञानके अभावतैं अध्यासमात्रमैं सामान्य ज्ञानकी कारणताके अभावतैं अध्यासरूपकार्यकी अनुपपत्तिमैं सामान्य ज्ञानरूप इदमाकार वृत्तिका कल्पन होवै नहीं.

और जो धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—सकल अध्यासमैं अनावृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं हेतु कहै तौ घटादिक अध्यासमैं व्यभिचार कथन संभवै. अध्यासमात्रमैं तौ आवृत वा अनावृत साधारण प्रकाश हेतु है

औ प्रातिभासिक अध्यासमैं अनावृत प्रकाश हेतु है, जैसें उपाध्यायके मतमैं सर्पादिक अध्यासके हेतु इंद्रियसंयोग मान्या है औ घटादिक अध्यासका हेतु इंद्रियसंयोग मान्या नहीं औ संभवै नहीं; यातें इंद्रियसंयोगके अभावकालके सर्पादिक अध्यास होवै नहीं, औ घटादिक अध्यास इंद्रियसंयोगविनाभी होवै है;यह व्यवस्था संभवै है. तैसें हमारे मतमें प्रातिभाषिक सर्पादिक अध्यासका हेतु अनावृत प्रकाश है; यातें आवरणभंगके अर्थ सर्पादिक अध्यासतें पूर्व इदमाकार सामान्यज्ञानरूप प्रमाकी अपेक्षा है, औ घटादिक अध्यासका हेतु साधारण प्रकाश है; यातें अनावृतप्रकाशके सद्भावतें घटादिक अध्यासमैं वृत्तिकी अपेक्षा नहीं; यातें सामान्यज्ञानरूप वृत्तिके अभावकालमैं सर्पादिक अध्यास होवै नहीं औ घटादिक अध्यास वृत्तिविना होवै है, यह व्यवस्था संभवै है धर्मिज्ञानवादीका यह कथनभी असंगत है; काहेतें ? प्रातिभासिक अध्यासतें पूर्व इंद्रियजन्यप्रमारूप अंतःकरणकी वृत्ति नियमतें होवैहै, याकाभी शंखके पीतताध्यासमैं औ कूपजलके नीलताध्यासमें व्यभिचार है. काहेतें ? ब्रह्मज्ञानविना जाका बाध होवै सो प्रातिभाषिक अध्यास कहिये है; शंखमैं पीतताका औ कूपजलमैं नीलताका बाधभी ब्रह्मज्ञानसें प्रथमही शंखश्वेतताज्ञान औ जलश्वेतताज्ञानसैं होवै है, यातें यहभी प्रातिभासिक अध्यास है, या स्थानमैं धर्मिज्ञानवादीकी यह प्रक्रिया है:—प्रातिभासिक अध्यासमैं अनावृतप्रकाशकूं कारणताके नियमतैं शंख औ जलसैं नेत्रके संयोगतैं इदमाकार अंतःकरणकी वृत्तिसैं अभिव्यक्तशंखावच्छिन्न चेतनमैं औ जलावच्छिन्न चेतनमैं पीतरूपका अध्यास होवै है औ उपाध्यायके मतमैं तौ शंखसैं औ जलसैं नेत्रका संयोग हुयें पीतरूपका औ नीलरूपका अध्यास होवै है, इदमाकार वृत्तिकी अपेक्षा नहीं; यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं यह प्रष्टव्य है:—इदमाकारवृत्तिका विषयरूपविना केवल शंखादिक द्रव्य हैं अथवा रूपविशिष्ट शंख औ रूपविशिष्ट जल इदमाकार वृत्तिका विषय है. जो रूपकूं त्यागिकै केवल

द्रव्यकूं वृत्ति विषय करै है यह कहै तौ संभवै नहीं. काहेतें ? नेत्रजन्य वृत्तिका यह स्वभाव है रूपकूं विषय करै है; औ रूपविशिष्ट द्रव्यकूं विषय करै है, केवल द्रव्यकूं नेत्रजन्यवृत्ति विषय करै नहीं. औ रूपकूं त्यागिकै केवल द्रव्यकूं विषय करै तौ घटके चाक्षुषज्ञानवालेकूं घटके नीलतादिकनमैं संदेह हुया चाहिये. और रूपरहित पवनादि द्रव्यकाभी चाक्षुषज्ञान हुया चाहिये. यातें केवल द्रव्यगोचर इदमाकार चाक्षुषवृत्ति शंखादिकनका सामान्यज्ञानरूप संभवै नहीं; औ रूपविशिष्ट शंखगोचर तथा रूपविशिष्ट जलगोचर वृत्ति कहै तौ यह प्रष्टव्य हैः—शुक्लरूपविशिष्ट शंखकूं औ शुक्लरूपविशिष्ट जलकूं वह वृत्ति विषय करैहै अथवा अध्यस्तरूप विशिष्टकूं विषय करैहै जो प्रथमपक्ष कहै तौ शुक्लरूपकूं विषय कर्ती हुई इदमाकारवृत्तिसें उत्तरकालमैं पूर्ववृत्तिका विरोधि पीतभ्रम औ नीलभ्रम नहीं होवैगा; यातें पीतभ्रमतें औ नीलभ्रमतें पूर्व शुक्लरूपविशिष्ट शंखजलका इदमाकार ज्ञान संभवै नहीं, तैसैं अध्यस्तरूपविशिष्ट गोचर इदमाकार वृत्तिकूं मानै तौ शंखमैं अध्यस्त पीतरूप है औ जलमैं अध्यस्त नीलरूप है, तद्विशिष्ट ज्ञानही भ्रम है. ताकूं भ्रमकी हेतुता कथनमैं आत्माश्रय होनेतें संभवै नहीं. किंच धर्मिज्ञानवादी इदमाकार ज्ञान प्रमारूप ही अध्यासका हेतु है यह मानैं हैं; औ अध्यस्तरूप विशिष्टके ज्ञानकूं भ्रमत्व होनेतें प्रमारूप धर्मिज्ञान अध्यासका हेतु है यह धर्मिज्ञानवादीका भंग होवैगा;इसरीतिसैं शंखमैं पीतता भ्रमके औ जलमैं नीलताभ्रमके पूर्व अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान संभवै नहीं, औ अधिष्ठान इंद्रियके संयोगका संभव है, यातें सामान्यज्ञानका व्यभिचार औ इंद्रियसंयोगका अव्यभिचार होनेतें **अध्यासका हेतु** अधिष्ठानतें इंद्रियका संयोग है, सामान्य ज्ञान हेतु नहीं; यह उपाध्यायका मत है.

प्राचीनआचार्य धर्मिज्ञानवादीका मत ॥ २४ ॥

औ प्राचीनआचार्य जो धर्मिज्ञानवादी हैं,धर्मिज्ञानका जो शंख पीतादिक अध्यासमैं व्यभिचार कह्या ताका समाधान यह कहैंहैंः—अध्यासमात्रमैं

सामान्यज्ञान हेतु नहीं; किंतु अध्यासविशेषमैं सादृश्यज्ञानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानकूं कारणता कहनेकूं **अध्यासके भेद** कहैं हैं:–प्रातिभासिक अध्यास दो प्रकारका होवैहै, एक तौ धर्मीके विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य है औ दूसरा विशेषज्ञानतैं अप्रतिबध्य है. नीलपृष्ठता त्रिकोणतादिक विशेषधर्मके ज्ञान हुयें रजत अध्यास नहीं होवै, यातैं रजताध्यास तौ विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य है. तैसैं सर्पादिक अध्यासभी जानने, श्वेततारूप विशेषधर्मके ज्ञान हुयेंभी शंखमैं पीतताध्यास औ जलमैं नीलताध्यास होवै है; यातैं उक्त अध्यासविशेष ज्ञानसैं अप्रतिबध्य है, तैसैं रूपराहित्य विशेष धर्मके ज्ञान हुयेंभी आकाशमैं नीलताध्यासभी विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य है, सितामैं कटुता अध्यासभी विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य है; काहेतें ? आकाश नीलरूप है इसनिश्चयवालेकूं औ अनेकवार सितामैं मधुरताके निश्चयवालेकूंभी आकाशमैं नीलताअध्यास औ पित्तदोषतैं सितामैं कटुताअध्यास होवै है;इसरीतिसैं द्विविध अध्यास है. तिसमैं अंत्यअध्यास तौ अधिष्ठान अध्यस्तके सादृश्यज्ञानविनाही होवै है. अधिष्ठान अध्यस्तमैं विरोधी धर्म है, तहां सादृश्यका संभव नहीं औ परस्पर वैधर्म्यज्ञान हुयेंभी उक्त अध्यास होवैहै, यातैं भ्रमरूप सादृश्यज्ञानभी तिस अध्यासका हेतु नहीं, परंतु विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसैं रजतसर्पादिक अध्यासमैं अधिष्ठानका अध्यस्तसैं सादृश्यज्ञान हेतु है; जो विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासकूंभी सादृश्यज्ञानजन्य नहीं मानैं औ दुष्ट इन्द्रियसंयोगजन्यही मानैं तौ शुक्तिमैं रजताध्यासकी नाईं दुष्ट नेत्रके संयोगतैं इंगालमैंभी रजताध्यास हुया चाहिये. अग्निदग्धनीलकाष्ठकूं इंगाल कहैं हैं. रज्जुमैं सर्पाध्यासकी नाईं दुष्टनेत्रसंयोगतैं घटमैंभी सर्पाध्यास हुया चाहिये. इस रीतिसैं विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसे प्रातिभासिक अध्यासमैं सादृश्यज्ञान हेतु है, सादृश्यज्ञानभी सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही है, शुक्तिमैं औ रूप्यमैं चाकचक्यरूप सादृश्य है रज्जुमैं औ

सर्पमैं भूमिसंबंध दीर्घत्व सादृश्य है, पुरुषमैं औ स्थाणुमें उच्चैस्त्व सादृश्य है, याप्रकारसैं अधिष्ठान अध्यस्तमैं समान धर्मही सादृश्य पदार्थ है. ताके ज्ञानकूं **सामान्य ज्ञान औ धर्मिज्ञान** कहना संभवे है. इसरीतिसैं विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य जो प्रातिभासिक अध्यास तामैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही हेतु है, दुष्टइन्द्रियसंयोगका सादृश्यज्ञानद्वारा उक्त अध्यासमैं उपयोग है.

धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उपाध्यायका शंका औ समाधान ॥ २६ ॥

औ जो उपाध्यायका अनुसारी इसरीतिसैं कहै:—प्रमातृदोष प्रमाणदोष प्रमेयदोषसैं धर्मिज्ञान प्रतिबध्य अध्यास होवै है, सादृश्यज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु कहै तौ प्रमाताका धर्मज्ञान होवै है, यातैं प्रमातृदोषतैं अध्यासका हेतु होवैहै औ सादृश्यकूं अध्यासका हेतु कहै तौ विषय दोष हुवा अध्यासका हेतु होवै है. जैसें प्रमातृदोषरूप सादृश्यज्ञानकूं अध्यास हेतु कहै; इंगालमैं रूपअध्यासकी आपत्तिका परिहार होवै तैसें विषयदोषरूप सादृश्यकूं अध्यासहेतु मानेभी उक्त आपत्तिका परिहार होवै है. यातैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु मानना निष्फल है. इसरीतिसैं उपाध्यायानुसारी कहै तौ धर्मिज्ञानवादीका यह समाधान है:—दूरदेशतैं समुद्रके जलमैं नील शिलाका धर्म होवै सोभी विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यास है. काहेतैं ? जलमैं शुक्लरूप औ जलत्वके ज्ञानसैं नीलशिला भ्रमका प्रतिबंध होवैहै, औ जलमैं नील शिलाका सादृश्य नहीं है किंतु समुद्रजलमैं नीलरूपका भ्रम होयके नीलशिलाका भ्रम होवैहै, तहां नीलरूपका ज्ञानही भ्रमरूप सादृश्यज्ञान है; यातैं भ्रमप्रमा साधारण सादृश्यज्ञान ही उक्त अध्यासका हेतु है, स्वरूपतैं सादृश्य हेतु नहीं. और जो उपाध्यायानुसारी इसरीतिसैं कहै:—इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं उक्त अध्यासकी कारणता मानैं हैं. अधिष्ठान अध्यस्तमैं समान धर्मरूप जो

सादृश्य है तासैं इंद्रियका स्वसंयुक्त तादात्म्यरूप संबंधही सादृश्यज्ञानकी सामग्री है. समुद्रजलमैं नीलशिलाके अध्यासका हेतु भ्रमस्वरूप सादृश्यज्ञान है, ताकी सामग्री दोषवत् इंद्रियका जलमैं संयोग है. इस रीतिसैं जो सादृश्य ज्ञानकी सामग्री सोई उक्त अध्यासकी हेतु है. सादृश्यज्ञानकूं जो अध्यासका हेतु मानैं तौभी सादृश्य ज्ञानमैं इंद्रिय संबन्धकूं कारणता अवश्य माननी होवैहै. यातैं सादृश्यज्ञानके कारणकूं ही अध्यासमैं कारणता उचित है. तिन दोनूंके मध्य सादृश्यज्ञानका अंगीकार निष्फल है शंखपीतादिक अध्यासमैं इंद्रियसंबंधकूंही कारणता है,तिस स्थानमैं सादृश्य ज्ञान संभवै नहीं; यातैं जहां सादृश्य ज्ञानकी अपेक्षा है तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्री अध्यासकी कारण है, सादृश्यज्ञानकूं कारणता नहीं. सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासकी कारणता मानैं तौ सकल अध्यासमैं एक इंद्रियसंयोगकूं कारणता सिद्ध होनेतैं लाघव है; औ सादृश्यज्ञानकूं कारणता मानैं तौ विरूप अध्यासमैं इंद्रिय संयोगकूं हेतुता माननी औ सादृश्य अध्यासमैं सादृश्यज्ञानकूं हेतुता माननेमैं अध्यासके कारणद्वयकल्पनसैं गौरव है, यातैं जहां सादृश्यज्ञानकूं हेतु कहै तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्रीरूप इंद्रियसंबंधही अध्यासका हेतु है.

इसरीतिसैं उपाध्यायकी शंकाका धर्मिज्ञानवादी यह समाधान करै है:—इन्द्रियसंबंधसैं ज्ञानकी उत्पत्तिही देखी है. यातैं रजतादिक विषयकी उत्पत्ति इंद्रियसंबंधसैं संभवै नहीं; औ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासका हेतु मानैं कारणद्वयकल्पन गौरव कह्या सो असंगत है. काहेतैं ? धर्मिज्ञानवादीकूं कारणद्वयके कल्पनमैं जैसैं द्वित्वसंख्याका कल्पन है, तैसैं उपाध्यायके मतमैं सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका कारण कल्पनमैं कारणका अधिक-शरीर कल्पन है. सादृश्यज्ञान सामग्रीके स्वरूपमैं अंतर्भूत सादृश्यज्ञान है. यातैं उपाध्यायके मतमैं सादृश्यज्ञानसामग्री अधिक शरीरवती अध्यासकी हेतु माननी होवैहै, इसरीतिसैं लाघव गौरव तौ दोनूं मतमैं सम हैं. औ ज्ञानकी सामग्रीतैं विषयकी उत्पत्तिका असंभवरूप युक्तिका विरोध उपाध्यायके

मतमैं अधिक दोष हैं, यातैं सादृश्यज्ञानही उक्त अध्यासका हेतु है. सादृश्य ज्ञानकी सामग्री हेतु नहीं.

उपाध्यायकरि सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणताका खंडन ॥ २६ ॥

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी सादृश्यज्ञानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानकूं विशेपज्ञान प्रतिबध्य अध्यासमैं कारणता कहै तौ इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं समाधान हैः—विरूपमैंभी अध्यास होनेतैं सकल अध्यासमैं तौ सादृश्यज्ञानकूं कारणता संभवै नहीं; किंतु इंगालादिकनमें रूप्यादिक अध्यासके परिहारवास्ते विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासमैंही सादृश्यज्ञानकूं हेतुता मानैं है, तहांभी रूप्यादिक अध्यासमैं जैसैं नीलपृष्ठ त्रिकोणतादिक विशेषधर्मका ज्ञान अध्यासका प्रतिबंधक है. तैसैं विशेषधर्मज्ञानकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधक होनेतैं इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति होवै नहीं; यातैं सादृश्य ज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फल है; तथाहिः—जिस पदार्थका ज्ञान जामैं प्रतिबंधक होवै तिस पदार्थके ज्ञानकी सामग्रीभी तिसका प्रतिबंधक होवैहै यह **नियम** है. जैसैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्न्यभावका ज्ञान है ताकी सामग्री वह्न्यभाव व्याप्यका ज्ञान है. काहेतैं ? व्याप्यके ज्ञानसैं व्यापकका ज्ञान होवैहै. जैसैं वह्निव्याप्य धूम है; ताके ज्ञानसैं व्यापकवह्निका ज्ञान होवै है. तैसैं वह्न्यभावके व्याप्य जलादिक हैं; तिनके ज्ञानतैं वह्निके अभावका ज्ञान होवै है;यातैं वह्न्यभावके ज्ञानकी सामग्री वह्न्यभावके व्याप्यका ज्ञान है वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्न्यभावका ज्ञान है, तिस वह्न्यभावज्ञानकी सामग्री वह्न्यभावके व्याप्यका ज्ञानभी वह्न्यनुमितिका प्रतिबंधक है;इसरीतिसैं प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्रीभी प्रतिबंधक होवैहै.यद्यपि प्रतिबंधककी सामग्रीकूं प्रतिबंधक कहै तौ दाहका प्रतिबंधक जो मणि ताकी सामग्रीकूं दाहकी प्रतिबंधकताका व्यभिचार है. तथाहिः—प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्रीकूं प्रतिबंधकता माननेमैं व्यभिचार नहीं. इस रीतिसैं अध्यासका

प्रतिबन्धक जो विशेष ज्ञान ताकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधक है,शुक्तिमैं रूप्य अध्यासका प्रतिबंधक नीलतारूप विशेष धर्मका ज्ञान है, ताकी सामग्री नीलभागव्यापी नेत्रसंयोगहै. सोभी रूप्यअध्यासका प्रतिबंधक है. काहेतैं ? नीलभागमैं शुक्तिसैं नेत्रसंयोग हुयां शुक्तिज्ञानही होवै है, रूप्यभ्रम होवै नहीं शुक्तिके नीलतैं भिन्नभाग जो चाकचक्यदेश तासैं नेत्रका संयोग हुयें रूप्यभ्रम होवैहै. इस रीतिसैं नीलरूपवत् धर्मिका ज्ञान रूप्यअध्यासका प्रतिबंधक है औ नीलरूपके आश्रयतैं नेत्रका संयोगसंबन्ध तैसैं नीलरूपसैं नेत्रका संयुक्त तादात्म्यसंबंध प्रतिबंधज्ञानकी सामग्री है. सोभी रूप्य-अध्यासका प्रतिबंधक है.इंगालतैं नेत्रका संबंध होवै तब नीलरूपविशिष्टसैंही होवैहै; यातैं इंगालतैं नेत्रका संयोग औ ताके नीलरूपतैं संयुक्त तादात्म्य संबंधरूपप्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्री होनेतैं इंगालमैं रूप्यअध्यासकी प्राप्तिही नहीं,ताके परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फलहै.

धर्मिज्ञानवादीकरि उपाध्यायके मतमैं दोष औ ताका परिहार ॥ २७ ॥

और जो धर्मिज्ञानवादी उपाध्यायके मतमैं यह दोष कहै:—पुण्डरीकाकार कर्तितपटमैं पुण्डरीकभ्रम होवै है.विस्तृत पटमैं पुण्डरीकभ्रम होवै नहीं, यातैं सादृश्यज्ञान अध्यासका हेतु है.

ताकाभी अध्यास प्रतिबंधक विशेषज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका प्रतिबन्धक माननेतैं समाधान होवै है. तथाहि:—विस्तारविशिष्टपटमैं नेत्रका संबंध पटके विशेष ज्ञानकी सामग्री है. जहां विस्तृतपटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पुंडरीक अध्यास होवै नहीं. जहां पुण्डरीकाकारपटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पटके विशेषज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं पुण्डरीकाध्यास होवै.

यद्यपि जहां समुद्रजलके समुदायमैं नील शिलातलका अध्यास होवैहै तहां विशेषज्ञानकी सामग्री है. काहेतैं ? नेत्रसंयुक्त तादात्म्यसंबंध शुक्ल-

गुणस्वरूप विशेषज्ञानका हेतु है औ चाक्षुषज्ञानका हेतु जलसैं आलोक संयोगभी है, तैसैं जलराशित्वरूप विशेषका व्यंजकतरंगादिकनका प्रत्यक्षभी होवै है; इसरीतिसैं समुद्रके जलसमुदायके विशेषज्ञानकी सामग्रीमैं तीनि पदार्थ हैं. शुक्लरूपसैं नेत्रसंयुक्त तादात्म्य १ आलोकसंयोग २ जलराशित्वका व्यंजक तरंगादि प्रत्यक्ष ३ इन तीनोंके हुयें भी समुद्रके जलसमुदायमैं नीलशिलातलका भ्रम होवै है. यातैं विशेषदर्शनकी सामग्रीकूं अध्यासकी प्रतिबन्धकताका व्यभिचार है.

तथापि प्रतिबन्धकरहित विशेषदर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबन्धक है. प्रतिबन्धकसहित विशेषदर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबन्धक नहीं. जहां समुद्रके जलसमुदायमैं नील शिलातलका अध्यास होवै तहां समुद्रजलमैं नीलरूपका भ्रम होयके नील शिलाका अध्यास होवै है औ नीलरूपका भ्रमज्ञान होतैं जलमैं शुक्लरूपका ज्ञान होवै नहीं. यातैं जलका विशेष धर्म जो शुक्लरूप ताके ज्ञानका प्रतिबंधक नीलरूपका भ्रम है तैसैं दूरत्व दोषसैं जलराशित्वका व्यंजक तरंगादिकका प्रत्यक्ष होवै नहीं, यातैं जलराशित्वरूप विशेषके ज्ञानका प्रतिबंधकदूरत्व दोष है; यातैं प्रतिबंधकसहित विशेषज्ञानकी सामग्री तो है परंतु प्रतिबंधकरहित विशेषज्ञानकी सामग्रीही अध्यासकी विरोधिनी होनेतैं समुद्रजलसमुदायमैं नीलशिलातलका अध्यास होवै है; ताका प्रतिबन्ध होवै नहीं बहुत क्या कहैं ? सकलकारणमैं स्वकार्यकी उत्पत्ति प्रतिबंधकरहितमैंही होवै है. प्रतिबंधक होनेतैं किसी कारणतैं कार्य होवै नहीं; यातैं प्रतिबंधकका अभावभी सकलकार्यका साधारणकारण होनेतैं प्रतिबंधक होतैं नेत्रसंयोगादिक सकल असाधारणकारण सद्भावमैंभी विशेषज्ञानकी सामग्री नहीं है, काहेतैं ? सकल कारण सहकारणकूं सामग्री कहैं हैं. जहां अनेक कारण होवैं एक नहीं होवै तहां सामग्री होवै नहीं. इसरीतिसैं जलमैं नीलता

भ्रमकूं शुक्लरूपके ज्ञानमैं औ दूरत्वदोषकूं जलराशित्वज्ञानमैं प्रतिबंधकता है, तिस प्रतिबन्धके होनेतैं प्रतिबंधका भावघटित विशेषज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं नीलशिलातल भ्रम संभवै है. इहां यह अर्थ ज्ञातव्य है:- समीपस्थपुरुषके आलोकवाले दर्शमैं नेत्रसंयोग हुये भी जलसमुदायमैं नीलरूपका भ्रम होवैहै. यातैं जलमैं नीलरूपके भ्रमका विशेषज्ञानमैं वा ताकी सामग्रीसैं प्रतिबन्ध होवै नहीं, यातैं विशेषज्ञानमैं अप्रतिबध्य होनेतैं जलके शुक्लरूपतैं नेत्रका संयुक्त तादात्म्यसंबंध हुयें भी जलमैं नीलरूपताका भ्रम संभवै है. धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उक्त भ्रमही सामान्यज्ञानत्वरूपतैं समुद्रजलमैं नीलशिलातल अध्यासका हेतु है. उपाध्यायके मतमैं दोषत्वरूपतै विशेषज्ञानका प्रतिबन्धक है वा प्रतिबंधका भावरहित विशेषज्ञानकी सामग्रीके अभावसंपादनद्वारा शिलातल अध्यासका हेतु है. इस रीतिमैं उपाध्यायके मतमैं सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं अध्यासकी कारणता नहीं है, तथापि इंगलादिकनमैं रूप्याध्यासादिकनका अभाव संभवै है; यातैं अध्यासमैं धर्मिज्ञानकी कार्यताके अभावतैं कार्यानुपपत्तिसैं धर्मिज्ञानरूप इदमाकार प्रमावृत्तिका कल्पन संभवै नहीं; इस रीतिसैं अनुभवानुसारतैं वा कार्यानुपपत्तिसैं इदमाकारवृत्ति मानैं ताका निषेध किया.

उपाध्यायके मतमैं धर्मिज्ञानवादीकी शंका औ समाधान ॥ २८ ॥

तथापि धर्मिज्ञानवादी यह कहै:-विषयतैं इंद्रियका संबंध ही अंतः-करणकी विषयाकार वृत्तिका हेतु है, शुक्तिआदिक विषयतैं नेत्रका संयोग हुये इदमाकारवृत्ति किसप्रकारसैं नहीं होवैगी? अन्यत्र व्यासंग होवै तौ विषयतैं इंद्रियका संयोग हुयेंभी तिस विषयका ज्ञानरूप वृत्ति होवै नहीं. अन्यत्र व्यासंगरहितकूं विषयतैं इंद्रियसंयोग हुयें तिस विषयाकार वृत्ति अवश्य होवैहै. यातैं अन्यत्र व्यासंगरूप प्रतिबंधकके अभावसहित नेत्रसंयोगतैं रज्जु शुक्ति आदिकनकूं विषयकर्ती हुई अंतःकरणकी इदमाकार

वृत्ति होवै है; सो वृत्ति नेत्रादिप्रमाणजन्य होनेतैं औ शुक्ति आदिकनकी अबाधित इदंतागोचर होनेतैं प्रमारूप होवैहै इसरीतिसैं कारणसद्भावतैं इदमाकार प्रमाका कल्पन मानै तौ इसरीतिसैं उपाध्यायका समाधान है:– यद्यपि नेत्रसंयोगादिकनतैं इदमाकार वृत्ति होवैहै परंतु दोषसहित नेत्रजन्य होवैहै औ "इदं रजतम्" इसरीतिसैं स्वकालमैं उत्पन्न हुये मिथ्या रजतकूं विषयकर्ती हुयी होवै है; यातैं वह वृत्ति भ्रमरूप होवै है, प्रमा नहीं होवै है, उपाध्यायमतका यह निष्कर्ष है:–दोषसहित इंद्रियके संबंधतैं विषयचेतननिष्ठ अविद्यामैं कार्यकी अभिमुखतारूप क्षोभ होयके सर्परजतादिरूप अविद्याका परिणाम होवै है. नेत्रसंयोगतैं उत्तरक्षणमैं अविद्यामैं क्षोभ होवै है, तिसतैं उत्तरक्षणमैं अविद्याका सर्प रजतादिक परिणाम होवै है. जिस क्षणमैं सर्परजतादिक अविद्याका परिणाम होवै है तिसी क्षणमैं तिन सर्परजतादिकनकूं विषय करनेवाला "इदं रजतम्" इस रीतिसैं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञान होवै है; जिस दुष्ट नेत्रसंयोगतैं अविद्यामैं क्षोभद्वारा सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति होवै है तिसी संयोगतैं अंतःकरणके परिणामरूपवृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति होवै है.

यद्यपि इंद्रियसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं ज्ञानकी उत्पत्ति मानैं हैं, औ नेत्रसंयोगतैं एक क्षणके व्यवधानसैं सर्प रजतादिकनकी उत्पत्ति कही काहेतैं? नेत्रसंयोगतैं उत्तरक्षणमैं अविद्याका क्षोभ कह्या तिसतैं उत्तरक्षणमैं सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति कही, यातैं अविद्याके क्षोभकालमैं वृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति संभवै है. तिसतैं उत्तरक्षणमैं भावि सर्प रजतादिकनकी ज्ञानकालमैं उत्पत्तिकथनमैं विरोध प्रतीत होवै है.

तथापि विरोध नहीं. काहेतैं? कार्यके अभिमुख अविद्याकी अवस्थाकूं क्षोभ कहैं हैं. जैसें कार्यके अभिमुख होयके अविद्या स्वकार्य सर्परजतादिकनकूं रचैहै, तैसें अंतःकरणभी नेत्रसंयोगतैं ज्ञानरूप कार्यके अभिमुख

होयके ज्ञानकूं रचै है, यातैं अविद्याका औ अंतःकरणका स्वकार्याभिमुख अवस्थाका अव्यवहित उत्तर एक क्षण है, तिसतैं द्वितीय क्षणमैं अविद्याका सर्परजतादि परिणाम होवै है, औ तिसीक्षणमैं अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणाम होवैहै औ नेत्रसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमें जो ज्ञानकी उत्पत्ति कहैंहैं सो क्षणकाल अति सूक्ष्म है; यातैं कार्याभिमुख अवस्थाका क्षण औ कार्यकी उत्पत्तिका क्षण एकही काल है, इस अभिप्रायतैं कहैंहैं. इस रीतिसैं रज्जुशुक्तिआदिकनतैं दुष्ट इंद्रियके संयोगतैं अंतःकरणका परिणामरूप ज्ञान औ विषयावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्प रजतादिक एक कालमैं होवैं हैं, तिनका विषयविषयी भाव है, यातैं अंतःकरणका परिणामरूप वृत्तिज्ञानभी दुष्ट इंद्रिय संयोगजन्य है औ मिथ्यापदार्थगोचर है; यातैं भ्रम है प्रमा नहीं. धर्मिज्ञानवादीके मतमैं अविद्याक्षोभका हेतु सामान्यज्ञान है, यातैं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं इदमाकारवृत्तिसैं उत्तरकालमैं क्षोभवती अविद्याका परिणाम सर्प रजतादिक होवैं हैं औ उत्तरकाल भाविपदार्थ प्रत्यक्षज्ञानका विषय संभवै नहीं, यातैं इदमाकार वृत्तिका विषय सर्परजतादिक मिथ्यापदार्थ नहीं; किंतु शुक्तिरजतादिक होनेतैं इदमाकार वृत्ति प्रमा है. सर्परजतादिकनकूं विषय करनेवाली अविद्याका परिणामरूप भ्रमवृत्ति होवैहै इस कारणतैं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं भ्रमवृत्ति ऐंद्रियक नहीं होवैहै. साक्षात् इंद्रियके संबंधतैं होवै सो ऐंद्रियक कहिये है भ्रमवृत्तिका अधिष्ठान जो इदमाकारवृत्ति ताकी उत्पत्तिद्वारा परंपरातैं इंद्रियसंबंधका भ्रमवृत्तिमैं उपयोग है साक्षात् नहीं. उपाध्यायके मतमैं सर्परजतादिकनका उपादानभूत अविद्यामैं क्षोभका निमित्त दोषवत् इंद्रियसंयोग है; यातैं एकही इंद्रियसंयोगतैं अविद्याका परिणाम सर्परजतादिक औ तिनकूं विषय करनेवाली अंतःकरणका परिणाम इदमाकारवृत्ति एककालमैं होवैं हैं. इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं इदमाकारवृत्ति भ्रमरूप नौ होवै है; औ साक्षात् इंद्रियसंबंधतैं उपजै है; यातैं ऐंद्रियक कहिये है.

इंद्रियसंबंधसैं जो इदमाकारवृत्ति होवै सो स्वकालमैं उत्पन्न सर्परजतादिकनकूं विषय कर्ती होवै है, यातैं " अयं सर्पः, इदं रजतम् " इसरीतिसैं होवै है, केवल इदंपदार्थगोचर होवै नहीं

उपाध्यायके मतमैं शंका औ समाधान ॥ २९ ॥

उपाध्यायके मतमैं यह शंका होवै है:-जिस पदार्थसैं ऐंद्रियक संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवै है **यह नियम** है. अन्यमैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति होवै तौ घटसैं इंद्रियके संबंधतै पटगोचरभी वृत्ति हुयी चाहिये. बहुत क्या कहैं । एक पदार्थसैं इंद्रियका संबंध हुयें सकलपदार्थगोचरवृत्तिकी आपत्तिसैं सकल पुरुष अनायासतैं सर्वज्ञ हुये चाहियें, यातैं अन्यपदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति संभवै नहीं; किंतु जासैं इंद्रियका संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवै है. औ उपाध्यायमतमैं रज्जुशुक्ति आदिकनसैं नेत्रसंयोगतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सर्परजतादिगोचर मानी सो संभवै नहीं.

या शंकाका यह समाधान है:-स्वसंबंधतैं औ स्वतादात्म्यवालेसैं इंद्रियसंबंधतैं स्वगोचरवृत्ति होवै है. वृत्तिका विषय स्वपदका अर्थ है. जिसपदार्थकूं विषय करनेवाली वृत्ति होवै तिसपदार्थसैं इंद्रियका संबंध अथवा तिसपदार्थके तादात्म्यवालेसैं इंद्रियका संबंध चाहिये भ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिक हैं. तहां वृत्तिके विषयमैं तौ नेत्रका संबंध नहीं हुया है परंतु सर्परजतादिकनके तादात्म्यवाले जो रज्जुशुक्ति आदिक तिनसैं नेत्रका संबंध हुया है. काहेतैं ? अध्यस्तका अधिष्ठानसैं तादात्म्यसंबंध होवै है; औ सर्परजतादिकनकी अधिष्ठानताके अवच्छेदक होनेतैं रज्जुशुक्ति आदिकभी सर्परजतादिकनके अधिष्ठान कहियें हैं, यातैं सर्परजतादिकनकी तादात्म्यवाले रज्जुशुक्ति आदिकनके संबंतैं उत्पन्नहुई वृत्तिके सर्परजतादिकभी विषय संभवैंहैं औ घटमैं पटका तादात्म्य नहीं; यातैं घटइंद्रियके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्ति पटगोचर होवै नहीं; इसरीतिसैं एक पदार्थके संबं-

धतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सकलपदार्थगोचर होवै नहीं; ब्रह्मसैं भिन्न किसी एक पदार्थमैं सकलका तादात्म्य नहीं; औ ब्रह्ममें सकलपदार्थनका तादात्म्य है, परंतु ब्रह्म असंग है; तासैं इंद्रियका संबंध संभवै नहीं; यातैं एक पदार्थमैं इंद्रियके संबंधतें वृत्ति हुयां सर्वज्ञताकी आपत्ति नहीं. धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिक ज्ञेय औ तिनके ज्ञान अविद्याके परिणाम हैं; उपाध्यायके मतमें सर्परजतादिक तौ अविद्याके परिणाम हैं. औ तिनका ज्ञान उक्तरीतिसैं अंतःकरणका परिणाम है; वह अंतःकरणका परिणाम इंद्रियसंबंधतैं होवै है यातैं ऐंद्रियक है. इसरीतिसैं सर्परजतादिकनतैं नेत्र संयोगके अभाव हुयांभी रज्जुशुक्ति आदिकनतैं दुष्टनेत्रसंयोगजन्य चाक्षुषभ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिक हैं यह उपाध्यायका मत है. "चक्षुषा सर्पं पश्यामि, चक्षुषा रजतं पश्यामि" या अनुव्यवसायतैंभी सर्परजतादिक गोचर भ्रमरूप चाक्षुषवृत्तिही सिद्ध होवै है. रज्जु शुक्ति आदिक गोचर इदमाकार प्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षी गोचरता सर्परजतादिकनकूं धर्मिज्ञानवादी मानैं हैं, ताके मतमैं उक्त अनुव्यवसायका विरोध है.

धर्मिज्ञानवादीकरि अध्यासमैं परंपरासैं नेत्रका उपयोग औ उपाध्यायकरि शंखपीताध्यासमें साक्षात् उपयोग ॥ ३० ॥

जो इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहैः—सर्परजतादिकनका प्रकाश तौ साक्षिरूप है, परंतु अभिव्यक्त साक्षीसैंही तिनका प्रकाश होवै है; यातैं साक्षीकी अभिव्यंजक इदमाकार वृत्ति नेत्रजन्य होनैतैं परंपरातैं सर्परजतादिकनके साक्षीरूप प्रकाशमैंभी नेत्रका उपयोग है; यातैं सर्परजतादिकनके ज्ञानमैं चाक्षुषत्व व्यवहार होवैहै, यातैं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिकनकूं साक्षिभास्यता मानैंभी उक्त अनुव्यवसायका विरोध नहीं.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं? उक्त स्थलमैं तौ परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनैतैं चाक्षुषत्वव्यवहारका निर्वाह कह्या, तथापि शंखमैं पीतभ्रम होवै तहां परंपरासैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. काहेतैं? रूपविन

केवल शंखमैं तौ नेत्रकी योग्यता नहीं; यातैं रूपविशिष्टमैं कहै तौ शंखके शुक्लरूपका ग्रहण होवै तौ पीतताका अध्यास होवै नहीं; इसकारणतैं अध्यस्तपीतरूप विशिष्टमैं नेत्रकी योग्यता माननी होवैगी, सो धर्मिज्ञानवादीके मतमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? अध्यस्तपदार्थमैं ऐंद्रियकत्व नहीं यह धर्मिज्ञानवादीका मत है. याप्रकारतैं रूपविना केवल शंखज्ञानमैं वा रूपविशिष्ट शंख ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. औ उपाध्यायके मतमैं शंखसैं नेत्रका संबंधही पीतरूप अध्यासका हेतु है सो नेत्रका संबंधरूपरहित केवल शंखमैं वा शुक्लरूप विशिष्टमैं संभवै है.

धर्मिज्ञानवादीकरि शंखपीतताका अनध्यास और उपाध्यायकरि ताका अनुवाद अरु दोष ॥ ३१ ॥

या स्थानमैं भी धर्मिज्ञानवादी यह कहै:—जहां शंखमैं पीतरूपका अध्यास होवै तहां सर्परजतादिकनकी नाईं पीतिमाका स्वरूपमैं अध्यास नहीं है; किंतु जैसें स्फटिकमैं जपाकुसुमवृत्ति लौहित्यके संसर्गका अध्यास है तैसें नेत्रवृत्ति पीतसंबन्धी पीतिमाके संबन्धका शंखमैं अध्यास है. पीतपित्तके ज्ञानविना ताके संबंधका अध्यास संभवै नहीं, यातैं पीतपित्तके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं शंखपीतके अध्यासमैं भी परंपरासैं नेत्रका उपयोग है; यातैं "पीतशंखं चक्षुषा पश्यामि" यह अनुव्यवसाय संभवै है औ शंखमैं पीतरूपका संबंध अनिर्वचनीय उपजै है. यातैं अन्याथाख्यातिवादकी आपत्तिभी नहीं.

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहै तौ ताकी उक्तिमैं यह पूछ्या चाहिये. शंखमैं पीतरूपके संसर्गाध्यासका हेतु पित्तपीतताका ज्ञान है. सो नयनदेशस्थही पित्तके पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवै है अथवा शंखदेशमैं पीतद्रव्य प्राप्त होवै है, ताके पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवै है. जो प्रथम पक्ष कहै तौ नयनदेशस्थ पीतद्रव्यसैं नयनस्थ अंजनकी नाईं नेत्रसंयोगके असंभवतैं

ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष तौ होवै नहीं यातैं नयनस्थ पीतपित्तगोचर परोक्ष वृत्ति होवैगी; तिस परोक्षवृत्तिस्थ साक्षीतैं शंखकी पीतताका अपरोक्ष प्रकाश नहीं होवैगा औ किसी प्रकारसैं नयनस्थ पित्तपीततागोचर चाक्षुषवृत्ति मानैं तौभी तिसवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं नयनदेशस्थ पित्तपीततामात्रका संबंध है शंखसैं औ शंखमैं पीतताके संबंधसैं साक्षीका संबंध नहीं यातैं शंखका औ शंखमैं पीतिमाके संबंधका साक्षीसैं असंबंध होनेतैं प्रकाश नहीं हुया चाहिये. तात्पर्य यह है:—जपाकुसुमसंबंधी रक्तताके अनिर्वचनीय संबंधकी स्फटिकमैं उत्पत्ति होवै तहां तौ रक्तता औ स्फटिकता तथा रक्तताका संबंध ये तीनूं पदार्थ पुरोदेशमैं होनेतैं एकवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीके विषय होवैं हैं, औ पीतशंख अध्यासमैं पीतिमा नयनदेशमैं है. औ पीतिमाके संबंध सहित शंख पुरोदेशमैं है, यातैं एक वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं तीनोंका प्रकाश संभवै नहीं, यातैं नयनदेशस्थपित्त पीतिमाके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग है. यह प्रथम पक्ष संभवै नहीं, यातैं शंखदेशमैं प्राप्त हुये पित्तद्रव्यकी पीतताका अपरोक्ष ज्ञान नेत्रसैं होवै है तिसतैं अनंतर शंखमैं पीतताके अनिर्वचनीय संबंधकी उत्पत्ति होवै है, जैसें कुसुम्भमैं संबंधी पटमैं कुसुंभद्रव्यके रूपकी पटमैं प्रतीति होवै है. तहां एकवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं कुसुम्भ औ रक्तरूप तथा तत्संबंधी पटका प्रकाश होवै है. औ स्फटिकमैं लौहित्यभ्रम होवै; तहांभी एकवृत्तिमै अभिव्यक्त साक्षीसैंही निखिलका प्रकाश होवै है, तैसैं शंखपीत भ्रमविषैभी नयनदेशतैं निःसृतपीतपित्तभी शंखदेशमैं प्राप्त होवै है; ताके अनिर्वचनीय संबंधकी शंखमैं उत्पत्ति होवैं यह द्वितीय पक्ष मानैं तौ उक्त दोष नहीं. काहेतैं ? पीतपित्त औ शंख एक देशस्थ होनेतैं पीतपित्तगोचर चाक्षुषवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं शंख औ शंखमैं पीतताके संसर्गका प्रकाश माननेमैं कोई बाधक नहीं है. इसरीतिसैं शंखदेशमैं प्राप्त जो पीतपित्त ताकी पीतता अनिर्वचनीय संसर्गकी शंखमैं उत्पत्ति होवै है. शंखदेशस्थ पीतपित्तका

प्रत्यक्ष नेत्रजन्य होवै है, तैसैं शंखमैं संसर्गाध्यास होवैहै यातैं परंपरातैं शंखपीतअध्यासमैंभी नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व प्रतीति संभवै है; यह धर्मिज्ञानवादीकी उक्तिभी संभवै नहीं. काहेतै ? शंख देशमैं पीतरूपवाले पित्तका निर्गमन होवै पीतताकी शंखमैं प्रतीति सकल द्रष्टाकूं हुई चाहिये.

धर्मिज्ञानवादीकरि उक्तदोषका (दोबार) समाधान औ उपाध्यायकरि (दोबार) दोष ॥ ३२ ॥

जो धर्मिज्ञानवादी इस रीतिसैं कहै:—दोषवाले नेत्रसैं पित्त निकसतेकूं जो पुरुष देखै है तिसीकूं शंखलिप्त पित्तपीतमाकी प्रतीति होवै है. जिसके नेत्रमैं पित्तदोष नहीं होवै तिसकूं नेत्रमैं निकसता पित्त दीखै नहीं; यातैं पित्तपीतताकी शंखमैं प्रतीति होवै नहीं. जैसें भूमिमैं उद्गमनकर्ता पक्षीकी आदि उद्गमन क्रियाकूं देखै औ मध्यक्रियाकूं देखै तिसीकूं अतिऊर्ध्व देश मैं पक्षीकी प्रतीति होवै है. अधोदेशमैं उद्गमनकर्ताकूं देखै नहीं. ताकूं अति ऊर्ध्वदेशगतपक्षीकी प्रतीति होवै नहीं, तैसें जिसके नेत्रसैं पीतपित्त निकसे तिसीकूं निकसतेकी प्रतीति होनेतैं शंखदेशमैं ताकी प्रतीति होवै है. अन्यकूं नहीं. इसदृष्टांतसैं अन्यपुरुषनकूं पीतिमा प्रतीतिकी आपत्तिका परिहार कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? जाकूं ऊर्ध्वदेशगत पक्षी दीखता होवै सो अन्य पुरुषकूं इसरीतिसैं उपदेश करै मेरे नेत्रके समीपकरिकै अपने नेत्रमैं देख औ अंगुली निर्देश करै तौ अन्यपुरुषकूंभी ऊर्ध्वदेशगत पक्षीकी प्रतीति होवै है. औ शंखलिप्तपित्तकी पीतिमाकी प्रतीति किसी प्रकारसैंभी अन्यकूं नहीं होनेतैं दृष्टांत विषम है यातैं शंखदेशमैं पित्तका निर्गमन संभवै नहीं.

धर्मिज्ञानवादी इसरीतिसैं कहै:—दोषवत्नेत्रमैं निकसे पीतपित्तके पीतिमाका दोषवत्नेत्रसैंही अपरोक्ष होवै है, यातैं अन्यपुरुषनकूं शंखमैं पीतिमाका अध्यास होवै नहीं. इसरीतिसैं शंखदेशस्थ पित्तके पीतिमाका

नेत्रइंद्रियसैं अपरोक्ष अनुभव होवै है औ नेत्रसैं अनुभूत पीतिमाका अनिर्वचनीयसंबंध शंखमें उपजैहै ताकूं साक्षी प्रकासै है. शंखमैं पीतिमासंबंधकी प्रतीतिमैं परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व व्यवहारभी संभवै है.

इसप्रकारमैं धर्मिज्ञानवादीका समाधानभी अनुभूयमानारोपमैंही संभवै है, स्मर्यमाणारोपमैं संभवै नहीं. अन्यत्र अनुभूतकी अन्यत्र प्रतीतिकूं **अनुभूयमानारोप** कहै हैं. जैसैं शंखदेशस्थ नेत्रके पित्तमैं अनुभूत जो पीतिमाका संबंध ताकी शंखमें प्रतीति होवै है यह **अनुभूयमानका आरोप** है. इसरीतिमैं सन्निहित पदार्थके धर्मकी अन्यमैं प्रतीति होवै तहां सारै अनुभूयमानारोप है; प्रत्यक्ष अनुभवके विषयका आरोप होवै सो **अनुभूयमानारोप** कहिये सन्निहित उपाधिमैंही प्रत्यक्ष अनुभवकी विषयता होवै है. जलमैं नीलताका अध्यास होवै सो **स्मर्यमाणआरोप** है. स्मृतिके विषयकूं **स्मर्यमाण** कहै हैं. जलाधारभूमि नील होवै, अथवा नीलमृत्तिकामिश्रित-जल होवै तहां तौ जलमैं नीलताअध्यास **अनुभूयमानारोप** संभवै है; परंतु धवलभूमिस्थ निर्मल जलमैं औ आकाशमैं नीलताका **स्मर्यमाणारोप** है तिसस्थानमैं नीलरूपसंसर्गी अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्तिका अंगीकार नहीं होनेतैं परंपरातैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. यातैं उक्त अध्यासमैं चाक्षुषत्वप्रतीति धर्मिज्ञानवादीके मतमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? अध्यस्त पदार्थकूं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं साक्षीभास्यमानैंहैं; औ उपाध्यायके मतमैं अध्यस्त पदार्थकी ऐंद्रियवृत्ति होवैहै; यातैं उक्त अध्यासमैंभी चाक्षुषत्वप्रतीति संभवै है. औ स्तनके मधुरदुग्धमैं जहां बालककूं तिक्तरसका भ्रम होवै तिस स्थानमैं मधुदुग्ध अधिष्ठान है. द्रव्य ग्रहणमैं रसनइंद्रियकी योग्यताके अभावसैं मधुरदुग्धके ज्ञानमैं तौ रसनइंद्रियका उपयोग संभवै नहीं. औ धर्मिज्ञानवादमैं अध्यस्तगोचर ऐंद्रियकवृत्ति होवै नहीं, यातैं मधुरदुग्धमैं तिक्तता भ्रमकूं रासनत्व नहीं कह्या चाहिये औ उपाध्यायके मतमैं तौ तिक्ततागोचर रासन वृत्ति होवै है, यातैं तिक्ताभ्रमविषै रासनत्व व्यवहार संभवै है.

मधुरदुग्धमैं तिक्तरसाध्यासकी रसनागोचरतापूर्वक उपाध्यायके मतका निष्कर्ष ॥ ३३ ॥

परंतु इतना भेद हैः—सर्परजतादिक अध्यासमैं अधिष्ठानसैं नेत्रके संबंधतैं अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्ति होवैहै.तिसवृत्तिके समकाल उपजे सर्परजतादिकभी ताकेही विषय होवैंहैं.मधुर दुग्धमैं तिक्त रसका अध्यास होवै तहां दुग्धाकार रासनवृत्ति संभवै नहीं; किंतु शरीरव्यापि त्वक् है, यातै त्वाचवृत्ति मधुर दुग्धाकार होवैहै. तामैं मधुर दुग्धका प्रकाश होवैहै. जिसकालमैं मधुरदुग्धसैं संयोग होवै तिसीकालमैं दोषदूषित रसनाका दुग्धसैं संयोग होवै है. रसनसंयोगतैं दुग्धावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभ होयकै तिक्त रसाकार परिणाम अविद्याका औ तिक्त रसगोचर रासनवृत्ति एक कालमैं होवैहै.इसरीतिसैं मधुरदुग्धमैं तिक्तरसाध्यास होवै तहां मधुरद्रव्यका प्रकाश तौ त्वाचवृत्त्यवच्छिन्नचेतनमैं होवैहै. औ तिक्त रसाकार रासनवृत्ति होवैहै; यातैं रासनवृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश होवैहै, त्वाचवृत्ति औ रासनवृत्ति दुग्धदेशमैं जावैहै, यातैं एकदेशस्थ होनेतैं उभयवृत्त्युपहितचेतनका भेद नहीं; यातैं अधिष्ठानअध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयताभी संभवै है, तिक्तरसगोचर रासन वृत्ति नहीं मानै, किंतु त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैंही तिक्त रसका प्रकाश मानैं तौ तिक्तरसके ज्ञानमैं रासनत्व प्रतीति नहीं होवैगी. धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिक अध्यासमैं तौ अध्यासकारण अधिष्ठानके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं परंपरातैं अध्यस्तज्ञानकूंभी नेत्रजन्यता है. औ तिक्त रसके अध्यासमैं तौ अधिष्ठान मधुरदुग्ध है. सो द्रव्यरूप होनेतैं ताके ज्ञानमैं भी रसनइंद्रियके उपयोगके अभावतैं परंपरातैं तिक्तरसज्ञानकूं रसनजन्यता संभवै नहीं, यातैं तिक्तरसाध्यासमैं रासनत्वप्रतीतिके निर्वाहवास्तै धर्मिज्ञानवादीकूंभी रासनवृत्ति अवश्य माननी चाहिये; तैसैं सर्परजतादिक अध्यासमैंभी अध्यस्तगोचर ऐंद्रियक वृत्तिही होवैहै; तासैं भिन्न अध्यस्तगोचर अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीयवृत्तिकल्पन निष्फल है. यामतमैं अविद्याका

परिणाम केवल विषयाकारही होवैहै. तिस अनिर्वचनीय विषयकी ज्ञानरूप वृत्ति अंतःकरणकी होवैहै. दुष्ट इंद्रियके संयोगतैं वह वृत्ति होवैहै, यातैं भ्रम रूप होवै है. औ अधिष्ठानतैं दुष्टइंद्रियका संबंधही अविद्यामैं क्षोभद्वारा अध्यासका हेतु है, अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं.

आचार्योक्ति औ युक्तिसैं उपाध्यायमतकी विरुद्धता औ धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उक्त दोषका समाधान ॥ ३४ ॥

यह **कवितार्किकचक्रवर्ति. नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत** है सो सकल प्राचीन आचार्यनकी उक्तिसैं विरुद्ध है. तथाहिः—अधिष्ठानका सामान्यज्ञानदोष पूर्वानुभवजन्यसंस्कारसैं अध्यास होवै है यह प्राचीनमत है, औ उपाध्यायके मतमैं अधिष्ठानसैं इंद्रियका संयोग अध्यासका हेतु मान्याहै अधिष्ठानका सामान्यज्ञान नहीं मान्या; यातैं प्राचीनवचनतैं विरुद्ध है. औ अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास भेदसैं **दो प्रकारका अध्यास** है, यह सकल अद्वैतवादी मानैंहैं. उपाध्यायके मतमैं ज्ञानाध्यास अप्रसिद्ध है. काहेतैं? अनिर्वचनीय सर्परजतादिगोचर अविद्याके परिणामकूं **ज्ञानाध्यास** कहैंहैं उपाध्यायके मतमैं ऐंद्रियकभ्रमवृत्तिकूं मानिके तिसका लोप है. इसरीतिसैं प्राचीनवचनमैं विरुद्ध है. तैसैं वक्ष्यमाणरीतिसैं युक्ति विरुद्ध हैः—अधिष्ठान इंद्रियके संबंधकूं सकलअध्यासमैं कारण मानैं तौ अहंकारादिक अध्यासकी अनुपपत्ति होवैगी. काहेतैं? अहंकारादिकनका अधिष्ठान ब्रह्म है अथवा साक्षीचेतन है सो नीरूप है; तासैं ज्ञानहेतु इंद्रियसंबंधका संभव नहीं. औ प्रातिभासिक अध्यासमैंही इंद्रियसंबंधकूं कारणता मानैं तौभी अहंकारादिकनका अध्यासभी प्रातिभासिक है. या मतमैं इंद्रियसंबंधके अभावतैं अहंकारादिक अध्यासकी अनुपपत्तिही होवैगी. अहंकारादिक अध्यास व्यावहारिक होनेतैं प्रातिभासिकसैं विलक्षण हैं, या मतमैंभी स्वप्नाध्यासकी अनुपपत्ति होवैगी. काहेतैं? सर्वमतमैं स्वप्नाध्यास प्रातिभासिक है. औ ताका अधिष्ठान साक्षीचेतन

है. इंद्रियसंबंधके असंभवतैं प्रातिभासिक अध्यासमैंभी अधिष्ठानसैं इंद्रियसंबंधकूं कारणता संभवै नहीं. इसरीतिसैं उपाध्यायमत समीचीन नहीं. औ धर्मिज्ञानवादमैं जो उपाध्यायनैं दोष कह्या हैः—अधिष्ठानज्ञानमैं जो इंद्रियसंबंधका उपयोग मानैं तौ शंखमैं पीतिमाध्यास होवै तहां रूपविना केवळ शंखका चाक्षुष मानैं तौ नीरूप वायुका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. औ शुक्लरूपविशिष्ट शंखका चाक्षुष मानैं तौ पीतरूपज्ञानका विरोधि शुक्लरूपज्ञानके होनेतैं पीतरूपका अध्यास नहीं होवैगा. यह कथनभी उपाध्यायका अविवेकमैं है. काहेतैं? रूपवाले द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है यह नियम है, कहूं दोषबलतैं रूपभागकूं त्यागिकै केवळ आश्रयका चाक्षुष होवै है; औ निर्दोषनयनतैं रूपविशिष्टका चाक्षुष होवै है; परंतु नीरूपका चाक्षुष होवै नहीं, यातैं नीरूपवायुके चाक्षुषज्ञानकी आपत्ति नहीं, औ रूपवाले शंखका रूपभावकूं त्यागिकै दुष्टनेत्रसैं चाक्षुष होवै है, अथवा शुक्लरूपविशिष्ट शंखका चाक्षुष होवै है, तथापि शुक्लरूपमैं शुक्लत्वज्ञानका प्रतिबंधक नयनमैं दोष है; यातैं पीतरूपका अध्यासभी संभवै है. काहेतैं? शुक्लत्वविशिष्ट शुक्लरूपका ज्ञानही पीतरूपके ज्ञानका विरोधी है. केवळ शुक्लरूपव्यक्तिका ज्ञान रूपांतर ज्ञानका विरोधी नहीं. यह वार्ता **प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव निर्णायक ग्रंथनमैं** प्रसिद्ध है. इसरीतिसैं शंखमैं पीतता अध्यासका हेतु शंखरूप अधिष्ठानका इदमाकार चाक्षुषज्ञान संभवै है, सो केवळ शंखगोचर होवै है, अथवा दोषबलतैं शुक्लत्वकूं त्यागिकै शुक्लरूपविशिष्ट शंखगोचर होवै है, औ परंपरातैं पीतताज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं पीतताअध्यासमैं चाक्षुषत्वप्रतीतिका निर्वाहभी धर्मिज्ञानवादमैं होवै है. औ मधुरदुग्धमैं तिक्त रस अध्यास होवै, तहां धर्मिज्ञानवादमैंभी रासनवृत्तिकूं आवश्यकता कही. काहेतैं? तिक्त रसका अधिष्ठान जो मधुरदुग्ध तिसका सामान्य ज्ञानरूप वृत्ति रासन तौ संभवै नहीं. किंतु त्वाच वृत्तिही अधिष्ठानगोचर होवै तिस त्वाच वृत्तिमैं अभव्यक्ति साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानैं तौ

तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्व व्यवहार संभवै नहीं, यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं तिक्तरसकी भ्रमरूपभी प्रतीति रासनजन्यही माननी होवै है, तैसैं रजतादिक भ्रमज्ञानभी इंद्रियजन्य है इसरीतिसैं उपाध्यायका वचन मधुरदुग्धकूं अधिष्ठानता मानैं तौ संगत होवै; सो मधुररसवाला दुग्धरूपद्रव्य अधिष्ठाननहीं है, किंतु तिक्तरस अध्यासका अधिष्ठान दुग्धका मधुर रस है, ताके ज्ञानमैं रसनका उपयोग होनेतैं तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्वकी प्रतीति औ व्यवहार संभवै है यद्यपि मधुररसका ज्ञान हुयां तिसतैं विरोध तिक्त-रसका अध्यास संभवै नहीं, तथापि मधुरत्वधर्मविशिष्ट मधुररसका ज्ञानही तिक्तरसज्ञानका विरोधी है. मधुरत्व धर्मकूं छोडिकै केवल मधुररस व्यक्तिका सामान्यज्ञान तिक्तरस अध्यासका विरोधी नहीं. जैसैं शुक्तित्वरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजत अध्यासका विरोधी है; तौभी शुक्तिका सामान्यज्ञान रजतअध्यासका विरोधी नहीं, उलटा शुक्तिका सामान्यज्ञान रजतअध्यासका हेतु है. तैसैं मधुररसका सामान्यज्ञानभी तिक्तरस अध्यास का हेतु है. इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादमैंभी तिक्त रसका अधिष्ठान जो मधुर-रस ताका रसनतैं सामान्यज्ञान हुयां तिक्तरसका अध्यास होनेतैं परंपरातैं रसनइंद्रियका तिक्तरसाध्यासमैं उपयोग है, यातैं तिक्त रसकी प्रतीतिमैं रासनत्वव्यवहार संभवै है.

तिक्तरसाध्यासमैं कोईकी अन्यउक्ति औ खंडन ॥ ३५ ॥

औ मधुरदुग्धकूं ही तिक्तरसका अधिष्ठान मानैं तौभी तिक्तरसाध्या-समैं रसनकी अपेक्षा नहीं, किंतु दुग्धगोचर त्वाचवृत्ति होवैहै. सो त्वाचवृत्ति तिक्तरसाकार यद्यपि नहीं है, तथापि त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्ति साक्षी निरा-वृत है ताके संबंधमैं तिक्तरसका प्रकाश होवैहै. औ तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रस-नका व्यापार भासै नहीं, यातैं तिक्तरसाध्यायमैं रासनत्व व्यवहार अप्रमा-णिक है. या पक्षमैं तिक्तरसाध्यास केवल अर्थाध्यास है, तिक्तरसाकार अविद्याकी वृत्ति निष्फलतासैं मानी नहीं, इस रीतिसैं कोई ग्रन्थकार मधुर

दुग्धकूं तिक्तरसाध्यासका अधिष्ठानमानिकै मधुरदुग्धगोचर त्वाचवृत्तिमै अभिव्यक्त साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानैंहैं, औ तिक्तरसगोचर वृत्तिका अभाव मानैंहैं.

यह लेख असंगत है. काहेतें? स्वाकारवृत्तिमै अभिव्यक्तचेतनमैं विषयका प्रकाश होवै है. अन्याकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं स्वसम्बन्धी विषयका प्रकाश मानैं तौ रूपवत्घटाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं घटगतपरिमाण संख्यादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये. औ "रूपवान घटः" ऐसा ज्ञान हुयेभी घटके स्थूलतादिकनका प्रकाश होवै नहीं. मधुरदुग्धाकार त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश संभवै नहीं, परंतु दोषका अद्भुत महिमा अंगीकृत है, यातैं दोष दुष्ट इंद्रियजन्यवृत्तिमै अभिव्यक्त साक्षीमैं वृत्तिके अगोचरकाभी कहूं चेतनसंबंधीका प्रकाश मानैं तौ यथा कथंचित् उक्त लेखभी संभवै है. औ रूपवत्घटाकार वृत्ति दोषजन्य नहीं, यातैं तिसवृत्तिके अगोचर परिमाणादिकनका तिस वृत्तिमैं अभिव्यक्ति चेतनमैं प्रकाश होवै नहीं.

मुख्यसिद्धांतका कथन ॥ ३६ ॥

औ **मुख्यसिद्धांत तौ** यह हैः—जैसें स्वप्न अवस्थामैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं तिनमैं चाक्षुषत्व रासनत्वादिक प्रतीति होवै है, तिस रीतिसैं सर्परजतादिक अनिर्वचनीय पदार्थ साक्षीभास्य हैं, तिनमैं चाक्षुषत्वादिक प्रतीतिभ्रम है, केवल सर्परजतादिकही साक्षीभास्य नहीं है. किंतु सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं स्वप्नकी नाईं घटादिक प्रमेय औ नेत्रादिक प्रमाणसैं नेत्रादिकनका घटादिकनसैं संबंध एक कालमैं उपजै है; यातैं तिनका परस्पर प्रमाणप्रमेयभाव संभवै नहीं, औ प्रतीत होवै है; यातैं अनिर्वचनीय है, **यह सिद्धांत** है. व्यावहारिक प्रपंचकूं मिथ्यात्वसिद्धिका उपयोगि साक्षीभास्यताके साधक मिथ्या सर्परजतादिक दृष्टांत हैं; तिनकूं ऐंद्रियकत्व मानैं तौ सिद्धांतका साधक दृष्टांत प्रतिकूल होवै है, यातैं उपाध्यायका मत सिद्धांतविरोधी है.

अध्यस्त पदार्थकूं ऐंद्रियकत्व नहीं मानैं तौ आकाशमैं नीलताध्यासकी अनुपपत्ति है, धर्मिज्ञानवादमैं यह दोष निराकरणीय है. काहेतैं ? आकाश-नीरूप है यातैं आकाशका नेत्रसैं सामान्यज्ञान संभवै नहीं, जो सामान्यज्ञान संभवै तौ नीलताध्यास होवै औ उपाध्यायमतमैं तौ आकाशतैं नेत्रका संयोग हुये आकाशावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभद्वारा नीलरूपकी उत्पत्ति औ नीलरूपविशिष्ट आकाशगोचर नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति एककालमैं होवैहै, यातैं आकाशमैं नीलताध्यासका संभव है.

धर्मिज्ञानवादमैं आकाशमैं नीलताध्यासका असंभवदोष औ ताका परिहार ॥ ३७ ॥

तथापि धर्मिज्ञानवादमैंभी इस अध्यासकी अनुपपत्ति नहीं. काहेतैं ? यद्यपि आकाश नीरूप है **तथापि** आलोक द्रव्य रूपवत है, यातैं आलोकसैं दुष्ट नेत्रका संयोग हुयां औ आलोकगोचर आलोकव्यापि आकाशाकार प्रमारूप सामान्यज्ञान होवै है, तिसतैं अनंतर आकाशावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभद्वारा नीलरूपाकार अविद्याका परिणाम होवै है, तैसैं इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतनस्थ अविद्याका नीलरूपगोचरज्ञानाकार परिणाम होवै है; आकाशगोचर प्रमावृत्ति औ नीलरूपगोचर अविद्यावृत्ति एक देशमैं होनेतैं उभयवृत्ति उपहित साक्षी एक है; यातैं अधिष्ठान अध्यस्तका एक साक्षीसैं प्रकाश होवै है. यद्यपि विशेषरूपतैं अधिष्ठानका ज्ञान हुयां अध्यास संभवै नहीं, औ आकाशाकार प्रमावृत्तिसैं अनन्तर अध्यास कह्या तहां आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञान अध्यासका हेतु कहनेसैं विशेषरूपका ज्ञान अध्यास हेतु प्रतीत होवै है सो असंगत है. **तथापि** आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञान है विशेष ज्ञान नहीं "नीरूपमाकाशम्" इसरीतिसैं नीरूपत्वविशिष्ट आकाशका ज्ञानही विशेष ज्ञान है. काहेतैं ? अध्यासकालमैं अप्रतीत अंशकूं **विशेष** अंश कहहैं, वाहीकूं **अधिष्ठान** कहैहैं. औ अध्यासकालमैं प्रतीतअंशकूं **सामान्य**

अंश कहैं हैं ताकूं आधार कहैं हैं. "आकाशम् नीलम्" इसतिसैं भ्रांतिकालमैं आकाशत्वरूपतैं आकाशकी प्रतीति होवैहै; औ "नीरूपमाकाशम्" इसरीतिसें नीरूपत्वधर्मतैं आकाशकी प्रतीति भ्रांतिकालमैं होवै नहीं; यातैं आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञान होनेतैं तिसतैं अनन्तर नीलरूपका अध्यास संभवै नहीं.

सर्पादिभ्रमस्थलमैं च्यारि मत औ चतुर्थ मतमैं दोष ॥ ३८ ॥

इसरीतिसैं सर्परजतादिक भ्रम होवै वहां तीनि मत कहेः–एक तौ उपाध्यायका मत कह्या, ताके मतमैं एकही ज्ञान दुष्टइंद्रियविषयके संबंधतैं अंतःकरणका परिणामरूप होवैहै; यह ज्ञान अधिष्ठानके सामान्य अंशकूं औ अध्यस्तकूं विषयकर्ता भ्रमरूप है तासैं पृथक् अधिष्ठानके सामान्य अंशमात्रगोचर प्रमाज्ञानका तिसके मतमैं अंगीकार नहीं. औ **धर्मिज्ञानवादमैं दो मत कहे.** एक मतमैं तौ इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूपतैं अनंतर "अयं सर्पः । इदं रजतम्" इसरीतिसैं भ्रमज्ञान होवैहै सो अविद्याका परिणामरूप होवैहै, औ अधिष्ठानके सामान्यअंशकूं विषय कर्ता हुवा अध्यस्तकूं विषय करैहै, यातैं इदमाकार औ अध्यस्ताकार होवैहै, औ **धर्मिज्ञानवादमैं दूसरा मत यह** हैः–इदमाकार सामान्यज्ञान अध्यास हेतु प्रमारूप होवैहै; तासैं उत्तरक्षणमैं सर्परजतादिगोचर अविद्याका परिणाम ज्ञान होवैहै सो भ्रमरूप होवैहै, यातैं अधिष्ठानगोचर होवै नहीं; किंतु केवल अध्यस्तगोचर होवैहै. तिस भ्रमज्ञानमैं इदंपदार्थविषयकत्व नहीं है, तथापि तिसके अधिष्ठानज्ञानमैं इदंपदार्थविषयकत्व है, ताका अनिर्वचनीयसंबंध भ्रमज्ञानमैं उपजै है. इसरीतिसैं केवल अध्यस्तपदार्थाकार **भ्रमज्ञान** होवैहै यह मतही समीचीन है.

औ धर्मिज्ञानवादमैंही कोई ग्रंथकार तीसरा पक्ष मानैंहैं. तथाहिः– अध्यासका हेतु अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान होवैहै, तासैं भिन्न सर्परजतादिगोचर अविद्याकी वृत्ति निष्फल है. काहेतैं? अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी

इदमाकारवृत्ति जो अध्यासकी हेतु मानीहै तिस वृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं ही सर्परजतादिकनका प्रकाश होवैहै; यातें सर्परजतादिक ज्ञेयरूप तौ अविद्याका परिणाम होवैहै औ ज्ञानरूपपरिणाम अविद्याका होवै नहीं; या मतमैं भी उपाध्यायके मतकी नाईं शुक्तिरजतादिकनमैं केवल अर्थाध्यास है. ज्ञानाध्यासका अंगीकार नहीं. यह मतभी उपाध्यायके मतकी नाईं सकल आर्यवचनतैं औ युक्तिसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? या मतमैं भ्रमज्ञानका लोप होवै है इदमाकार जो ज्ञान होवै सो अधिष्ठानसैं इंद्रियके संयोगतैं अन्तःकरणकी वृत्तिरूप होवै है औ अधिष्ठानगोचर होवै है, यातें प्रमा होवैहै तासैं भिन्नज्ञान मानै नहीं, यातें भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध होवैगा. जो ऐसैं कहैः--अधिष्ठानगोचर इदमाकारज्ञानही सर्परजता-दिकनकूं विषय करैहै, यातें बाधितपदार्थगोचर होनेतैं भ्रम कहिये है, तथापि या मतमैं तिसी ज्ञानकूं अबाधित अधिष्ठानगोचरता होनेतैं प्रमात्वभी हुया चाहिये; यातें एकज्ञानमें भ्रमत्वप्रमात्वका संकर होवैगा. यद्यपि सत्यरजतगोचर औ शुक्तिरजतगोचर एक ज्ञान तहां भ्रमत्वप्रमात्वका संकर प्रसिद्ध है; यातें अवच्छेदकभेदतैं जैसैं एक पदार्थमैं संयोग औ संयोगका अभाव विरोधी पदार्थ रहैं हैं तैसैं एकज्ञानमैंभी अवच्छेदक-भेदतैं भ्रमत्व प्रमात्व विरोधी धर्म संभवैं हैं. दृष्टांतमैं वृक्षवृत्तिसंयोगा-भावका अवच्छेदक मूलदेश है औ संयोगका अवच्छेदक शाखादेश है, तैसैं ज्ञानमैंभी बाधितविषयकत्व तौ भ्रमत्वका अवच्छेदक धर्म है. औ अबाधित-विषयकत्व प्रमात्वका अवच्छेदक धर्म है, यातें एकही ज्ञानमैं बाधितविषय-कत्वावच्छिन्न भ्रमत्व है; औ अबाधित विषयकत्वावच्छिन्न प्रमात्व होनेतैं भ्रमत्व प्रमात्वका संकरदोष नहीं; तथापि भ्रमत्वप्रमात्वकी नाईं बाधित-विषयकत्व अबाधितविषयकत्वभी परस्पर भावाभावरूप होनेतैं विरोधी है तिनकाभी अवच्छेदकभेदविना एक ज्ञानमैं समावेश संभवै नहीं औ तिनके अन्यअवच्छेदक उपलब्ध होवैं नहीं. औ किसी अन्यकी कल्पनाकी

कल्पना करै तौ परस्पर विरोधिही कोई अवच्छेदक मानने होवैंगे. यातें तिनके अन्यअवच्छेदक माननेमें अनवस्थादोष होवैगा. इसरीतिसें एक ज्ञानमें भ्रमत्व प्रमात्वका संशय संभवै नहीं. औ सत्यरजतगोचर शुक्तिरजतगोचर एक ज्ञानमें भ्रमत्वप्रमात्वका संकर कह्या सोभी सिद्धांतके अज्ञानसें कह्या है. काहेतें ? सत्यरजतगोचर अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, शुक्तिरजतगोचर अविद्याकी वृत्ति होवै है, यातें सत्यरजतगोचर औ शुक्तिरजतगोचर दो ज्ञान होवैं हैं, दोनूं ज्ञान समानकालमें होवैं हैं औ सजातीय गोचर होवैं हैं यातें तिनका परस्परभेद प्रतीत होवै नहीं, किंतु तिनमें एकत्वभ्रम होवै है, यातें भ्रमत्व प्रमात्वका शंकर अदृष्टगोचर होनेतें इदमाकार प्रमावृत्तिमें अभिव्यक्तसाक्षीमें अध्यस्तका प्रकाश संभवै नहीं औ अधिष्ठानगोचर वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीमेंही अध्यस्तका प्रकाश मानि अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति नहीं मानैं तो अध्यस्तपदार्थकी स्मृति नहीं हुई चाहिये. काहेतें ? अनुभवके नाशतें संस्कार होवै है अन्यगोचर अनुभवतें अन्यगोचर संस्कारस्मृति होवै तौ पटगोचर अनुभवतें घटगोचर संस्कारस्मृति हुई चाहिये. यातें समानगोचर अनुभवतें संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति होवै है, यह नियम होनेतें अधिष्ठानगोचरवृत्तिरूप अनुभवतें अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति संभवै नहीं. औ अध्यस्तगोचर साक्षीरूप अनुभवतें संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति कहै तौ सर्वथा असंगत है. काहेतें ? अनुभवके नाशतें संस्कार होवै है औ साक्षी नित्य है, ताकूं संस्कारजनकता संभवै नहीं. जो ऐसें कहैः—जा वृत्तिसें चेतनकी अभिव्यक्तिद्वारा जिस पदार्थका प्रकाश होवै ता वृत्तिसें तिस पदार्थगोचर संस्कारद्वारा स्मृति होवै है; पटगोचर वृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसें घटका प्रकाश होवै नहीं, यातें पटगोचर अनुभवतें घटगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिकी आपत्ति नहीं; औ अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी इदमाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसें अध्यस्तका प्रकाश होवैहै;

यातैं अधिष्ठानगोचर इदमाकारप्रमासैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिका संभव होनेतैं अध्यस्तगोचर अविद्यावृत्तिका अंगीकार निष्फल है. यह कथनभी असंगत है:—काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर इदमाकार ज्ञानसैं जो अध्यस्त का प्रकाश मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहिये:—इदमाकार ज्ञान होवै सो अध्यस्ताकारभी होवैहै अथवा नहीं होवैहै ? जो ऐसैं कहै अध्यस्ताकारभी होवै है सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षज्ञानमैं आकार समर्पणका हेतु विषय होवैहै. इदमाकारज्ञानसैं उत्तरक्षणमैं अध्यस्तपदार्थकी उत्पत्ति होनेतैं भाविविषयसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं स्वाकारका समर्पण संभवै नहीं, यातैं इदमाकार ज्ञानकूं अध्यस्ताकारता नहीं होवै है.यह द्वितीय पक्ष कहै तौभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अन्याकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं अन्यविषयका प्रकाश होवै नहीं यह पूर्व कह्या है. जो इदमाकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीके संबंधसैं आकार समर्पण अकर्ताकाभी प्रकाश मानैं तौ इदमाकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीका संबंधी जो अधिष्ठानका विशेष अंश ताकाभी प्रकाश हुया चाहिये, यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानमैं भिन्न अविद्याका परिणामरूप अध्यस्ताकार वृत्तिरूप ज्ञान अवश्य अंगीकरणीय है; तिसमैंभी दो पक्ष कहै हैं:—तिनमैं अधिष्ठानगोचर औ अध्यस्तगोचर अनिर्वचनीयज्ञान होवै है;यह प्रथम पक्ष तौ समीचीन नहीं यह पूर्व कह्या है. जो अनिर्वचनीय मिथ्याज्ञानकूं उभयगोचर मानैं तौ प्रमात्वभ्रमत्वका संकर दोष होवैगा. यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं केवल अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति होवैहै. जैसैं सर्परजतादिक मिथ्या हैं तैसैं तिनका ज्ञानभी मिथ्या है, इसीवास्तै सर्परजतादिकनकेबाधकी नाईं तिनके ज्ञानकाभी बाध होवै है. इदमाकार प्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं ही अध्यस्तका प्रकाश मानैं तौ साक्षी तौ सदाही अबाध्य है औ इदमाकार वृत्तिभी अंतःकरणका परिणाम होनेतैं घटादिज्ञानकी नाईं व्यवहारकालमैं अबाध्य है; यातैं ब्रह्मज्ञानविना अध्यस्तके ज्ञानका बाध नहीं हुया चाहिये.

अनिर्वचनीयख्यातिमैं उक्तच्यारिमतका अनुवाद औ ताकी समाप्तिका दोहा ॥ ३९ ॥

इसरीतिसैं सर्परजतादिगोचर भ्रम होवै तहां सिद्धांतमैं **अनिर्वचनीय-ख्याति कही है.** तामैं च्यारि पक्ष हैं. एक तौ कवि तार्किक नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत है, तामैं अधिष्ठानसैं इंद्रियका संबंधही अध्यासका हेतु है अधिष्ठानका सामान्यज्ञान हेतु नहीं. अन्य आचार्यनके मतमैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु है, सामान्यज्ञानकूं **धर्मिज्ञान** कहैहैं. उपाध्यायमतसैं भिन्न तीनूं मतमैं सामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता मानी है; यातैं तीनूं मत धर्मिज्ञानवादी हैं. तिनमैं भी अध्यस्तपदार्थाकारही अविद्याकी वृत्तिरूप **भ्रमज्ञान** होवैहै यह पक्षही समीचीन है, औ अधिष्ठानगोचर इदमाकार तथा अध्यस्ताकार अविद्याकी वृत्ति होवै है यह पक्ष औ इदमाकार वृत्तिरूप सामान्यज्ञान जो अध्यासका हेतु तामैं ही निर्वाह होवै है. अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्तिका अनंगीकारपक्ष समीचीन नहीं, तैसैं अध्यासका हेतु सामान्याज्ञानका अनंगीकार पक्ष उपाध्यायकाभी समीचीन नहीं; इस रीतिसैं प्राचीनग्रंथकारोंनैं जो लिख्याहै, तिसके अनुसारही हमनैं दूषण भूषण लिखेहैं. औ अपनैं बुद्धिके बलसैं विचार करै तौ इन चारों मतनमैं दूषण भूषण समान हैं. औ प्रपंचके मिथ्यात्व साधनमैं अद्वैतवादका अभिनिवेश है अवांतरमतभेदके प्रतिपादनमैं वा खंडनमैं अभिनिवेश नहीं, यातैं किसी जिज्ञासुकूं खंडित पक्षही बुद्धिमैं आरूढ होवै तौ कछु हानि नहीं औ एकही मतके अनुकूल हमनैं युक्ति लिखी हैं सो प्राचीन आचार्यनके मार्गसैं उत्पथगमनके निरोधार्थ लिखी हैं.

दोहा—निश्चल बिन किनहु न लिखी, भाषामैं यह रीति ॥
ख्याति अनिर्वचनीयकी, पेषहु सुजन सप्रीति ॥ १ ॥

शास्त्रांतरमैं उक्त पांचख्यातिके नाम ॥ ४० ॥

और शास्त्रांतरमैं जो भ्रमका लक्षणस्वरूप कह्या है, तासैं विलक्षणही

भ्रमका लक्षण औ स्वरूप है. इस अर्थके जणावनेकूं शास्त्रांतरके भ्रमके स्वरूप भाष्यमैं कहे हैं तिनका निरूपण औ खंडन करैहैं. शुक्तिमैं रजतादि भ्रम होवै तहां सिद्धांतपक्षसैं विना पांच मत हैं:—सतख्याति १ असतख्याति २ आत्मख्याति ३ अन्यथाख्याति ४ अख्याति भ्रमके ये नाम कहे हैं सर्वके मतमें पंचनाममैं अन्यतमभ्रमका नाम प्रसिद्ध है.

सतख्यातिकी रीति ॥ ४१ ॥

तिनमें सतख्यातिवादीका यह सिद्धांत है:—शुक्तिके अवयवनके साथि रजतके अवयव सदा रहैहैं. जैसें शुक्तिके अवयव सत्य हैं, तैसें ही रजतके अवयव हैं, मिथ्या नहीं. जैसें दोषसहित नेत्रके संबंधतें सिद्धांतमें अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय रजत उपजैहै. तैसें दोषसहित नेत्रसंबंधतें रजतावयवनसें सत्यरजत उपजैहै. अधिष्ठानज्ञानतें जैसें अनिर्वचनीय रजतकी निवृत्ति सिद्धांतमें होवै है, तैसें शुक्तिज्ञानतें सत्यरजतका अपनें अवयवनमें ध्वंस होवैहै.

सतख्यातिवादका खंडन ॥ ४२ ॥

यह सतख्यातिवादीका मत है सो निराकरणीय है. काहेतें ? शुक्तिरजत दृष्टांतसें प्रपंचकूं मिथ्यात्वकी अनुमिति होवैहै. सतख्यातिवादमें शुक्तिमें रजत सत्य है; तिसकूं दृष्टांत धरिके प्रपंचमैं मिथ्यात्वसिद्धि होवै नहीं, यातें यह पक्ष निराकरणीय है. या पक्षमें यह दोष है:—शुक्तिज्ञानसें अनंतर "कालत्रयेपि शुक्तौ रजतं नास्ति" इसरीतिसें शुक्तिमें त्रैकालिक रजताभाव प्रतीत होवै है सिद्धांतमैंभी अनिर्वचनीय रजत तौ मध्यकालमें होवै है औ व्यावहारिक रजताभाव त्रैकालिक है सतख्यातिवादीके मतमें व्यावहारिक रजत होवै तिस कालमें व्यावहारिक रजताभाव संभवै नहीं, यातें त्रैकालिक रजताभावकी प्रतीतिसें व्यावहारिक रजतकथन विरुद्ध है. और अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्तिमें तौ प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नहीं. दोषसहित अविद्यासें ताकी उत्पत्ति संभवै है औ व्यावहारिक रजत-

की उत्पत्ति तौ रजतकी प्रसिद्ध सामग्रीविना संभवै नहीं; औ शुक्तिदेशमें रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नहीं यातें सत्यरजतकी उत्पत्ति शुक्तिदेशमें संभवै नहीं.

शुक्तिमें सत्यरजतकी सामग्रीका अंगीकार औ खंडन ॥४३॥

औ जो ऐसें कहै शुक्तिदेशमें रजतके अवयव हैं सोई सत्यरजतकी सामग्री है; ताकूं यह पूछें हैं:-रजतावयवनका उद्भूत रूप है अथवा अनुद्भूतरूप है ? उद्भूत रूप कहै तौ रजतावयवनकाभी रजतकी उत्पत्तिसें प्रथम प्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो अनुद्भूत रूप कहै तौ अनुद्भूतरूपवाले अवयवनतें रजतभी अनुद्भूतरूपवाला होवैगा, यातें रजतका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा औ उद्भूतरूपवत् त्र्यणुकारंभक द्व्यणुकमें तौ अनुद्भूत रूप नहीं, किंतु उद्भूतरूप है. द्व्यणुकमें महत्व नहीं, यातें उद्भूत रूप होनेतेंभी द्व्यणुकका प्रत्यक्ष होवै नहीं, औ द्व्यणुकमेंही उद्भूत रूप नहीं है. किंतु परमाणुमेंभी नैयायिक उद्भूत रूप अंगीकार करै हैं.

औ जो ऐसें कहै द्व्यणुककी नाई रजतावयवभी उद्भूतरूपवाले हैं, परंतु महत्त्वशून्य हैं; यातें रजतावयवका प्रत्यक्ष होवै नहीं, सो संभवै नहीं, काहेतें ? **महत्परिमाणके च्यारि भेद हैं**:-आकाशादिकनमें **परम महत्परिमाण** है. परममहत्परिमाणवालेकूं ही नैयायिक **विभु** कहै हैं. विभुसें भिन्न घटादिकनमें **अपकृष्टमहत्परिमाण** है. औ सर्षप आदिकनमें **अपकृष्टतरमहत्परिमाण** है. त्र्यणुकमें अपकृष्टतम महत्परिमाण है. जो रजतके अवयवभी महत्परिमाणशून्य होवैं तौ द्व्यणुकसें आरब्ध त्र्यणुककी नाई महत्त्वशून्य अवयवनतें आरब्ध रजतादिकभी अपकृष्टतममहत्परिमाणवालेही हुये चाहियें; यातें रजतावयव महत्त्वशून्य है, यह कहना संभवै नहीं. औ रजतावयवमें तौ महत्त्वका अभाव कहै तौ किसी रीतिसें संभवै भी परंतु जहां वल्मीकमें घटका भ्रम होवै तहांभी घटावयव कपाल माननें होवैंगे. औ जहां स्थाणुमें पुरुषभ्रम होवै तहां स्थाणुमें पुरुषके अवयव

हस्तपादादिक माननें होवैंगे कपाल औ हस्तपादादिक तौ महत्त्वशून्य संभवै नहीं रजतत्वजाति तौ अणु साधारण है यातैं सूक्ष्मावयवनमैंभी रजतव्यवहार संभवै है. औ घटत्व कपालत्व हस्तपादत्व पुरुषत्वादिकजाति तौ महान् अवयवी मात्रवृत्ति है; तिनके सूक्ष्म अवयवनमैं कपालत्वादिक जातिसंभवै नहीं ? यातैं भ्रमके अधिष्ठानदेशमैं आरोपितके व्यावहारिक अवयव होवैं तौ तिनकी प्रतीति हुई चाहिये, यातैं व्यावहारिक अवयवनमैं रजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत है.

सतख्यातिवादीकरि उक्त दोषका परिहार औ ताका खंडन ॥ ४४ ॥

औ जो **सतख्यातिवादी** ऐसैं कहैः—शुक्तिदेशमैं रजतके साक्षात अवयव नहीं हैं; किंतु अवयवनके अवयव परम मूल द्व्यणुक अथवा परमाणु रहैं हैं, तैसैं वल्मीकदेशमैं घटके औ स्थाणुदेशमैं पुरुषके साक्षात अवयवनके अवयव परममूल द्व्यणुक अथवा परमाणु रहैं हैं. दोषसहित नेत्रके संबंधतैं झटिति अवयविधारा उपजिकै रजतघट पुरुषकी उत्पत्ति होवै है. दोषके अद्भुत माहात्म्यतैं ऐसे वेगसैं त्र्यणुकादिकनकी धारा उपजैहै; यातैं मध्यके अवयवी कपाल हस्तपादादिक प्रतीत होवैं नहीं. अंत्य अवयवी घटादिकी उत्पत्ति हुयां तौ कपालादिक कहूंभी प्रतीत होवैं नहीं यातैं भ्रमके अधिष्ठानमैं आरोपितके अवयव प्रतीत होवैं नहीं; औ व्यावहारिक अवयव रजतादिकनके हैं अथवा शुक्तिदेशमैं रजतके महत अवयव हैं; औ वल्मीकदेशमैं घटके अवयव कपाल हैं, स्थाणुदेशमैं पुरुषके अवयव हस्तपादादिक हैं; इसरीतिसैं भ्रमके अधिष्ठानमैं आरोपितके सारे अवयव हैं; तौभी अधिष्ठानकी विशेषरूपतैं प्रतीति तिन अवयवनकी प्रतीतिकी प्रतिबंधक है; यातैं विद्यमान महत् अवयवनका प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं **सतख्यातिवादीका समाधानभी समीचीन नहीं.** काहेतैं ? शुक्तिदेशमैं व्यावहारिक रजतकी उत्पत्ति मानैं तौभी अनुभवानुरोधसैं रजतकी निवृत्ति शुक्तिज्ञानसैंही मानी चाहिये.

रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं प्रातिभासिक औ व्यावहारिक रजतकी निवृत्ति औ ताका खंडन ॥ ४५ ॥

औ **सतख्यातिवादी** ऐसें कहै:—रजतकी निवृत्तिमें शुक्तिज्ञानकी अपेक्षा नहीं; किंतु रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति होवै है; जितने काल रजतका ज्ञान रहै उतने काल रजत रहै है. रजतज्ञानका अभाव होवै तब रजतकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिका ज्ञान कहूं रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है, कहूं शुक्तिज्ञानविना अन्यपदार्थके ज्ञानतें रजतज्ञानकी निवृत्ति होवै है, ता रजतज्ञानकी निवृत्तिमे उत्तरक्षणमें रजतकी निवृत्ति होवैहै अथवा रजतज्ञानकी निवृत्ति जामें होवै तासैंही रजतज्ञानकी निवृत्तिक्षणमें रजतकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसें ज्ञानकालमें ही रजतकी स्थिति होनेतें **यद्यपि** प्रातिभासिक ही रजतादिक है, तथापि अनिर्वचनीय नहीं किंतु व्यावहारिक सत्य हैं जैसें सिद्धांतमें सुखादिक प्रातिभासिक हैं तौभी स्वप्नसुखादिकनसें विलक्षण व्यावहारिक माने हैं. औ न्यायमतमें द्वित्वादिक प्रातिभासिक मानिके व्यावहारिक सत्य माने हैं; तैसें रजतादिक प्रातिभासिक है तौभी व्यावहारिक सत्य हैं. इसरीतिसैं रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणमें रजतादिकनकी निवृत्ति होवै है; अथवा रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु जो शुक्तिका ज्ञान अथवा पदार्थांतरका ज्ञान तामैंही रजतज्ञानके निवृत्तिक्षणमें रजतकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिज्ञानसें ही रजतकी निवृत्ति होवै यह नियम नहीं है.

ऐसा कहैं तौ लोकानुभवसैं विरोध होवैगा, सकलशास्त्रनसैं विरोध होवैगा सिद्धांतका त्याग होवैगा; औ युक्तिविरोध होवैगा. काहेतैं ? शुक्तिज्ञानसैं रजतभ्रमकी निवृत्ति होवै है यह सर्व लोकमैं प्रसिद्ध है. औ सकल शास्त्रमें प्रसिद्ध है औ सतख्यातिवादीकाभी यही सिद्धांत है. औ सतख्यातिवादीके मतमैं विशेषरूपतें शुक्तिका ज्ञान रजतावयवके ज्ञानका प्रतिबंधक है; यातैं रजतावयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है. रजतावयवकी

प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजतज्ञानका विरोधी मानना क्लृप्तकल्पना है. निर्णीतकूं क्लृप्त कहें हैं. शुक्तिज्ञानसैं विना अन्यसैं रजतज्ञानकी निवृत्ति मानैं तौ अक्लृप्तकल्पना होवैगी. इसरीतिसैं क्लृप्तकल्पना योग्य है या युक्तिसैंभी विरोध होवैगा; यातैं शुक्तिज्ञानसैं ही रजतकी औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी योग्य है.

सतख्यातिवादमैं प्रबल दोष ॥ ४६ ॥

औ जो पूर्व उक्तरीतिसैं रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति मानैं औ रजतज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानैं तौभी वक्ष्यमाण दोषसैं सतख्यातिवादीका उद्धार होवै नहीं सो दोष यह हैः-जहां शुक्तिमैं जा क्षणमैं रजत भ्रम होवै तिसी क्षणमैं शुक्तिमैं अग्निका संयोग होयकै उत्तर क्षणमैं शुक्तिका ध्वंस औ भस्मकी उत्पति होवै तहांरजतज्ञानकी निवृत्तिका साधन कोई हुया नहीं; यातैं शुक्तिध्वंस औ भस्मकी उत्पतिसैं प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनेतैं भस्मदेशमैं रजतका लाभ हुया चाहिये. काहेतैं ? रजत द्रव्य तैजस है. ताका गन्धकादि संबंधविना ध्वंस होवै नहीं यातैं भ्रमस्थानमैं व्यावहारिक रजतरूप सतपदार्थकी ख्याति होवै है यह सतख्यातिवाद असंगत है औ जहां एक रज्जुमैं दशपुरुषनकूं भिन्न भिन्न पदार्थनका भ्रम होवै. किसीकूं दण्डका किसीकूं मालाका; किसीकूं सर्पका तथा किसीकूं जलधाराका इत्यादिक पदार्थनके अवयव स्वल्परज्जुदेशमैं संभवैं नहीं. काहेतैं ? मूर्तद्रव्य स्थानका निरोध करैं हैं; यातैं स्वल्पदेशमैं इतने पदार्थनके अवयव संभवैं नहीं; औ भ्रमकालमैं दंडादिक अवयवी सर्वथा स्वल्पदेशमैं संभवैं नहीं. औ सिद्धांतमैं तौ अनिर्वचनीय दंडादिक हैं. व्यावहारिक देशका निरोध करैं नहीं. औ जो सत्ख्यातिवादी भी तिन दंडादिकनमैं स्थाननिरोधादिक फल नहीं मानैं तौ दंडादिकनकूं सत् कहना विरुद्ध है औ निष्फल है. दंडादिकनकी प्रतीतिमात्र होवैहै अन्यकार्य तिनतैं होवै नहीं; ऐसा कहैं तौ अनिर्वचनीयवादही सिद्ध होवै है.

औ भ्रमस्थलमें सतपदार्थकी उत्पत्ति मानैं तौ अंगारसहित ऊषर भूमिमैं जलभ्रम होवै तहां जलमैं अंगार शांत हुये चाहियें औ तूलके उपरि धरे गुंजापुंजमें अग्निभ्रम होवै तहां तूलका दाह हुया चाहिये. औ जो ऐसा कहैः—दोषसहित कारणतें उपजे पदार्थकी अन्यकूं प्रतीति होवै नहीं. जाके दोषतें उपजे है ताहीकूं प्रतीति होवैहै. औ दोषके कार्य जल अग्निसें आर्द्रीभाव दाह होवे नहीं तौ तिनकूं सत्यता कहना केवल हास्यका हेतु है. काहेतें ? अवयव तौ स्थान निरोधादिकके हेतु नहीं. अवयवीमें कोई कार्य होवै नहीं. ऐसे पदार्थकूं सत् कहना शुक्तिके बुद्धिमानोंकूं हास्य होवै है. यातें सतख्यातिवादकी उक्तिसंभवभी नहीं सर्वथा यह पक्ष नियुक्तिक है, इसी वास्ते विचारसागरमें सतख्याति नहीं जा पक्षका किसीप्रकारसें उपपादन होवै फेरि तर्कादिबलतें खंडन होवै सो पक्ष लिख्या चाहिये. सतख्यातिवादका उपपादन नहीं संभवै यातें इसग्रन्थमेंभी लेखनीय नहीं, तथापि सर्वथा लिखेविना अध्येताकूं ऐसा भ्रम होयजावै ग्रन्थकर्ताकूं सतख्यातिवादका ज्ञान नहीं था तिसभ्रमकी निवृत्तिवास्ते इहां लिख्या है

त्रिविध असतख्यातिकी रीति शून्यवादीकी रीतिसैं असतख्यातिवादका खंडन ॥ ४७॥

तैसैं असतख्यातिवादभी सर्वथा युक्तिअनुभवशून्य है. निराकरण विनाभी किसीकी बुद्धिमें आरूढ होवै नहीं, यातें निराकरणीय नहीं तथापि असतख्यातिवादी वेदमार्गका प्रतिद्वंद्वी प्रसिद्ध है. औ सूत्रनमें ताके मतका खंडन कह्या है यातें खंडनीय है. **असतख्यातिवादी दो** हैंः— एकतौ शून्यवादी नास्तिक असतख्याति मानै है. तिसके मतमैं तौ सारे पदार्थ असतरूप हैं; यातें शुक्तिमें रजतभी असत है. शून्यवादीके मतमें तौ असतअधिष्ठानमैं रजत असत् है यातें निरधिष्ठान भ्रम है. तैसें ज्ञाता ज्ञानभी असत हैं; या मतका खंडन शारीरकके द्वितीयाध्यायके तर्कपादमें विस्तारसैं कह्या है औ अनुभव विरुद्ध है. काहेतें ? शून्यवादमें सर्वस्था-

नमें शून्य है, यातें किसीका व्यवहार प्रसिद्ध नहीं हुया चाहिये. औ शून्यसें व्यवहार होवै तौ जलका प्रयोजन अग्निसें, अग्निका प्रयोजन जलसें हुया चाहिये. अग्नि जल तौ सत्य वा मिथ्या कहूं हैं नहीं, केवल शून्यतत्त्व है; सो सारै एकरस हैं तामें कोई विशेष नहीं. जो शून्यमें विशेष मानैं तौ शून्यवादीकी हानि होवैगी. काहेतें ? वह विशेषही शून्यसें भिन्न है, औ जो ऐसें कहै शून्यमें विशेष है, जाकूं विलक्षणता कहैं हैं तासें व्यवहारभेद होवै है. औ वह विशेष औ व्यवहार तथा व्यवहारका कर्ताभी परमार्थसें शून्य हैं, यातें शून्यताकी हानि नहीं सोभी संभवै नहीं. काहेतें ? शून्यमें विशेष है यह कथन विरुद्ध है. विशेषवाला कहै तौ शून्यताकी हानि होवै है औ शून्य कहै तौ विशेषवत्ताकी हानितें यवहार भेदका असंभव है; इसरीतिसें शून्यवाद संभवै नहीं.

कोई तांत्रिककी रीतिमें असतख्यातिवाद ॥ ४८ ॥

औ कोई तांत्रिक असतख्यातिवादी है, ताके मतमें शुक्तिआदिक व्यवहारके पदार्थ तौ असत नहीं, किंतु भ्रमज्ञानके विषय जो अनिर्वचनीय रजतादिक सिद्धांतमें मानैं हैं वह असत् हैं. यातें व्यावहारिक रजतादिक अपनें देशमें हैं तिनका शुक्तिमें संबंध नहीं. औ अन्यथाख्यातिवादीकी नाईं शुक्तिमें रजतत्वकी प्रतीतिभी होवै नहीं. अनिर्वचनीय रजत उपजै नहीं औ अख्यातिवादीकी नाईं दो ज्ञान होवैं नहीं. शून्यवादीकी नाईं शुक्ति असत् नहीं; ज्ञाताज्ञानभी असत् नहीं; किंतु शुक्ति ज्ञान ज्ञाता सत हैं, दोषसहित नेत्रका शुक्तिसें संबंध होवै तब शुक्तिका ज्ञान होवै नहीं; किंतु शुक्तिदेशमें असत् रजतकी प्रतीति होवै है. यद्यपि अन्यथाख्यातिवादमें शुक्तिदेशमें रजत असत् है औ कांताकरमें तथा हट्टमें सत् रजत दोनूं मतमें हैं; तथापि अन्यथाख्यातिवादमें तौ देशांतरस्थ सत्यरजतवृत्ति रजतत्वका शुक्तिमें भान होवै है, औ असतख्यातिवादमें देशान्तरमें रजत तौ है, तिसके धर्म रजतत्वका शुक्तिमें भान होवै नहीं; किंतु असतगोचर

रजतज्ञान है. शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवै है, ताका विषय शुक्ति नहीं जो रजतभ्रमका विषय शुक्ति होवै तौ "इयं शुक्तिः" ऐसा ज्ञान हुया चाहिये. जो शुक्तित्वरूप विशेष धर्मका दोषबलतैं भान नहीं होवै तौ सामान्य अंशका "इयम्" इतनाही ज्ञान हुया चाहिये; यातैं भ्रमका विषय शुक्ति नहीं तैसें भ्रमका विषय रजत भी नहीं. काहेतें? पुरोवर्ति देशमैं तौ रजत है नहीं, औ देशांतरमैं रजत है, तासैं नेत्रका संबंध इसरीतिसैं रजतभ्रमका विषय कोई नहीं. औ शुक्तिज्ञानसैं उत्तरकालमैं "इह कालत्रयेपि रजतं नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; यातैं रजत भ्रम निर्विषयक होनेतैं **असत् गोचर** कहिये है असतगोचर ज्ञानकूं ही **असत-ख्याति** कहै हैं.

न्यायवाचस्पत्यकारकी रीतिसैं असतख्यातिवाद ॥ ४९ ॥

और कोई असतख्याति इसरीतिसैं कहैहैं:—शुक्तिमैं नेत्रके संबधतैं रजतभ्रम होवै है यातैं रजतभ्रमका विषय शुक्ति है, परंतु शुक्तिमैं शुक्तित्व औ शुक्तित्वका समवाय दोनूं दोषतैं भासैं नहीं; किंतु शुक्तिमैं रजतत्वका समवाय भासैहै. जो रजतत्वका समावाय शुक्तिमैं है नहीं, यातैं असतख्याति है; रजतत्वप्रतियोगीका शुक्ति अनुयोगिक समवाय असत् है. ताकी ख्याति कहिये प्रतीति **असत् ख्याति** कहियेहै. रजतत्वप्रतियोगिक समवायरजतमैं रजतत्वका प्रसिद्ध है. और शुक्त्यनुयोगिक समवाय शुक्तिमैं शुक्तित्वका प्रसिद्ध है, परंतु रजतत्व प्रतियोगिक समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्ध है; शुक्त्यनुयोगिक नहीं. औ जो शुक्त्यनुयोगिक समवाय प्रसिद्ध है, सो शुक्तित्व प्रतियोगिक है. रजतत्वप्रतियोगिक नहीं. इसरीतिसैं रजतत्वप्रतियोगिक शुक्ति अनुयोगिक समवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असतहै, ताकी प्रतीतिकूं **असत् ख्याति** कहैहैं. शुक्ति जाका **अनुयोगी** कहिये धर्मी होवै सो शुक्त्यनुयोगिक कहिये है, रजतत्व जिसका प्रतियोगी होवै सो रजतत्वप्रतियोगिक कहिये है. भाव यह है:—केवल समवाय प्रसिद्ध है औ रजतत्व प्रतियोगिक

समवायभी रजतमें प्रसिद्ध है; औ शुक्त्यनुयोगी समवायभी शुक्तिधर्मनका शुक्तिमें प्रसिद्ध है; प्रसिद्धसमवायमें समवायत्व धर्म है रजतत्व प्रतियोगित्वभी समवायमें प्रसिद्ध है; तैसें शुक्त्यनुयोगिकत्वभी समवायमें प्रसिद्ध है, परंतु रजतत्व प्रतियोगिकत्व शुक्त्यनुयोगिकत्व दोनूं धर्म एकस्थानमें समवायमें अप्रसिद्ध होनेतें शुक्त्यनुयोगिकत्वविशिष्ट रजतत्व प्रतियोगिकत्वविशिष्ट समवाय अप्रसिद्ध होनेतें असत है; ताकी ख्याति **असत्ख्याति** कहिये है. यह न्याय वाचस्पत्यकारका मत है. इसरीतिसें अधिष्ठानकूं मानिकै **असत्-ख्याति दो प्रकारकी** मानें हैं, एक तौ शुक्तिअधिष्ठानमें असत्रजतकी प्रतीतिरूप है औ दूसरी शुक्तिमें असत्रजतत्व समवायकी प्रतीतिरूप है.

द्विविध असत्ख्यातिवादका खंडन ॥ ५० ॥

सो दोनूं असंगत हैं. काहेतें ? जो असत्ख्याति मानें ताकूं यह पूछेहैं; असत्ख्याति या वाक्यमें अबाध्यविलक्षण असत् शब्दका अर्थ है अथवा असत शब्दका अर्थ निःस्वरूप है, जो ऐसें कहैः—असत शब्दका अर्थ निःस्वरूप है, तौ "मुखे मे जिह्वा नास्ति" इसवाक्यकी नाईं असत्ख्यातिवादका अंगीकार निर्लज्जका है. काहेतें ? सत्तास्फूर्तिरहितकूं **निःस्वरूप** कहैहैं. यातें सत्तास्फूर्तिशून्यभी प्रतीत होवै है; यह असत्ख्यातिवाद कहै तैसें सिद्ध होवै है, सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति कहना विरुद्ध है यातें अबाध्यविलक्षण असत शब्दका अर्थ कहै तौ अबाध्यविलक्षण बाध्य होवै है. बाधके योग्यकूं बाध्य कहैहैं; इसरीतिसें बाधके योग्यकी प्रतीति **असत्-ख्याति** कहिये है, यह सिद्ध हुया. सोई सिद्धांतीका मत है. काहेतें ? अनिर्वचनीय ख्याति सिद्धांतमें है और बाधयोग्यही अनिर्वचनीय होवै है. इसरीतिसें सिद्धांतसें विलक्षण असत्ख्यातिवाद है यह कहना संभवै नहीं.

आत्मख्यातिकी रीति औ खंडन, आंतर-पदार्थमानी आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय ॥ ५१ ॥

आत्मख्याति असंगत है. काहेतें? विज्ञानवादीके मतमें आत्मख्याति है.

क्षणिकविज्ञानकूं विज्ञानवादी आत्मा कहै हैं, तिसके मतमें बाह्य रजत नहीं है, किंतु अंतर विज्ञानरूप आत्मा है. ताका धर्म रजत है, दोषबलतै बाह्य प्रतीत होवैहै. शून्यवादीके मतविना आंतरपदार्थकी सत्तामें किसी सुगतशिष्यका विवाद नहीं. बाह्य पदार्थ तौ कोई मानै हैं कोई नहीं मानै हैं. यातैं बाह्यपदार्थकी सत्तामें तौ तिनका विवाद है. आंतर विज्ञानका निषेध शून्यवादी विना कोई नास्तिक करै नहीं, यातैं आंतररजतका विज्ञानरूप आत्मा अधिष्ठान है; ताका धर्म रजत आंतर है; दोषबलतै बाह्यकी नाईं प्रतीत होवै है. ज्ञानतैं रजतका स्वरूपमें बाध नहीं होवै है; किंतु रजतकी बाह्यताका बाध होवै है. अनिर्वचनीय ख्यातिवादमैं रजतधर्मीका बाध औ इदंतारूप बाह्यवृत्ति ताका बाध मानना होवै है. औ आत्मख्यातिमतमें रजतका तौ बाध मानना होवै नहीं. काहेतें ? शून्यवादीसें भिन्न सकल सौगतके मतमें पदार्थनकी आंतरसत्तामें विवाद नहीं. यातैं स्वरूपमें रजतका बाध मानना होवै नहीं; केवल बाह्यतारूप इदंताका बाध मानना होवै है. यातैं अनिर्वचनीयवाद मानैं तौ धर्म औ धर्मीका बाधकल्पन गौरव है. आत्मख्याति मानैं तौ धर्मीके बाधविना इदंतारूप धर्ममात्रके बाध कल्पनमें लाघव है. यह आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय है. या मतमें रजत आंतर सत्य है, ताकी बाह्य देशमें प्रतीति भ्रम है, यातैं रजतज्ञानमें रजतगोचरत्व अंशभ्रम नहीं; किंतु रजतका बाह्यदेशस्थत्व प्रतीति अंशमें भ्रम है.

आंतरपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन ॥ ८२ ॥

यह मतभी समीचीन नहीं. रजत आंतर है, ऐसा अनुभव किसीकूं होवै नहीं. भ्रमस्थलमें वा यथार्थस्थलमें रजतादिकनकी आंतरता किसी प्रमाणसें सिद्ध होवै नहीं. सुखादिक आंतर है औ रजतादिक बाह्य है यह अनुभव सर्वकूं होवै है. रजतकूं आंतर मानैं तौ अनुभवसें विरोध होवै है औ आंतरताका साधक प्रमाण युक्ति है नहीं; यातैं आंतर रजतकी बाह्य प्रतीति मानना असंगत है.

सौगतनके दो भेदनमैं बाह्यपदार्थवादीकी आत्मख्यातिका अनुवाद ॥ ५३ ॥

यद्यपि सौगतनमैं दो भेद हैं. एक तौ विज्ञानवाद है औ दूसरा बाह्यवाद है. बाह्यवादमैंभी दो भेद हैं एक तौ बाह्यपदार्थ अनुमेय है प्रत्यक्ष नहीं. ज्ञानका प्रत्यक्ष होवै है, ज्ञानसैं ज्ञेयकी अनुमिति होवै है. इस रीतिसैं बाह्यपदार्थनका परोक्षवाद है; औ बाह्यपदार्थभी प्रत्यक्षज्ञानके विषय हैं. इसरीतिसें बाह्यपदार्थनका अपरोक्षवाद है; इनमैं विज्ञानवादीके मतमैं तौ व्यावहारिक रजतभी बाह्य नहीं है. औ बाह्यपदार्थवादीके मतमैं यथार्थ ज्ञानका विषय रजत तौ बाह्य है, यातैं उक्त अनुभवका विरोध नहीं. औ भ्रमस्थलमैं बाह्य रजत माननेंका प्रयोजन नहीं. काहेतैं ? कटकादिसिद्धि तौ तिस रजतसैं होवै नहीं, केवल प्रतीतिमात्र होवैहै; औ विषयविना प्रतीति होवै नहीं; यातैं भ्रमप्रतीतिकी सविषयता सिद्धिही तिस रजतका फल है. सो आंतरही मानै तौभी भ्रमप्रतीति सविषयक होय जावै हैं. बाह्य मानिके प्रतीतिकी सविषयता सिद्ध करै ताके मतमैं उक्तरीतिमैं धर्मधर्मीका बाध माननेतैं गौरव है. आंतररजतकी दोषबलतैं बाह्यप्रतीति मानै तौ केवल इदंताके बाध माननेतैं लाघव होवैहै; औ यथार्थज्ञानका विषय रजत पुरोवर्तिदेशमैं होवैहै. भ्रमज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्तिदेशमैं होवै तौ यथार्थ ज्ञान औ भ्रमज्ञानकी विलक्षणता नहीं होवैगी. औ आत्मख्याति मतमैं तौ यथार्थज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्तिदेशमैं है औ भ्रमज्ञानका विषय रजत आंतर है यातैं बाह्यत्व आंतरत्वरूप विषयकी विलक्षणतासैं यथार्थत्व अयथार्थत्व भेदज्ञानके होवैं हैं. औ बाह्यदेशमैं जो भ्रमके विषयकी उत्पत्ति मानैं तौ शुक्तिदेशमैं उपजे रजतकी सर्वकूं प्रतीति हुई चाहिये, औ एक अधिष्ठानमैं दशपुरुषनकूं भिन्नभिन्न पदार्थनका भ्रम होवै तहां एक एक पुरुषकूं सकल पदार्थनकी प्रतीति हुई चाहिये. औ आत्मख्यातिमतमैं तौ जिसके आंतर जो पदार्थ उपजै है तिसीकूं पुरोवर्तिदेशमैं वह पदार्थ प्रतीत होवैहै; यातैं अन्यपु-

रुषकूं ताकी प्रतीतिकी शंकाही होवै नहीं. भ्रमके विषयकी बाह्य उत्पत्ति मानें तिसके मतमें अन्यपुरुषनकूं अप्रतीतिमें समाधानका अन्वेषणरूप क्लेशही फल है; इस रीतिसैं बाह्यपदार्थवादी सौगतमतमैं आत्मख्यातिकी उक्ति संभवैहै व्यावहारिक पदार्थही तिसके मतमें बाह्य हैं प्रातिभासि करजतादिक बाह्य नहीं, केवल आंतरही हैं.

बाह्यपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन ॥ ६४ ॥

तथापि आत्मख्यातिवाद असंगतही है. काहेतें ? रजतादिक पदार्थ स्वप्नविना जागरणमें आंतर अप्रसिद्ध हैं. बाह्य स्वभावकूं भ्रमस्थलमें आंतरकल्पना अप्रसिद्ध कल्पना दोष है औ आंतर होवे तौ "मयि रजतम्, अहं रजतम्" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये. "इदं रजतम्" इसरीतिसे रजतकी बाह्य प्रतीति हुई चाहिये.

और जो ऐसें कहै. यद्यपि रजत आंतर है बाह्य देशमें है नहीं, तथापि दोषमाहात्म्यतें आंतरपदार्थकी बाह्य प्रतीति होवैहै. बाह्यतारूप इदंता शुक्तिमें है दोपके माहात्म्यतें शुक्तिकी इदंता रजतमें भासै है. जो दोषतें आंतर रजत उपजैहै तो दोषतैंही आंतर उपजे रजतमें शुक्तिकी इदंता प्रतीत होवै है. जो रजतकी बाह्यदेशमें उत्पत्ति मानें तौ बाह्यदेशमें सत्यरजत तौ संभवै नहीं; अनिर्वचनीय मानना होवैगा. सो अनिर्वचनीय वस्तु लोकमें अप्रसिद्ध है, यातें अप्रसिद्ध कल्पना दोष होवैगा औ आंतर तो सत्य रजत उपजे है. आंतर होनेतें ताके हान उपादान अशक्य हैं; यातैं सत्य मानेंभी कटकादिसिद्धिरूप फलका अभाव संभवै है, यातें अनिर्वचनीय वस्तुकी कल्पना होवै नहीं, अनिर्वचनीय ख्यातिमें आत्मख्यातितैं यह लाघव है.

सोभी असंगत है. शुक्तिकी इदंता रजतमें प्रतीत होवै है, या कहनेमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवै है. जो इदंताप्रतीतिमें अन्यथा

ख्याति मानी तौ शुक्तिमैं रजतत्व धर्मकी प्रतीतिभी अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये. आंतर रजतकी उत्पत्ति माननी निष्फल है. जैमैं रजत पदार्थ शुक्तिसैं व्यवहित है; ताके धर्मकी शुक्तिमैं प्रतीतिका असंभव कहै तौ तेरे मतमैंभी शुक्तिसैं व्यवहित अंतर्देशमैं रजत है, तामैं शुक्तिधर्म इदंताकी प्रतीतिका असंभव तुल्य है.

आत्मख्यातिवादतें विलक्षण अद्वैतवादका सिद्धांत ॥ ५५ ॥

औ सिद्धांतमैं तौ शुक्तिवृत्तितादात्म्यका अनिर्वचनीय संबंध रजतमैं उपजे है; ताकूं **संसर्गाध्यास** कहैं है. अधिष्ठानका संबंध आरोपितमैं जहां प्रतीत होवै तहां सारैं अधिष्ठानका संसर्गाध्यास होवै है. संसर्गाध्यास विना अन्य धर्मकी अन्यमैं प्रतीति होवै नहीं इसरीतिसैं अध्यासविना शुक्तिवृत्ति इदंताका आंतर रजतमैं प्रतीतिके असंभवतें आत्मख्यातिवाद असंगत है औ अनिर्वचनीय वस्तुकी अप्रसिद्ध कल्पना दोष कह्या सो भी अज्ञानसैं कह्याहै. काहेतें ? **अद्वैतवादका यह मुख्य सिद्धांत** है:— चेतन सत्य है, तासैं भिन्न सकल मिथ्या है. **अनिर्वचनीयकूं** मिथ्या कहैं हैं, यातें चेतनसैं भिन्न पदार्थकूं सत्य कथनमैं ही अप्रसिद्ध कल्पना है. चेतनसैं भिन्न पदार्थनमैं अनिर्वचनीयता तौ अतिप्रसिद्ध है. युक्तिसैं विचार करै तब किसी अनात्मपदार्थनका स्वरूप सिद्ध होवै नहीं औ प्रतीत होवै है, यातें सकल अनात्म पदार्थ अनिर्वचनीय हैं, सिद्धान्तमैं अनात्म पदार्थ कोई सत्य नहीं. गन्धर्वनगरकी नाईं दृष्ट सारा प्रपंच नष्टस्वभाव है. स्वप्नमैं जाग्रतपदार्थनमैं किंचिद्विलक्षणता नहीं. औ शुक्तिरजत प्रातिभासिक है. कांताकरादिकनमैं रजत व्यावहारिक है; इसरीतिसैं अनात्म पदार्थनमैं मिथ्यात्व सत्यत्व विलक्षणता परस्पर कहीहै, सो स्थूलबुद्धिवालेका अद्वैतबोधमैं प्रवेशवास्ते अरुंधतीन्यायसैं कहिये है. स्थूलबुद्धिपुरुषकूं प्रथमही मुख्यसिद्धांतकी रीति कहै तौ अद्भुत अर्थकूं सुनिके अनात्मसत्यत्व भावनावाला पुरुष शास्त्रसैं विमुख होयके पुरुषार्थसैं भ्रष्ट

होय जावै इसवास्तै अनात्मपदार्थनकी व्यावहारिक प्रातिभासिकभेदसैं द्विविध सत्ता कही, औ चेतनकी पारमार्थिक सत्ता कही. चेतनसैं न्यून-सत्ता प्रपंचकी बुद्धिमें आरूढ हुये सकल अनात्मपदार्थनकूं स्वप्नादि-दृष्टांतसें प्रातिभासिकता जानिकै निषेधवाक्यनतैं सर्व अनात्मकूं सत्ता-स्फूर्तिशून्य जानि लेवै, इसवास्तै सत्ताभेद कह्या है औ अनात्मपदार्थनका परस्पर सत्ताभेदमैं अद्वैतशास्त्रका तात्पर्य नहीं यातैं अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीय पदार्थ अप्रसिद्ध है. यह कथन विरुद्ध है. औ प्रकारांतरका असंभव है, यातैं लाघव गौरव कथन सर्वदा असंभव है. जो अनिर्वचनीय ख्यातिविना अन्यप्रकारभी संभवै तौ गौरवदोष देखिकै या पक्षका त्याग संभवै औ उक्त वक्ष्यमाण रीतिसैं सतख्यातिसैं आदिलेकै कोई पक्ष संभवै नहीं, यातैं गौरव लाघव विचारही निष्फल है ॥

सिद्धांतोक्त गौरवदोषके परिहारपूर्वक द्विविध विज्ञानवादका असंभव ॥ ८६ ॥

और जो आत्मख्यातिनिरूपणके आरंभमैं कह्या. बाह्य रजतकी उत्पत्ति मानैं तौ रजतधर्मी औ इदंताधर्म इन दोनूंका बाध माननेमें गौरव है. आत्मख्याति मानैं तौ इदंतामात्रके बाध होनेतैं धर्मीका बाध नहीं माननेमें लाघव है.

यह कथनभी अकिंचित्कर है. काहेतैं ? शुक्तिका ज्ञान हुयें मिथ्या रजत मेरेकूं प्रतीत हुया. इसरीतिसैं रजतका बाध सर्वके अनुभवसिद्ध है औ आत्मख्यातिकी रीतिसैं रजतमैं मिथ्या बाह्यता प्रतीत हुई ऐसा बाध हुया चाहिये; यातैं धर्मीके बाधका लाघवबलसैं लोप करे तौ पाकादिफल साधक व्यापारसमूहमैं एक व्यापार करिकै लाघवबलतैं अधिक व्यापारका त्याग कर्‌या चाहिये. औ भ्रमवाले पुरुषकूं आप्त उपदेश करै तब "नेदं रजतम् किंतु शुक्तिरियम्" इसरीतिसैं रजतका स्वरूपसैं निषेध करैहै. औ आत्मख्यातिकी रीतिसैं "नात्र रजतम्, किंतु ते आत्मनि

रजतम्'' इसरीतिसैं रजतके देशमात्रका निषेध कऱ्या चाहिये; यातें आत्मामैं उपजेकी बाह्यदेशमैं ख्याति है. इस अर्थमैं तात्पर्यतैं बाह्यपदार्थवादी सौगतका आत्मख्यातिवाद असंगत है औ विज्ञानसैं भिन्न कोई बाह्य औ आंतर पदार्थ नहीं किंतु विज्ञानरूप आत्माके आकार सर्वपदार्थ हैं. इसरीतिसैं विज्ञानवादीका विज्ञानरूप आत्माके रजतरूपमैं ख्याति है, इस तात्पर्यतैंभी आत्मख्यातिवाद असंगत है. विज्ञानसैं भिन्न रजत है सो ज्ञानका विषय है; ताकूं विज्ञानरूप आत्मासैं अभिन्न कथन संभवै नहीं औ विज्ञानवादीके मतमैं सारे पदार्थ क्षणिक विज्ञानरूपहैं, तामैं प्रत्यभिज्ञाअसंभवादिक अनंत दूषण हैं, यातें आत्मख्याति संभवै नहीं.

अन्यथाख्यातिकी रीति औ खंडन, अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य ॥ ८७ ॥

अन्यथाख्यातिवादभी असंगत है यह अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य है. जा पुरुषकूं सत्यपदार्थके अनुभवजन्य संस्कार होवैं ताके दोषसहित नेत्रका पूर्वदृष्ट सदृशपदार्थसैं संबंध होवै तहां पुरोवर्तिसदृश पदार्थके सामान्यज्ञानतैं पूर्वदृष्टकी स्मृति होवैहै अथवा स्मृति नहीं होवै तौ सदृशके ज्ञानतैं संस्कार उद्भूत होवै हैं. जा पदार्थकी स्मृति होवै अथवा जाके उद्भूत संस्कार सत्य रजतके पदार्थका धर्म पुरोवर्तिपदार्थमैं प्रतीत होवैहै. जैसें सत्य रजतके अनुभवजन्यसंस्कारसहित पुरुषका रजतसदृश शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रका संबंध हुयें रजतकी स्मृति होवैहै; ताके स्मरण करे रजतका रजतत्व धर्म शुक्तिमैं भासै है. अथवा नेत्रका संबंध हुयें रजतभ्रममैं विलंब होवै नहीं, यातें नेत्रसंबंध औ रजतके प्रत्यक्षभ्रमके अंतरालमैं रजतकी स्मृति नहीं होवैहै; किंतु रजतानुभवके संस्कार उद्भूत होयके स्मृतिके व्यवधानबिना शीघ्र ही शुक्तिमैं रजतत्वधर्मका प्रत्यक्ष होवैहै. स्मृतिस्थलमैं जैसें पूर्वदृष्ट सदृशके ज्ञानतैं संस्कारका उद्बोध होवैहै, तैसें भ्रमस्थलमैं पूर्वदृष्टके सदृश पदार्थमैं इंद्रियका संबंध होनेतैं ही संस्कारका उद्बोध होयकै संस्का-

रगोचर धर्मका पुरोवर्तिमें भान होवैहै; याकूं **अन्यथाख्याति** कहैहैं. अन्य-रूपतैं प्रतीतिकूं **अन्यथाख्याति** कहैहैं. शुक्तिपदार्थमैं शुक्तित्वधर्म है रज-तत्व नहीं है. औ शुक्तिकी रजतत्वरूपतैं प्रतीति होवैहै, यातें अन्यरूपतें प्रतीति है.

विचारसागरोक्त द्विविधख्यातिवादमैं प्रथम प्राचीन मतका प्रकार औ खंडन ॥ ५८ ॥

औ विचारसागरमें अन्यथाख्यातिके दो भेद लिखे हैं. दूसरीका प्रकार यह है—रजतभ्रम होवै तहां कांताकरादिकनमैं स्थितरजतमें नेत्रका संबंध होयके ताका प्रत्यक्ष होवैहै. यातें कांताकरमें या हट्टमें स्थितरजतकी पुरोवर्तिदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति है. या मतमें धर्मधर्मी अंशमें तौ रजतका ज्ञान यथार्थ है, परंतु देश अंशमें अन्यथाज्ञान है. यद्यपि हट्टादिकनका रजत व्यवहित है, तामें नेत्रका संबंध संभवै नहीं, तथापि दोषसहित नेत्रका व्यवहित रजतसें संबंध होयके ज्ञान होवै है; यह दोषका माहात्म्य है. इसरी-तिकी अन्यथाख्यातिका वर्तमान न्यायादिग्रंथनमें उपलंभ नहीं; तथापि इसप्रकारका अन्यथाख्यातिका खंडन अनेक ग्रंथनमें है.

यामें यह दोष है:—जो देशांतरमें स्थित रजतसें नेत्रका संबंध होवै तौ हट्टमें रजतके सन्निहित धरे अन्यपदार्थनका प्रत्यक्षभी हुया चाहिये. कां-ताकरस्थ रजतका प्रत्यक्ष होवै तब कांताके करकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये औ जो ऐसें कहै:—अन्यथाख्यातिकी केवल इंद्रियमें उत्पत्ति नहीं होवै है; किंतु पूर्वानुभवजनित संस्कारसहित सदोष नेत्रसें अन्यथाख्यातिज्ञान उपजै है, यातें उद्भूतसंस्कार नेत्रका सहकारी है. रजतगोचर संस्कार-सहित नेत्रसें रजतकाही ज्ञान होवै है, अन्यपदार्थगोचर संस्कार तौ है, परंतु उद्बुद्ध नहीं; यातें अन्यवस्तुका ज्ञान होवै नहीं. संस्कारनकी उद्बुद्धता औ अनुद्बुद्धता कार्यसें अनुमेय है, यातें दोष नहीं, तथापि जहां शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिके समान आरोपित रजतका परिमाण प्रतीत होवैहै

लघुशुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां आरोपित रजतमैंभी लघुता भासै है, महती शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां महत्परिमाणवाला रजत भासै है,इसरीतिसैं आरोपित पदार्थमैं अधिष्ठानपरिमाणका नियम होनेतैं शुक्त्यादिकनमैं रजतत्वादिक धर्मकी प्रतीति होवै है. अन्यदेशस्थ रजतकी प्रतीति होवै तौ आरोपितमैं अधिष्ठानपरिमाणका नियम नहीं चाहिये. औ लघु तथा महत्परिमाण शुक्तिका भासैहै, यातैं देशांतरके रजतकी प्रतीति नहीं औ रजतसंस्कारवालेकूं अन्यपदार्थकी प्रतीति यद्यपि नहीं सम्भवै तथापि सारे देशके अनंत रजतनकी प्रतीति हुई चाहिये, इसरीतिसैं अनंतदूषणग्रस्त यह पक्ष है. इसीवास्तै वर्तमानग्रन्थनमें या पक्षका उपलंभ होवै नहीं.

पूर्वोक्त अन्यथाख्यातिवादका खंडन ॥ ८९ ॥

औ शुक्तिमैं रजतत्व धर्मकी प्रतीति होवैहै, यह अन्यथाख्यातिवाद अनेक ग्रंथकार नैयायिकोंनैं यद्यपि लिख्या है तथापि तिनका लेखभी श्रुतिस्मृतिविरुद्ध है,यातैं श्रद्धायोग्य नहीं. स्वप्नज्ञानकूं नैयायिक **मानसविपर्यय** कहैहैं. औ अन्यथाख्यातिकूं **विपर्यय** कहैहैं औ श्रुतिमें स्वप्नपदार्थनकी-उत्पत्ति कही है"न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते" यह श्रुति है. तामैं व्यावहारिक रथ अश्व मार्गनका स्वप्नमैं निषेध करिकै अनिर्वचनीय रथ अश्व मार्गकी उत्पत्ति कही है. तैसें"संध्येसृष्टिराहहि" यह **व्याससूत्र** है. तामैंभी स्वप्नमें अनिर्वचनीय पदार्थनकी सृष्टि कही है. व्यासकृत सूत्र स्मृतिरूप है. इस रीतिसैं नैयायिकनका अन्यथाख्यातिवाद श्रुतिस्मृतिविरुद्ध है. औ नेत्रसैं व्यवहितरजतत्वका शुक्तिमैं ज्ञान संभवै नहीं. जो शुक्तिके समीप रजत होवै तौ दोनूंसैं नेत्रका संयोग होयकै रजतवृत्ति रजतत्वकी शुक्तिमैं नेत्रजन्य भ्रम प्रतीति संभवै. औ जहां शुक्तिके समीप रजत नहीं तहां शुक्तिमैं रजतत्व भ्रम नेत्रजन्य संभवै नहीं. काहेतैं? विशेषण विशष्यतैं इंद्रियका संबंध हुयें इंद्रियजन्य विशिष्ट ज्ञान होवै है. जहां सत्य रजत है तहां विशेषण रजतत्व है विशेष्य रजतव्यक्ति है, रजतव्यक्तिसैं नेत्रका

संयोगसंबंध होवैहै, औ रजतत्वमैं नेत्रका संयुक्तसमवाय संबंध होवै है; यातैं " इदं रजतम् " इसरीतिसैं रजतत्वविशिष्टका नेत्रजन्यज्ञान होवैहै. औ जहां शुक्तिमैं रजतत्वविशिष्ट भ्रम होवै तहां विशेष्यशुक्तिसैं तौ नेत्रका संयोगसंबंध है, रजतत्वविशेषणसैं संयुक्तसमवाय है नहीं जो रजतव्यक्तिसैं संयोग होवै तौ रजतत्वसैं संयुक्तसमवाय होवै. रजतव्यक्तिसैं संयोगके अभावतैं रजतत्वसैं संयुक्तसमवायका अभाव है. यातैं रजतविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान संभवै नहीं.

प्रत्यक्षज्ञानके हेतु षड्विध लौकिक अरु त्रिविध अलौकिक ये दो संबन्ध ॥ ६० ॥

औ जो नैयायिक कहै. प्रत्यक्षज्ञानका हेतु विषयइंद्रियका संबंध दो प्रकारका है. एक लौकिक संबंध है औ दूसरा अलौकिक संबंध है. संयोग आदिक षट्प्रकारका संबंध लौकिक कहियेहै, औ सामान्यलक्षण ज्ञानलक्षण योगजन्यधर्मलक्षण यह तीनिप्रकारका अलौकिक संबंध है. लौकिक संबंधके उदाहरण औ स्वरूप प्रत्यक्षनिरूपणमैं कहेहैं.

अलौकिक संबंधके इसभांति उदाहरणस्वरूप हैं जहां एक घटसैं नेत्रका संयोग होवै तहां एकही घटका नेत्रमैं साक्षात्कार नहीं होवैहै; किंतु घटत्वाश्रय सकल घटनका नेत्रसैं साक्षात्कार होवैहै. परंतु नवीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका औ देशांतरवृत्ति घटनका एकही क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै. औ प्राचीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका प्रथम क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै, परंतु नवीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका औ देशांतरवृत्ति घटका द्वितीय क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै. दोनूं साक्षात्कार नेत्रजन्य है, परंतु संबंध भिन्न है. ये दो मत हैं. तिनमैं प्राचीन रीति सुगम है; यातैं प्राचीन रीतिही कहैहैं:—पुरोवर्ति घटसैं नेत्रका संयोग होयके "अयं घटः" इसरीतिसैं एक घटका साक्षात्कार होवै है. या साक्षात्कारका हेतु संयोगसंबंध है. यातैं यह साक्षात्कार लौकिक संबंधजन्य है. या साक्षातकारका विषय घट औ घटत्व है तिनमैंभी

व्यक्ति विशेष्य है, घटत्व प्रकार है; विशेषणकूं प्रकार कहैं हैं. या ज्ञानमैं प्रकार जो घटत्व सो यावत घटमैं रहै है, यातैं पुरोवर्ति घटके ज्ञानकालमैं नेत्र इंद्रियका स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता संबंध सकल घटनमें है या संबंधसैं नेत्रइंद्रियजन्य सकल घटनका साक्षात्कार द्वितीयक्षणमैं होवै है. या साक्षात्कारका विषय पुरोवर्ति घटभी है. काहेतैं ? घटत्ववत्ता जैसैं अन्य घटनमैं है तैसैं पुरोवर्तिघटमैं भी है, यातैं पुरोवर्तिघटगोचर दो ज्ञान होवैहैं. प्रथमक्षणमैं लौकिकज्ञान होवैहै, द्वितीयक्षणमैं अलौकिक ज्ञान होवैहै; यह उक्त संबंध अलौकिक है, अलौकिक संबंधजन्य ज्ञानभी अलौकिक है. इंद्रियका सकल घटनतैं स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता संबंध है. जहां नेत्रजन्य साक्षात्कार एक घटका होवै तहां स्वशब्द नेत्रका बोधक है, औ जहां त्वक्‌सैं एक घटका ज्ञान होवै तहां स्वशब्द त्वक्‌का बोधक है. इसरीतिसैं जा इंद्रियतैं एक व्यक्तिका ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यही सकल घटनका अलौकिक साक्षात्कार होवै है, नेत्रइंद्रियजन्य एक घटका लौकिक साक्षात्कार हुये त्वक्‌इंद्रियजन्य सकल घटनका अलौकिक साक्षात्कार होवै नहीं. नेत्रजन्य एक घटका ज्ञान हुये स्व कहिये नेत्र तिसतैं जन्य " अयं घटः" यह ज्ञान है. तामैं प्रकारीभूत कहिये विशेषण जो घटत्व तद्वत्ता कहिये ताकी आधारता घटनमें है इसरीतिसैं सकल घटनके ज्ञानका हेतु उक्त संबंध है. सो एक घटका ज्ञान होवै तब नेत्रजन्यज्ञानमैं घटत्वप्रकार होवैहै. औ पुरोवर्ति घटके लौकिक ज्ञानसैं प्रथम उक्तसंबंध संभवै नहीं; यातैं लौकिकज्ञान प्रथमक्षणमैं होवै है अलौकिक उत्तरक्षणमैं होवैहै, यह प्राचीन रीति है, नवीनरीतिसैं एकही ज्ञान सकल घटगोचर होवैहै. पुरोवर्ति घट अंशमैं लौकिक होवैहै. देशांतरस्थ घटांशमैं अलौकिक होवैहै; प्रसंगप्राप्त एकरीति कही विस्तारभयतैं नवीन रीति कही नहीं. यह सामान्यलक्षण संबंध है, जातिकूं सामान्य कहैहैं. सामान्य कहिये जाति लक्षण कहिये स्वरूप यातैं जातिस्वरूप संबंध है. यह सिद्ध हुया-- नेत्रजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता कहनेसैं घटत्वही सिद्ध

होवैहै; यातें उक्त संबंध सामान्यस्वरूप है, अथवा घटत्वाधिकरणताकूं घटत्ववत्ता कहै तौभी सामान्यलक्षणही संबंध है. काहेतें? अनेक अधिकरणनमें अधिकरणता धर्म सामान्य है, या स्थानमें अनेकमें जो समान धर्म होवै सो सामान्यशब्दका अर्थ है. केवल जातिही सामान्यशब्दका अर्थ नहीं यातें अनेक घटनमें घटत्वकी अधिकरणताभी समान धर्म होनेतें सामान्य कहिये है इस रीतिमें एक व्यक्तिसें इंद्रियका संबंध हुयें इंद्रियसंबंधी व्यक्तिके समानधर्मवाली इंद्रियसंबंधी सकल व्यक्तिमें सामान्य लक्षण अलौकिक संबंध इंद्रियका होनेतें व्यवहित अव्यवहित वस्तुका इंद्रियजन्य अलौकिक साक्षात्कार होवै है.

औ ज्ञानलक्षण संबंधका यह उदाहरणसहित स्वरूप है:—जहां इंद्रिययोग्य पदार्थमें इंद्रियका संबंध होवे औ इंद्रियसंबंध कालमें तिस इन्द्रियके अयोग्य पदार्थका स्मृतिज्ञान होवै तहां इन्द्रियसंबंधी पदार्थका औ स्मृतिगोचर पदार्थका एक ज्ञान होवै है. तहां जिस पदार्थकी स्मृति होवै तिस अंशमें वह ज्ञान अलौकिक है; जिस अंशका इंद्रियसंबंधजन्य है तिस अंशमें लौकिक है. जैसें चंदनमें नेत्रइंद्रियका संयोग होवे तिस कालमें सुगंध धर्मकी स्मृति होवै तब नेत्रइंद्रियजन्य "सुगंधि चंदनम्" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है तहां चंदनत्वविशिष्ट चंदन तौ नेत्रके योग्य है, औ चंदनका धर्म यद्यपि सुगंध है तामें नेत्रसंयुक्त समवायसंबंधभी है, तथापि नेत्रके योग्य सुगंध नहीं घ्राणके योग्य सुगंध है, यातें नेत्रसंयुक्तसमवायसंबंधसें सुगंध धर्मका चाक्षुषसाक्षात्कार होवै नहीं; किंतु नेत्रसंयोगतें चंदनव्यक्तिका औ नेत्रसंयुक्त समवायतें चंदनत्वका चाक्षुष ज्ञान होवैहै. चंदनके सुगंधगुणतें नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध विद्यमानभी अकिंचित्कर है, तथापि नेत्रके संयोग होतेंही "सुगंधि चंदनम्" इसरीतिका चंदनगोचर चाक्षुषज्ञान अनुभवसिद्ध है; यातें चंदनवृत्ति सुगंध गुणसें नेत्रका संबंध कोई साक्षात्कारका हेतु मानना चाहिये. तहां और तौ कोई संबंध नेत्रका सुगंधगुणमें है नहीं,

नेत्रसंयुक्तसमवाय है सो गंधज्ञानका जनक नहीं. औ जाकूं चंदनकी सुगंधता घ्राणसैं अनुभूत होवै ताकूंही चंदनका नेत्रसैं "सुगंधि चंदनम्" ऐसा ज्ञान होवै है. जाकूं चंदनकी सुगंधवत्ता घ्राणसैं अनुभूत नहीं होवै. ताकूं चंदनसैं नेत्रका संयोग हुये "सुगंधि चंदनम्" ऐसा ज्ञान होवै नहीं. इस रीतिसैं पूर्व अनुभवजन्यसुगंधके संस्कारका "सुगंधि चंदनम्" या प्रत्यक्षतैं अन्वयव्यतिरेक है, यातें "सुगंधि चंदनम्" या चाक्षुषज्ञानका सुगंधानुभव-जन्यसंस्कार वा सुगंध स्मृति हेतु है. जो सुगन्धसंस्कारकूं अथवा स्मृतिकूं सुगंधप्रत्यक्षकी स्वतंत्रकारणता कहैं तौ सुगंधअंशमैं वह ज्ञान चाक्षुष नहीं होवैगा. औ "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान सुगंध अंशमैंभी चंदनचंदनत्वकी नाईं चाक्षुषही अनुभवसिद्ध है, यातें ता ज्ञानके हेतु संस्कारकूं वा स्मृतिकूं नेत्रका संबंध मानना चाहिये. जो नेत्रका संबंध मानैं तौ सुगंधज्ञानभी संस्कार वा स्मृतिरूप नेत्रके संबंधजन्य है. यातैं चाक्षुप है, परंतु संस्कार वा स्मृतिनेत्रनिरूपित होवै तौ नेत्रका संबंध होवै. जैसें घटनिरूपितसंयोग घटका संबंध कहिये है, पटनिरूपितसंयोग पटका संबंध कहियेहै. इसरीतिसैं सुगंधगो-चरस्मृति औ संस्कारभी नेत्रनिरूपित होवै तौ नेत्रका संबंध संभवै अन्यथा नेत्रका संबंध सुगन्धकी स्मृतिकूं वा सुगंधके संस्कारकूं कहना संभवै नहीं; यातैं इसरीतिसैं नेत्रनिरूपित हैं. जब चंदनका साक्षात्कार होवै तब मन आत्माका संबंध होयकै मन औ नेत्रका संबंध होवैहै. आत्मसंयुक्त मनःसं-युक्त नेत्रका चंदनसैं संयोग होवैहै; इसरीतिसैं मनआत्माका संयोग औ मन-नेत्रका संयोग चंदनसाक्षात्कारका हेतु है, जिसकालमैं आत्मसंयुक्त मनका नेत्रसैं संयोग होवै तिसकालमैं सुगन्धकी स्मृति अथवा सुगंधके संस्कार आत्मामैं समवायसंबंधसैं हैं, तिनका विषय सुगंध है, यातें स्वसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान अथवा स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत संस्कार चंदनके सुगंधमैं हैं, काहेतें ? स्वशब्दसैं नेत्रका ग्रहण है तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला मन है. तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा है, तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधसैं वृत्तिका सुगंधकी स्मृति है, औ सुगं-

धका संस्कारभी समवायसंबंधसैं आत्मवृत्ति है. यातैं नेत्रसंयुक्तमनःसं-युक्तात्मसमवेत स्मृतिज्ञान औ नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत संस्कार ये दोनूं नेत्रनिरूपित हैं, नेत्रघटितस्वरूप यह परंपरा है, यातैं नेत्रका संबंध है. इस परंपरा सम्बन्धका प्रतियोगी नेत्र है औ अनुयोगी सुगंध है. जामें सम्बन्ध रहै सो सम्बन्धका **अनुयोगी** कहिये है. स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप जो उक्तपरंपरासैं नेत्रका सम्बन्ध ताका विषय सुगंध है, यातैं उक्त सम्बन्धका सुगंध **अनुयोगी** है. ज्ञानकी अधिकरणता विषयमैं अनुभवसिद्ध है, यातैं आत्माकी नाईं विषयभी ज्ञानका अधिकरण औ **अनुयोगी** कहिये है; जैसें "घटे ज्ञानम्" यह व्यवहार होवैहै तहां "घटवृत्ति ज्ञानम्" यह उक्तवाक्यका अर्थ है. उसरीतिसैं विषयभी आत्माकी नाईं ज्ञानका आधार होनेतैं अनुयोगी है, परंतु समवायसंबंधसैं ज्ञानका आधार आत्मा है. औ विषयतासंबंधसैं ज्ञानका आधार सुगन्धादिक विषय हैं. जो ज्ञानका आधार होवै सोई संस्कार का आधार होवै है. काहेतैं ? पूर्व अनुभवतैं संस्कार उपजै है औ अनु-भवके समान विषयवाले उत्तरस्मृति आदिकनकूं उपजावैहै, यातैं पूर्वअनु-भव संस्कार स्मृति इन तीनूंका आश्रय विषय समान होवैहै, यातैं सुगन्ध गोचरसंस्कारभी विषयतासंबन्धसैं सुगंधमैं रहैहै; यातैं नेत्रप्रतियोगिकसंस्का-रका अनुयोगी सुगन्ध है. इसरीतिसैं स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप सम्बन्ध नेत्रका सुगंधसैं है औ संयोगसंबंध चंदनव्यक्तिमैं है, संयुक्तसमवाय चंदनत्वसैं है, यातैं तीनूंकूं विषय करनेवाला "सुगंधि चंदनम्" यह चाक्षुषसाक्षा-त्कार होवै है. सुगंधवाला चंदन है यह वाक्यका अर्थ है. नेत्रसैं सुगन्धचंद-नत्व चंदनका साक्षात्कार होवै तहां चंदनत्वमैं तौ लौकिक सम्बन्ध है. संयोगादिक षट्सम्बन्धनकूं **लौकिकसंबंध** कहैं हैं. औ स्मृति औ संस्कार लौकिक सम्बन्धसैं भिन्न होनेतैं **अलौकिक** हैं जहां चंदनसैं नेत्रके सम्बन्ध कालमैं सुगंधस्मृति अनुभवसिद्ध होवै तहां स्मृतिरूप सम्बन्ध है. औ स्मृतिका अनुभव नहीं होवै तौ संस्कारही सम्बंध है. इस अलौकिक सम्बंधकूं **ज्ञानलक्षणसंबन्ध** कहैहैं. स्मृतिमैं तौ ज्ञानशब्दका प्रयोग प्रसिद्ध

ही है, और संस्कारभी ज्ञानजन्य होवै है, उत्तर ज्ञानका जनक होवै है, यातैं ज्ञानका सम्बन्धी होनेतें ज्ञान कहें हैं.

तैसें योगीकूं इंद्रियसम्बंधीके साक्षात्कारकी नाई इंद्रियसें व्यवहितकाभी साक्षात्कार होवै है; तहां योगाभ्यासतैं इंद्रियमैं विलक्षण सामर्थ्य होवै है, यातैं योगज धर्मही इंद्रियका सम्बन्ध कहिये है, परंतु यामैं मतभेद है.

जगदीशभट्टाचार्यका तौ यह मत है:-जिस इंद्रियके योग्य जो पदार्थ होवै है, तिस इंद्रियतें ता पदार्थका साक्षात्कार होवै है. योगीकूं व्यवहितका औ भूतभावीकाभी इंद्रियजन्यसाक्षात्कार होवै है. योगीसें इतरकूं वर्तमान इंद्रिय सम्बंधीकाही साक्षात्कार होवै है औ जा इंद्रियके जो पदार्थ योग्य नहीं तिस इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कार योगीकूंभी होवै नहीं. जैसें रूपका ज्ञान नेत्रसेंही होवै है रसनादिकनतैं होवै नहीं.

औ कितने ग्रंथकारनका यह मत है:-योगकी अद्भुत महिमा है. अभ्यासके उत्कर्ष अपकर्षतैं योगजधर्म विलक्षण होवै है. किसीमैं तौ अभ्यासके उत्कर्षतैं ऐसा धर्म होवै है. एक इंद्रियतैं योग्य अयोग्य सकलका ज्ञान होवै है, किसीमैं अभ्यासके अपकर्षतैं योग्यविषयके ज्ञापकीही सामर्थ्य होवै है. सर्व प्रकारमैं योगज धर्मसें व्यवहितका ज्ञान होवै है, यातैं योगज धर्मभी अलौकिक संबंध है.

न्यायमतमैं अलौकिक संबन्धसैं देशांतरस्थरजतत्वका शुक्तिमैं प्रत्यक्षभान औ ता भानसैं सुगंधिचन्दनके भानतैं विलक्षणता ॥ ६१ ॥

इस रीतिसैं इंद्रियके संयोगादिक संबंधविना अलौकिकसंबन्धतैंभी इंद्रियजन्य साक्षात्कार होनेतें देशांतरस्थरजतवृत्ति रजतत्वकाभी शुक्तिमैं अलौकिक संबंधसैं चाक्षुष साक्षात्कार संभवै है. जैसैं सुगंधस्मृति औ चंदनसैं नेत्रसंयोग हुयां "सुगंधि चन्दनम्" इसरीतिसैं योग्यअयोग्यानुभवगोचर चाक्षुषज्ञान होवै है. इसरीतिसैं दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संयोग

होवैहै. शुक्तिव्यक्ति तौ नेत्रके योग्य है; औ रजतत्वजाति यद्यपि प्रत्यक्षयोग्य है तथापि जातिका आश्रय व्यक्ति जहां प्रत्यक्षगोचर होवै तहां जाति, योग्य है. औ जहां जातिका आश्रय प्रत्यक्षयोग्य नहीं तहां जाति अयोग्य है. या प्रसंगमैं रजतत्वका आश्रय रजतव्यक्ति नेत्रमैं व्यवहित है. यातैं नेत्रयोग्य नहीं. जैसैं सुगंध अंशमैं चन्दनज्ञान अलौकिक है; तैसैं "इदं रजतम्" यह ज्ञानभी रजतत्व अंशमैं अलौकिक है, परंतु इतना भेद है:— सुगंधि चन्दनम्" या ज्ञानमैं तौ चन्दनवृत्ति सुगन्ध चन्दनमैं भासै है. औ "इदं रजतम्" या ज्ञानमैं इदंपदार्थमैं अवृत्तिरजतत्व इदंपदार्थमैं भासैहै.तैसैं औरभी विलक्षणता है. "सुगंधि चन्दनम्" या ज्ञानमैं नेत्रके अयोग्य सुगन्ध भासै है, औ चन्दनकी सकलसामान्य विशेषता भासै है और "इदं रजतम्" या ज्ञानमैं व्यवहित होनेतैं नेत्रके अयोग्य रजतत्वका भास तौ सुगन्धभासके समान है, परंतु चन्दनके विशेषरूप चन्दनत्वके भासकी-नाईं शुक्तिका विशेषरूप शुक्तित्वका भास होवै नहीं; औ मलयाचलोद्भूत काष्ठविशेषरूप चन्दनके अवयव भासैं हैं. औ शुक्तिके त्रिकोणतादिविशिष्ट अवयव भासैं नहीं. इसरीतिसैं दोनूं ज्ञानोंका भेद है. उक्त भेदकूंनहीं क्रमतैं यथार्थत्व अयथार्थत्व है. यद्यपि इंद्रियसंयोग औ अयोग्य धर्मकी स्मृति-रूप सामग्री दोनूं ज्ञानोंमैं सामान्य है औ सामग्रीभेद विना उक्तप्रका-रकी विलक्षणता संभवै नहीं, तथापि सामग्रीमैं दोषराहित्य औ दोषसा-हित्य विलक्षणता है, यातैं उक्त विलक्षणता संभवै है. जैसैं "सुरभि चन्दनम्" या स्थानमैं ज्ञानलक्षणसंबंधकी निरूपकता नेत्रकूं है. तैसैं "इदं रजतम्" या स्थानमैंभी नेत्रसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञानसंबंध है. ताका निरूपक नेत्र है औ विषय रजतत्व है सो स्मृतिज्ञानका अनु-योगी है. जा विषयका ज्ञान होवै सो विषयतासंबंधसैं ज्ञानका अनुयोगी होवै है नेत्रसैं संयोगवाला होनेतैं नेत्रसंयुक्त मन है, तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं समवेतज्ञान रजतत्वकी स्मृति है, सो विष-

यतासम्बन्धसैं रजतत्वमें है. इसरीतिसैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञानरूप नेत्रका सम्बन्ध रजतत्वमैं होनेतैं नेत्रसम्बद्धरजतत्वका भ्रमज्ञान प्रत्यक्ष है.

अथवा ज्ञानरूपसम्बन्ध नहीं किंतु ज्ञानका विषयतासम्बन्ध है, यातैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान विषयतासम्बन्ध अलौकिक सम्बंध है, "सुगन्धि चन्दनम्" या स्थानमैं संबंधरूप उक्त विषयता सुगन्धमैं है, औ "इदं रजतम्" या स्थानमैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान रजतत्वस्मृति है; ताकी विषयता रजतत्वमैं है, इसरीतिसैं विषयता अंशसम्बन्धमैं मिलावनेतैं संबंधके अनुयोगी सुगंधरजतत्व स्पष्टही है. यातैं अन्यथाख्यातिवाद संभवै है. नेत्रके संबंधविना रजतत्वका ज्ञान संभवै नहीं. यह दोष अन्यथाख्यातिवादमें नहीं. इसरीतिसैं रजतत्वरूप विशेषणतैं नेत्रका अलौकिक संबंध औ शुक्तिरूप विशेष्यतैं लौकिकसबंध मानिकै अन्यथाख्यातिका संभव कहैं है.

अनिर्वचनीयख्यातिमैं न्यायउक्त दोष ॥ ६२ ॥

औ अनिर्वचनीय ख्यातिमैं यह दोष कहैं हैं:—अन्यथाख्यातिवादीकूं भ्रमज्ञानकी कारणता दोषमैं माननी होवे है औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं रजतादिक अनिर्वचनीय विषयकी कारणता और तिसके ज्ञानकी कारणता माननी होवैहै, यातैं अन्यथाख्यातिवादमैं लाघव है, औ अनिर्वचनीय ख्यातिवादीकूं अन्यथाख्याति विना निर्वाह होवै नहीं. कहूं अन्यथाख्याति मानैं हैं, कहूं अनिर्वचनीयख्याति मानैंहैं, यातैं सारै अन्यथाख्यातिही माननी योग्य है. औ सारै अनिर्वचनीयख्याति मानैं तौ अद्वैतवादीकूं स्वमतके ग्रंथनसैं विरोध होवैगा. औ केवल अनिर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं. जहां अनिर्वचनीयख्याति नहीं संभवै तहां अद्वैतमतके ग्रंथनमैं अन्यथाख्यातिही लिखी है. जैसैं अनात्मपदार्थनमैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्वप्रतीति होवै है तहां अनिर्वचनीय अबाध्यत्वकी अनात्मपदार्थनमैं उत्पत्ति कहैं तौ अज-

न्मका जन्म हुया, नित्यका ध्वंस हुया इनवाक्यनतैं समान यह कथन विरुद्ध है; यातैं आत्मसत्यताकी अनात्ममैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्यातिही संभवै है. औ ऐसे स्थानमैं अन्यथाख्यातिही अद्वैतग्रंथनमैं लिखी है औ परोक्षभ्रमस्थलमैंभी अद्वैतग्रंथनमैं अन्यथाख्यातिही कही है. यह तिनका तात्पर्य है:—प्रत्यक्षज्ञान तौ नियमतैं वर्तमानगोचर होवै है, औ जा विषयका प्रमातामैं संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. व्यवहित रजतके रजतत्वका प्रमातासैं संबंध संभवै नहीं; यातैं पुरोवर्तिदेशमैं रजतकी सत्ता अवश्य चाहिये. औ परोक्ष ज्ञान तौ अतीतका औ भविष्यतकाभी होवैहै, यातैं परोक्षज्ञानके विषयका प्रमातासैं संबंध अपेक्षित नहीं औ संभवैभी नहीं. काहेतैं ? जहां अनुमान प्रमाणतैं वा शब्दप्रमाणतैं देशांतरस्थ कालांतरस्थका यथार्थज्ञान होवै तहांभी भिन्नदेशस्थ भिन्नकालस्थ प्रमातामैं संबंध होवै नहीं. भ्रमरूप परोक्षज्ञानमैं तौ प्रमातासैं विषयका संबंध सर्वथा असंभावित है यातैं परोक्षभ्रमस्थलमैं अनिर्वचनीयख्याति नहीं किंतु विषयशून्यदेशमैं विषयकी प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति है. इसरीतिमैं बहुत स्थलमैं अन्यथाख्याति मानिके अपरोक्षभ्रममैं जहां व्यवहित आरोपित होवै तिसी स्थानमैं अनिर्वचनीयख्याति मानी है. औ जहां पुरोवर्तिदेशमैं अधिष्ठानसंबंधी आरोपित होवै तहांभी अन्यथाख्यातिही है. काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर वृत्ति होवै तब आरोपितवस्तुका प्रमातासैं संबंध अन्यथाख्याति मानेंभी संभवै है. अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति निष्प्रयोजन है, इसरीतिसैं अद्वैतवादीके मतमैं एक अनिर्वचनीयख्यातिमैं निर्वाह होवै नहीं. औ अन्यथाख्याति मानें अनिर्वचनीयख्यातिका मानना होवै नहीं, जहां व्यवहित आरोपित होवै औ प्रत्यक्षभ्रम होवै तिस स्थानमैं अद्वैतवादीने अन्यथाख्यातिका असंभव कह्या है तहांभी उक्तरीतिसैं नेत्रका ज्ञानलक्षणसंबंध संभवै है, यातैं प्रत्यक्षभ्रमका संभव होनेतैं अनिर्वचनीयख्यातिका अंगीकार प्रयोजनशून्य गौरवदूषित है.

सामान्यलक्षणादि अलौकिकसंबंधकूं प्रत्यक्षज्ञानहेतुताका असंभवकरिकै भ्रमज्ञानकी इंद्रियअजन्यता ॥ ५३ ॥

ऊपर कहेहुए अनंत निरर्थक प्रलाप नैयायिक विवेकके अभावतैं करै हैं काहेतैं ? जो सामान्यलक्षणादिक संबंध प्रत्यक्ष ज्ञानके हेतु कहे सो सकलके अनुभवसैं विरुद्ध हैं. जाकूं एक घटका नेत्रजन्यज्ञान होवै ताकूं पूछैं—कितने घटनका चाक्षुपसाक्षात्कार तेरेकूं हुयाहै ? तब प्रश्नकर्ताकूं द्रष्टा यह कहै है:— मेरे नेत्रके अभिमुख एक घट है, कितने घटनका साक्षात्कार हुया यह तेरा प्रश्न अविवेकसैं है. इसरीतिसैं घटका द्रष्टा प्रश्नका उपालंभ करै है. नैयायिकरीतिसैं लौकिक अलौकिक भेदसैं सकल घटके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं उपालंभ संभवै नहीं ऐसा उत्तर कह्या चाहिये. एक घटका लौकिक चाक्षुष हुया है,अलौकिक चाक्षुष साक्षात्कार सर्वथा हुया है, औ व्यवहित घटका साक्षात्कार सुनि सर्वके हृदयमैं विस्मय होवै है, यातैं सामान्यलक्षण संबंधसैं साक्षात्कार सर्वलोक विरुद्ध है औ सर्वतंत्रविरुद्ध है, परंतु एक घटका साक्षात्कार होवै तब घटांतरकी सजातीयतासैं स्मृत्यादिक संभवैं हैं; तैसैं "सुरभि चंदनम्" इसरीतिसैं चंदनमैं सुगंधधर्मावगाही चाक्षुपसाक्षात्कार ज्ञानरूप संबंधतैं नेत्रजन्य होवै है. यह कथनभी नैयायिकका विरुद्ध है. काहेतैं ? जापुरुषकूं चंदनका साक्षात्कार होवै ताकूं यह पूछै:-"किं दृष्टम्" तब द्रष्टा यद्यपि ऐसैं कहैहै "सुगंधि चंदनं दृष्टम्" तथापि फेरि विवेचनसैं पूछै:—इसचंदनमैं सुगंध है यह ज्ञान तेरेकूं किसरीतिसैं हुया ? तब द्रष्टा यह कहैहै:—श्वेतचंदन है, यातैं सुगंध यामैं अवश्य होवैगा. रक्तचंदनमैं सुगंध नहींहोवैहै. इसरीतिके श्वेतमैं गंध होवै है; इसरीतिसैं सुगंध ज्ञानमैं अनुमानजन्यताके सूचक वचन कहै है. औ नेत्रसैं सुगन्धका साक्षात्कार मेरेकूं हुया है ऐसा उत्तर कहै नहीं, यातैं सुगन्धका ज्ञान नेत्रजन्य प्रत्यक्षरूप नहीं; किंतु सुगंधअंशमैं वह ज्ञान अनुमिति है चन्दन अंशमैं प्रत्यक्ष है. औ "सुगंधि चंदनम्" इस वाक्यप्रयोगवाले चंदनद्रष्टाकूं पूछै:—या चंदनमैं अल्प गंध है अथवा उत्कट गंध है ? तब ऐसा

उत्तर कहै हैः—नेत्रमें श्वेतचंदन प्रतीत होवै है यातें गंध सामान्यकी अनुमिति होवै है. गंधका प्रत्यक्ष होवै तौ गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै. यातें गंधके उत्कर्ष अपकर्ष तौ नासिकासें आघ्रात करें तब ज्ञान होवै, नेत्रसें तौ श्वेतचंदनका ज्ञान होवै है; तासें गन्धसामान्यका ज्ञान होवै है ऐसा उत्तर कहनेसेंभी सुगंधके ज्ञानकी अनुमिति होवै है, प्रत्यक्ष होवै नहीं. जा इंद्रियसें रूप-रस-गंध स्पर्श-शब्दका ज्ञान होवै ता इंद्रियसें रूपादिकनके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै है. जो नेत्रेंद्रियसें गंधका ज्ञान होवै तौ गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान हुया चाहिये; यातें चंदनमें सुगंधका ज्ञान अनुमितिरूप है प्रत्यक्ष नहीं. अनुमितिज्ञानमें तौ उत्कर्ष अपकर्षकी अप्रतीति अनुभवसिद्ध है. धूमसें वह्निका ज्ञान होवै तहां वह्निके अल्पत्वमहत्वका ज्ञान होवै नहीं. औ जो नैयायिक ऐसें कहै लौकिकसंबंधजन्यप्रत्यक्षमें विषयके उत्कर्ष अपकर्ष भासें हैं. अलौकिकसें विषयका सामान्यधर्म भासै है विशेष धर्म भासै नहीं, सोभी असंगत है. काहेतें ? सामान्य धर्ममें तौ परोक्ष ज्ञानसेंभी विषयका प्रकाश संभवै है. अप्रसिद्धसंबंधमें अप्रसिद्ध प्रत्यक्षकल्पना निष्प्रयोजन है. औ विशेषरूपतें सुगंधका प्रकाश होवै नहीं, सामान्यरूपतें सुगन्धका प्रकाश है. ऐसा सुगंधका ज्ञान नेत्रसें होवै है. इस नैयायिक वचनतें यह सिद्ध होवै है, नेत्रमें श्वेतचंदनका साक्षात्कार होते ही सुगंधका सामान्य ज्ञान अनुमितिरूप होवै है. ता अनुमितिका प्रयोजक चंदनकी श्वेतताज्ञानद्वारा नेत्र है. इसरीतिसें सुगन्धका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं अनुमिति है. औ जो नैयायिक ऐसें कहैः—यद्यपि नेत्रजन्य सुगन्धका ज्ञान. उत्कर्ष अपकर्षकूं प्रकाशै नहीं, यातें अनुमितिके समान है तथापि अनुमितिरूप संभवै नहीं. काहेतें ? "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान एक है दो नहीं; एक ही ज्ञानकूं सुगंधअंशमें अनुमितिता औ चंदनअंशमें प्रत्यक्षता कहै तौ अनुमितित्वप्रत्यक्षत्व विरोधी धर्मका समावेश होवैगा; यातें सर्व अंशमें प्रत्यक्ष है यह कथनभी संभवै नहीं. काहेतें ? तेरे

मतमैं एक ज्ञानमैं जैसैं लौकिकत्व अलौकिकत्व विरोधी धर्मका समावेश है, तैसैं अनुमितित्व प्रत्यक्षत्वका भी एक ज्ञानमैं समावेश संभवै है औ प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वका विरोध तौ न्यायशास्त्रके संस्कारवालेकूं प्रतीत होवैहै. औ लौकिकत्व अलौकिकत्व तौ परस्पराभावरूप है, यातैं तिनका विरोध सर्वकूं भासै है, प्रतियोगीअभावका परस्पर विरोध है. यह सकल लोकमैं प्रसिद्ध है, यातैं लोकप्रसिद्ध विरोधवाले धर्मनका समावेश नैयायिक मानैं हैं, यातैं विरोधी पदार्थनका समावेश नहीं, यह वाक्य निर्लज्जतामूलक है.

औ वेदांतमतमैं तौ अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सांश होनेतैं एक वृत्तिमैं अंशभेदतैं विरोधि धर्मनका समावेश संभवै है. न्यायमतमैं ज्ञानजन्यता है परंतु द्रव्य नहीं, यातैं सांश नहीं. निरंशज्ञानमै विरोधी धर्मनका समावेश बाधित है, यातैं "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान सुगन्धअंशमैं अनुमिति है औ चन्दन अंशमैं प्रत्यक्ष है. अथवा ज्ञानका उपादान अन्तःकरण सांश है, यातैं अन्तःकरणके परिणाम दो ज्ञान हैं. "सुगंधि" यह ज्ञान अनुमितिरूप है; "चन्दनम्" यह ज्ञान प्रत्यक्ष है दोनूं परिणाम एक कालमैं होवैं हैं, यातैं तिनका द्वित्व कदीभी भासै नहीं. इसरीतिमैं "सुरभि चन्दनम्" यह ज्ञान सुगन्धअंशमैं चाक्षुष नहीं औ या ज्ञानकूं किसीरीतिसैं अलौकिकसंबंधजन्यता कहैंभी तथापि "इदं रजतम्" इत्यादिक भ्रम तौ उक्तरीतिसैं संभवै नहीं. काहेतैं ? शुक्तिमैं नेत्रका सम्बंध औ रजतत्वस्मृतिकूं "इदं रजतम्" या ज्ञानकी कारणता मानैं ताकूं यह पूछै हैं. शुक्तिसैं नेत्रका सम्बंध होयकै शुक्तिरजतसाधारण धर्म चाकचिक्यविशिष्टशुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान होयकै रजतकी स्मृति होवैहै, तिसतैं उत्तर भ्रम होवैहै अथवा शुक्तिके सामान्यज्ञानतैं पूर्वही शुक्तिसैं नेत्रका सम्बंध होवै तिसी कालमैं रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति होयकै "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है ? जो प्रथम पक्ष कहै तौ सम्भवै नहीं. काहेतैं? प्रथम तौ शुक्तिका

सामान्यज्ञान, तिसतैं उत्तर रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति, तिसतैं उत्तर रजत-भ्रम, इसरीतिसैं तीनि ज्ञानोंकी धारा अनुभवसैं बाधित है. "इदं रजतम्" यह एक ही ज्ञान सर्वकूं प्रतीत होवै है.

औ जो ऐसैं कहैः—प्रथम शुक्तिका सामान्यज्ञान हुयेविना शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमैं रजतकी स्मृति होयके "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है सोभी संभवै नहीं; काहेतैं ? सकल ज्ञान चेतनरूप स्वप्रकाश है. वृत्तिरूप ज्ञान साक्षीभास्य है. कोई ज्ञान किसी कालमैं अज्ञात होवै नहीं. यह वार्त्ता आगे प्रतिपादन करैंगे; यातैं शुक्तिमैं नेत्रके संयोगकालमैं रजतकी स्मृति होवै तौ स्मृतिका प्रकाश हुया चाहिये. स्मृतिमैं चेतनभाग तौ स्वयंप्रकाश है औ वृत्तिभागका साक्षीअधीन सदा प्रकाश होवै है; यातैं स्मृतिका अनुभव हुया चाहिये. औ नैयायिककूं शपथपूर्वक यह पूछैं, शुक्तिमैं "इदं रजतम्" या भ्रमतैं पूर्वकालमैं रजतस्मृतिका अनुभव तेरेकूं होवै है ? तब यथार्थवक्ता होवै तौ स्मृतिके अनुभवका अभावही कहै है, यातैं शुक्तिमैं नेत्रसंयोगकालमैं भ्रमके पूर्व रजतकी स्मृति संभवै नहीं.

औ जो ऐसैं कहैः—रजतानुभवजन्य रजतगोचरसंस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं रजतभ्रम है, संस्कारगुणप्रत्यक्षयोग्य नहीं, किंतु अनुमेय है; यातैं उक्त दोष नहीं, तथापि ताकूं यह पूछैं हैंः—उद्बुद्धसंस्कार भ्रमके जनक हैं अथवा उद्बुद्ध औ अनुद्बुद्ध दोनूं संस्कार भ्रमके जनक हैं? जो दोनूंकूं जनकता कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं? अनुद्बुद्ध संस्कारनसैं स्मृत्यादिक ज्ञान कदीभी होवै नहीं. जो अनुद्बुद्धसैंभी स्मृति होवै तौ अनुद्बुद्धसंस्कारसैं सर्वदा स्मृति हुई चाहिये; यातैं उद्बुद्धसंस्कारसैं स्मृति होवै है तैसैं भ्रमज्ञानभी उद्बुद्धसंस्कारसैं ही संभवै है; यातैं उद्बुद्ध संस्कार भ्रमके जनक हैं यह कहै सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? संस्कारके उद्बोधक सदृशदर्शनादिक हैं; यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगतैं चाकचिक्यविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुये पाछै रजतगोचर संस्कारका उद्बोध संभवै है. नेत्रशु-

क्तिके संयोगकालमैं रजतगोचरसंस्कारका उद्बोध संभवै नहीं, यातैं यह मानना होवैगा. प्रथमक्षणमैं नेत्रसंयोग द्वितीय क्षणमैं चाकचिक्यधर्मविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान, तिसतैं उत्तरक्षणमैं संस्कारका उद्बोध, तिसतैं उत्तरक्षणमैं रजतभ्रम संभवै है. इसरीतिसैं नेत्रसंयोगतैं चतुर्थ क्षणमैं भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई. सो अनुभवसैं बाधित है. नेत्रसंयोगसैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं चाक्षुष ज्ञान होवैहै. तैसाही अनुभव होवैहै, यातैं उक्तरीति असंगत है.

औ उक्तरीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञान सिद्ध होवैं हैं. एक तौ संस्कारका उद्बोधक सामान्यज्ञान औ दूसरा संस्कारजन्य भ्रमज्ञान. इसरीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञानभी अनुभवविरुद्ध हैं. नेत्रसंयोग होतेही "इदं रजतम्" यह एकही ज्ञान अनुभवसिद्ध है, यातैं रजतानुभवजन्यसंस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है यह कहनाभी संभवै नहीं.

औ "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानकूं अलौकिकप्रत्यक्ष मानैं तौभी "इदं रजतम्" यह ज्ञान तौ ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधजन्य संभवै नहीं. काहेतैं? "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान हुयें सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका संदेह होवैहै; यातैं सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका निश्चयरूपप्राकट्य अलौकिक ज्ञानतैं होवै नहीं, यह मानना चाहिये. जो अलौकिक ज्ञानतैंभी विषयका प्राकट्य होवै तौ सुगंधके अपकर्षादिकनका संदेह संभवै नहीं. औ "इदं रजतम्" या भ्रमतैं औ सत्य रजतमैं "इदं रजतम्" या प्रमातैं रजतकी प्रकटता सम होवैहै जो भ्रम स्थलमैं रजतकी प्रगटता न होवै तौ रजतके परिमाणादिकनका संदेह हुया चाहिये? औ परिमाणादिकनका संदेह होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानवैं रजतकी प्रकटता होवै है. औ ज्ञानलक्षण संबंधजन्य ज्ञानतैं विषयकी प्रकटता होवै नहीं, यातैं "इदं रजतम्" या भ्रमज्ञानका हेतु ज्ञानलक्षणसंबंध नहीं.

औ विचार करैं तौ ज्ञानरूप संबंध कहूंभी संभवै नहीं. काहेतैं? ज्ञान-

लक्षणसंबंधसैं अलौकिक प्रत्यक्ष होवैहै; या पक्षका यह निष्कर्ष है, जहां एक पदार्थकी अनुभवजन्य स्मृति होवै अथवा अनुभवजन्य संस्कार होवै औ परपदार्थमें इंद्रियका संबंध होवै तहां इंद्रियसंबंधीमें स्मृतिगोचर पदार्थकी अथवा संस्कारगोचर पदार्थकी प्रतीति होवै है. इंद्रियसंबंधी पदार्थ तौ विशेष्यरूपतैं प्रतीत होवैहै. औ स्मृतिगोचरपदार्थ विशेषणरूपतैं प्रतीत होवैहै जैसैं "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानमें नेत्ररूप इंद्रियसंबंधी चंदन विशेष्य है और स्मृतिगोचर सुगंध विशेषण है. तैसैं "इदं रजतम्" या भ्रमज्ञानमभी इंद्रियसंबंधी शुक्ति विशेष्य है औ स्मृतिका गोचर अथवा संस्कारका गोचर रजतत्व विशेषण है. विशेषण विशेष्य दोनुंका ज्ञान प्रत्यक्ष है. या पक्षका अंगीकार होवै तौ अनुमानप्रमाणका उच्छेद होवैगा. काहेतें ? "पर्वतो वह्निमान्"ऐसा अनुमितिज्ञान अनुमानप्रमाजतें होवै है, हेतुमें साध्यकी व्याप्तिके स्मरणतें अथवा साध्यकी व्याप्तिके उद्बुद्ध संस्कारनतें अनुमितिज्ञान होवै है, यह अर्थ अनुमाननिरूपणमें निर्णीत है. साध्यकी व्याप्तिकी स्मृति होवै तब व्याप्तिनिरूपक साध्यकीभी स्मृति होवै है, यातें पर्वतसैं नेत्रका संयोग औ वह्निकी स्मृतिमें "पर्वतो वह्निमान्" ऐसैं प्रत्यक्षज्ञानका संभव होतें पक्षमैं साध्यनिश्चयरूप अनुमितिज्ञानका जनक अनुमानप्रमाणका अंगीकार निष्फल है. औ गौतम कणाद कपिलादिक सर्वज्ञकृत सूत्रनमैं अनुमानप्रमाण प्रत्यक्षसैं भिन्न कह्या है. जो अनुमानप्रमाण निष्प्रयोजन होता तौ सूत्रनमैं नहीं कहते; यातें अनुमानका प्रयोजन साधक ज्ञानरूप संबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्ष अलीक है. औ जो अन्यथाख्यातिवादी ऐसैं कहै. प्रत्यक्षज्ञानकी विषयतासैं अनुमितिज्ञानकी विषयता विलक्षण है, इसीवास्तै प्रत्यक्षके विषयमैं परिमाणादिकनका संदेह नहीं होवै है औ अनुमितिके विषयमैं परिमाणादिकनका संदेह होवैहै इसरीतिसैं परोक्षता अपरोक्षतारूप विषयताका भेद अनुमितिज्ञान औ प्रत्यक्षज्ञानके भेदसैं होवै है; यातैं परोक्षतारूप विषयताका

संपादक प्रत्यक्षज्ञान नहीं; किंतु अनुमितिज्ञान है. ताका हेतु अनुमानप्रमाण है, यह कथनभी संभवै नहीं. काहेतैं? लौकिकप्रत्यक्षकी विषयता तौ अनुमितिसैं विलक्षण है, परंतु "सुगंधि चंदनम्" इत्यादिक ज्ञान सुगंधादिक अंशमैं अलौकिक है, तहां सुगंधका ज्ञान अनुमितिके समान है. जैसैं अनुमिति ज्ञानके विषयमैं उत्कर्षादिक अनिर्णीत होवैं हैं तैसैं सुगंधके उत्कर्षादिकभी अनिर्णीत हैं, यातैं अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयताका अनुमितिकी विषयतासैं भेद नहीं. औ भ्रमरूप अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयता रजतादिकनमैं है ताका तौ यद्यपि अनुमितिकी विषयतासैं भेद अनुभवसिद्ध है, इसीवास्तै रजतकी अल्पतादिकनका संदेह होवै नहीं, तथापि ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्षप्रमाकी विषयतासैं भेद नहीं. जैसैं अनुमितिके विषयमैं अप्राकट्य है तैसैं अलौकिक प्रत्यक्षप्रमाके विषयगंधमैं अप्राकट्य है. यातैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं पर्वतमैं वह्निका अलौकिक प्रत्यक्षसैं प्रकाश संभवै है. अनुमितिज्ञान वास्तै अनुमानप्रमाण व्यर्थ होवैगा, औ अनुमानप्रमाण सर्वज्ञवचनसिद्ध है; यातैं अनुमानकी व्यर्थतासंपादक अलौकिकप्रत्यक्ष असिद्ध है.

औ जो यह कह्या. विलक्षणविषयताका संपादक अनुमितिज्ञान है, ताका हेतु अनुमानप्रमाण व्यर्थ नहीं; यह कथनही असंगत है. काहेतैं? जहां अनुमानप्रमाणतैं अनुमिति होवै तहां सारैं अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री है. जैसैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिसैं पूर्व धूमदर्शनव्याप्तिज्ञान तौ अनुमितिकी सामग्री है; औ पर्वतसैं नेत्रका संबंध औ वह्निकी स्मृति यह अलौकिकप्रत्यक्षकी सामग्री है. दोनूं ज्ञानोंकी दो सामग्री होतें पर्वतमैं वह्निका प्रत्यक्षरूपही ज्ञान होवैगा, अनुमितिज्ञान होवै नहीं; यातैं अनुमानप्रमाण व्यर्थ ही होवैहै. काहेतैं? यह न्यायशास्त्रका निर्णीत अर्थ है, जहां एकगोचर अनुमितिसामग्रीका औ अपरगोचर प्रत्यक्षसामग्रीका समावेश होवै तहां अनुमिति सामग्री प्रबलहै. जैसैं पर्वतसैं नेत्रसंयोग तौ

पर्वतके प्रत्यक्षकी सामग्रीका औ वह्निकी अनुमितिकी सामग्रीका समावेश हुयां वह्निकी अनुमिति होवैहै, पर्वतका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं. जहां धूमसैं औ वह्निसैं नेत्रका संयोग होवै औ धूममैं वह्निकी व्याप्तिका ज्ञान होवै तहां वह्निकी अनुमितिकी सामग्री है औ वह्निके प्रत्यक्षकी सामग्री है; यातैं समानगोचर उभयज्ञानकी सामग्री है; तहां प्रत्यक्षसामग्री प्रबल है; यातैं वह्निका प्रत्यक्षही ज्ञान होवैहै. वह्निकी अनुमिति होवै नहीं.औ पुरुषमैं " पुरुषो न वा" ऐसा संदेह होयके "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा प्रत्यक्षरूप परामर्शज्ञान औ पुरुषतैं नेत्रका संयोग होवै तहां परामर्श तौ पुरुषकी अनुमितिकी सामग्री है औ पुरुषके नेत्रसंयोग पुरुषके प्रत्यक्षकी सामग्री है. तहां पुरुषका प्रत्यक्षज्ञानही होवै है पुरुषकी अनुमिति होवै नहीं; यातैं एकविषयके दोनूं ज्ञानोंकी सामग्री होवै तिनमैं प्रत्यक्ष सामग्री प्रबल है; यातैं वह्निकी अनुमितिसामग्री होतैंभी अलौकिक संबंधरूप सामग्रीतैं वह्निका प्रत्यक्षज्ञानही होवैगा इस रीतिसैं ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधतैं प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति मानैं तौ अनुमान प्रमाण व्यर्थ है.

जो नैयायिक ऐसैं कहै:—यद्यपि भिन्न विषय होवै तहां प्रत्यक्षसामग्रीसैं अनुमितिसामग्री प्रबल है,औ समानविषय होवै तहां अनुमिति सामग्रीसैं प्रत्यक्ष सामग्री प्रबल है, तथापि समानविषय होनेसैंभी लौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री अनुमितिसामग्रीसैं प्रबल है.औ अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री तौ अनुमितिकी सामग्रीसैं सारे दुर्बल है, यातैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमिति सामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्ष सामग्रीका बाध होनेतैं अनुमानप्रमाण निष्फल नहीं यह कहनाभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? जहां स्थाणुमैं "स्थाणुर्न वा" ऐसा सन्देह होयकै "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा भ्रम होयकै "पुरुष एवायम्" ऐसा भ्रमरूप प्रत्यक्ष होवैहै, तहां नैयायिकवचनकी रीतिसैं अनुमिति हुई चाहिये, प्रत्यक्ष नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्तस्थलमैं स्थाणुमैं पुरुषत्वका प्रत्यक्ष

होनेतैं भ्रमप्रत्यक्ष है, औ भ्रमप्रत्यक्षकी तेरे मतमैं अलौकिक सामग्री है; यातैं अनुमिति सामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्रीकूं दुर्बल मानैं तौ उक्त स्थलमैं अनुमिति हुई चाहिये, औ जो उक्तस्थलमैं पुरुषका भ्रम अनुमिति रूप मानैं तौ उत्तरकालमैं "पुरुषं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय हूया चाहिये; यातैं दोनूं समानविषय होवैं तहां लौकिकप्रत्यक्षसामग्रीकी नाईं अलौकिकप्रत्यक्षसामग्रीभी प्रबल है; अनुमिति सामग्री दुर्बल है; यातैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं प्रत्यक्षकी उत्पत्ति मानैं तौ अनुमितिज्ञानकूं बाधिकै पर्वतादिकनमैं वह्नि आदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवैगा; यातैं अनुमान प्रमाण निष्फल होवैगा. इसकारणतैं जो अनुमानप्रमाण मानैं ताके मतमैं स्मृति ज्ञानसहित इंद्रियसंयोगतैं वा संस्कारसहित इंद्रियसंयोगतैं व्यवहित वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान संभवै नहीं; यातैं शुक्तिका रजतत्वरूपतैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं.

अनिर्वचनीयवादमैं न्यायोक्तदोषका उद्धार ॥ ६४ ॥

औ अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं जो दोष कह्या है सो कहते हैं. अनिर्वचनीयख्यातिके मतमैं विषयकी औ ज्ञानकी कारणता दोषमैं मानैं हैं. अन्यथाख्यातिवादमैं ज्ञानकी कारणता मानैं हैं विषयकी नहीं. यातैं अन्यथाख्यातिवादमैं लाघव है. औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्यातिभी माननी होवै है. अन्यथाख्यातिवादीकूं अनिर्वचनीयख्याति माननी होवै नहीं, यातैंभी लाघव है; यह कथनभी अविवेकमूलक है. काहेतें ? अन्यथाख्यातिवादीकूं श्रुतिस्मृतिकी आज्ञातैं स्वप्नमैं तौ अनिर्वचनीयख्याति अवश्य माननी चाहिये. वेदोक्त अर्थका पुरुषमतिकल्पित युक्तसमुदायसैं अन्यथा भावकल्पन आस्तिककूं योग्य नहीं औ शुक्तिरजतका तादात्म्य प्रतीत होवैहै. जैसैं इदंपदार्थमैं रजतत्वका समवाय प्रतीत होवै है तैसैं इदंपदार्थका औ रजतका तादात्म्य प्रतीत होवै है. इदंपदार्थ शुक्ति है, शुक्तिरजतका तादात्म्य अन्यस्थानमैं प्रसिद्ध नहीं, यातैं पुरोवर्तिदेशमैं

शुक्तिरजतका तादात्म्य अनिर्वचनीय उपजै है. जो अनिर्वचनीयतादात्म्यकी उत्पत्ति नहीं मानैं तौ अप्रसिद्धकी अपरोक्षप्रतीति नहीं होवैगी. औ तादात्म्यकी अपरोक्ष प्रतीति होवै है. औ जो नैयायिक आग्रहतैं यह कहैः—शुक्तिमें रजतत्वका समवायही भासै है, याकाभी यह अर्थ है समवायसंबन्धतैं रजतत्व भासैहै औ शुक्तिरजतका तादात्म्य भासै नहीं ऐसा कहैं तौ शुक्तिज्ञानतैं उत्तरकालमैं "नेदं रजतम्" ऐसा बाध होवै है. ताका बाध्य इदंपदार्थमैं रजतका तादात्म्य है. जो भ्रमकालमें इदंपदार्थमैं रजतका तादात्म्य नहीं भासै तौ बाध निर्विषय होवैगा. जो केवल रजतत्वका समवायही शुक्तिमैं भासै तौ "नात्र रजतत्वम्" ऐसा बाध हुया चाहिये. यातैं शुक्तिमैं रजतका तादात्म्य भासै है सो शुक्तिरजतका तादात्म्य उभयसापेक्ष है. कहूं प्रसिद्ध नहीं; यातैं अनिर्वचनीय तादात्म्यकी उत्पत्ति अन्यथाख्यातिवादमैं आवश्यक है केवल अन्यथाख्यातिमैं निर्वाह होवै नहीं.

औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्याति माननी होवै है. औ अद्वैतग्रंथकारोंनैं मानी है, यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके अभिप्रायके अज्ञानतैं है. काहेतैं ? अद्वैतवादमैं कहूंभी अन्यथाख्याति नहीं. सारै अनिर्वचनीयख्याति है. बहुत क्या कहैं:—जहां प्रमा ज्ञान कहैं हैं, तहां अद्वैत सिद्धांतमैं विषय औ ज्ञान अनिर्वचनीय है, औ कितने स्थानोंमैं अन्यथाख्याति लिखी है ताका यह तात्पर्य है. जहां अधिष्ठान आरोप्यका संबंध होवै औ परोक्ष भ्रम होवै तहां अन्यथाख्यातिभी संभवै है, परंतु सारै अन्यथाख्याति संभवै नहीं. जहां आरोप्य व्यवहित हुयां अपरोक्ष भ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयख्याति आवश्यक है, यातैं आवश्यक अनिर्वचनीयख्यातिही सारै मानी चाहिये. इसरीतिसैं अन्यथाख्यातिका कथन संभवाभिप्रायतैं है अंगीकरणीयत्वाभिप्रायतैं नहीं. जहां आत्मसत्ताभी अनात्ममैं अन्यथाख्याति कही तहांभी आत्मसत्ताका अनिर्वचनीय संबंध उपजै है, इसरीतिसैं जहां अनिर्वचनीयसंबंधीकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्वचनीय संबंधका अंगीकार

है. तैसैं परोक्षभ्रम होवै तहांभी अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति ब्रह्मविद्याभरणमें लिखी है, परंतु परोक्षभ्रम होवै तहां अन्यथाख्याति मानैं तौभी दोष नहीं है, इसवास्तै सरलबुद्धितैं परोक्षभ्रम अन्यथाख्यातिरूप कह्या है.

औ जो ऐसैं कहैः—"तदेवेदं रजतम्" इसरीतिसैं शुक्तिमैं रजतका प्रत्यभिज्ञा भ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयरजतकी पुरोवर्तिदेशमैं उत्पत्ति मानै तौ सन्निहितरजतमैं तौ तत्ता संभवै नहीं. यातैं देशांतरस्थ रजतवृत्ति रजतत्वकी औ तत्ताकी शुक्तिपदार्थमैं प्रतीति होवै है, अथवा तादात्म्यसंबंधसैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति होवै है, यातैं उक्त स्थलमैं अन्यथाख्याति आवश्यक है.

यह कथनभी असंगत है; काहेतैं ? उक्त प्रत्यभिज्ञामैंभी अनिर्वचनीयरजतही विषय है; देशांतरस्थ नहीं. काहेतैं ? प्रमातासैं संबंधविना अपरोक्ष अवभास संभवै नहीं; औ देशांतरस्थ रजतका प्रमातासैं संबंध बाधित है, यातैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति नहीं. औ जहां यथार्थ प्रत्यभिज्ञा होवै तहांभी तत्ता अंशमैं स्मृति है यह सिद्धांत है; यातैं "तदेवेदं रजतम्" यह भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञाभी तत्ताअंशमैं स्मृति है. औ "इदं रजतम्" इतने अंशमैं अनिर्वचनीय प्रत्यक्ष है; यातैं कहूंभी अन्यथाख्याति आवश्यक नहीं. जहां अनिर्वचनीयविषयकी उत्पत्ति नहीं संभवै, तहां अनिर्वचनीय संबंधकी उत्पत्ति होवै है. जैसैं आत्मानात्मका अन्योन्याध्यास होवै, तहां अनात्मामैं आत्मा औ आत्मधर्म अनिर्वचनीय उपजैं हैं, यह कहना संभवै नहीं; यातैं आत्माका आत्मधर्मनका अनात्मामैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. इसरीतिसैं सारे अनिर्वचनीय ख्यातिसैं निर्वाह होवै है कहूंभी अन्यथाख्याति माननी होवै नहीं.

औ जो अन्यथाख्यातिवादीनैं अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं यह गौरव कह्या ता दोषकूं अनिर्वचनीय रजतादिक औ तिनके ज्ञानकी कारणता माननेतैं केवल ज्ञानकी कारणता माननेमैं लाघव है. अन्यथाख्यातिवादमैं

रजत तौ देशांतरमैं प्रसिद्ध है; ताके रजतत्वधर्मका शुक्तिमैं ज्ञान होवै है, अथवा तादात्म्यसंबंधसैं रजतका शुक्तिमैं ज्ञान होवै है. इसरीतिसैं केवल ज्ञानही दोषजन्य है. औ अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं विषय औ ज्ञान दोनूं दोषजन्य कहैं हैं, यातैं गौरव है.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? लाघवबलतैं अनुभवसिद्ध पदार्थका लोप करै तौ यथार्थ ज्ञानके विषयभी नहीं मानैं औ विज्ञानवादकी रीतिसैं केवल विज्ञानही मानै तौ अतिलाघव है. जैसैं अनुभवसिद्ध घटादिक मानिकै लाघवसहकृत विज्ञानवादका त्याग है. तैसैं अपरोक्षप्रतीति सिद्ध अनिर्वचनीय रजतादिक मानिकै अन्यथाख्यातिवादभी त्याज्य है.

औ विचार करैं तौ गौरवभी अन्यथाख्यातिवादमैं है. काहेतैं ? देशांतरस्थ रजतका ज्ञान मानै ताके मतमैं यह गौरव है. रजतनेत्रसंयोगकी रजतसाक्षात्कारमैं कारणता निर्णीत है; तिस निर्णीतका त्याग होवै है, औ रजत आलोकसंगसैं रजतका साक्षात्कार निर्णीत है. अन्यथाख्यातिवादमैं शुक्तिआलोकसंगसैं रजतका भ्रमसाक्षात्कार होवैहै, सो अनिर्णीत है, यातैं अनिर्णीतका अंगीकार होवैहै. तैसैं ज्ञानलक्षणसंबंध अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्धका अंगीकार होवै है. औ जो ज्ञानलक्षणसंबंधकूं मानै तौभी जा पदार्थका अलौकिक संबंधसैं प्रत्यक्ष होवैहै ताकी प्रकटता होवै नहीं. इसीवास्तै "सुगंधि चन्दनम्" इसरीतिसैं सुगंधका अलौकिक प्रत्यक्ष हुयेभी "सुगंधं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै नहीं. औ अलौकिक संबंधजन्य रजतभ्रम हुयें रजतकी प्रकटता होवैहै. इसीवास्तै भ्रमतैं उत्तरकालमैं "रजतं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै. इसरीतिसैं ज्ञानलक्षण संबंधजन्य यथार्थज्ञानमैं प्राकट्य जनकता नहीं है. भ्रमस्थलमैं अलौकिकज्ञानकूं प्राकट्यजनकता मानी सोभी अप्रसिद्धकल्पना है. इसरीतिसैं अनेक प्रकारकी अप्रसिद्ध कल्पना अन्यथाख्यातिवादमैं होनेतैं या पक्षविषै ही गौरव है. औ दोषकूं अनिर्वचनीय विषयकी जनकता तौ श्रुति-

स्मृतिबलतैं स्वप्नमैं है, अप्रसिद्ध कल्पना नहीं. **ब्रह्मानन्दकृत अनिर्वचनीयवादमैं** अन्यथाख्यातिका खंडन विशेष कन्या है सो प्रकार कठिन है, यातैं ब्रह्मविद्याभरणकी सुगमरीतिसैं अन्यथाख्यातिवादकी हेयता प्रतिपादन करी, यातैं अन्यथाख्याति असंगत है.

अख्यातिवादकी रीति औ खंडन अख्यातिवादीका तात्पर्य ॥ ६५ ॥

जैसैं अन्यथाख्याति असंगत है तैसैं **अख्यातिवाद** भी असंगत है. प्रभाकरका अख्यातिवाद है. यह ताका तात्पर्य है. अन्यशास्त्रनमैं यथार्थ अयथार्थ भेदसैं **दो प्रकारका ज्ञान मान्या** है. यथार्थ ज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति सफल होवै है. अयथार्थ ज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति निष्फल होवै है. यह सकल शास्त्रनका लेख असंगत है. काहेतैं ? अयथार्थज्ञान अप्रसिद्ध है, सारै ज्ञान यथार्थही होवै है. जो अयथार्थ ज्ञानभी होवै तौ पुरुषकूं ज्ञान होते ही ज्ञानत्व सामान्य धर्म देखिकै उत्पन्न हुयें ज्ञानमैं अयथार्थका संदेह होयकै प्रवृत्तिनिवृत्तिका अभाव होवैगा. काहेतैं ? ज्ञानमैं यथार्थत्व निश्चय औ अयथार्थतासंदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्तिनिवृत्तिके हेतु है. औ अयथार्थताके संदेह होनेतैं दोनूं सम्भवैं नहीं; औ अयथार्थ ज्ञानकूं नहीं मानैं तब उत्पन्न हुये ज्ञानमैं उक्त सन्देह होवै नहीं. काहेतैं ? कोई ज्ञान अयथार्थ होवै तौ तिसकी ज्ञानत्वधर्मतैं सजातीयता अपनें ज्ञानमैं देखिकै अयथार्थत्व संदेह होवै सो अयथार्थ ज्ञान है नहीं. सारै ज्ञान यथार्थ ही है, यातैं ज्ञानमैं अयथार्थतासंदेह होवै नहीं. इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है. जहां शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै है औ भयहेतुक रज्जुसैं निवृत्ति होवै है, तहांभी रजतका प्रत्यक्षज्ञान औ सर्पका प्रत्यक्षज्ञान नहीं है. तहांभी रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान औ सर्पका प्रत्यक्षज्ञान उक्तस्थलमैं होवै तौ यथार्थ तौ संभवै नहीं; यातैं अयथार्थ होवै सो अयथार्थ ज्ञान अलीक है, यातैं उक्तस्थलमैं रजतका औ सर्पका प्रत्यक्ष-

ज्ञान नहीं; किंतु रजतका स्मृतिज्ञान है औ शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्य-ज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं पूर्वानुभूत सर्पका स्मृतिज्ञान है औ सामान्य इदं-रूपतैं रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है. शुक्तिमैं तथा रज्जुमैं दोषसहित नेत्रका सम्बंध होवैहै, यातैं शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भासै नहीं; किंतु सामान्यरूप इदंता भासै है.औ शुक्तिमैं नेत्रके सम्बंधजन्य ज्ञान हुये रजतके संस्कारउद्बुद्ध होयकै शुक्तिके समान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं रजतकी स्मृति होवै है; तैसैं रज्जुके सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं सर्पकी स्मृति होवैहै. यद्यपि सकल स्मृतिज्ञानमैं पदार्थकी तत्ताभी भासै है, तथापि दोषसहित नेत्रके सम्बंधतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै तहां दोषके माहात्म्यतैं तत्ताअंशका प्रमोष होवै है, यातैं प्रमुष्टतत्ताकी स्मृति होवै है. **प्रमुष्ट** कहिये लुप्त हुई है तत्ता जिसकी सो **प्रमुष्टतत्ताके** शब्दका अर्थ है. इसरीतिसैं "इदं रजतम्, अयं सर्पः" इत्यादिक स्थलमैं दो ज्ञान हैं. तहां शुक्तिका औ रज्जुका सामान्य इदंरूपका प्रत्यक्ष ज्ञान यथार्थ है औ रजतका तथा सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थ है. यद्यपि विशेष शुक्तिरज्जुभागकूं त्यागिकै प्रत्यक्षज्ञान हुया है औ तत्ताभागरहित स्मृतिज्ञान हुया है, तथापि एक भाग त्यागनेसैं ज्ञानअयथार्थ होवै नहीं, किंतु अन्यरूपतैं ज्ञानकूं **अयथार्थ** कहैं हैं, यातैं उक्त ज्ञान यथार्थ है अयथार्थ नहीं. इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है.

अख्यातिवादीकरि अन्यकृतशंकाका उद्धार ॥ ६६ ॥

औ जो शास्त्रांतरवाले ऐसैं कहैं—जा पदार्थमैं इष्टसाधनता ज्ञान होवै तामैं प्रवृत्ति होवै है; औ जामैं अनिष्टसाधनता ज्ञान होवै तासैं निवृत्ति होवै है अख्यातिवादीके मतमैं शुक्तिमैं इष्टसाधनता ज्ञान कहै तौ भ्रमका अंगीकार होवै, यातैं इष्टसाधनता ज्ञानके अभावतैं शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये.तैसैं रज्जुमैं अनिष्टसाधनत्व है नहीं. औ ताका ज्ञान मानैं तौ भ्रमका अंगीकार होवै,यातैं अनिष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं निवृत्ति नहीं

हुई चाहिये, यातैं भ्रमज्ञान आवश्यक है. ताका इसरीतिसैं अख्यातिवादी समाधान करैहैं:—जा पदार्थमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवै ता पदार्थका सामान्यरूपतैं प्रत्यक्षज्ञान औ इष्ट पदार्थकी स्मृति औ स्मृतिके विषयतैं पुरोवर्तिपदार्थका भेदज्ञानाभाव तैसैं स्मृतिज्ञानका पुरोवर्तिके ज्ञानतैं भेदज्ञानाभाव इतनी सामग्री प्रवृत्तिकी हेतु है, यातैं भ्रमज्ञानविना प्रवृत्ति संभवै है. जो विषयका औ ज्ञानका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिमैं हेतु कहैं तौ उदासीन दशामैं प्रवृत्ति हुई चाहिये. औ विषयका सामान्यज्ञानसहित इष्टकी स्मृतिही प्रवृत्तिका कारण कहैं तौ "देशांतरे तद्रजतं किंचिदिदम्" इसरीतिसैं देशांतरसंबंधी रूपतैं रजतकी स्मृति होवै औ शुक्तिका किंचित् रूपतैं ज्ञान होवै तहांभी रजतार्थीकी प्रवृत्ति हुई चाहिये. यातैं इष्टपदार्थतैं विषयका भेदज्ञानाभावभी प्रवृत्तिका हेतु है. उक्त स्थलमैं इष्ट रजतका शुक्तिसैं भेदज्ञान है ताका अभाव नहीं, यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं जो इष्टपदार्थका पुरोवर्तिसैं भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिकी सामग्रीमैं मिलावै औ दोनूंके ज्ञानका भेदज्ञानाभाव नहीं कहै तौ "इदं रजतम्" इसरीतिसैं दो ज्ञान होयके इदंपदार्थका मेरेकूं प्रत्यक्षज्ञान हुयाहै औ रजतका स्मृतिज्ञान हुया है. इसरीतिसैं दोनूं ज्ञानोंके भेदका ज्ञान होवै अथवा इदंपदार्थका ज्ञान औ रजतपदार्थका ज्ञान मेरेकूं परस्पर भिन्न हुयेहैं. इसरीतिसैं भेदज्ञान होवै; तहांभी विषयकभेदज्ञान नहीं, यातैं प्रवृत्ति हुई चाहिये. यातैं ज्ञानका भेदज्ञानाभावभी प्रवृत्ति सामग्रीमैं कह्या चाहिये. उक्तस्थलमैं पुरोवर्तिका सामान्यज्ञान औ इष्टरजतकी स्मृति है, तैसैं पुरोवर्तिसैं इष्टरजतका भेदज्ञानका अभावभी है परंतु दोनूं ज्ञानोंका भेदज्ञान है ताका अभाव नहीं. इसरीतिसैं उभयविधभेदज्ञानाभाव सहित इष्टस्मृतिसहित पुरोवर्तिका सामान्यज्ञान प्रवृत्तिका हेतु है. सोपुरोवर्ति शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान यथार्थ है. यातैं भ्रमका अंगीकार निष्फल है. जहां शुक्तिमैं रजतका भेदज्ञान होवै तहां रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै नहीं औ शुक्तिज्ञानमैं रजतज्ञानका भेदग्रह होवै तहांभी प्रवृत्ति होवै नहीं; यातैं भेदज्ञा-

प्रवृत्तिका प्रतिबंधक है, प्रतिबंधका अभाव कारण होवै है, यातैं भेदज्ञानाभावमैं प्रवृत्तिकी कारणता माननेमैं अप्रसिद्धकी कल्पना नहीं; औ जहां रज्जुदेशतैं भय हेतुसैं पलायन होवै है; तहांभी सर्पभ्रम नहीं होवै है; किंतु द्वेषगोचर सर्पकी स्मति औ रज्जुका सामान्यज्ञान तैसैं ज्ञान औ तिनके विषयका भेदज्ञानाभाव पलायनके हेतु हैं. पलायनभी प्रवृत्तिविशेष है, परंतु वह प्रवृत्ति विषयके अभिमुख नहीं; किंतु विमुखप्रवृत्ति है. विमुखप्रवृत्तिमैं द्वेषगोचरकी स्मृति हेतु है, सन्मुखप्रवृत्तिमैं इच्छागोचरकी स्मृति हेतु है, इसरीतिसैं भयजन्य पलायनादि क्रिया होवै ताकूं प्रवृत्ति कहो अथवा निवृत्ति कहो ताका हेतु द्वेषगोचरपदार्थकी स्मृति है; औ जहां शुक्तिज्ञानमैं रजतार्थिकी प्रवृत्तिका अभावरूप निवृत्ति होवै ताका हेतु तौ शुक्तिज्ञान है, सोभी भ्रम नहीं. औ जहां सत्यरजतमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै तहां तौ रजतत्वविशिष्ट रजतका ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है. पुरोवर्तिसत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु नहीं, यातैं विशिष्टज्ञानमैं प्रवृत्तिजनकताका सर्वथा लोप नहीं. काहेतैं ? जहां सत्य रजत है तहां पुरोवर्तिरजतमैं रजतका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिका हेतु कहैं तौ संभवै नहीं जो प्रतियोगी प्रसिद्ध होवै ताका अभाव व्यवहारगोचर होवै है अप्रसिद्ध प्रतियोगीका अभाव व्यवहारयोग्य नहीं. जैसैं शशशृंगाभावका प्रतियोगी अप्रसिद्ध है, यातैं शशशृंगाभावभी अलीक है. अलीक पदार्थसैं कोई व्यवहार होवै नहीं. केवल शब्दप्रयोग औ विकल्परूपज्ञान तौ अलीक पदार्थका होवैहै. औ अलीक पदार्थमैं कारणता कार्यता नित्यता अनित्यतादिक व्यवहार होवै नहीं; यातैं प्रसिद्ध पदार्थका अभावही व्यवहारयोग्य होवै है अप्रसिद्धका अभाव किसी व्यवहारके योग्य नहीं; यातैं अलीक है. सत्यरजतमैं रजतका भेद है नहीं यातैं सत्यरजतमै रजतका भेदज्ञान संभवै नहीं जो भ्रम ज्ञानकूं मानैं तौ सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै. अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है, यातैं सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै

नहीं इस रीतिसैं सत्यरजतमैं रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानरूप प्रतियोगीके असंभवतैं सत्यरजतमैं रजत प्रतियोगिक भेदज्ञानका अभाव अलीक है; तामैं प्रवृत्तिकी जनकता संभवै नहीं, यातैं सत्यरजतस्थलमैं पूरोवर्तिदेशमैं रजतत्वविशिष्ट रजत है, ऐसा विशिष्ट ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है औ अख्यातिवादमैं भ्रमज्ञान तौ है नहीं सारे ज्ञान यथार्थ हैं तथापि कहूं प्रवृत्ति सफल होवै है, इसका हेतु कह्या चाहिये; तामैं यह हेतु है; विशिष्टज्ञानजन्यप्रवृत्ति सफल होवै है. भेदज्ञानाभावजन्य प्रवृत्ति निष्फल होवै है, रजतदेशमैंभी भेदज्ञानाभावजन्य प्रवृत्ति कहै तौ सारै समप्रवृत्ति हुई चाहिये यातैं सफलवृत्तिका जनक विशिष्टज्ञान मानना चाहिये औ जहां सत्यरजतमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं होवै तहां प्रवृत्त्यभावरूप निवृत्ति है, ताका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानाभाव है, तहांभी भ्रमरूप रजताभावज्ञान नहीं. काहेतैं ? प्रवृत्ति निवृत्ति परस्पर प्रतियोगी अभावरूप हैं. प्रवृत्तिरूप प्रतियोगीका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञान है; औ प्रवृत्तिअभावरूप निवृत्तिका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानका अभाव है. इसरीतिसैं अख्यातिवादमैं विषय नहीं होवै औ विषयार्थीकी प्रवृत्ति होवै ताके हेतु इष्ट स्मृत्यादिक हैं. विशिष्टज्ञान नहीं. जहां शुक्तिदेशमैं "इदं रजतम्" ऐसा ज्ञान होवै सो एक ज्ञान नहीं है, शुक्तिका इदमाकार सामान्य ज्ञान है, रजतकी प्रमुष्टतत्ताक स्मृति है. इन दो ज्ञानोंसैं प्रवृत्ति होवै है, परंतु भेदज्ञानाभाव होवै तब प्रवृत्ति होवै है. भेदज्ञान हुयां प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं उक्त ज्ञानद्वयसहित भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु है.

औ बहुत ग्रंथनमैं असंबन्ध ग्रहाभावसैं प्रवृत्ति कही है. ताका यह अर्थ है:—शुक्तिमैं रजतत्वका असंबंध है, तैसैं रजतकाभी इदंपदार्थमैं तादात्म्य संबंध नहीं. ऐसा जाकूं ज्ञान होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं असंबंध ग्रहका अभाव प्रवृत्तिका हेतु है यातैं भेदग्रहाभावके समान अर्थही सिद्ध होवै है, परंतु इसरीतिसैं प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवै है. औ विषय

देशमैं विषयार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु विशिष्टज्ञान है. विशिष्टज्ञानसैं जहां प्रवृत्ति होवै तहां सफल होवै है. भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है. सर्वज्ञान यथार्थ है जहां ज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै, तहां ज्ञानद्वयकूं ही भ्रम कहैहैं यह प्रभाकरका अख्यातिवाद है. ज्ञानद्वयका विवेकाभाव औ उभयविषयका विवेकाभाव अख्यातिपदका परिभाषिक अर्थ है.

अख्यातिवादका खण्डन ॥ ६७ ॥

यह मतभी समीचीन नहीं. काहेतें ? शुक्तिमें रजतभ्रमतें प्रवृत्त हुये पुरुषकूं रजतका लाभ नहीं होवै तब पुरुष यह कहै है, रजतशून्यदेशमें रजतज्ञानसैं मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई; इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अनुभवसिद्ध है,ताका लोप संभवै नहीं. औ मरुभूमिमैं जलका बाध होवै तब यह कहैहै, मरुभूमिमें मिथ्याजलकी प्रतीति मेरेकूं हुई या बाधतैंभी मिथ्या जल औ ताकी प्रतीति होवै है. अख्यातिवादीकी रीतिसैं तौ रजतकी स्मृति औ शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहतें मेरी शुक्तिमैं प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध हुया चाहिये. औ मरुभूमिके प्रत्यक्षसैं औ जलकी स्मृतिसैं मेरी प्रवृत्ति हुई, ऐसा बाध हुया चाहिये औ विषय तथा भ्रमज्ञान दोनूं त्यागिकै अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पना अख्यातिवादमें हैं.तथाहिः—नेत्रसंयोगहुयें दोषके माहात्म्यतें शुक्तिका विशेष रूपतें ज्ञान होवै नहीं यह कल्पना विरुद्ध है. तैसें तत्तांशके प्रमोषतें स्मृतिकल्पना विरुद्ध है; औ विषयनका भेद है औ भासै नहीं. तैसें ज्ञानोंका भेद है कदीभी भासै नहीं. यह कल्पना विरुद्ध है, औ रजतकी प्रतीतिकालमैं अभिमुखदेशमैं रजतप्रतीति होवै है, यातैं अख्यातिवाद अनुभवविरुद्ध है. औ अख्यातिवादीके मतमें रजतका भेदग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबोधक होनेतैं रजतके भेदग्रहका अभाव जैसें रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु मान्या है, तैसें सत्यरजतस्थलमैं रजतका अभेदग्रह निवृत्तिका प्रतिबंधक अनुभवसिद्ध है यातैं रजतके अभेदग्रहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवैगा. इसरीतिसैं रजतके भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है, औ रजतके अभेद-

ज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु है. शुक्तिदेशमैं "इदं रजतम्" ऐसें दो ज्ञान होवैं तहां अख्यातिवादीके मतमैं दोनूं हैं. काहेतें ? शुक्तिमैं रजतका भेद तौ है, परंतु दोषबलतैं रजतके भेदका शुक्तिमैं ज्ञान होवै नहीं यातैं प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेदज्ञानका अभाव है. औ शुक्तिमैं रजतका अभेद है नहीं. औ अख्यातिवादमैं भ्रमका अंगीकार नहीं, यातैं शुक्तिमैं रजतके अभेदका ज्ञान संभवै नहीं. इस रीतिसैं शुक्तिसैं रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु रजतके अभेदज्ञानका अभाव है. रजतार्थीकी सामग्री दोनूं हैं औ प्रवृत्ति निवृत्ति दोनूं परस्पर विरोधी हैं. एककालमैं दोनूं संभवै नहीं. औ दोनूंके असंभवतैं दोनूंका त्याग करै सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रवृत्तिका अभावही इसस्थानमैं निवृत्तिपदार्थ है, यातैं प्रवृत्तिका त्याग करें निवृत्तिप्राप्त होवै है निवृत्तिका त्याग करें प्रवृत्तिप्राप्त होवै है. इसरीतिसैं उभयके त्यागमैं औ उभयके अनुष्ठानमैं अशक्त हुवा अख्यातिवादी व्याकुल होयके लज्जातैं प्राणत्याग करैगा. यातैं अख्यातिवाद मरणका हेतु है या अर्थमैं अनेक कोटि हैं. क्लिष्ट जानिकै लिखी नहीं.

औ अख्यातिवादीके मतमैंभी इच्छाविना भ्रमज्ञानकी सामग्री बलतैं सिद्ध होवै है. जहां धूमरहित वह्निसहित पर्वतमैं धूलिपटल देखिकै "वह्निव्याप्यधूमवान्" ऐसा परामर्श होवै है, तहां वह्निकी प्रमारूप अनुमिति होवै है. काहेतैं ? अनुमितिका विषय वह्नि पर्वतमैं विद्यमान है, यातैं प्रमाहै ताका हेतु "वह्निव्याप्यधूमवान्पर्वतः" इसरीतिसैं पर्वतमैं वह्निव्याप्य धूमके संबंधका ज्ञान तौ अख्यातिवादीके मतमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? पर्वतमैं धूमका संबंध है नहीं. औ भ्रमज्ञानका अंगीकार होवै तौ धूमसंबंधरहित पर्वतमैं धूमसंबंधका ज्ञान होवै, भ्रम ज्ञानका अंगीकार नहीं; यातैं धूमरहितमैं धूमसंबंधका ज्ञान संभवै नहीं. यातैं पर्वतमैं धूमके असंबंधज्ञानका अभावरूप परामर्शही उक्त अनुमितिका कारण होनेतैं सारै पक्षमैं हेतुका असंबंधज्ञानाभावही अनुमितिका कारण मान्या चाहिये. जहां पक्षमैं हेतुका संबंध है तहां

।क्षमें हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव है, औ पक्षमें हेतुका संबंधज्ञानभी है, ।रंतु जहां उक्तपर्वतमें धूम नहीं है औ अनुमिति होवैहै, तहां पक्षमें हेतुका संबंधज्ञान संभवै नहीं. औ हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव सारे संभवै है, यातें पक्षमें हेतुके असंबंध ज्ञानका अभावही अनुमितिका कारण अख्याति वादमें सिद्ध होवैहै; यातें वक्ष्यमाणरीतिसें **गलग्रहन्याय**तें अख्यातिवादीके मतमें अनुमितिरूप भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवै है तथाहि—जैसें वह्निका व्याप्य धूम है; तैसें इष्टसाधनत्वका व्याप्य रजतत्व है; "यत्र यत्र रजतत्वं तत्र इष्टसाधनत्वम्" इसरीतिसें रजतत्वमें इष्टसाधनताकी व्याप्ति है; जामें जाकी व्याप्ति होवै सो ताका व्याप्य होवैहै, जाकी व्याप्ति होवै सो व्यापक होवै है; इसरीतिसें इष्टसाधनत्व व्यापक है, रजतत्व व्याप्य है, व्याप्य हेतु होवै है, व्यापक साध्य होवै है, यह प्रकार अनुमानमें लिख्या है. यातें रजतत्व हेतुसें इष्टसाधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति होवै है. यह अर्थ तौ सर्वके मतमें निर्विवाद है, अन्यमतमें तौ पक्षमें व्याप्य हेतुके संबंधज्ञानतें व्यापक साध्यकी अनुमिति होवैहै. औ अख्यातिवादमें पक्षमें व्याप्य हेतुके असंबंधज्ञानाभावतें साध्यकी अनुमिति होवैहै, यह अर्थ प्रतिपादन कर्‍या है. यातें "इदं रजतम्" इसरीतिसें जहां शुक्तिदेशमें ज्ञान होवै तहां इदंपदार्थ शुक्तिमें रजतत्वका ज्ञान तौ नहीं है, तथापि रजतत्वके असंबंधका ज्ञान नहीं. यातें रजतत्वके असंबंधका ज्ञानाभाव होनेतें इदंपदार्थरूप पक्षमें रजतत्वरूप हेतुके असंबंध ज्ञानाभावतें इष्टसाधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति इच्छाविना सामग्रीबलतें सिद्ध होवैहै, सो इदंपदार्थमें इष्टसाधनत्वकी अनुमिति भ्रमरूप है काहेतें ? इदंपदार्थ शुक्ति है, तामें इष्टसाधनत्व है नहीं. इष्टसाधनत्वरहितमें इष्टसाधनत्वका अनुमिति ज्ञान भ्रमरूप है. इसरीतिसें **गलग्रहन्याय**तें अख्याति वादीके मतमें भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवै है. धूलिपटल सहित पर्वतमें. जो धूमका परामर्श कह्या तहां धूमका संबंधज्ञान पर्वतमें मानै तौ धूमका संबंधज्ञानही भ्रमरूप मानना होवै है औ तिसपर्वतमें धूमका असंबंधज्ञानाभाव अनुमितिका हेतु कहै तौ तिसस्थानमें तौ भ्रमज्ञानके अनंगीकारमेंभी निर्वाह

हुया, परंतु सकल अनुमितिमैं हेतुके असंबंधज्ञानाभावकूं कारण मानिकै शुक्तिमैं रजतत्वके असंबंधज्ञानाभावतें इष्टसाधनत्वकी भ्रमरूप अनुमिति सिद्ध हुई. इसरीतिसैं **उभयतःपाशारज्जुन्यायतैं** अख्यातिवादीके मतमैं भ्रम सिद्ध होवै है.

और भी अख्यातिवादमैं दोष हैः—जहां रंग रजत धरे होवैं तिनका "इमे रजते" ऐसा ज्ञान होवै; यह ज्ञान अन्यमतनकी रीतिसैं तौ रंग अंशमैं भ्रम है औ रजतअंशमैं प्रमा है; औ रंगमैं तथा रजतमैं तथा रजतत्व धर्मकूं विषय करै है; यातैं रंग अंशमैं रजतत्वविशिष्ट ज्ञान है; औ अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ है नहीं. उक्त ज्ञानभी सर्वअंशमैं यथार्थ है, परंतु रजतअंशमैं तौ रजतत्वसंसर्गग्रह है. औ रंगअंशका इदंरूपतैं ज्ञान है तामैं रजतत्वके असंबंधका अग्रह है; इसरीतिसैं भेदकल्पन अनुभवविरुद्ध है. काहेतैं ? रंग औ रजतका "इमे रजते" इसरीतिसैं एकरूप उल्लेख होवै है, तामैं उक्तभेदकथनकी रीतिसैं विलक्षण उल्लेख हुया चाहिये, औ रंग अंशमैं रजतत्वका संबंधग्रह तौ भ्रमके अनंगीकारतैं संभवै नहीं; रजतअंशमैंभी रजतत्वके असंबंधका अग्रह मानैं तौ संभवै है. काहेतैं? रजतमैं रजतत्वके असंबन्धका ग्रह नहीं है; किंतु संबन्धका ग्रह है यातैं एकरूप उल्लेखभी संभवै है, परंतु जहां प्रवृत्तिका विषय अभिमुख होवै तहां संसर्गविशिष्ट ज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै है यह पूर्व नियम कह्या है, ताका त्याग होवैगा. औ जो ऐसैं कहै जहां प्रवृत्तिका विषय इष्टपदार्थही अभिमुख होवै अनिष्ट पदार्थ अभिमुख होवै नहीं. तहां संसर्गविशिष्टका ज्ञान होवै है. जैसैं केवल रजतका "इदं रजतम्" यह ज्ञान रजतत्वविशिष्टका ज्ञान है. औ जहां इष्ट रजत अनिष्ट रंग दोनूं अभिमुख होवैं औ अनिष्टपदार्थकाभी इष्टकी नाईं इदमाकार ज्ञान होवै तहां इष्ट पदार्थमैं भी रजतत्वविशिष्ट ज्ञान होवै नहीं; किंतु रजतत्वके असंबंधज्ञानका अभाव होवै है. यह माननेमैं "इमे रजते" इसरीतिसैं समान उल्लेख संभवै है.

रजत औ रंगका इदमाकार सामान्य ज्ञान है. तैसें रंगमैं रजतत्वका असंबंध तौ है परंतु असंबंधका दोषतैं ज्ञान नहीं, यातैं रंगमें रजतत्वके असंबंध ज्ञानका अभाव है; औ रजतमैं रजतत्वका असम्बन्ध नहीं; यातैं असंबन्धज्ञानका अभाव है. यातैं एकरस उल्लेख संभवै है, परंतु उक्तरीतिसैं रजतअंशमैंभी निष्फल प्रवृत्ति हुई चाहिये, यातैं उक्त स्थलमैं रजतअंशमैं रजतत्वविशिष्टका ज्ञान है. काहेतैं ? अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ है नहीं. जासै निष्फल प्रवृत्ति होवै; किंतु इष्टपदार्थके भेदके ज्ञानतैं जो प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवै है; औ विशिष्टज्ञानतैं सफल प्रवृत्ति होवै है, यातैं रंग रजत पुरोवर्ति होवैं औ "इमे रजते" ऐसा ज्ञान होवै तहां रंग रजतका इदंरूपसैं तौ ज्ञान सम है, परंतु रजतका इदमंशमैं रजतत्वविशिष्ट ज्ञान है; औ रंगके इदमंशमें रजतत्वके संबन्धका अग्रह है, अथवा रजतका भेदाग्रह है. जहां रजतत्वका असंबंध है तहां रजतका भेद है, यातैं रजतत्वके असंबंधका अग्रह औ रजतभेदका अग्रह कहनेमैं अर्थभेद नहीं. इसरीतिसैं अख्यातिवादमैं "इमे रजते" या स्थानमैं समान उल्लेख संभवै नहीं, यातैं अख्यातिवाद असंगत है.

भ्रमज्ञानवादीके मतमैं उक्तदोषका असंभव ॥ ६८ ॥

औ जो भ्रमज्ञानकूं मानैं तिनके मतमैं दोष कह्याः—जो भ्रमज्ञानभी प्रसिद्ध होवै तौ सर्वज्ञानोंमैं भ्रमत्वसंदेहतैं निष्कंप प्रवृत्ति नहीं होवेगी, सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ नहीं है, सारे ज्ञान यथार्थ है परंतु ज्ञानसैं प्रवृत्ति तौ कहूं सफल होवै है, कहूं निष्फल होवै है यातैं प्रवृत्तिमैं सफलता निष्फलताकी संपादक तौ ज्ञानोंमैं विलक्षणता अख्यातिवादीनेभी मानी है. जहां संसर्गविशिष्ट ज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै सो सफल होवै है, यातैं सफल प्रवृत्तिका जनक संसर्गविशिष्ट ज्ञान प्रमा है. अगृहीत भेदज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै है. निष्फल प्रवृत्तिके जनक दो ज्ञान होवैं हैं सो अप्रमा है, यद्यपि विषयके भावाभावतैं ज्ञानोंमैं

प्रमात्व अप्रमात्व नहीं है, तथापि प्रवृत्तिकी विलक्षणताके हेतु प्रमात्व अप्रमात्व तौ अख्यातिवादीकूं इष्ट है औ अप्रमात्व संज्ञातैंभी अख्यातिवादीका विद्वेष होवै तौभी अगृहीत भेदज्ञानद्वयमैं सफल प्रवृत्तिजनक ज्ञानतैं विलक्षणता तौ अनुभवसिद्ध है औ अख्यातिवादीनैं मानी है. यातैं व्यवहार भेदवास्तै संज्ञांतर करणीय है, यातैं प्रसिद्ध संज्ञासैं ही व्यवहार करना योग्य है. इसरीतिसैं भ्रमज्ञानके अनंगीकारमैं भी भ्रमके स्थानमैं निष्फल प्रवृत्तिके जनक जो अगृहीत भेद यथार्थ ज्ञान होवैं और सफल प्रवृत्तिका जनक रजतमैं रजतत्वविशिष्ट ज्ञान होवै तिनमैं ज्ञानत्वरूप समान धर्म देखिकै यह संदेह संभवै है. जैसैं शुक्तिमैं अगृहीत भेद दो ज्ञान हैं तिनका भेद प्रतीत नहीं होवैहै. तैसैं यह ज्ञानभी अगृहीतभेदज्ञानद्वयरूप है, अथवा भेदरहित एक है. जो अगृहीतभेदज्ञानद्वयरूप होवैगा तौ रजतका लाभ प्रवृत्तिसैं नहीं होवैगा; या संदेहतैं अख्यातिवादमैंभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवै नहीं, यातैं निष्कंपप्रवृत्तिका असंभव दोनूं मतमैं समान है, इसरीतिसैं अख्यातिवादभी असंगत है.

प्रमात्व अप्रमात्वके स्वरूप उत्पत्ति और ज्ञानका प्रकार, प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप ॥ ६९ ॥

अनिर्वचनीयख्यातिही निर्दोष है:—सत्ख्याति आदिक पंचविधवादका विस्तारसैं खंडन विवरण आदिक ग्रंथनमैं है इहां रीतिमात्र जनाई है. अख्यातिवादीनैं सिद्धांतमतमैं निष्कंप प्रवृत्तिका असंभव दोष कह्या; तिस दोषका अख्यातिवादमैं भी संभव कह्या औ स्वमतमैं उद्धार नहीं कर्‍या ताका यह उद्धार है:—जिसपदार्थका जो ज्ञान होवै ता ज्ञानमैं अप्रमात्वनिश्चय होवै तौ प्रवृत्ति होवै नहीं. अप्रमात्वका संदेह होवै तौ सकंप प्रवृत्ति होवै है. प्रमात्वका निश्चय होवै तौ निष्कंप प्रवृत्ति होवै है; इसवास्तै प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप औ तिनकी उत्पति औ तिनके ज्ञानका प्रकार कहैहैं, यद्यपि प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप पूर्व कह्या है. स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधित

अर्थगोचर ज्ञान सो प्रमा है; तासैं भिन्न ज्ञान अप्रमा है; या कहनेतैं यह जाना जावै है. स्मृतिभिन्न अबाधित अर्थ गोचर ज्ञानका धर्म प्रमात्व है, तासैं अन्यज्ञानका धर्म अप्रमात्व है, तथापि पूर्वउक्त पारिभाषिक प्रमात्व स्मृतिमें नहीं है औ प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैंभी मानना चाहिये, काहेतें? स्मृतिज्ञानसैंभी पुरुषकी प्रवृत्ति होवैहै. जिस स्थानमें स्थित इष्ट पदार्थकी स्मृति होवै तिसस्थानमें पुरुषकी प्रवृत्ति होवैहै. स्मृतिज्ञानमैं प्रमात्वका निश्चय होवै तौ निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, यातैं प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैंभी है, यातैं उक्त स्वरूप प्रमात्वसें अन्यविध प्रमात्वका स्वरूप कह्या चाहिये. सकल शास्त्रनमें स्मृतिसें भिन्न ज्ञानमें अनुभव व्यवहार करैं हैं संस्कारजन्यज्ञानमैं स्मृतिव्यवहार करैं हैं, यथार्थ अनुभवमें प्रमा व्यवहार करैं हैं. औ तासें भिन्नमें अप्रमा व्यवहार करैं हैं. इसरीतिसैं ज्ञानत्व धर्म तौ सकल ज्ञानमें होनेतें व्यापक है औ अनुभवत्व स्मृतित्व ज्ञानत्वके व्याप्य हैं परस्पर विरोधी हैं, तैसैं प्रमात्व धर्मभी अनुभवत्वका व्याप्य है. काहेतैं ? अनुभवत्व तौ यथार्थानुभव औ अयथार्थानुभवमै रहैहै.औ प्रमात्वधर्म यथार्थानुभवमैंही रहै है यातैं अनुभवत्वका व्याप्य प्रमात्व है, तैसें यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है. काहेतें ? यथार्थत्व तौ सत्यपदार्थकी स्मृतिमें भी रहैहै. औस्मृतिमैं प्रमात्व रहै नहीं, यातैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है, यह शास्त्रकारनकी परिभाषा है. याके अनुसार प्रमाका स्मृतिमैं भिन्न अबाधित अर्थगोचर ज्ञान प्रमा कहिये है; यह लक्षण कह्या है. जिस प्रमात्वके ज्ञानतैं पुरुषकी निष्कंप प्रवृत्ति होवै ऐसा प्रमात्वस्मृतिमैंभी मानना चाहिये; यातैं इस प्रसंगमैं यथार्थत्वका व्याप्य प्रमात्व नहीं; किंतु यथार्थत्वका नामही प्रमात्व है. पूर्वउक्त पारिभाषिक प्रमात्व तौ स्मृतिमैं नहीहै यथार्थत्वहै यातैं पूर्व उक्त प्रमात्व यथार्थत्वरूप नहीं, किंतु तासैं भिन्नहै औ तासैं न्यूनदेशवृत्ति होनेतें यथार्थत्वका व्याप्य है, औ प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व विचारणीय है, सो

स्मृति साधारण है; यातैं याथार्थत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति नहीं; किंतु यथार्थ-स्वरूपही प्रमात्व विचारणीय है. औ जो स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहारसैं सर्वथा विद्वेष होवै तौ प्रमात्वज्ञानसैं निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, इसवाक्यकूं त्यागिकै यथार्थत्वज्ञानसैं निष्कंपप्रवृत्ति होवै है, ऐसा वाक्य कहै; इसरीतिसैं या प्रसंगमैं प्रमात्वका एकही अर्थ है; यातैं या प्रसंगमैं यथार्थत्वधर्मका प्रमात्वशब्दसैं व्यवहार है.

न्यायवैशेषिकमतमें ज्ञानकी उत्पादकसामग्रीतें बाह्यसामग्रीतैं प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति.

(परतः प्रामाण्यवाद औ परतः अप्रामाण्यवाद.)॥७०॥

न्यायशास्त्रके मतमैं ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं. औ ज्ञानकी ज्ञापकसामग्रीसैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; याकूं **परतः प्रामाण्यवाद** कहैं हैं. या प्रसंगमैं प्रमात्वका नाम प्रामाण्य है. परतः कहिये अन्यतैं प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है, अन्यतैंही प्रामाण्यका ज्ञान होवै है; ज्ञानकी सामग्रीतैं भिन्न सामग्री परशब्दका अर्थ है, यातैं यह निष्कर्ष हुयाः—ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी सामग्री भिन्न है. ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्री तौ इंद्रिय अनुमानादिक पूर्व कही है, तासैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै तौ सकल ज्ञान प्रमा हुये चाहियें. अप्रमाज्ञानका लोप होवैगा; यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीसैं अधिक सामग्रीसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. जहां अधिक सामग्री नहीं है तहां ज्ञानमैं प्रमात्वधर्म होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानका लोप नहीं सो अधिक सामग्री गुण है. जहां गुणसहित इंद्रिय अनुमानादिकनतैं ज्ञान होवै तहां प्रमा होवै है, गुण रहित इंद्रियानुमानादिकनतैं ज्ञान होवै सो प्रमा नहीं प्रत्यक्ष प्रमाकी उत्पत्तिमैं विषयके अधिक देशमैं इंद्रियका संयोग गुण है औ साध्यके व्याप्यहेतुका साध्यवत्पक्षमैं ज्ञान अनुमितिप्रमाकी उत्पत्तिमैं गुण है. जहां व्यभिचारी हेतुका पक्षमैं ज्ञान होवै, तहां अनुमिति ज्ञानकी सामग्री पक्षमैं हेतुका ज्ञान तौ है, परंतु व्याप्यहेतुका ज्ञानरूप गुण

नहीं; यातैं अनुमिति प्रमा होवै नहीं, इस रीतिसैं ज्ञानवृत्ति प्रमात्व धर्मकी उत्पत्तिमैं ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं अन्य गुणकी अपेक्षा होनेतैं परतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवे है.

प्रामात्वकी नाईं ज्ञानवृत्ति अप्रमात्वकीभी परतः उत्पत्ति होवै है. काहेतें ? भ्रमज्ञान दोषजन्य होवै है; यह वार्ता प्रसिद्ध है. औ प्रमाज्ञानमैं दोष हेतु नहीं, यातें ज्ञानकी सामग्रीतें दोष बाह्य है सो **दोष अनंतप्रकारका** है. इसरीतिसैं ज्ञानसामग्रीतें दोष पर है. भिन्नकूं पर कहै हैं तामैं अप्रमाकी उत्पत्ति होनेतैं परतः अप्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है. अप्रमात्वकूं **अप्रामाण्य** कहैं हैं. इसरीतिसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति औ अप्रमात्वकी उत्पत्ति परतः होवै है.

ज्ञान औ ज्ञानत्वकी सामग्रीतैं अन्यकारणतैं प्रमात्वके ज्ञानकी उत्पत्ति (परतःप्रामाण्यग्रहवाद) ॥ ७१ ॥

तैसैं ज्ञानके ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; किंतु ज्ञानका औ ज्ञानत्वका जा सामग्रीतैं ज्ञान होवै तासैं अन्यकारणतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है. जैसैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणतैं घटादिकनका ज्ञान होवै तैसैं मनःसंयुक्त समवायसंबंधतैं घटादिज्ञानका ज्ञान होवै है. नेत्रादिप्रमाणतैं घटका ज्ञान होवै ताका "अयं घटः" ऐसा आकार है. औ मनोरूप प्रमाणतैं घटज्ञानका प्रत्यक्ष होवै ताका "घटमहं जानामि" ऐसा आकार है. "घटमहं जानामि" या मानस ज्ञानका विषय घटज्ञान है जो घटभी विषय है. काहेतैं? ज्ञानका ज्ञान **अनुव्यवसाय** कहिये है. घटादिकनका ज्ञान **व्यवसाय** कहिये है. **अनुव्यवसायज्ञानका यह स्वभाव** है. व्यवसायके विषयकूं त्यागै नहीं किंतु विषयसहित व्यवसायकूं प्रकाशै है; इसी वास्तै ज्ञानके ज्ञानकी अनुव्यवसाय संज्ञा है. व्यवसायके अनुसारीकूं **अनुव्यवसाय** कहैं हैं. जैसैं व्यवसायके घटादिक विषय हैं तैसैं अनुव्यवसायकेभी घटादिक विषय हैं; यातैं व्यवसायके अनुसार अनुव्यवसाय है औ अनुव्यवसायज्ञानका आत्माभी विषय है. काहेतैं ? **यह नियम** है. ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःख द्वेष ये

आत्माके विशेष गुण हैं. इनमैं किसी एक गुणकी प्रतीति होवै तौ आत्मा की प्रतीति होवे किसीकी प्रतीति नहीं होवै तौ आत्माकी प्रतीति होवै नहीं यातें सकल विशेषगुणनकूं त्यागिकै आत्माकी प्रतीति होवै नहीं तैसैं आत्माकूं त्यागिकै केवल ज्ञानादिकनकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं घटके ज्ञानका ज्ञान होवै तब आत्माकाभी ज्ञान होवै है, यातैं व्यवसायज्ञानकूं औ ताके विषय घटकूं तैसें व्यवसायके आश्रय आत्माकूं "घटमहं जानामि" यह ज्ञान प्रकाशै है; इसीवास्तै त्रिपुटीगोचर ज्ञानकूं **अनुव्यसाय** कहैं हैं अनुव्यवसाय ज्ञानका करण मन है, यातें सकल विषयनतैं मनका संबंध कह्या चाहिये. जैसें घटज्ञान आत्मा विषय है, तैसें घटत्व ज्ञानत्व आत्मत्वभी घटज्ञानके ज्ञानके विषय हैं. घटज्ञानसैं तौ मनका स्वसंयुक्त समवायसंबंध है, औ ज्ञानत्वमैं स्वसंयुक्त समवेत समवाय संबंध है, आत्मासैं स्वसंयोग संबंध है, आत्मत्वसैं स्वसंयुक्त समवायसंबंध है, औ घटसैं तौ मनका संबंध प्रत्यक्षका हेतु संभवै नहीं. काहेतैं ? बाह्यपदार्थका ज्ञान स्वतंत्रमनसैं होवै नहीं. यातैं घटसैं मनका अलौकिक संबंध कह्या चाहिये. लौकिक संबंधमैं बाह्यपदार्थका ज्ञान मनसैं होवै नहीं. अलौकिक संबंधसैं बाह्यपदार्थकाभी मनसैं ज्ञान होवै है, सो अलौकिकसंबंध ज्ञानलक्षण है. अनुव्यवसायज्ञानका विषय जो व्यवसाय ज्ञान सोई मनका घटसैं संबंध है ताका यह स्वरूप है. स्वसंयुक्त समवेतज्ञान अथवा स्वसंयुक्त समवेतज्ञानविषयता घटसैं मनका संबंध है. ज्ञानलक्षणवाक्यमैं लक्षणशब्दका स्वरूप अर्थ करैं तब तौ आद्यसंबंध है, लक्षणशब्दका ज्ञापक अर्थ करैं तब द्वितीय संबंध है. स्वशब्दका अर्थ मन है तासैं संयुक्त आत्मतामैं समवेतव्यवसायज्ञान है सो घटमैं रहैहै, यातैं उक्त ज्ञानही मनका घटमैं संबंध होनेतैं घटका मानसज्ञान होवै है औ द्वितीय पक्षमैं उक्तज्ञानकी विषयतारूप संबंध घटमैं है. व्यवसायज्ञानके विषय घटघटत्व दोनूं हैं, यातैं व्यवसायरूप संबंधसैं अनुव्यवसाय ज्ञानके दोनूं विषय हैं. इसरीतिसैं घटज्ञानादिक अनुव्यवसायज्ञानके विषय हैं; यातैं ज्ञानका ज्ञान **अनुव्यवसाय** है. ताकी सामग्री मनःसंयोगादि-

रूप है, तासैं ज्ञानका औ ज्ञानत्वका ज्ञान होवैहै, प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; किंतु ज्ञान होयके पुरुषकी सफल प्रवृत्ति होवै तासैं उत्तरकालमें प्रवृत्तिजनक ज्ञानमें प्रमात्वका अनुमिति ज्ञान होवै है. जैसें तडागमें जलके प्रत्यक्ष ज्ञानतैं जलार्थीकी प्रवृत्ति हुये जलका लाभ होवै तब पुरुषकूं ऐसा अनुमान होवैहै, "इदं जलज्ञानं प्रमा सफलप्रवृत्तिजनकत्वात। यत्र यत्र सफलप्रवृत्तिजनकत्वं तत्र प्रमात्वम् । यथा निर्णीतप्रमायाम्" इहां वर्तमान जलज्ञान पक्ष है. यद्यपि अनुमानकालमें जलज्ञान अतीत है तथापि वर्तमानके समीप भूत भविष्यतभी वर्तमानही कहियेहै; यातें वर्तमान जलज्ञानही पक्ष कह्या अतीत नहीं कह्या. प्रमात्व साध्य है. आगे हेतुदृष्टांत स्पष्ट है. व्यतिरेक दृष्टांत कहना होवै तौ "यत्रयत्र सफलवृत्तिजनकत्वं नास्ति तत्र प्रमात्वं नास्ति । यथा शुक्तौ रजतज्ञानम्" इसरीतिसें वाक्य कहै, या अनुमानतें जलज्ञानमें प्रमात्वका निश्चय होवै है. इसरीतिसें सकल ज्ञानोंमें सफल प्रवृत्तिसें प्रमात्वकी अनुमिति होवै है. जलज्ञानग्राहक सामग्री "जलमहं जानामि" या अनुव्यवसायकी सामग्री है, प्रमात्वग्राहक सामग्री उक्त अनुमान है. सो अनुव्यवसायकी सामग्रीतें भिन्न होनेतें पर है; यातैं परतः प्रमात्वग्रह होवै है. यद्यपि न्यायमतमें अनुमितिका विषय पक्षभी होवै है, औ उक्त अनुमितिमें जलज्ञान पक्ष है यातें प्रमात्वका अनुमानभी ज्ञानग्राहक सामग्री है, तैसें अनुव्यवसायभी दो प्रकारका होवै है. एक तौ "जलमहं जानामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है जहां प्रमात्व निश्चयतैं उत्तर अनुव्यवसाय होवै तहां "जलं प्रमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, यातें उक्त अनुमानरूप ज्ञानग्राहकसामग्रीतें प्रमात्वका निश्चय हुया औ द्वितीय अनुव्यवसायकी सामग्रीभी ज्ञानग्राहक है, तासें प्रमात्वका निश्चय हुया. इस रीतिसें सिद्धांतकोटि स्वतःप्रामाण्यग्रहकी प्राप्ति हुई; तथापि जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री सो सारी प्रमात्वकी ग्राहक है यह सिद्धांतकोटि है; ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीमें "जलमहं जानामि",

या अनुव्यवसायकी सामग्रीभी अंतर्भूत है, तातैं प्रमात्वका ग्रह होवै नहीं, यातैं सिद्धांत कोटिका अंगीकार नहीं.

इसरीतिसैं घटादिकनके ज्ञानतैं घटादिकनका प्रकाश होवै है. घटादिकनके प्रकाश हुयेभी घटादिकनके ज्ञानका औ ज्ञानके आश्रय आत्माका प्रकाश होवै नहीं. जिसकालमैं अनुव्यवसायज्ञान होवै तब घटादिक विषयसहित औ आत्मसहित घटादिज्ञानका प्रकाश होवै है, परंतु अनुव्यवसायज्ञानतैं व्यवसायकी त्रिपुटीका प्रकाश होवै है अनुव्यवसायका प्रकाश होवै नहीं. जब अनुव्यवसायगोचर अनुव्यवसाय होवै तब प्रथम अनुव्यवसायका प्रकाश होवै है द्वितीयअनुव्यवसाय अप्रकाशित ही रहै है. प्रथम अनुव्यवसाय तौ व्यवसायगोचर है, अनुव्यवसायगोचर द्वितीय अनुव्यवसाय है. "घटज्ञानमहं जानामि" यह द्वितीय अनुव्यवसायका स्वरूप है. द्वितीय अनुव्यवसायका व्यवहार इष्ट होवै तौ "घटज्ञानस्य ज्ञानमहं जानामि" ऐसा तृतीय अनुव्यवसाय होवै है, परंतु न्यायमतमैं घटज्ञानमैं घटका प्रकाश होयकै घटका व्यवहार सिद्ध होवै है. घटव्यवहारमैं घटज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. घटज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तब अनुव्यवसायतैं घटज्ञानका प्रकाश होयकै घटज्ञानका व्यवहार होवै है; अनुव्यवसायके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. इसरीतिसैं जाका व्यवहार इष्ट होवै ताके ज्ञानकी अपेक्षा है. विषयका प्रकाशक जो ज्ञान सो प्रकाशित होवै अथवा अप्रकाशित होवै ताके प्रकाशसैं उपयोग नहीं. जो प्रकाशितज्ञानसैं ही विषयका प्रकाश होवै तौ न्यायमतमैं अनवस्था दोष होवै. काहेतैं ? जा ज्ञानतैं विषय प्रकाश होवै सो ज्ञान स्वप्रकाश तौ है नहीं; ताका प्रकाशक ज्ञानांतर होवै तब ज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै तिस प्रथम ज्ञानका प्रकाशक ज्ञानांतरका अन्य ज्ञान चाहिये, तृतीयका प्रकाशक चतुर्थ ज्ञान चाहिये; इसरीतिसैं अनवस्था दोष होवै परस्पर सापेक्ष प्रकाश मानै तौ अन्योन्याश्रय चक्रिका दोष होवै. यातैं विषयके प्रकाशमैं अपने प्रकाशकी

ज्ञान अपेक्षा करै नहीं, किंतु स्वव्यवहारमैं प्रकाशकी अपेक्षा है, जहां घटादिक विषयका व्यवहार इष्ट होवै तहां घटज्ञानकी घटके प्रकाशवास्तै अपेक्षा है. अप्रकाशितज्ञानसैंही घटका व्यवहार होवैहै. जैसें जब घटका ज्ञान नहीं होवै है तिसकालमैं भी जलधारणादि प्रयोजनकी सिद्धि घट करै है स्वकार्यमैं प्रकाशकी अपेक्षा घट करै नहीं. तैसें ज्ञानका कार्य विषयका प्रकाश है. ता विषयप्रकाशरूप कार्यमैं अपने प्रकाशकी अपेक्षा ज्ञान करै नहीं. घटकी नाईं स्वव्यवहारमैं प्रकाशवास्तै ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञान करैहै. जा ज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तिस ज्ञानका ज्ञान होवै है. ज्ञानज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं इच्छाके विषयकूं इष्ट कहै हैं: यातैं न्यायमतमैं अनवस्था दोष कहै हैं, सो तिनका अविवेकमूलक प्रलाप है. इसरीतिसे न्यायमतमैं कोई ज्ञान स्वप्रकाश नहीं, यातैं ज्ञानके ज्ञानकी जासैं उत्पत्ति होवै सो **ज्ञानग्राहक सामग्री** कहिये है. अनुव्यवसाय-ज्ञानकी सामग्री मनःसंयोगादिक औ ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंध है, सो अनुव्यवसायभेदसैं नाना है. तैसैं "जलज्ञानं प्रमा" यह अनुमितिभी ज्ञानका ज्ञान है, ताका जनक अनुमान है, सोभी ज्ञानग्राहक सामग्री है; औ तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान नहीं होवै है, औ "जलं प्रमिनोमि" इस अनुव्य-सायकी सामग्रीभी ज्ञानग्राहक सामग्री है; औ तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवै है, परंतु "जलमहं जानामि" यह अनुव्यवसायभी जलज्ञानका ज्ञान है औ जलज्ञानके प्रमात्वकूं प्रकाशै नहीं; यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री उक्त अनुव्यवसाय सामग्रीसैं जलज्ञानके प्रमात्वका अग्रहण होनेतैं जलज्ञान-ग्राहक सकल सामग्रीतैं जलज्ञानके प्रमात्वका ग्रहण नहीं होनेतैं स्वतःप्रामाण्यग्रह होवै नहीं; किंतु परतः प्रामाण्यग्रह होवैहै. जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री तिन सर्वतैं प्रमात्वग्रह होवै, याकूं **स्वतः प्रामाण्यग्रह** कहैं हैं. या पक्षमैं प्रमात्वधर्मकूं त्यागिकै किसी ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं. प्रमात्व ज्ञानत्व ये उभयधर्मविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवैहै; केवल ज्ञानत्वधर्मवि-

शिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं. औ परतः प्रामाण्यग्रहवादमैं प्रथम अनुव्यवसायतैं प्रमात्वकूं त्यागिकै ज्ञानत्वविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवैहै, फेरि अन्य अनुव्यवसायतैं वा उक्त प्रकारके अनुमानतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है.

मीमांसक औ सिद्धांतसंमत स्वतः प्रामाण्यवादमैं दोष ॥ ७२ ॥

मीमांसकमतमैं औ सिद्धांतमतमैं स्वतः प्रामाण्यग्रहका अंगीकार है न्यायवैशेषिक मतमैं परतः प्रामाण्यग्रहका अंगीकार है औ स्वतः प्रामाण्यग्रहमैं यह दोष कह्या है. जहां एक पदार्थका अनेकबार ज्ञान होयकै प्रवृत्ति हुई होवै तहां तौ ज्ञानके प्रमात्वमैं कहूं संदेह होवै नहीं. काहेतैं ? अनेकबार सफल प्रवृत्ति होयकै प्रमात्वनिश्चय होय जावै है, सो प्रमात्वनिश्चय प्रमात्वसंशयका विरोधी है, परंतु जा पदार्थका अपूर्व ज्ञान होवै ताके ज्ञानमैं प्रमात्वका संदेह होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? अद्वैतमतमैं औ प्रभाकरके मतमैं तौ ज्ञान स्वप्रकाश है; यातैं ज्ञान कदीभी अगृहीत होवै नहीं गृहीतही होवै है, यातैं प्रमात्वभी साथिही गृहीत होवै तौ निर्णीत पदार्थका संदेह होवै नहीं, यातैं प्रमात्वका संदेह संभवै नहीं. सिद्धांतपक्षमैं तौ प्रकाशरूप ज्ञान है, प्रकाशपदार्थका ज्ञानपदार्थसैं भेद नहीं.

प्रभाकरके मतमैं सारे ज्ञानतैं त्रिपुटीका प्रकाश ॥ ७३ ॥

औ प्रभाकरके मतमैं ज्ञानके विषयमैं प्रकाश होवै है. प्रकाशका हेतु ज्ञान है. जैसें घटका ज्ञान होवै तब घट ज्ञानतैं घटका प्रकाश होवै. तैसैं घटका ज्ञान अपने स्वरूपका प्रकाश करै है. औ अपना आश्रय जो आत्मा ताका प्रकाश करै है, सारे ज्ञान त्रिपुटीकूं प्रकाशै है. ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयका समुदाय **त्रिपुटी** कहिये है. इसरीतिसैं प्रभाकरके मतमैं अपनें स्वरूपकूंभी ज्ञान विषय करै है औ अपनें प्रमात्वकूं विषय करै है.

मुरारिमिश्रका मत ॥ ७४ ॥

औ **रारिमिश्रके मतमैं** ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसायतैं होवै है.

औ तिस ज्ञानका प्रकाशक अनुमितिही प्रमात्वका **प्रकाश मान्या** है; यातें अनुव्यवसायसें उत्तरप्रमात्वका संदेह नहीं हुया चाहिये.

भट्टका सिद्धांत ॥ ७९ ॥

तैसें **भट्टका यह सिद्धांत** है:—घटादिकनके ज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै नहीं. काहेतें ? ज्ञानगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातें ज्ञानका ज्ञान अनुमितिरूप होवै है , मानसप्रत्यक्षरूप नहीं. सो अनुमिति ज्ञान इसरीतिसें होवै है इंद्रियविषयके संयोगतें प्रत्यक्षज्ञान होवै अथवा अनुमिति ज्ञान होवै सकल ज्ञानतें घटादिक विषयमें ज्ञातता नाम धर्म उपजै है. इसीवास्तै ज्ञान हुयां पाछे " ज्ञातो घटः " ऐसा व्यवहार होवै है. ज्ञानसें प्रथम जो घटइंद्रियका संयोग होवै, तासें "अयं घटः" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. सो प्रत्यक्षज्ञान समवायसंबंधसें ज्ञातासें रहैहै, विषयतासंबंधसें घटमें रहैहै. जहां विषयता संबंधसें ज्ञान होवै तहां समवाय संबंधसें ज्ञातता उपजै है. इसरीतिसें घटके ज्ञानतें घटमें ज्ञातता उपजै है. तिस ज्ञातताका उपादानकारण घट है, निमित्तकारण ज्ञान है. असमवायिकारणपरिभाषा भट्टके मतमें है नहीं. उपादान कारणसें भिन्नकूं **निमित्तकारण** ही कहै हैं. इसरीतिसें ज्ञानजन्य ज्ञातता धर्म घटमें होवै है. प्रथम तो "अयं घटः" इसरीतिसें घटका प्रकाशक प्रत्यक्ष हुया है. ता प्रत्यक्षसें घटमें ज्ञातता धर्म उपज्या तब इंद्रियसंयोगतें तिसी घटका "ज्ञातो घटः" इसरीतिसें प्रत्यक्ष होवै है. इस रीतिसें ज्ञानजन्य ज्ञातताका बाह्य इंद्रियसें प्रत्यक्ष होवै है. औ बाह्य पदार्थके ज्ञानका बाह्य इंद्रियसें तो किसीके मतमें प्रत्यक्ष होवै नहीं. न्यायादिकनके मतमें ज्ञानका मानसप्रत्यक्ष होवै है. भट्टके मतमें घटादिकनके ज्ञानका मानसप्रत्यक्षभी होवै नहीं परंतु घटादिज्ञानका अनुमानजन्य अनुमितिज्ञान होवै है. **अनुमानका यह आकार** है. "अयं घटः विषयतासंबंधेन ज्ञानवान्समवायेन ज्ञाततावत्त्वात् । यत्रयत्र समवायेन ज्ञातता तत्र विषयतासंबंधेन ज्ञानम्" या स्थानमें पुरोवर्ति घट पक्ष है, विषयतासंबंधसें

ज्ञान साध्य है, आगे हेतु दृष्टांत है. अन्य ग्रन्थनमें प्रकारांतरसैं अनुमान लिख्या है सो कठिन है. औ भट्टके मतमें अनुमानसैं ज्ञान जानिये है यह सुगमरीति दिखाई है. इसरीतिसैं ज्ञानग्राहकसामग्री भट्टके मतमैं अनुमान है.

न्याय वैशेषिक मतका निष्कर्ष ॥ ७६ ॥

या अनुमानतैं ही घटज्ञानके प्रमात्वकाभी ज्ञान होवैहै. यातैं ज्ञानकी अनुमिति हुये पाछे प्रमात्वका संदेह भट्टमतमैं नहीं हुया चाहिये; यातैं ज्ञानके सकल ज्ञानतैं प्रमात्वका निश्चय होवै नहीं; किंतु सफल प्रवृत्ति हुये पाछे ज्ञानके प्रमात्वका निश्चय होवै है. यह न्यायका औ वैशेषिकका मत है. याकूं परतः प्रामाण्यवाद कहैं हैं ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं; अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है तैसैं अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. प्रमात्वकी नाईं अप्रमात्वकी परतः उत्पत्ति होवै है औ परतः ज्ञान होवैहै, जो ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं ज्ञानके अप्रमात्व धर्मकी उत्पत्ति होवै तौ सकल ज्ञान अप्रमा हुये चाहियें; यातैं ज्ञानकी जनक सामग्रीसैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं, ज्ञानके जनक इंद्रिय अनुमानादिक हैं. तिनमैं दोषका सहकार होवै तौ अप्रमात्वसहित ज्ञानकी उत्पत्ति होवै ऐसैं दोष नानाविध हैं.

प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां तौ नेत्रादिगत प्रमाण दोषकी नाईं विषयगत सादृश्य दोषभी हेतु है, कहूं प्रत्यक्षभ्रममैं विषयगत सादृश्य दोषका व्यभिचारभी है. परंतु सदृशमैंही बहुत भ्रम होवै है, यातैं बहुत स्थानमैं तौ सादृश्यदोष भ्रमका हेतु है, जहां विसदृशमैं भ्रम अनुभवसिद्ध होवै तहां सादृश्य दोष भ्रमका कारण नहीं, एक रूपसैं दोष हेतु नहीं; किंतु जिसके हुयां जो भ्रम होवै तिस दोषकूं तिसभ्रमकी कारणता है. परोक्षभ्रमज्ञानमैं सादृश्यकी अपेक्षा नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, यातैं परोक्षज्ञानमैं विषयगत दोष हेतु नहीं; किंतु अनुमितिभ्रमविषै अनुमान दोष हेतु है, व्याप्य हेतुका ज्ञान अनुमान

है, हेतुमैं व्यभिचारादिक दोष न्यायग्रंथनमैं प्रसिद्ध हैं, औ शाब्दभ्रम होवै तहां श्रोतामैं वाक्यतात्पर्यका अनवधारण दोष है, वक्तामैं विप्रलंभकतादिक दोष हैं, शब्दमैं अन्यथा बोधकत्वादिक दोष हैं, इसरीतिमैं अप्रमात्वके हेतुदोष अनुभवानुसारतैं जानने चाहियें.

या प्रसंगमैं प्रमात्वकी उत्पत्ति औ अप्रमात्वकी उत्पत्ति कही सो विरुद्ध प्रतीत होवै है. भूत भविष्यत वर्तमान सकल प्रमामैं प्रमात्वधर्म एक है तैसैं सकल अप्रमामैं अप्रमात्वभी एक है. तिनकी उत्पत्ति कहना संभवै नहीं, तथापि अपने कारणतैं ज्ञान उपजै तब कोई ज्ञान प्रमा होवै है कोई अप्रमा होवै है. प्रमात्वविशिष्ट प्रमा होवै है, अप्रमात्वविशिष्ट अप्रमा होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानमैं प्रमात्व औ अप्रमात्व धर्मकी विलक्षणता ज्ञानकी जनक सामग्रीके अधीन है. कहूं ज्ञानकी ऐसी सामग्री है, जातैं प्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है; औ कहूं ऐसी सामग्री है, जातैं अप्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै. यातैं ऐसा मानना चाहिये. प्रमात्व धर्म तौ एक है, सकल प्रमामैं ताका संबंध है, परंतु प्रमात्वका संबंध सामग्रीके अधीन है; इसरीतिसैं ज्ञानमैं प्रमात्वकी प्रयोजक सामग्री होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति कही है. तैसैं अप्रमात्वका प्रयोजक दोष है, यातैं दोषजन्य अप्रमात्व कहिये है. दोषजन्य कहनेका दोष प्रयोज्यमैं तात्पर्य है, औ तिनके ज्ञानकी तौ मुख्य उत्पत्ति संभवै है.

यद्यपि सिद्धांतमैं साक्षीभास्य प्रमात्व है, यातैं प्रमात्वके ज्ञानकीभी उत्पत्ति कहें साक्षीकी उत्पत्ति सिद्ध होवै है सो बनै नहीं. तथापि वृत्तिमैं आरूढसाक्षी प्रमात्वादिकनकूं प्रकाशै है, यातैं वृत्तिभी ज्ञान कहिये है, ताकी उत्पत्ति संभवै है. यह वार्ता पूर्व कही है, तथापि उक्त अर्थके कथनतैं श्रोता अध्येताकूं बोध दृढ होवै है. शास्त्रीय अर्थके मंदसंस्कारवाले पुरुषकूं वारंवार कहनेतैं अनायासतैं बोध होवै है. यातैं इस प्रकरणमैं अनेक अर्थ वारंवार कहेहैं, पुनरुक्ति दोष नहीं. इस

रीतिसैं न्यायमतमैं परतः प्रामाण्यवाद मान्या है औ स्वतः प्रामाण्यवादमैं संशयकी अनुपपत्ति दोष कह्या है.

न्याय वैशेषिक मतका खंडन ॥ ७७ ॥

सो सकल असंगत है. प्रमात्वका ज्ञान तौ पाछे कहैंगे, प्रथम तौ अनुव्यवसाय ज्ञानतैं ज्ञानका प्रकाश होवैहै; यह कथन असंगत है. काहेतैं ? जो अप्रकाश स्वभाव ज्ञान होवै तौ ताके संबंधतैं घटादिकनका प्रकाश नहीं होवैगा. औ जो पूर्व कह्या घटादिकनके प्रकाशमैं ज्ञान अपने प्रकाशकी अपेक्षा करै नहीं. जैसैं घटादिक अज्ञातभी स्वकार्य करैं हैं. तैसैं ज्ञानभी अज्ञात हुया विषयका प्रकाशरूप स्वकार्य करैहै; सो संभवै नहीं. काहेतैं ? सारे भौतिक ज्योति आप प्रकाशरूप हुये अन्यकूं प्रकाशैं हैं, प्रकाशहीन ज्योतिसैं किसीका प्रकाश देख्या नहीं. जो प्रकाशहीनभी स्वभावबलतैं स्वसंबंधीका प्रकाश करै तौ सुवर्णस्थ ज्योतिर्भागतैंभी सुवर्णसंबंधी घटादिकनका प्रकाश हुया चाहिये. स्वरूपप्रकाशतैं प्रकाशमान भौतिक ज्योतिसैं घटादिकनका प्रकाश देख्याहै; औ स्वरूपप्रकाशतैं अप्रकाशमान सुवर्ण रजतादिरूप ज्योतिसैं किसीका प्रकाश देख्या नहीं, यातैं स्वरूपप्रकाशतैं प्रकाशमान ज्ञानके संबंधसैं घटादिकनका प्रकाश होवै यह मानना चाहिये; यातैं प्रकाशस्वभावज्ञान है. केवल दृष्टांतबलसैं ज्ञानकूं स्वप्रकाशता नहीं मानै है; किंतु अनुभवसैंभी स्वप्रकाशता सिद्ध होवै है. जहां दुर्बोध अज्ञात पदार्थका पुरुषकूं ज्ञान होयके "ज्ञातव्यं ज्ञातं नावशिष्यते ज्ञातुम्" ऐसा वाक्य हर्षसैं कहै ताकूं अन्य पुरुष कहैः—"एतदज्ञानं ज्ञातुमवशिष्यते" इस वाक्यकूं सुनिकै हास्य करैहै; यातैं ज्ञानका प्रकाशताके अनुभवसिद्ध है. ज्ञानके प्रकाशकी अवशेषता सुनिकै हँसैहै; और "घटज्ञानं ज्ञातं न वा" इसवाक्यके वक्ताकूं निर्बुद्धि कहैंहैं; यातैं कदाचित्भी ज्ञानमैं अज्ञातता नहीं अज्ञातताके अभावतैं ज्ञानगोचर अनुव्यवसाय होवैहै, यह कथन असंगत है औ किसी पुरुषकूं ऐसा संदेह होवै नहीं, मेरेकूं घटका ज्ञान हुया है

अथवा नहीं हुया. जो घटका ज्ञान अज्ञात होवै तौ कदाचित् संदेहभी हुया चाहिये; यातैं ज्ञान अज्ञात होवै नहीं. ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसाय होवै है, यह कथन असंगत है. औ जो ऐसैं कहैः—ज्ञानगोचरज्ञान नहीं होवै तौ "अयं घटः घटमहं जानामि" इसरीतिसैं ज्ञानमैं विलक्षणताप्रतीति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं? न्यायमतमैं तौ प्रथमज्ञानका विषय घट है, द्वितीयज्ञानका विषय घटज्ञान है, यातैं विषयभेदतैं ज्ञानोंकी विलक्षणता संभवै है और स्वप्रकाश ज्ञानवादीके मतमैं ज्ञानका विषय ज्ञान होवै नहीं. दोनूं ज्ञानोंका विषय घट होनेतैं विषयभेदके अभावतैं विलक्षणप्रतीति नहीं हुई चाहिये, यह शंकाभी संभवै नहीं. जैसें एकही घटका कदाचित् "अयं घटः" ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् "अनित्यो घटः" ऐसाज्ञान होवै है, तहां विषयके भेदविना विलक्षणज्ञान होवैहै; परंतु प्रथम ज्ञानमें घटकी अनित्यता भासै नहीं. औ द्वितीय ज्ञानमें घटकी अनित्यता भासै है, तैसें "अयं घटः" या ज्ञानमैं घटकी ज्ञातता भासै नहीं. औ "घटमहं जानामि" या ज्ञानमें घटकी ज्ञातता भासै है. ज्ञानजन्यप्रकटताकूं ज्ञातता कहैं हैं. द्वितीयज्ञानका विषय घटवृत्ति ज्ञातता है, घटका ज्ञान नहीं, इसीवास्तै घटज्ञानसैं उत्तरकालमें कदाचित् "घटमहं जानामि" ऐसा ज्ञान होवै है. कदाचित् "ज्ञातो घटः" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै. "ज्ञातो घटः" या प्रत्यक्षका विषय घटकी ज्ञातता है. यह अर्थ भट्टकूं संमत है औ अनुभवानुसारी है. काहेतैं? जैसें "अनित्यो घटः" या कहनेतैं अनित्यपदार्थमैं विशेषण अनित्यत्वकी प्रतीति घटमैं सर्वकूं संमत है, तैसें "ज्ञातो घटः" या कहनेतैं ज्ञातपदार्थमैं विशेषण ज्ञातत्वकी घटमैं प्रतीति सर्वानुभवसिद्ध है. "ज्ञातो घटः" इस ज्ञानके अवसरमैं "घटमहं जानामि" यह ज्ञान होवै है, यातैं "घटमहं जानामि" यह ज्ञानभी घटकी ज्ञातताकूं विषय करैहै; इसरीतिसैं ज्ञानगोचरज्ञान नहीं मानैं तौभी "अयं घटः, घटमहं जानामि" इसरीतिसैं विलक्षण ज्ञान संभवै है; यातैं अनुव्यवसायज्ञानका विषय ज्ञान है यह नैयायिकमत असंगत है.

मुरारिमिश्रके मतका खंडन ॥ ७८ ॥

तैसैं मुरारिमिश्रका मतभी या प्रसंगमैं नैयायिकमततुल्य है; यातैं असंगत है. यद्यपि मुरारिमिश्रके मतमैं ज्ञानप्रकाशक अनुव्यवसायतैं ही प्रमात्वका प्रकाश होवै है इतना न्यायमतसैं विशेष है, तथापि यह विशेष अकिंचित्कर है. काहेतैं? अप्रकाश स्वभावज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवै है या अंशमैं न्यायके तुल्य होनेतैं असंगत है.

भट्टमतखंडन ॥ ७९ ॥

तैसैं भट्टके मतमैं अनुमितिमैं ज्ञानका परोक्ष प्रकाश होवैहै यह न्यायतैंभी असंगत है. काहेतैं ? तिसके मतमैंभी ज्ञानका प्रकाशक जो अनुमिति तासैं प्रमात्वका प्रकाश होवै है इतना अंश तौ न्यायसैं विलक्षण है; सिद्धांत अनुकूल है, तथापि घटादिक विषयकूं अपरोक्षता करनेवाले प्रत्यक्षज्ञानका अनुमितिरूप परोक्ष प्रकाश होवै है, यह कथन हास्यका आस्पद है.

प्रभाकरमतका खंडन ॥ ८० ॥

तैसैं प्रभाकरके मतमैंभी घटज्ञानादिक अपनें प्रकाशमैं अनुव्यवसायकी अपेक्षा करै नहीं. इतने अंशमैं सिद्धांतके अनुकूल है औ—प्रमात्वग्रहमैं ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं इस अंशमैंभी सिद्धांतके अनुकूल है, तथापि प्रभाकरमतभी श्रद्धायोग्य नहीं. काहेतैं ? सकलज्ञान स्वप्रकाश हैं औ त्रिपुटीविषयक हैं, केवल विषयगोचर कोई ज्ञान होवै नहीं. सारै ज्ञान "घटमहं जानामि" इसरीतिसैं त्रिपुटीगोचर होवैहै. "अयं घटः" इसरीतिसैं केवल विषयगोचर ज्ञान अप्रसिद्ध है. घटसैं इंद्रियका संबंध हुये घटका ज्ञान होवै सो घटकूं औ अपने स्वरूपकूं तथा अपने आश्रय आत्माकूं विषय करैहै, तैसैं घटका ज्ञानही अपनें धर्म प्रमात्वकूं विषय करै है; इस रीतिसैं घटका ज्ञान अपनें प्रकाशमैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं. इतना अंश तौ समीचीन है, परंतु अपना प्रकाश आप करैहै, यह विरुद्ध है. एक क्रियाका जो कर्ता होवै सो कर्म होवै नहीं; यातैं

प्रकाशका कर्ता आप औ प्रकाशका कर्मभी आपही; यह कथनभी विरुद्ध है. औ सिद्धान्तमैं तौ ज्ञान प्रकाशरूप है, यातें उक्त विरोध नहीं. इस रीतिसें प्रकाशरूप ज्ञानकूं नहीं मानैं सो मत सकल अशुद्ध है. यातैं ज्ञानका अनुव्यवसायतें प्रकाश होवै है,यह नैयायिक वचन असंगतहै

स्वतः प्रामाण्यवादका अंगीकार और सिद्धांतमतमैं उक्त संशयानुपपत्तिरूप दोषका उद्धार ॥ ८१ ॥

औ ज्ञानग्रहकालमैं प्रमात्वका ग्रह होवै तौ संशयानुपपत्ति होवैहै या-का यह समाधान है:—ज्ञानकी ग्राहकसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवैहै, परंतु दोषाभावसहित ज्ञानसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवैहै यह आगे कहैंगे. जहां संशय होवै तहां दोषाभाव नहीं, जो दोष नहीं होवै तौ संशय संभवै नहीं. काहेतें ? संशयज्ञानभी भ्रम है औ भ्रमकी उत्पत्तिमैं दोष हेतु है, यातैं संशय स्थलमैं दोषाभाव संभवै नहीं. औ प्रमात्वज्ञानमैं दोषा-भाव हेतु है, यातें जहां संशय होवैहै तहां प्रमात्वका ज्ञान नहीं होवै है, यातैं संशय संभवै है, सिद्धांतमैं वृत्तिरूपज्ञानका साक्षीसैं प्रकाश होवैहै, यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री साक्षी है, तासैंही वृत्तिज्ञानके प्रमात्वका ग्रह होवै है, परंतु किसी स्थानमैं ज्ञान तौ प्रमा होवैहै ऐसा विलक्षण दोष होवै. जासैं अनिर्वचनीय भ्रमकी तौ उत्पत्तिहोवै नहीं. यातैं ज्ञान तौ प्रमा हुया ताके प्रमात्वका प्रकाश साक्षी करै तिसमैं प्रतिबंधक होय जावै, यातैं ज्ञानग्राहक साक्षी तौ है, प्रमात्वका ग्रहण होवै नहीं, इसकारणतैं उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै है.ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीतैं प्रमात्वके ग्रहकूं स्वतोग्र-ह कहैहैं उक्तस्थलमैं ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वग्रह हुया नहीं,यातैं अव्याप्ति है, तथापि दोषाभावसहित ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवै ताकूं स्वतःप्रामाण्यग्रह कहैं हैं. उक्त स्थलमैं दोषाभावसहित सामग्री नहीं; किंतु दोषसहित सामग्री है; यातैं उक्त स्थलमैं लक्ष्य नहीं; या कारणतैं अव्याप्ति नहीं. इसरीतिसैं ज्ञानके प्रमात्वका प्रकाशक तौ दोषाभावसहित

साक्षी है औ अप्रमात्वका ग्रह तौ साक्षीसैं होवै नहीं. काहेतैं ? भ्रमका लक्षण दोषजन्यत्व है अथवा निष्फल प्रवृत्तिजनकत्व है अथवा अधिष्ठानसैं विषम सत्तावालेका अवभास है ? इसरीतिसैं दोषघटित निष्फल प्रवृत्तिघटित विषमसत्ताघटित भ्रमके लक्षण हैं सो दोषादिक साक्षीके विषय नहीं, यातैं दोषादिघटित अप्रमात्वभी साक्षीका विषय नहीं; यातैं अप्रमात्वका ज्ञान तौ नैयायिककी नाईं निष्फलप्रवृत्ति देखिके होवै है, तैसैं अप्रमात्वकी उत्पत्तिभी ज्ञानकी सामान्य सामग्रीतैं होवै तौ सकल ज्ञान अप्रमा हुये चाहियें; यातैं दोषसहित ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै याका अर्थ यह है:-दोष सहित नेत्रानुमानादिकनतैं अप्रमा ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै, अप्रमात्वविशिष्ट भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति ही या प्रकरणमैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति कहिये है, औ प्रमात्वकी उत्पत्ति तौ ज्ञानकी सामान्य सामग्रीतैं ही होवैहै.

न्यायमत (परतःप्रामाण्यवाद) में दोष ॥ ८२ ॥

औ जो प्रमात्वकी उत्पत्तिमें गुण कारण कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षस्थलमैं अधिक अवयवनतैं इंद्रियका संयोग गुण कह्या सो निरवयव रूपादिके प्रत्यक्षमैं संभवै नहीं. औ अनुमितिमैं व्याप्य हेतुका पक्षमैं ज्ञान गुण कह्या सोभी संभवै नहीं; काहेतैं ? जहां वह्निसहित पर्वतमैं धूलिपटलमैं धूमभ्रम होयके वह्निका ज्ञान होवै तहां उक्त गुण तौ नहीं है; औ वह्निकी अनुमिति प्रमा होवै है, यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं गुणकूं जनकता कहना संभवै नहीं, किंतु ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है.

औ जो ऐसैं कहै:-ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति मानैं तौ भ्रमस्थलमैं भी ज्ञानसामान्यसामग्री होनेतैं प्रमाज्ञान हुया चाहिये, ताका यह समाधान है:-दोष होवै तहां प्रमाज्ञान होवै नहीं, यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं दोष प्रतिबंधक है. औ सकल कार्यकी

उत्पत्तिमैं प्रतिबंधकाभाव हेतु है, यातैं दोषाभावसहित ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै. इहां प्रमात्वकी उत्पत्ति कहनेमैं प्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्तिमैं तात्पर्य है; यातैं प्रमात्वधर्मकी उत्पत्तिकथन असंगत नहीं. इस रीतिसैं दोषाभावसहित जो ज्ञानकी उत्पादक नेत्रादिरूप सामग्री तासैं प्रमाज्ञानकी उत्पत्ति होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति स्वतः होवैहै.

यद्यपि ज्ञान सामान्यकी सामग्री इंद्रियअनुमानादिक हैं, सामान्यज्ञानका कारण दोषाभाव नहीं औ प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं दोषाभावभी कारण कह्या यातैं सामान्यसामग्रीतैं अधिककारणजन्य होनेतैं परतः प्रामाण्यका अंगीकार हुया, तथापि ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं अधिक भावकी अपेक्षा होवै तौ परतःप्रामाण्य होवै है; अभावरूपदोषाभावकी अपेक्षातैं परतः प्रामाण्य होवै नहीं. तैसैं ज्ञानकी ग्राहक सामग्री साक्षी है. दोषाभावसहित साक्षीमैं ज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवै है औ दोषसहित इंद्रिय अनुमानादिरूपज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. ज्ञानसामान्यकी सामग्री इंद्रिय अनुमानादिक है, तिनतैं दोष पर है, यातैं अप्रमात्वकी उत्पत्तिपरतैं होवै है. औ भ्रम होयकै प्रवृत्ति हुयें फलका लाभ नहीं होवै, तब अप्रमात्व अनुमिति ज्ञान होवै सो अनुमानसैं होवै है; और ज्ञानग्राहकसामग्री साक्षीसैं अनुमानभिन्न है यातैं अप्रामाण्यग्रहभी परतैं होवै है. अनुमानका आकार यहहैः—"इदं जलज्ञानं अप्रमा निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वात्। यत्र यत्र निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वं तत्र अप्रमात्वम्। यथा भ्रमांतरम्" इस रीतिसैं ज्ञानकी उत्पत्तिकालमैं ही साक्षीमैं ज्ञानके स्वरूपका प्रकाश होवै है औ ज्ञानवृत्ति प्रमात्वका प्रकाश होवै है.

अख्यातिवादीके वचनका परिहार ॥ ८३ ॥

निश्चयज्ञानका संशयज्ञानसैं विरोध है, यातैं प्रमात्वका निश्चय हुयां प्रमात्वका संदेह होवै नहीं, यातैं भ्रमत्व संदेहसैं निष्कंप प्रवृत्तिका अभाव होवैगा; यह अख्यातिवादीका वचन असंगतहै. यद्यपि प्रमात्व संशयका

विरोधी प्रामात्वनिश्चय है, भ्रमत्वसंशयका विरोधी प्रमात्वनिश्चय नहीं. काहेतें ? समानविषयमैं संशय औ निश्चय विरोधी होवैं हैं.प्रमात्वनिश्चय औ भ्रमत्वसंशयके विषय प्रमात्व औ भ्रमत्व भिन्न हैं यातें अख्यातिवादी-कथित वचन संगत है, तथापि जिस ज्ञानमैं प्रमात्वनिश्चय होवैतिस ज्ञानमैं भ्रमत्वका निश्चय औ भ्रमत्वका संदेह होवै नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, यातें भ्रमत्वसंदेहकाभी विरोधीहै, औ विचार करें तौ प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं एकही पदार्थ है. काहेतें? "एतदज्ञानं प्रमा न वा" यह प्रमात्व संशयका आकार है. यामैं विरोधिकोटी प्रमात्व हे औ निषेधकोटी भ्रमत्व है. काहेतें ? ज्ञानमैं प्रमात्वका निषेध करे भ्रमत्वही शेष रहै है. तैसें "एतदज्ञानं भ्रमो न वा" यह भ्रमत्वसंशयका आकार है यामैं विधिकोटि भ्रमत्व है निषेधकोटि प्रमात्वहै. ज्ञानमैं भ्रमत्वका निषेध करें तौ प्रमात्वकाही शेष रहैहै; इसरीतिसैं दोनूं संशयमैं भ्रमत्व प्रमात्व दो कोटि समान हैं, यातें प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं, तथापि जामैं विधिकोटि प्रमात्व है सो प्रमात्वसंशय कहियेहै, जामैं विधि कोटि भ्रमत्व है सो भ्रमत्वसंशय कहिये है, या प्रकारमैं प्रमात्व संशय औ भ्रमत्वसंशयका विषय समान होनेतें प्रमात्वनिश्चय हुयां जैसें प्रमात्वसंशय होवै नहीं तैसें भ्रमत्वसंशयभी होवै नहीं; यातें सिद्धांतमतमैंभ्रमज्ञानकूं मानैं तौभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवैहै.अनिर्वचनीयका निश्चय भ्रमनिश्चय है.

भ्रांतिज्ञानकी त्रिविधता औ वृत्तिभेदका उद्धार ॥ ८४ ॥

इसरीतिसैं संशयनिश्चयभेदसैं भ्रमज्ञान दो प्रकारका है. तर्कज्ञानका भ्रम निश्चयके अंतर्भूत है. काहेतें ? व्याप्यके आरोपतैं व्यापकका आरोप तर्क है. जैसें "यदि वह्निर्न स्यात्तदा धूमोपि न स्यात" ऐसा ज्ञान धूमवह्निसहितदेशमैं होवै सो तर्क है, तहां वह्निका अभाव व्याप्य है, धूमका अभाव व्यापक है, वह्न्यभावके आरोपतैं धूमाभावका आरोप होवैहै, वह्निधूमके होनेतें वह्न्यभावका औ धूमाभावका ज्ञान है, यातें भ्रम है

बाध होनेतैं भ्रम होवैं ताकूं **आरोप** कहैं हैं; इहां धूमवह्निका सद्भाव है, यातैं तिनके अभावका बाध है, ताके होनेतैं भी पुरुषकी इच्छातैं वह्निके अभावका औ धूमाभावका भ्रमज्ञान होवै है यातैं आरोप है. इस रीतिसैं आरोपस्वरूप तर्कभी भ्रमके अंतर्भूत है, पृथक् नहीं. वृत्तिके प्रसिद्ध भेद कहे औ अवांतर भेद अनंत है.

इतिश्रीमन्निश्चलदाससाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे वृत्तिभेदनिरूपणप्रसंगप्राप्त सत्ख्यात्यादिनिराकरणागताख्यातिनिराकरणप्रयोजकस्वतः-प्रमात्वप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

अथ जीवेश्वरस्वरूपवृत्तिप्रयोजनसहित कल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमप्रकाशप्रारम्भः ।

अज्ञानविषे विचार,

वृत्तिके प्रयोजन कहनेकी प्रतिज्ञा ॥ १ ॥

सप्तम प्रकाशमैं वृत्तिका स्वरूप कह्या, अब अष्टम प्रकाशमैं वृत्तिका प्रयोजन कहते हैं. अज्ञानकी निवृत्ति वृत्तिका **मुख्य प्रयोजन** है. घटादिक अनात्माकार वृत्तिमैं घटादिक अवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. अखंड ब्रह्माकारवृत्तिसैं निरवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै है.

अज्ञानका आश्रय औ विषय ॥ २ ॥

वाचस्पतिके मतमैं वृत्तिसैं नाश्य अज्ञानका आश्रय जीव है औ विषय ब्रह्म है. विवरणकारादिकनके मतमैं अज्ञानका आश्रय औ विषय शुद्धचेतन है. जैसैं ज्ञानकृत घटादिकनका प्रकाश **ज्ञानकी विषयता** कहियेहै, तैसैं अज्ञानकृत स्वरूपका आच्छादनही अज्ञानकी विषयता है. जीवभाव ईशभाव अज्ञानाधीन हैं यातैं अज्ञानकृत जीव अज्ञानका आश्रय संभवै नहीं; इस अर्थके ज्ञानमैं उपयोगी प्रथम जीव ईश्वरका स्वरूप निरूपण करैंगे.

अज्ञानका निरूपण ॥ ३ ॥

जीवईश्वरके निरूपणमैं उपयोगि अज्ञानका निरूपण करैं हैं. **अज्ञान**, **अविद्या**, **प्रकृति**, **माया**, **शक्ति**, ये नाम एकही पदार्थके हैं. माया अविद्याका भेदवाद एकदेशीका है. नैयायिकादिक ज्ञानाभावकूं ही **अज्ञान** कहैं हैं. सिद्धांत मतमैं आवरण विक्षेपशक्तिवाला अनादिभावरूप **अज्ञान** पदार्थ है. विद्यासैं नाश्य होनेतैं **अविद्या** कहैं हैं, प्रपंचका उपादान होनेतैं **प्रकृति** कहैंहैं, दुर्घटकूंभी संपादन करै यातैं **माया** कहैंहैं, स्वतंत्रताके अभावतैं **शक्ति** कहैंहैं.

अज्ञानकी अनादिभावरूपतामें शंका ॥ ४ ॥

अज्ञानकूं अनादिभावरूपता कथन संभवै नहीं. काहेतैं ? यह अद्वैत ग्रंथका लेख हैः—चेतनसैं भिन्न वा अभिन्न अज्ञान है यह दोनूं पक्ष संभवैं नहीं. कहेतैं ? "नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक **श्रुतिवचनतैं** चेतनसैं भिन्नका निषेध है, औ जड चेतनका अभेद संभवै नहीं, औ भिन्नत्वअभिन्नत्वका परस्पर विरोध होनेतैं चेतनसैं भिन्नाभिन्न अज्ञान है यह कथनभी संभवै नहीं, तैसैं अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिविरोधसैं अज्ञानकूं सत्‌स्वरूपता संभवै नहीं, प्रपंचकारणताके असंभवतैं तुच्छतास्वरूप असत्‌स्वरूपता संभवै नहीं, परस्परविरोधी धर्म एकमैं संभवै नहीं, यातैं सत् असत् उभयरूप कहना संभवै नहीं. तैसैं अज्ञानकूं सावयव मानैं तौ न्यायमतमैं तौ द्रव्य आरंभक उपादानकूं अवयव कहैं हैं. सांख्यादिकमतमैं द्रव्यरूप परिणामवाले उपादानकूं **अवयव** कहैं हैं. उपादानकूं ही अवयव कहैं तौ शब्दका उपादान आकाशभी शब्दका अवयव होवैगा. तैसैं अपने गुणक्रियाके उपादानकारण घटादिकभी रूपादि गुणनके औ चलनरूप क्रियाके अवयव होवैंगे. यातैं द्रव्यके उपादानकारणकूं **अवयव** कहैं हैं, अन्यके उपादानकूं अवयव कहै नहीं. अवयवजन्यकूं **सावयव** कहैं हैं.जो अविद्या द्रव्य होवै तौ सावयवता संभवै; अविद्यामैं द्रव्य द्रव्यत्व संभवै नहीं. काहेतैं ? नित्यअनित्यभेदसैं

द्रव्य दो प्रकारका होवैहै. जो अविद्याकूं नित्यद्रव्यरूप मानैं तौ सावयवत्व कथन असंगत है.—तैसैं ज्ञानसैं अविद्याका नाश नहीं हुया चाहिये. अनित्य द्रव्यरूप मानैं तौ ताके अवयवी आत्मासैं भिन्न होनेतैं अनित्यही होवैंगे औ अवयवके अवयवभी अनित्य होनेतैं अनवस्था होवैगी. औ अंत्य अवयवकूं परमाणुकी नाईं नित्य मानैं तौ अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिवचनका विरोध होवैगा. न्यायमतमैं नित्य परमाणुका औ सांख्यमतमैं नित्यप्रधानका अंगीकार श्रुतिविरुद्ध है. इसरीतिसैं द्रव्यत्वके अभावतैं अज्ञानमैं सावयवत्व संभवै नहीं. तैसैं उपादानताके असंभवतैं निरवयव अज्ञान है, यह कथन भी संभवै नहीं; सावयवही उपादानकारण होवैहै. औ न्यायमतमैं शब्दका उपादानकारण आकाश निरवयव मान्या है.सोभी "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इस श्रुतिसैं विरुद्ध है. तैसैं द्व्यणुकका उपादानकारण परमाणु निरवयव मान्या है सोभी निरवयव परमाणुके संयोग असंभवादि दोषतैं सूत्रकारनैं शारीरक शास्त्रके द्वितीयाध्यायस्थ द्वितीय पादमैं निषेध कऱ्या है, यातैं प्रपंचके उपादान अज्ञानकूं निरवयवता संभवै नहीं, औ अज्ञानकूं प्रपंचकी उपादानता "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" इस श्रुतिमैं प्रसिद्ध है. माया औ अज्ञानका भेद नहीं. इसरीतिसैं अज्ञानमैं सावयवता अथव निरवयवता संभवै नहीं. तैसैं परस्परविरुद्ध उभयरूपताभी संभवै नहीं. इस रीतिसैं किसी धर्मसैं अज्ञानका निरूपण अशक्य होनेतैं ताकूं **अनिर्वचनीय** कहैंहै. इस प्रकारका लेख बहुत ग्रंथनमैं है, यातैं अनिर्वचनीय अज्ञानकूं अनादिभावरूपताकथन संभवै नहीं, भावरूपता कहनेतैं सत्‌रूपता सिद्ध होवैहै औ सत्‌रूपताका निषेध किया है.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ५ ॥

जैसैं सत्‌विलक्षण अज्ञान है तैसैं असत्‌विलक्षणभी है. यातैं अबाध्यरूप सत्त्व तौ अज्ञानमैं नहीं है, परंतु तुच्छरूप असत्‌सैं विलक्षणतारूप सत्त्वका अज्ञानमैं अंगीकार है इसी वास्तै सत् असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वच-

नीय अज्ञान है; सर्वथा वचनके अगोचरकूं अनिर्वचनीय नहीं कहैहैं, किंतु पारमार्थिक सतस्वरूप ब्रह्मसैं विलक्षण औ सर्वथा सत्तास्फुर्तिशून्यशशशृंगादिक असतसैं विलक्षणही **अनिर्वचनीय शब्दका पारिभाषिक अर्थ** है; यातैं अनादिभावरूपताकथन संभवै है औ नैयायिकादिकनके मतमैं जैसें निषेधमुख प्रतीतिका विषय ज्ञानाभावरूप **अज्ञान** है. तैसा अद्वैतग्रंथनमैं अज्ञानशब्दका अर्थ नहीं है; किंतु ज्ञानबाध्य रज्जुसर्पादिक जैसें विधिमुख प्रतीतिके विषय हैं तैसें ज्ञानसें निवर्तनीय विधिमुख प्रतीतिका गोचर अज्ञान है. अज्ञानशब्दमैं अकारका विरोधी अर्थ है यह पूर्व कह्या है, यातैं अज्ञानमैं भावरूपता कथन संभवै है. औ प्राचीन आचार्य विवरणकारादिकोंनैं अत्यंत उद्घोषतैं प्रकाशविरोधी अंधकारकूं भावरूपता प्रतिपादन करिकै ज्ञानविरोधी अज्ञानकूं भावरूपताही प्रतिपादन करी है; यातैं अज्ञानकूं भावरूपता श्रवण करैं तौ उत्कर्ष होवै ते अल्पश्रुत हैं. इसरीतिसैं भावरूप अवज्ञान है, उत्पत्तिरहित होनेतैं **अनादि** है औ घटकी नाई अवयवसमवेतरूप सावयव नहीं है, तथापि अंधकारकीनाई सांश है.

जीव औ ईश्वरविषै विचार,

माया अविद्यापूर्वक जीवईश्वरके रूपमैं च्यारि पक्ष ॥ ६ ॥

शुद्धचेतनके आश्रित मूलप्रकृतिमैं चेतनका प्रतिबिंब ईश्वर है आवरणशक्तिविशिष्ट मूलप्रकृतिके अंशनकूं अविद्या कहैं हैं, अविद्यारूप अनंत अंशनमैं चेतनके अनंत प्रतिबिंब **जीव** कहैं हैं औ **तत्त्वविवेक ग्रंथनमैं** इसरीतिसैं जीव ईश्वरका निरूपण है. जगत्का **मूलभूतप्रकृतिके दो** रूप कल्पित हैं, इसीवास्तै मूल प्रकृतिके प्रसंगमैं "माया चाविद्या च स्वयमेव भवति" यह **श्रुति** है "**स्वयमेव**" कहिये जगत्का मूल प्रकृति आपही मायारूप अविद्यारूप होवै है शुद्धसत्त्वप्रधान **माया** है, मलिनसत्त्ववाली **अविद्या** है. रजोगुणतमोगुणसैं अभिभूत सत्त्वकूं **मलिनसत्त्व** कहैं हैं, जासैं रजोगुण तमोगुण अभिभूत होवैं ताकूं **शुद्धसत्त्व** कहैहैं,

तिरस्कृतकूं अभिभूत कहैं हैं. उक्तरूपमायामैं प्रतिबिंब ईश्वर है औ विद्यामैं प्रतिबिंब जीव है. ईश्वरकी उपाधि मायाका सत्त्व शुद्ध होनेतैं ईश्वर सर्वज्ञ है. जीवकी उपाधि अविद्याका सत्त्व मलिन है, यातैं जीव अल्पज्ञ है. कोई ग्रन्थकार इसरीतिसैं कहैं हैंः-उक्त श्रुतिमैं दोरूपवाली प्रकृति कही है, तामैं यह हेतु हैः-विशेषशक्तिकी प्रधानतासैं माया कहैं हैं, आवरणशक्तिकी प्रधानतासैं अविद्या कहैं हैं, ईश्वरकी उपाधि मायामैं आवरण शक्ति नहीं; यातैं मायामैं प्रतिबिंब ईश्वरकूं अज्ञता नहीं औ आवरणशक्तिमती अविद्यामे प्रतिबिंब जीवकूं अज्ञता है. औ संक्षेपशारीरकमैं यह कह्या हैः-जीवकी उपाधि कार्य है औ ईश्वरकी उपाधि कारण है, इसप्रकारसैं श्रुति कहै है; यातैं मायामैं प्रतिबिंब ईश्वर है, अन्तःकरणमैं प्रतिबिंब जीव है. या प्रसंगमैं प्रतिबिंबकूं जीव कहैं अथवा ईश्वर कहैं, तहां केवल प्रतिबिंबकूं जीवता अथवा ईश्वरता इष्ट नहीं है, किंतु प्रतिबिंबत्वविशिष्ट चेतनकूं जीवता औ ईश्वरता जाननी. काहेतैं? केवलप्रतिबिंबकूं जीवता ईश्वरता होवै तौ जीववाचक पद औ ईश्वरवाचक पदमैं भागत्यागलक्षणाका असंभव होवैगा. औ परमार्थ तौ यह हैः-पूर्वउक्त च्यारिही पक्षनमैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद है, या वादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं है किंतु ग्रीवास्थ मुखमैंही प्रतिबिंबत्वप्रतीति होवैहै, सो भ्रमरूप प्रतीति होवैहै; यातैं प्रतिबिंबत्व धर्म तौ मिथ्या है औ स्वरूपमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं. यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा.

उक्तच्यारिपक्षनमैं मुक्त जीवनका शुद्धब्रह्मसैं अभेद ॥ ७ ॥

उक्त च्यारि पक्षनमैं जीव ईश्वर दोनूंकूं प्रतिबिंब मानैं हैं, यातैं मुक्त जीवनका प्राप्य शुद्ध ब्रह्म है ईश्वर नहीं. काहेतैं? एक उपाधिका विनाश होवै तब तिस उपाधिके प्रतिबिंबका अपरप्रतिबिंबसैं अभेद होवै नहीं, किंतु अपने बिंबसैं अभेद होवैहै. ईश्वरभी प्रतिबिंब है, यातैं जीवरूप प्रतिबिंबकी उपाधिका नाश हुयें प्रतिबिंबरूप ईश्वरसैं संभवै नहीं; किंतु बिंबभूत शुद्ध ब्रह्मसैं ही अभेद होवै है.

उक्त च्यारि पक्षनमें षट् अनादिपदार्थ कहिके त्रिविध चेतनका अंगीकार ॥ ८ ॥

इसरीतिसें उक्त पक्षनमें जीव ईशशुद्ध ब्रह्मभेदसें त्रिविधचेतनका अंगीकार है; इसीवास्ते वार्तिकमें **षट् पदार्थ अनादि** कहेहैं:—शुद्धचेतन १, ईश्वरचेतन २, जीवचेतन ३ अविद्या ४, अविद्याचेतनका परस्पर संबंध ५, औ इन पांचोंका परस्पर भेद ६; ये षट् पदार्थ उत्पत्तिशून्य होनेतें अनादि हैं, इनमें **चेतनके तीनिही भेद** कहे हैं.

चित्रदीपमें विद्यारण्यस्वामीके कहे उक्तचेतनके च्यारि भेद ॥ ९ ॥

चित्रदीपमें विद्यारण्यस्वामीनें **चेतनके च्यारि भेद** कहे हैं, तथापि जैसें घटाकाश, महाकाश, जलाकाश, मेघाकाश भेदसें **आकाशके च्यारि भेद** हैं. घटावच्छिन्न आकाशकूं **घटाकाश** कहें हैं; निरवच्छिन्न आकाशकूं **महाकाश** कहें हैं, घटजलमें आकाशके प्रतिबिंबकूं **जलाकाश** कहें हैं. मेघमें जलके सूक्ष्म कण हैं तिनमें आकाशके प्रतिबिंबकूं **मेघाकाश** कहें हैं. तैसें चेतनभी कूटस्थ १, ब्रह्म २, जीव ३, ईश्वर ४, भेदसें **च्यारिप्रकारका** है. स्थूलसूक्ष्म शरीरके अधिष्ठानचेतनकूं **कूटस्थ** कहें हैं, निरवच्छिन्नचेतनकूं **ब्रह्म** कहें हैं, शरीररूप घटमें बुद्धिस्वरूपजलमें जो चेतनका प्रतिबिंब ताकूं **जीव** कहें हैं, मायारूप अंधकारस्थ जो जलकणसमान बुद्धिवासना तिनमें प्रतिबिंबकूं **ईश्वर** कहें हैं. सुषुप्त्यवस्थामें जो बुद्धिकी सूक्ष्म अवस्था ताकूं **वासना** कहें हैं, केवल बुद्धिवासनामें प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहें तौ बुद्धिवासनाकूं अनंतता होनेतें ईश्वरभी अनंत हुये चाहियें, यातें बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमें प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहें हैं. इसरीतिसें विज्ञानमयकोश **जीव** है. जाग्रत्स्वप्नअवस्थामें स्थूल अंतःकरणकूं **विज्ञान** कहें हैं; तामें प्रतिबिंबकूं **विज्ञानमय** कहें हैं. "मैं कर्ता, भोक्ता स्थूल, दुर्बल काण, बधिर हूँ" इसरीतिसें विशेष विज्ञानवाला **जीव** है;औ सुषुप्त्यवस्थामें बुद्धिवासनासहित अज्ञानरूप आनंदमयकोश **ईश्वर** है. आनंदमय-

कोशकूं ईश्वरता मांडूक्य उपनिषद्‌मैं प्रसिद्ध है. इसरीतिसैं चेतनके च्यारि भेद चित्रदीपमैं कहेहैं.

बिंबप्रतिबिंबवादसैं आभासवादका भेद ॥ १० ॥

औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं प्रतिबिंब मिथ्या है. पूर्व उक्त पक्षनमैं बिंबप्रतिबिंबका अभेद होनेतैं प्रतिबिंब सत्य है, एकही पदार्थमैं उपाधिके सन्निधानतैं बिंबत्वप्रतिबिंबत्वभ्रम होवैहै औ बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब है. औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं दर्पणादिकनमैं बिंबके सन्निधानतैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवै है, यातैं जीवईश्वरका स्वरूप मिथ्या है.

आभासवादकी रीतिसैं जीवब्रह्मके अभेदके वाक्यनमैं बाधसमानाधिकरण ॥ ११ ॥

जीवका ब्रह्मसैं अभेदप्रतिपादक वाक्यनमैं बाधसमानाधिकरण है अभेदसमानाधिकरण नहीं है. जैसैं पुरुषमैं स्थाणुभ्रम होयके पुरुषका ज्ञान हुयें "यह स्थाणु पुरुष है" इसरीतिसैं पुरुषतैं स्थाणुका अभेद कहैं, तहां स्थाणुके अभाववाला पुरुष है अथवा स्थाणुका अभाव पुरुष है; इसरीतिसैं बोध होवै है, अधिकरणतैं अभाव पृथक् है या मतमैं स्थाणुके अभाववाला पुरुष है ऐसा बोध होवै है कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप है; यामतमैं स्थाणुका अभाव पुरुष है ऐसा बोध होवै है. इसरीतिसैं अयंशब्दका अर्थ "जीव ब्रह्म" है या वाक्यका जीवके अभाववाला ब्रह्म है यह अर्थ है अथवा जीवका अभाव ब्रह्म है यह अर्थ है। अभावकूं बाध कहै हैं. उक्तरीतिसैं-कल्पितपदार्थका सत्यअधिष्ठानमैं अभेद कहैं. तहां बाधसमानाधिकरणही विवक्षित होवै है.

कूटस्थ औ ब्रह्मके अभेदस्थलमैं अभेद (मुख्य) समानाधिकरण ॥ १२ ॥

जहां कूटस्थका ब्रह्मसैं अभेद कहैं तहां अभेद समानाधिकरण है. जैसैं जलाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं, तहां जलाकाशका महाकाशतैं

बाधसमानाधिकरण है, औ घटाकाशका महाकाशतैं, अभेद कहैं तहां अभेदसमानाधिकरण है;याहीकूं मुख्यसमानाधिकरण कहैहैं इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं जीवका ब्रह्मसैं बाधसमानाधिकरणही लिख्या है.

उक्त बाधसमानाधिकरणमैं विवरणकारके वचनतैं अविरोध॥१३॥

औ विवरण ग्रंथमैं "अहं ब्रह्मास्मि" या वाक्यमैं अहं शब्दके अर्थ जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण लिख्याहै औ बाध समानाधिकरणका महावाक्यनमैं खंडन लिख्या है; ताका समाधान विद्याण्यस्वामीनैं इसरीतिसैं लिख्या है:—बुद्धिस्थ चिदाभास औ कूटस्थका अन्योन्याध्यास है. काहेतैं? चिदाभासविशिष्ट बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ है; अहंप्रतीतिका विषय चिदाभासविशिष्ट बुद्धि है; औ स्वयंप्रतीतिका विषय कूटस्थ है. "अहं स्वयं जानामि । त्वं स्वयं जानासि । स स्वयं जानाति" इसरीतिसैं सकल प्रतीतिमैं अनुगत स्वयंशब्दका अर्थ है; औ अहं त्वं आदिक शब्दनका अर्थ व्यभिचारी है. स्वयंशब्दका अर्थ कूटस्थ सारे अनुगत होनेतैं अधिष्ठान है; औ अहं त्वं आदिक शब्दनका अर्थ चिदाभासविशिष्ट बुद्धिरूप जीव व्यभीचारी होनेतैं अध्यस्त है. कूटस्थमैं जीवका स्वरूपाध्यास है, औ जीवमैं कूटस्थका संबंधाध्यास है, यातैं कूटस्थजीवका अन्योन्याध्यास होनेतैं परस्पर विवेक होवै नहीं, यातैं ब्रह्मसैं कूटस्थके मुख्यसमानाधिकरणका जीवमैं व्यवहार करैहैं. औ जीवमैं कूटस्थधर्मके आरोपविना मिथ्या जीवका सत्यब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण संभवै नहीं, यातैं स्वाश्रय अंतःकरणका अधिष्ठान जो कूटस्थ, ताके धर्मकी विवक्षासैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण कह्या है; इसरीतिसैं चित्रदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं विवरणकारके वचनतैं अविरोधका प्रकार लिख्या है.

विवरणोक्त जीवका ब्रह्मसैं मुख्यसमानाधिकरण औ विद्यारण्यके वाक्यकी प्रौढिवादता ॥ १४ ॥

औ विवरणग्रंथकूं पूर्व उत्तर देखैं तौ यह प्रकार संभवै नहीं. काहेतैं?

विवरणग्रंथमैं बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब मान्या है, यातैं ताके मतमैं प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व तौ मिथ्या है, औ प्रतिबिंबरूप जीवका स्वरूप मिथ्या नहीं किंतु ताका स्वरूप सत्य है; यातैं जीवका ब्रह्ममैं मुख्य समानाधिकरण संभवै है. औ विद्यारण्यस्वामीनैं जो विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय कह्या सो प्रौढिवादसैं कह्या है. तथाहिः—प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व माननेंभी जीवमैं कूटस्थत्व विवक्षातैं महावाक्यनमैं विवरणउक्त मुख्यसमानाधिकरण संभवै है, यातैं "मुख्य समानाधिकरणकी अनुपपत्तिसैं प्रतिबिंबकूं सत्यत्व अंगीकरणीय नहीं" इस प्रौढिवादसैं विद्यारण्यस्वामीनैं उक्त अभिप्राय विवरणका लिख्या है औ विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय है नहीं. प्रौढि कहिये उत्कर्षसैं जो वाद कहिये कथन, ताकूं **प्रौढिवाद** कहैं हैं. प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानिकै महावाक्यनमें मुख्य समानाधिकरणभी प्रतिपादन करिसकैं हैं. इसरीतिसैं अपना उत्कर्ष बोधन किया है.

विद्यारण्योक्त चेतनके च्यारिभेदका अनुवाद ॥ १५ ॥

इसरीतिसैं अंतःकरणमैं आभास **जीव** है, सो विज्ञानमय कोशरूप है. बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं आभास ईश्वर है, सो आनंदमयकोशरूप है. दोनूंका स्वरूप मिथ्या है, कूटस्थ औ जीवका अन्योन्याध्यास है, औ ब्रह्मचेतन ईश्वरका अन्योन्याध्यास है; यातैं जीवमें कूटस्थ धर्मनके आरोपतैं कहूं पारमार्थिक ब्रह्मता कहीहै. तैसैं ईश्वरमैं अध्यासिक ब्रह्मत्वकी विवक्षातैं कहूं वेदांतवेद्यत्वादिक धर्म कहे हैं, यातैं, चेतनके च्यारि भेद हैं; यह किया चित्रदीपमैं कहीहै. परंतु—

विद्यारण्यस्वामीउक्त बुद्धिवासनामें प्रतिबिंबकी ईश्वरताका खंडन ॥ १६ ॥

बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरता संभवै नहीं तैसैं आनंदमयकोशकूं ईश्वरता कथनभी संभवै नहीं. तथाहिः—बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै ताकूं यह पुछया चाहिये. ईश्वरभावकी उपाधि केवल अज्ञान है अथवा वासनासहित अज्ञान है अथवा केवल वासना है ? जो प्रथमपक्ष

कहै तौ बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरताकथनसैं विरोध होवैगा. जो द्वितीयपक्ष कहै तौ केवल अज्ञानकूंही ईश्वरभावकी उपाधि मानना चाहिये. बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि कहना निष्फल है. जो विद्यारण्यस्वामीका भक्त इसरीतिसैं कहै, केवल अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि मानैं तौ ईश्वरमैं सर्वज्ञतासिद्ध होवै नहीं, यातैं सर्वज्ञताके लाभार्थ बुद्धिवासनाभी अज्ञानकी विशेषण मानी है, यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? अज्ञानस्थ सत्त्वांशकी सर्वगोचर वृत्तिसैंही सर्वज्ञताका लाभ होनेतैं बुद्धिवासनाकूं अज्ञानकी विशेषणता मानना निष्फल है; औ अज्ञानस्थ सत्त्वांशकी वृत्तिसैंही सर्वज्ञता संभवैहै, बुद्धिवासनातैं सर्वज्ञता-सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं ? एक एक बुद्धिवासनाकूं तौ निखिल पदार्थ-गोचरता संभवै नहीं. सर्वज्ञतालाभके अर्थ सकलवासनाकूं अज्ञानविशेषणता मानना चाहिये, सो प्रलयकालविना एक कालमैं सर्ववासनाका सद्भाव संभवै नहीं, यातैं सर्वज्ञताकी सिद्धिवासनातैं होवै नहीं; इसरीतिसैं धीवास-नासहित अज्ञान ईश्वरकी उपाधि है, यह द्वितीयपक्षभी संभवै नहीं; जो केवल वासना ईश्वरकी उपाधि है, यह तृतीय पक्ष है तथापि यह पूछ्या चाहियेः— एक एक वासनामैं प्रतिबिंब ईश्वर है अथवा सकल वासनामैं एक प्रतिबिंब ईश्वर है ? जो प्रथमपक्ष कहै तौ जीवजीवकी बुद्धिकी वासना अनंत होनेतैं तिनमैं प्रतिबिंब ईश्वरभी अनंत होवैंगे; और एक एक वासनाकूं अल्पगोचरता होनेतैं तिनमैं प्रतिबिंबरूप अनंत ईश्वरभी अल्पज्ञही होवैंगे. सर्व वासनामैं एक प्रतिबिंब मानैं तौ सर्व वासना प्रलयविना युगपत होवैं नहीं. औ अनेक उपाधिमैं अनेकही प्रतिबिंब होवैं हैं; यातैं सर्व वासनामैं एक प्रतिबिंब संभवै नहीं; इसरीतिसैं केवल अज्ञानही ईश्वरकी उपाधि है.

विद्यारण्यस्वामीउक्त आनंदमयकोशकी ईश्वरताका खंडन ॥ १७ ॥

विद्यारण्यस्वामीनैं चित्रदीपमैं वासनाका निष्फल अनुसरण कऱ्या है तैसैं आनंदमयकोशकूं ईश्वरता कथनभी असंगत है. काहेतैं ? जाग्रत स्वप्नमैं

स्थूलावस्थाविशिष्ट प्रतिबिंबसहित अंतःकरणकूं विज्ञानमय कहैहैं. विज्ञानमय जीवही सुषुप्तिकालमैं सूक्ष्मरूपतैं भी लीन हुया आनंदमय कहियेहै, तिसकूं ईश्वर मानैं तौ जाग्रत स्वप्नमैं अंतःकरणकी विलीन अवस्थारूप आनंदमयके अभावतैं ईश्वरकाभी अभाव हुया चाहिये. अनंतपुरुषनकी सुषुप्तिमैं अनंत ईश्वर हुये चाहियें. जीवके पंचकोश सकल ग्रंथकारोंनैं कहे हैं, औ पंचकोशविवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं आपभी जीवके पंचकोश कहेहैं. आनंदमयकूं ईश्वरता मानैं तौ सकलवचन असंगत होवैंगे, यातैं आनंदमयकूं ईश्वरता संभवै नहीं.

मांडूक्योपनिषदुक्त आनंदमयकी सर्वज्ञता आदिकका अभिप्राय ॥ १८ ॥

औ मांडूक्यउपनिषद्मैं आनंदमयकूं सर्वज्ञता सर्वेश्वरता कही है, तासैं भी आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं.काहेतें ? मांडूक्यमैं यह अर्थ है:—विश्व तैजस प्राज्ञभेदसैं जीवके तीनि स्वरूप हैं.विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृत भेदसैं ईश्वरकेभी तीनि भेद हैं. यद्यपि हिरण्यगर्भकूं जीवता सकल उपनिषद्मैं प्रसिद्ध है. हिरण्यगर्भरूपकी प्राप्तिकी हेतु उपासना उपनिषद्मैं प्रसिद्ध है, औ उपनिषदुपासना कर्ता जीवही कल्पांतरमैं हिरण्यगर्भपदवीकूं प्राप्त होवैहै तैसैं विराट्भावकी प्राप्तिकी उपासनातें कल्पांतरमैं जीवकूंही विराट्रूपकी प्राप्ति होवैहै. औ हिरण्यगर्भके ऐश्वर्यतैं विराट्का ऐश्वर्य न्यून है; औ ईश्वरका ऐश्वर्य सर्वसैं उत्कृष्ट है, तामैं अपकृष्ट ऐश्वर्य संभवै नहीं, तैसैं हिरण्यगर्भका पुत्र विराट् होवैहै, ताकूं क्षुधापिपासाकी बाधा होवै है; यह गाथा पुराणमैं प्रसिद्ध है, यातैं हिरण्यगर्भ औ विराट्कूं ईश्वरताकथन संभवै नहीं, तथापि सत्यलोकवासी सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी सुखभोक्ता हिरण्यगर्भ तौ जीव है, औ स्थूलसमष्टिका अभिमानी विराट् जीव है, औ सूक्ष्म प्रपंचका प्रेरक अंतर्यामीभी हिरण्यगर्भ शब्दका अर्थ है, तैसैं स्थूलप्रपंचका प्रेरक अंतर्यामी विराट्शब्दका अर्थ,

है. चेतन प्रतिबिंबगर्भ अज्ञानरूप अव्याकृतही सूक्ष्मसृष्टिकालमैं ताका प्रेरक होवै तब हिरण्यगर्भ संज्ञक होवैहै, स्थूल सृष्टिकालमैं ताका प्रेरक होवै, तब विराट् संज्ञक होवैहै, इसरीतिसैं जीवमैं औ ईश्वरमैं हिरण्यगर्भ शब्दकी औ विराट्शब्दकी प्रवृत्ति होवैहै परंतु सूक्ष्मस्थूलके अभिमानी जीवमैं तौ हिरण्यगर्भ शब्द औ विराट्शब्दकी शक्तिवृत्ति है, औ द्विविध प्रपंचके प्रेरक ईश्वरमैं तिन शब्दनकी गौणीवृत्ति है. जैसैं जीवरूप हिरण्यगर्भका औ विराट्का स्वीयतासंबंध सूक्ष्मस्थूल प्रपंचसैं है, तैसैं ईश्वरकाभी सूक्ष्मस्थूल प्रपंचसैं प्रेर्यतासंबंध है; यातैं सूक्ष्मदृष्टि संबंधित्वरूप हिरण्यगर्भ वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमैं हिरण्यगर्भशब्दकी गौणीवृत्ति है, तैसैं स्थूल सृष्टिसंबंधित्वरूप विराट्वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमैं विराट्शब्दकी गौणीवृत्ति है. इसरीतिसैं हिरण्यगर्भ विराट्शब्दके जीव ईश्वर दोनूं अर्थ हैं. जिस प्रसंगमैं जो अर्थ संभवै ताका ग्रहण करै; औ गुरु संप्रदायविना वेदांतग्रंथकूं अवलोकन करैं तिनकूं पूर्व उक्त व्यवस्थाका ज्ञान होवै नहीं, यातैं हिरण्यगर्भ विराट् शब्दनतैं कहूं जीवका, कहूं ईश्वरका संभव देखिके मोहकूं प्राप्त होवै है. मांडूक्य उपनिषद्मैं त्रिविध जीवका त्रिविध ईश्वरतैं अभेदचिंतन लिख्या है. जिस मंदबुद्धिपुरुषकूं महावाक्यविचारतैं तत्त्वसाक्षात्कार होवै नहीं ताकूं प्रणवाचिंतन मांडूक्यमैं कह्या है. ताका प्रकार विचारसागरके पंचमतरंगमैं स्पष्ट है, तहां विश्वविराट्का औ तैजस हिरण्यगर्भका तथा प्राज्ञ ईश्वरका अभेदचिंतन लिख्या है, यातैं ईश्वरके धर्म सर्वज्ञतादिक प्राज्ञरूप आनन्दमयमैं अभेदचिंतनके अर्थ कहे हैं; औ आनंदमयकूं ईश्वरताविवक्षासैं नहीं कहैं हैं जैसैं विश्वविराट्के अभेदचिन्तनके अर्थ वैश्वानरके उन्नीस मुख कहैं हैं, चतुर्दश त्रिपुटी औ पंचप्राण ये उन्नीस विश्वके भोगसाधन होनेतैं विश्वका मुख हैं औ वैश्वानर ईश्वर है ताकूं भोग होवै नहीं, यातैं विश्वविराट्के अभेदचिंतनके अर्थही विश्वके भोगसाधन पदार्थनकूं वैश्वानरकी भोगसाधनता कही है, विराट्कूं वैश्वानर कहैं हैं मांडूक्यवचनका अभेदचिंतनमैं तात्पर्य है, वस्तुके स्वरूपके अनुसारही चिंतन

होवै है, यह नियम नहीं है; किंतु अन्यरूपतैं भी चिंतन होवै है, यह अर्थभी विचारसागरमैं स्पष्ट है, यातैं मांडूक्यवचनतैं आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं.

आनंदमयकी ईश्वरतामैं विद्यारण्य स्वामीके तात्पर्यका अभाव ॥ १९ ॥

औ विद्यारण्यस्वामीनैंभी ब्रह्मानंदनामग्रंथनमैं "जीवकी अवस्थाविशेष **आनंदमयकोश** है" यह लिख्या है, तहां यह प्रसंग है:—जाग्रत्स्वप्नमैं भोगदेनेवाले कर्मसमुदायका नाश हुयें निद्रारूपतैं विलीन अंतःकरणका भोग देनेवाले कर्मके वशतैं घनीभाव होवैहै ताकूं **विज्ञानमय** कहैहैं; सोई विज्ञानमय सुषुप्तिमैं विलीन अवस्थावाला अंतःकरणरूपउपाधिके संबंधतैं **आनंदमय** कहियेहै; इसरीतिसैं विज्ञानमयकी अवस्थाविशेषही **आनंदमय** कह्या है; यातैं विद्यारण्यस्वामीकूंभी आनंदमयकोशमैं जीवत्वही इष्ट है. यद्यपि विलक्षण लेख देखिके औ परंपरावचनमैं परंपरातैं यह कहैहैं; पांच विवेक औ पांच दीप तौ **विद्यारण्यकृत** हैं, और पांच आनंद **भारतीतीर्थकृत** हैं, तथापि एकही ग्रंथमैं पूर्व उत्तरका विरोध संभवै नहीं; यातैं पंचदशीग्रंथमैं आनंदमयकूं ईश्वरता विवक्षित नहीं, औ चित्रदीपमैं तिसकूं ईश्वरता कही है, सो मांडूक्यवचनकी नाईं चिंतनीय ईश्वराभेदमैं तात्पर्यसैं कही है; आनंदमयकूं ईश्वरतामैं विद्यारण्य स्वामीका तात्पर्य नहीं. इसरीतिसैं विद्यारण्य स्वामीनैं चेतनके च्यारि भेद चित्रदीपमैं कहे हैं, तथापिः—

चेतनके तीनिभेदका विद्यारण्यस्वामीसहित सर्वकूं स्वीकार ॥ २० ॥

दृग्दृश्यविवेक नाम ग्रंथमैं विद्यारण्यस्वामीनैं कूटस्थका जीवमैं अंतर्भाव लिख्या है, तथापि पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं जीव **तीनि प्रकारका** है. स्थूलसूक्ष्म भेदद्वयावच्छिन्न कूटस्थचेतन **पारमार्थिक जीव** है, तिसका ब्रह्मसैं मुख्य अभेद है, मायासैं आवृत कूटस्थमैं कल्पित

अंतःकरणमैं चिदाभास है, सो देहद्वयमैं अभिमानकर्ता व्यावहारिक जीव है ब्रह्मज्ञानसैं पूर्व ताका बाध होवै नहीं, यातैं व्यावहारिक है. निद्रारूपमायासैं आवृतव्यावहारिक जीवरूप अधिष्ठानमैं कल्पित **प्रातिभासिक जीव** है, स्वप्न अवस्थामैं प्रातिभासिक प्रपंचका अहंममाभिमानी **प्रातिभासिक जीव** है. ब्रह्मज्ञानसैं विनाही जाग्रत्प्रपंचके बोधसैं प्रातिभासिक प्रपंचकी निवृत्तिकालमैं व्यावहारिक जीवके बोधसैं प्रातिभासिक जीवकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं कूटस्थका जीवमैं अंतर्भाव है, यातैं जीवईश्वर शुद्धचेतनभेदसैं **त्रिविधचेतन** है; यही पक्ष सर्वकूं संमत है औ वार्तिकवचनके अनुकूल है.

जीवका मोक्षदशामैं उक्तपक्षनविषै शुद्ध ब्रह्मसैं औ विवरणपक्षविषै ईश्वरसैं अभेद ॥ २१ ॥

पूर्व उक्त सकल पक्षमैं जीवकी नाईं ईश्वरभी प्रतिबिंबरूप है, यातैं ईश्वरतैं मोक्षदशामैं जीवका अभेद इनके मतमैं होवै नहीं. काहेतैं ? उपाधिके अपसरणतैं एक प्रतिबिंबका अन्यप्रतिबिंबसैं अभेद अनुभवगोचर नहीं; किंतु बिंबसैंही अभेद होवैहै; तैसैं शुद्धचेतनसैंही प्रतिबिंबरूप जीवका मोक्षमैं अभेद होवैहै औ विवरणकारके मतमैं बिंबचेतन **ईश्वर** है, ताके मतमैं ईश्वरसैंही जीवका अभेद होवैहै.

वेदांतके सिद्धांतमैं प्रक्रियाके भेद. विवरणकारके मतमैं अज्ञानविषै प्रतिबिंब जीव औ बिंब ईश्वरका निरूपण ॥ २२ ॥

विवरणकारके मतमैं जीव ईश्वरकी उपाधि एकही अज्ञान है. अज्ञानमैं प्रतिबिंब **जीव** है. बिंब **ईश्वर** है. जहां दर्पणमैं मुखका प्रतिबिंब प्रतीत होवै तहां दर्पणमैं मुखकी छाया नहीं और दर्पणमैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति नहीं. तैसैं व्यावहारिक प्रतिबिंबकीभी उत्पत्ति नहीं; किंतु दर्पणगोचर चाक्षुषवृत्ति दर्पणसैं प्रतिहत होयके ग्रीवास्थमुखकूंही विषय करै है. इसरी-

तिसें ग्रीवास्थमुखमैंही बिंबप्रतिबिंब भाव प्रतीत होवैहै. सो ग्रीवास्थ मुख सत्य है, यातैं बिंबप्रतिबिंबका स्वरूपभी ग्रीवास्थमुखरूप होनेतैं सत्य है, परंतु ग्रीवास्थमुखमें बिंबत्व प्रतिबिंबत्व धर्म मिथ्या है. अनिर्वचनीय मिथ्या बिंबत्वप्रतिबिंबत्वका अधिष्ठान मुख है. इसरीतिसैं बिंबकी नाईं प्रतिबिंबकाभी स्वरूप सत्य होनेतैं दर्पणस्थानी अज्ञानके सन्निधानसैं शुद्धचेतनमैं बिंबस्थानी ईश्वरकी नाईं प्रतिबिंबस्थानी जीवकाभी स्वरूप सत्य है, यातैं महावाक्यनमैं मुख्यसमानाधिकरण संभवै है, परंतु बिंबत्वरूप ईश्वरत्व औ प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व दोनूं धर्म मिथ्या हैं, तिनका अधिष्ठान शुद्धचेतन है. यद्यपि उक्तरीतिसैं जीवईश्वरकी उपाधि एक अज्ञान है, यातैं दोनूंकूं अज्ञता वा सर्वज्ञता हुई चाहिये,तथापि दर्पणादिक उपाधिके लघुत्वपीतत्वादिक धर्मका आरोप प्रतिबिंबमैं होवै है, बिंबमैं नहीं; यातैं आवरणस्वभाव अज्ञानकृत अल्पज्ञता जीवमैं है, बिंबरूप ईश्वरमें स्वरूपप्रकाशतैं सर्वज्ञत्व है.यद्यपि बिंब प्रतिबिंबका उक्तरीतिसैं अभेद है, यातैं बिंबप्रतिबिम्बके धर्मनका भेदकथन संभवै नहीं. जो बिंबप्रतिबिंबका भेद होवै तौ उक्त व्यवस्था संभवै तथापि दर्पणस्थत्वरूप बिंबप्रतिबिंबत्वका ग्रीवास्थमुखमैं भ्रम होवैहै. भ्रमसिद्ध प्रतिबिंबत्वकी अपेक्षासैं बिंबत्वव्यवहार होवै है, यातैं एक मुखमें बिंबत्वप्रतिबिंबत्व दोनूं आरोपित हैं. तैसैं एकही मुखमें बिंबत्वप्रतिबिंबत्वरूपतैं धर्मीके भेदका भ्रम होवै है. भ्रांतिसैं प्रतीत जो बिंबप्रतिबिंबका भेद तासैं उक्त व्यवस्था संभवै है. इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं अज्ञानमें प्रतिबिम्ब जीव है औ बिंबचेतन ईश्वर है. अज्ञान अनिर्वचनीय है, यातैं अज्ञानसद्भावकालमैंभी अज्ञानका परमार्थसैं अभाव होनेतैं बिंबप्रतिबिंबरूप चेतनही परमार्थसैं शुद्धचेतन है,यातैं ईश्वरभावकी प्राप्तिभी शुद्धहीकी प्राप्तिहै.

अवच्छेदवादीकरि आभासवादका खंडन औ स्वमतका निरूपण ॥ २३ ॥

कोई आचार्य यह कहैं हैं:–अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीव है; औ अंतःकरणसैं अनवच्छिन्नचेतन ईश्वर है; नीरूपचेतनका प्रतिबिम्ब संभवै

नहीं. यद्यपि कूपतडागादिक जलगत आकाशमैं नीलता विशालताके अभाव होनेतैं "नीलं नभः । विशालं नभः" ऐसी प्रतीति होवैहै, यातैं विशालता-विशिष्ट औ आरोपितनीलताविशिष्ट आकाशका प्रतिबिम्ब मानना चाहिये. औ आकाशमैं रूप है नहीं, यातैं नीरूपकाभी प्रतिबिम्ब संभवै है; तथापि आकाशमैंभी भ्रांतिसिद्ध आरोपित नीलरूप है. चेतनमैं आरोपित रूपकाभी अभाव होनेतैं ताका प्रतिबिम्ब संभवै नहीं,जा पदार्थमैं आरोपित वा अना-रोपितरूप होवै, ताका प्रतिबिंब होवैहै, सर्वथा रूपरहितका प्रतिबिंब होवै नहीं; औ नीरूपाधिमैं तौ सर्वथा प्रतिबिंब संभवै नहीं. काहेतैं ? स्वरूप-वाले दर्पणादिकनमैं ही प्रतिबिंब देख्याहै, यातैं नीरूप अंतःकरणमैं वा नीरूप अविद्यामैं नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं. औ रूपरहित शब्दका नीरूप आकाशमैं जैसैं प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिंब कहैहैं सोभी असंगत है. का-हेतैं ? उक्तरीतिसैं आकाश रूपरहित नहीं और आकाशमैं जो प्रतिध्वनि होवैहै सो शब्दका प्रतिबिंब नहीं. काहेतैं ? जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिंब मानै तौ आकाशवृत्ति शब्दका अभाव होवैगा. भेरीदंडादिकनके संयोगतैं पार्थिव शब्द होवैहै; तिस पार्थिवशब्दतैं ताके सन्मुखदेशमैं पाषाणादि अवच्छिन्न आकाशमैं प्रतिध्वनिरूप शब्द होवैहै; तिसप्रतिध्वनिशब्दका पार्थिव शब्द निमित्तकारण है, यातैं पार्थिवध्वनिके समानही प्रतिध्वनि होवैहै.जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिम्ब मानै तौ प्रतिबिम्बकूं अनिर्वचनीय मानैहै, औ विवरणकारके अनुसारी बिम्बस्वरूपही प्रतिबिम्बकूं मानैहैं, इन दोनूं मतमैं आकाशका गुण प्रतिध्वनि नहीं होवैगा. काहेतैं ? व्यावहारिक आकाशका गुण प्रातिभासिक संभवै नहीं यातैं अनिर्वचनीय प्रतिबिम्बवादमैं प्रतिध्वनिकूं पार्थिवशब्दका प्रतिबिम्ब मानैं तौ आकाशका गुण कहना संभवै नहीं. औ बिम्बप्रतिबिम्बके अभेदवादमैं पार्थिवशब्दका प्रतिबिम्बरूप प्रति-ध्वनिका अपनें बिंबसैं अभेद होनेतैं पृथिवीका गुण प्रतिध्वनि होवैगा; यातैं प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिम्ब मानैं तौ किसी प्रकारतैं आकाशका गुण प्रति-ध्वनि है, यह कथन संभवै नहीं. औ प्रतिध्वनिसैं भिन्न शब्द पृथिवी जल

अग्निवायुके हैं, आकाशमैं अन्यप्रकारका शब्द है नहीं, यातैं शब्दरहितही आकाश होवैगा. औ शब्दरहित आकाश है यह मत अशास्त्रीय है. भूतविवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं यह कह्या है:—कटकटा शब्द पृथिवीका है, चुलचुल शब्द जलका है, भुक्भुक् शब्द अग्निका है, सी सी शब्द वायुका है, प्रतिध्वनिरूपशब्द आकाशका है; तैसैं अन्यग्रंथकारोंनैं भी आकाशका गुणही **प्रतिध्वनि** कह्या है;यातैं शब्दका प्रतिबिम्ब प्रतिध्वनि नहीं; किन्तु आकाशका स्वतंत्र शब्द **प्रतिध्वनि** है ताका उपादानकारण आकाश है. औ भेरी आदिकनमैं जो पार्थिव ध्वनि होवै है, सो प्रतिध्वनिका निमित्तकारण है, यातैं रूपरहित प्रतिबिम्ब संभवै नहीं. जो प्रतिबिम्बवादी इसरीतिसैं कहै कूपादिकनके आकाशमैं "विशालमाकाशम्" यह प्रतीति होवै है. औ कूपदेशके आकाशमैं विशालता है नहीं, यातैं बाह्यदेशस्थ रूपरहित विशाल आकाशका कूपजलमैं प्रतिबिम्ब होनेतैं रूपरहित चेतनका प्रतिबिम्ब संभवैहै; तथापि रूपवाले उपाधिमैंही प्रतिबिम्ब होवैहै. रूपरहित उपाधिमैं प्रतिबिम्ब संभवै नहीं. आकाशके प्रतिबिम्बका उपाधि कूपजल है, तामैं रूप है औ अविद्या अन्तःकरणादिक रूपरहित हैं. तिनमैं चेतनका प्रतिबिम्ब संभवै नहीं, यातैं अन्तःकरणावच्छिन्नचेतन जीव है औ अन्तःकरणसैं अनवच्छिन्न चेतन ईश्वरहै. अथवा—

अवच्छेदवादका कथन ॥ २४ ॥

अविद्यावच्छिन्न चेतन जीव है औ मायावाच्छिन्न चेतन ईश्वर है, अन्तःकरणसैं अवच्छिन्नचेतन जीव और अनवच्छिन्नचेतन ईश्वर है इस पक्षका खंडन ॥ २५ ॥

अन्तःकरणावच्छिन्नकूं जीव मानैं औ अनवच्छिन्नकूं ईश्वर मानैं तौ ब्रह्मांडसैं बाह्य देशस्थचेतनमैं ईश्वरता होवैगी. काहेतैं ? ब्रह्मांडमैं अनंतजीवनके अनंत अन्तःकरण व्याप्त हैं, यातैं अनंतकरणानवच्छिन्नचेतनका ब्रह्मांडके मध्यलाभ संभवै नहीं. जो ब्रह्मांडसैं बाह्य देशमैं ही ईश्वरका सद्

भाव मानैं तौ अंतर्यामिप्रतिपादक वचनसैं विरोध होवैगा, "यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमंतरो यमयति" इसवचनमैं विज्ञानपदबोध्य जीवदेशमैं ईश्वरका सद्भाव कह्या है, यातैं अन्तःकरणसैं अनवच्छिन्न ईश्वर नहीं; किंतु मायावच्छिन्नचेतनही ईश्वर है औ अन्तःकरणसैं अनवच्छिन्नकूं ईश्वरता मानैं तौ अन्तःकरणसैं संबंधाभावही ईश्वरताकी उपाधि सिद्ध होवै है. औ ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिक उपाधिकृत हैं; अभावरूप उपाधिसैं सर्वज्ञतादिक धर्मनकी सिद्धि होवै नहीं. औ—

तृप्तिदीपमैं विद्यारण्यस्वामी उक्त अन्तःकरणके सम्बन्ध औ ताके अभावके उपाधिपनेका अभिप्राय ॥ २६ ॥

विद्यारण्यस्वामीनैं तृप्तिदीपमैं यह कह्या है:—जैसैं अन्तःकरणका संबन्ध उपाधि है, तैसैं अंतःकरणके संबंधका अभावभी उपाधि है. जैसैं लोहकी शृंखलासैं संचारका निरोध होवै है, तैसैं सुवर्णकी शृंखलासैंभी संचारका निरोध होवैहै. इसरीतिसैं अन्तःकरणके सम्बन्धरूप भाव उपाधिसैं जीवस्वरूपका बोध होवै है औ उक्त सम्बंधके अभावतैं परमात्वस्वरूपका बोध होवै है; इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं अन्तःकरणराहित्यभी उपाधि कह्या है ताका यह अभिप्राय है:—जैसैं अन्तःकरणसम्बंधसैं जीवस्वरूपका बोध होवै है, तैसैं अन्तःकरणराहित्यसैं ब्रह्मस्वरूपका बोध होनेतैं ब्रह्मके बोधका उपयोगी अन्तःकरणराहित्यभी है, यातैं विद्यारण्यस्वामीके वचनतैंभी अभावरूप उपाधिसैं ईश्वरमैं सर्वज्ञातादिकनकी सिद्धि प्रतीत होवै नहीं.

अवच्छेदवादके भेद पूर्वकताकी समाप्ति ॥ २७ ॥

यातैं मायावच्छिन्न चेतनही ईश्वर है, ईश्वरका उपाधि माया सर्व देशमैं है, यातैं ईश्वरमैं अंतर्यामिताभी संभवै है. औ अन्तःकरण अवच्छिन्नकूं जीव मानै तौ कर्ता भोक्ता चेतनके प्रदेशभिन्न होवैंगे; यातैं कृतका नाश औ अकृतकी प्राप्ति होवैगी. यातैं अविद्यावच्छिन्नचेतनही जीव है,

अन्तःकरणावच्छिन्नचेतन जीव नहीं. इसरीतिसैं कितने ग्रन्थकार अवच्छेदवादकूं ही मानैंहैं औ प्रतिबिंबके प्रतिपादक श्रुतिस्मृतिवचनोंका विरोधपरिहार तिनके ग्रंथनमैं स्पष्ट है. औ-

सिद्धांतमुक्तावलिआदिक विषै उक्त एक जीव (दृष्टिसृष्टि) वादका निरूपण ॥ २८ ॥

सिद्धांतमुक्तावलीकारादिकनका यह मतहैः-

दोहाः-ज्यूं अविकृत कौंतेयमैं, राधापुत्र प्रतीति ॥
चिदानंदघन ब्रह्ममैं, जीवभाव तिहँरीति ॥ १ ॥

सदा असंग नित्यमुक्त चिदानंद ब्रह्ममैं कल्पित अविद्यादिकनके संबंधसैं प्रतिबिंबितता तथा अवच्छिन्नता संभवै नहीं. जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं पूरित वंध्यासुतकुलालनैं शशशृङ्गके दंडसैं रचितघटके संबंधसैं आकाशमैं प्रतिबिंबितता वा अवच्छिन्नता होवै नहीं; किंतु आकाशके समानसत्तावाले जलपूरित घटतडागादिकनके संबंधसैं ही आकाशमैं प्रतिबिंबितता औ अवच्छिन्नता होवैहै. अविद्या औ ताका कार्य ब्रह्मचेतनके समानसत्तावाले नहीं किंतु स्वतः सत्ताशून्य हैं औ ब्रह्मकी सत्तासैं सत्तावाले अविद्यादिक हैं, यातैं शशशृङ्गादिकनकी नाईं अत्यंत अलीक अविद्यादिकनतैं चेतनका संबंध कथनही संभवै नहीं; विनके संबंधसैं प्रतिबिंबितताादिक तौ अत्यंत दूरहैं यातैं सदा एकरस ब्रह्म है, ताके विषै अवच्छिन्नता वा प्रतिबिंबितता रूप जीवता संभवै नहीं; किंतु कल्पित अज्ञानके कल्पितसंबंधसैं ब्रह्ममैं विना हुया जीवत्व प्रतीत होवैहै. जैसैं अविकारी कुंतीपुत्रमैं राधापुत्रताकी प्रतीति भ्रमरूप हुई है, तैसैं प्रतिबिंबादिक विकारविनाही ब्रह्ममैं जीवत्व भ्रम होवैहै. औ प्रतिबिम्बरूप वा अवच्छेदरूप जीवभावकी प्राप्ति होवै नहीं. स्वाविद्यासैं जीवभावापन्न ब्रह्मही प्रपंचका कल्पक होनेतैं सर्वज्ञत्वादिक धर्मसहित ईश्वरभी या पक्षमैं जीव कल्पित है. जैसैं स्वप्नकल्पित राजाकी सेवातैं स्वप्नमैं फलकी प्राप्ति होवै है,तैसैं स्वप्नकल्पित ईश्वरभजनतैं फलकी प्राप्तिभी

संभवैहै; इसरीतिसैं अनादि अविद्याके बलतैं स्वकीय ब्रह्मभावके आवरणतैं जीवत्व भ्रम होवैहै. "तत्त्वमस्यादि" वाक्यजन्य साक्षात्कारतैं जीवत्वभ्रमकी निवृत्ति होवैहै, भ्रमकालमैं भी जीवत्व है नहीं; किंतु नित्यमुक्त चिदानंद स्वरूप ब्रह्मही है. यह पक्षही भाष्यकार वार्तिककारनैं बृहदारण्यकेव्याख्यानमैं कर्णके दृष्टांतसैं प्रतिपादन कियाहै. जैसैं कुंतीपुत्रकर्णकूं हीनजातिके सबंधसैं निकृष्टता भ्रम हुया है, औ अनेकविधतिरस्कारजन्य दुःखका अनुभव करता हुवा स्वतःसिद्ध कुन्तीपुत्रतानिमित्तक उत्कर्षसैं प्रच्युत हुयाहै.

कदाचित् एकांतमैं सूर्य भगवाननैं कह्या "तू राधापुत्र नहीं, किंतु मेरे संबंधसैं कुन्तीउदरसैं उत्पन्न हुयाहै" इसप्रकारके सूर्यवचनतैं अपनेंमैं हीन जातिके भ्रमकूं त्यागिकै स्वतःसिद्ध कुंतीपुत्रतानिमित्तक उत्कर्षकूं जानता हुया.तैसैं चिदानन्द ब्रह्मभी अनादि अविद्याके संबंधसैं जीवत्वभ्रमकूं प्राप्तहुवा स्वतःसिद्ध ब्रह्मभावका विस्मरण करिकै अनेकविध दुःखकूं अनुभव करहै.

कदाचित् अपनें अज्ञानतैं कल्पितस्वप्न कल्पितअचार्यके तुल्य आचार्यद्वारा महावाक्यश्रवणतैं स्वगोचरविद्यासैं अविद्याकी निवृत्ति हुयां नित्य परमानंदका स्वरूप चैतन्यसैं अनुभव करैहै. इसरीतिसैं बृहदारण्यके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं औ वार्तिककारनैं लिख्याहै. जैसैं जीवकी अविद्या कल्पितआचार्य वेदोपदेशके हेतु है. तैसैं ईश्वरभी स्वप्नकल्पित राजाकी नाईं जीवकल्पितही भजनतैं फलका हेतु है; या मतमैं एक जीववाद है; यातैं एक जीवकल्पित इश्वरभी एकही है,नाना ईश्वरकी आपत्ति नहीं.शुक-वामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक शास्त्रसैंभी स्वप्नकल्पित नाना पुरुषनकी नाईं जीवाभासही नानासिद्ध होवैं हैं. नानाजीववादकी सिद्धि होवै नहीं जैसैं स्वप्नमैं एक द्रष्टाकूं नानापुरुष प्रतीत होवैं, तिनमैं कोई महावनमैं उत्पथगामी हुये व्याघ्रादिजन्य दुःखकूं अनुभव करैहैं; कोई राजमार्गमैं आरूढ होयकै स्वनगरकूं प्राप्त होवैंहैं,तहां वनमैं भ्रमण औ स्वनगरकी प्राप्ति स्वप्न द्रष्टाकूं नहीं किन्तु आभास पुरुषनकूं होवैं हैं. तैसैं अविद्यासहित ब्रह्मरूप जीवकूं बंधमोक्षकी प्राप्ति नहीं;किंतु आभासरूप जीवनकूं बन्धमोक्ष प्रतीत होवैंहैं.

या पक्षमैं किसके ज्ञानतैं अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवैगा, यह प्रश्न करै तौ तेरे ज्ञानतैं होवैगा, यह उत्तर है:—अथवा किसीके ज्ञानतैं मोक्ष होवै नहीं, यह उत्तर है. काहेतैं? या मतमैं बंधका अत्यन्त असद्भाव आत्मामैं है. नित्यमुक्त आत्माका मोक्ष होवैगा अथवा हुवा है; यह कथन संभवै नहीं. इस अभिप्रायतैं मोक्षप्रतिपादक वाक्यनकूं **अर्थवाद** कहैं, हैं. औ बंध है अद्यपर्यंत कोई मुक्त हुवा नहीं, आगै पुरुषार्थसैं मोक्ष होवैगा, इस अभिप्रायतैं वामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद नहीं कह्या, काहेतैं? जो बंध होतें वामदेवादिकनका मोक्ष नहीं हुया तौ आगेभी मोक्षकी आशा निष्फल है; या बुद्धिसैं श्रवणमैं प्रवृत्तिकाही अभाव होवैगा, यातैं आत्मामैं बंधका अत्यंत असद्भाव है, नित्यमुक्त ब्रह्मरूप आत्मा है ताका मोक्ष संभवै नहीं; यह **उत्तमभूमिकारूढ विद्वान्का निश्चय** है.

वेदांतसिद्धांतकी नाना प्रक्रियाका तात्पर्य सकल अद्वैतग्रन्थके तात्पर्यका विषय ॥ २९ ॥

नित्यमुक्त आत्मस्वरूपके ज्ञानतैं दुःखपरिहार औ सुखकी प्राप्तिके निमित्त अनेकविध कर्तव्य बुद्धिजन्य क्लेशकी निवृत्तिही वेदांत श्रवणका-फल है, आत्मस्वरूपमैं बंधका नाशरूप वा परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष वेदांत श्रवणका फल नहीं. वेदांत श्रवणतैं पूर्वभी आत्मामैं बंधका लेश नहीं, तथापि अत्यंत असत् बंधकी प्रतीति होवै है; यातैं भ्रमतैंही वेदांतश्रवणमैं प्रवृत्ति होवै है. जाकूं बंधभ्रम नहीं होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं. सकल अद्वैतशास्त्रका इसपक्षमैं ही तात्पर्य है.

जीवईश्वरविषे सर्वग्रन्थकारनकी संमतिका एकत्र निर्णय ॥ ३० ॥

इसरीतिसैं जीवईश्वरका स्वरूपनिरूपण ग्रंथकारोंनैं बहुत विस्तारमैं लिख्याहै; तहां जीवके स्वरूपमैं तौ एकत्व अनेकत्वका विवाद है; औ सर्वमतमैं ईश्वर एक है, सर्वज्ञ है, नित्यमुक्त है; ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार किसी अद्वैतवादके ग्रंथमैं नहीं. जो ईश्वरमैं आवरण कहै, सो वेदांतसंपदायसैं बहिर्भूत है,

परंतु नाना अज्ञानवादमैं जीवाश्रित ब्रह्मविषयक अज्ञानहै, यह वाचस्पतिका मत है. तहां जीवके अज्ञानतैं कल्पित ईश्वर औ प्रपंच नाना मानें हैं; तथापि जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वरभी सर्वज्ञही मानें हैं, ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार नहीं.

विवरणकारकी रीतिसैं प्रतिबिंबके स्वरूपका निरूपण ॥ ३१ ॥

जीवईश्वरके स्वरूपनिरूपणमैं प्रतिबिंबका स्वरूप निरूपण करैं हैं:- विवरणकारके मतमें दर्पणादिक उपाधिसैं प्रतिहत नेत्रकी रश्मि ग्रीवास्थमुखकूं विषय करै है. जहां द्रष्टासैं भिन्नपदार्थकाभी दर्पणसैं अभिमुखतारूपसंबंध होवै, तहां दर्पणसैं संबंधी होयकै प्रतिहतनेत्रका द्रष्टासैं भिन्नभी दर्पणाभिमुख पदार्थसैं संबंध होयकै स्वस्थानमैं ही ताका साक्षात्कार होवै है. जहां अनेक पदार्थ दर्पणके अभिमुख होवैं तहां प्रतिहत नेत्रसैं अनेकपदार्थनका साक्षात्कार होवैहै, दर्पणाभिमुख जो उद्भूतरूपवान् होवै तामैं प्रतिहत नेत्रजन्य साक्षात्कारकी योग्यता है; यातैं दर्पणाभिमुख पदार्थके सन्मुख नेत्रकी वृत्ति जावै है. स्वगोलकमैंही नेत्रकी वृत्ति आवै, यह नियम नहीं, इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं ग्रीवास्थमुखकाही साक्षात्कार होवैहै, परंतु पूर्वाभिमुख ग्रीवास्थ मुखमैं प्रत्यङ्मुखत्व दर्पणस्थत्व स्वभिन्नत्व भ्रम होवैहै; यातैं दर्पणमैं पूर्वाभिमुख प्रतिबिंब है औ मेरे मुखसैं भिन्न है ऐसा व्यवहार होवैहै.

या पक्षमैं यह शंका है:-जो बिंबभूत मुखादिकनकाही प्रतिहत नेत्रसैं साक्षात्कार होवै तौ सूर्यके प्रकाशतैं नेत्रका प्रतिरोध होवै, यातैं जलसैं प्रतिहत नेत्रसैंभी सूर्यके साक्षात्कारके असंभवतैं जलदेशमैं सूर्यतैं भिन्नताके प्रतिबिंबकी उत्पत्ति माननी चाहिये. औ बिंबके साक्षात्कारके अर्थ उपाधिसैं संबंधी होयकै नेत्रकी रश्मिकी प्रतिहति मानैं तौ जलके अंतर्गत सिकताका साक्षात्कार नहीं हुया चाहिये. इन दोनूं शंकाके ये समाधान हैं:-केवल नेत्रका आकाशस्थ सूर्यके प्रकाशतैं अवरोध होवै है, औ जलादिक उपाधिसैं प्रतिहत नेत्रका सूर्यप्रकाशतैं अवरोध

होवै नहीं. तैसैं कोई नेत्ररश्मिजलमैं प्रविष्ट होयकै तिसके अंतर्गत सिकताकूं विषय करैहै. तिसी नेत्रकी अन्य रश्मि प्रतिहत होयकै बिंबकूं विषय करैहै; यह दृष्टके अनुसार कल्पना है, यातैं बिंबसैं भिन्न प्रतिबिंब नहीं; यह ही विवरणकारका मत है.

विद्यारण्यस्वामीके औ विवरणकारके मतकी विलक्षणता ॥ ३२॥

विद्यारण्यस्वामी आदिकोंनैं पारमार्थिक व्यावहारिक, प्रातिभासिक भेदसैं त्रिविध जीव कह्याहै. व्यावहारिक अंतःकरणमैं प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक जीव कहैहैं, स्वप्न अवस्थाके प्रातिभासिक अंतःकरणमैं प्रतिबिंबकूं प्रातिभासिक जीव कहैं हैं, विवरणकारकी रीतिसैं बिम्बसैं पृथक् प्रतिबिंबके अभावतैं जीवके तीनि भेद संभवैं नहीं; यातैं त्रिविध जीववादके अनुसारी बिंबप्रतिबिंबका भेद मानैं हैं; तिनके मतमैं दर्पणादिक उपाधिमैं अनिर्वचनीयप्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवैहै. प्रतिबिंबका अधिष्ठान दर्पणादिक हैं, औ बिंबका सन्निधान निमित्तकारण है. यद्यपि निमित्तकारणके अभावतैं कार्यका अभाव होवै नहीं, औ बिम्बके अपसरणतैं प्रतिबिंबका अभाव होवै है; तथापि निमित्तकारणके दो भेद हैं. कोई तो कार्यतैं अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै, कोई कार्यकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै. घटादिकनके दंडकुलालादिक निमित्तकारण हैं, सो कार्यतैं पूर्वकाल वृत्ति चाहिये. घटादिकनकी सत्ता हुयां तिनकी अपेक्षा नहीं, तैसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं स्वविषय निमित्तकारण है; तहां विषयकी सत्ता ज्ञानकालमैं अपेक्षित है, विनाशाभिमुख घटसैं नेत्रका संयोग हुयां भी घटका साक्षात्कार होवै नहीं, यातैं ज्ञानकालमैं वर्तमान घटादिकही अपने साक्षात्कारके निमित्तकारण हैं; औ दूरस्थ नानापदार्थनमैं एकत्व भ्रम होवैहै, मंदांधकारस्थ रज्जुमैं सर्पभ्रम होवैहै; यातैं एकत्र भ्रमका निमित्तकारण **दूरस्थत्वदोष** है रज्जुमैं सर्पभ्रमका निमित्तकारण **मन्दांधकार**है. दूरस्थत्व औ मन्दांधकारका अभाव हुयां एकत्वभ्रम औ सर्पभ्रमका अभाव होनेतैं कार्यकालमैं

वर्तमान दूरस्थत्व औ मंदांधकार, उक्त द्विविध अध्यासके निमित्तकारण हैं. तिसरीतिसैं बिंबका सन्निधानभी कार्यकालमैं वर्तमानही प्रतिबिम्ब अध्यासका हेतु होनेतैं बिंबके अपसरणतैं प्रतिबिम्बका अभाव संभवै है; यातैं सन्निहित बिम्ब तौ प्रतिबिंबका निमित्तकारण है. भ्रमका अधिष्ठानही **उपादानकारण** कहियेहैं; यातैं प्रतिबिम्बके उपादानकारण दर्पणादिक हैं. औ विवरणकारके मतमैं प्रतिबिम्बका स्वरूप तौ बिम्बसैं भिन्न नहीं परंतु दर्पणस्थत्व विपरीतदेशाभिमुखत्व बिम्बभिन्नत्व धर्मकी उत्पत्ति ग्रीवास्थ मुखमैं होवैहै, सोभी तीनूं धर्म अनिर्वचनीय हैं. निमित्तकारण तिनका अधिष्ठानरूप उपादानकारण ग्रीवास्थमुख है, सन्निहित दर्पणादिक है; इसरीतिसैं चेतनके **प्रतिबिंबवादमैं दो मत** हैं. विवरणकारके मतमैं प्रतिबिम्बका बिम्बसैं अभेद होनेतैं प्रतिबिम्बका स्वरूप सत्य है औ विद्यारण्यस्वामी आदिकनके मतमैं दर्पणादिकनमैं अनिर्वचनीयमुखाभासकी उत्पत्ति होवै है. याकूंही **आभासवाद** कहैं हैं. विवरणउक्तपक्षकूं **प्रतिबिम्बवाद** कहैं हैं. दोनूं पक्षनका परस्पर खंडन औ स्वपक्षका मंडन बृहद्ग्रन्थनमैं स्पष्ट है. विस्तारभयतैं लिख्या नहीं.

दोनूंके पक्षनकी उपादेयता ॥ ३३ ॥

प्रतिबिम्बवादमैं अथवा आभासवादमैं आग्रह नहीं, चेतनमैं संसारधर्मका संभव नहीं औ जीव ईशका परस्पर भेद नहीं, इस अर्थके बोधके अर्थ अनेक रीति कही हैं, **जिसपक्षसैं असंग ब्रह्मात्मबोध होवै, सोई पक्ष आदरणीय** है.

बिम्बप्रतिबिंबके अभेद पक्षकी रीतिकी अभेदके बोधनमैं सुगमता ॥ ३४ ॥

तथापि बिम्बप्रतिबिम्बके अभेदपक्षकी रीतिसैं असंगब्रह्मात्मबोध अनायासतैं होवै है. काहेतैं ? दर्पणादिकनमैं मुखादिकनका लौकिक प्रतिबिम्ब होवै है, तहांभी बिम्बका स्वरूप तौ सदा एकरस है, उपाधिके सन्निधा-

नतैं बिंबप्रतिबिम्बका भेदभ्रम होवै है, तैसैं ब्रह्म चेतन तौ सदा एकरस है. अज्ञानादिक उपाधिके संबंधतैं जीवभाव ईशभावकी प्रतीतिरूप भ्रम होवै है. इसरीतिसैं असंगचेतनमैं जीवईशभेदका सर्वथा अभाव है. जीवत्व ईश्वरत्व धर्म तौ परस्पर भिन्न कल्पित हैं औ परस्पर भिन्नधर्मी कल्पिभी नहीं; यातैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद अद्वैतमतके अत्यंत अनुकूल है.

प्रतिबिंबविषै विचार

आभासवाद औ प्रतिबिंबवादसैं किंचिद्भेद ॥ ३५ ॥

आभासवादमैं जैसैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंब है, ताका अधिष्ठान दर्पणादिक उपाधि है; तैसैं विवरणोक्त प्रतिबिंबवादमैंभी दर्पणस्थत्वविपरीतदेशाभिमुखत्वादिक धर्म अनिर्वचनीय हैं. तिनका अधिष्ठान मुखादिक बिंब हैं, यातैं दोनूं पक्षनमैं अनिर्वचनीयका परिणामी उपादान अज्ञान कह्या चाहिये.

प्रतिबिंबकी छायारूपताका निषेध ॥ ३६ ॥

औ कोई ग्रन्थकार छायाकूं प्रतिबिंब मानैं हैं सो संभवै नहीं. काहेतैं ? शरीरवृक्षादिकनतैं जितने देशमैं आलोकका अवरोध होवै, उतने देशमैं आलोकविरोधी अंधकार उपजै है; तिस अंधकारकूं छाया कहैहैं. अंधकारका नीलरूप होनेतैं छायाकाभी नियमतैं नीलरूप होवैहै. औ स्फटिक मौक्तिकका प्रतिबिम्ब श्वेत होवैहै. सुवर्णका प्रतिबिम्ब पीतरूपवाला होवैहै, रक्तमाणिक्यके प्रतिबिम्बमैं रक्तरूप होवैहै. प्रतिबिम्बकूं छायारूप मानै तौ सकल प्रतिबिम्बनका नीलरूप चाहिये. यातैं छायारूप प्रतिबिम्ब नहीं.

प्रतिबिंबकी बिंबसैं भिन्न व्यावहारिक द्रव्यरूपताका निषेध ॥ ३७ ॥

और जो कोई इसरीतिसैं कहैः—यद्यपि अंधकारस्वरूप छायासैं प्रतिबिम्बका भेद है, तथापि मीमांसाके मतमैं जैसैं आलोकाभावकूं अंधकार नहीं मानैंहैं, किन्तु आलोकविरोधी भावरूप अंधकार है, तामैं क्रिया होनेतैं औ नीलरूप होनेतैं अंधकार द्रव्य है, क्रिया औ गुण द्रव्यमैंही होवैंहैं.

जैसें दशमद्रव्य अंधकार है, तैसें प्रतिबिम्बभी पृथिवी जलादिकनतैं भिन्नद्रव्य है. इसरीतिसें प्रतिबिम्बकूं स्वतंत्र द्रव्य मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहियेः—सो प्रतिबिम्ब नित्यद्रव्य है अथवा अनित्यद्रव्य है? जो नित्यद्रव्य होवै तौ आकाशादिकनकी नाईं उत्पत्तिनाशहीन होनेतैं प्रतिबिम्बके उत्पत्ति नाश प्रतीत नहीं हुये चाहियें? यातैं प्रतिबिम्बकूं अनित्यद्रव्य कहै तौ उपादानके देशमैं कार्य द्रव्य रहैहै, यातैं प्रतिबिम्बके उपादानकारण दर्पणादिकही माननें होवैंगे औ दर्पणादिकनकूं प्रतिबिंबकी उपादानता संभवै नहीं. काहेतैं? दर्पणादिक उपादानमैं जो प्रतिबिम्बरूप द्रव्यका सद्भाव मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहियेः—प्रतिबिंबमैं जो रूप और ह्रस्वदीर्घादिक परिणामस्वरूपगुण, तथापि बिम्बसें विपरीताभिमुखत्वादिक धर्म, औ हस्तपादादिक अवयव जो प्रतिबिम्बमैं प्रतीत होवैहैं; सो प्रतिबिम्बमैं व्यावहारिक हैं अथवा नहीं हैं? किंतु मिथ्या प्रतीत होवैं हैं? जो रूप परिमाणादिकनका प्रतिबिम्बमैं व्यावहारिक अभाव मानैं औ प्रतिबिम्बके रूपादिकनकूं प्रातिभासिक मानैं तौ व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिम्बका अंगीकार निष्फल है. औ प्रतिबिम्बके रूपपरिमाणादिकनकूं व्यावहारिक मानैं तौ अल्पपरिमाणवाले दर्पणमैं महापरिमाणवाले अनेक प्रतिबिम्बनकी उत्पत्ति संभवै नहीं. औ प्रतिबिम्बमिथ्यात्वमैं तौ शरीरके मध्यसंकुचितदेशमैं स्वप्नके मिथ्याहस्ती आदिकनकी उत्पत्ति होनेतैं उक्त दोषका संभव नहीं. तैसें प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक द्रव्य कहैं तौ एकविधरूपवाले दर्पणमैं दर्पणके समानरूपवाले प्रतिबिम्बकी ही उत्पत्ति हुई चाहिये औ अनेकविधरूपवाले अनेक प्रतिबिम्बनकी एक दर्पणमैं उत्पत्ति होवैहै. एक रूपवाले उपादानसैं अनेकविधरूपवाले अनेक उपादेयकी उत्पत्ति होवै नहीं, औ दर्पणके मध्य वा दर्पणके अतिसमीप अन्यपदार्थ कोई प्रतीत होवै नहीं; जासैं अनेकविधरूपवाले प्रतिबिम्बनकी उत्पत्ति संभवै, यातैं व्यावहारिक द्रव्यरूप कहना प्रतिबिम्बकूं संभवै नहीं. किंवा दर्पणके अतिसमीप और तौ कोई प्रतिबिंबका उपादान दीखै नहीं, दर्पणही

उपादान मानना होवैगा सो संभवै नहीं. काहेतें ? सघन अवयवसहित पूर्वकी नाईं अविकारी प्रतीत होनेतें दर्पणमें निम्न उन्नत हनु नासिकादिक अनेकविध अवयववाले द्रव्यांतर प्रतिबिम्बकी उत्पत्ति कहना सर्वथा युक्तिहीन है, यातें बिम्बसें पृथक् व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिम्ब है, यह पक्षभी छायावादकी नाईं असंगत है.

आभासवाद औ प्रतिबिम्बवादकी युक्तिसहितता कहिके दोनूं पक्षनमें अज्ञानकी उपादानता ॥ ३८ ॥

इसरीतिसें सन्निहित दर्पणादिकनतें मुखादिक अधिष्ठानमें प्रतिबिम्बत्वादिक अनिर्वचनीय धर्म उपजै है अथवा सन्निहित मुखादिकनतें दर्पणादिक अधिष्ठानमें अनिर्वचनीय प्रतिबिम्ब उपजैहै ? यह दोही पक्ष युक्तिसहित हैं; यातें अनिर्वचनीय धर्मका वा अनिर्वचनीय प्रतिबिम्बका उपदानकारण कह्या चाहिये.

मूलाज्ञानकूं वा तूलाज्ञानकूं प्रतिबिम्ब वा ताके धर्मनकी उपादानताके असंभवकी शंका ॥ ३९ ॥

तहां जगत्का साधारण कारण मूलाज्ञानही प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मनका वा धर्मीका उपादानकारण कहैं तौ आकाशादिकनकी नाईं मूलाज्ञानके कार्य होनेतें प्रतिबिम्बत्वादिक धर्म वा धर्मी प्रतिबिंबभी सत्य हुये चाहियें औ उक्त रीतिसें अनिर्वचनीय मानेहैं, यातें मूलाज्ञानकूं अनिर्वचनीयकी उपादानता संभवै नहीं; तैसें विवरणकारके मतमें मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबत्वादि धर्मनका उपादान मानैं, औ विद्यारण्यस्वामी आदिकनके मतमैं दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबका उपादान मानैं तौ अवस्था अज्ञानके कार्यकूं अनिर्वचनीयता होनेतें सत्यताकी आपत्ति तौ यद्यपि नहीं है, तथापि अधिष्ठानज्ञानसैं अनिर्वचनीयकी निवृत्ति होवैहै; औ प्रतिबिंबाध्यासका अधिष्ठान उक्तरीतिसें मुखावच्छिन्न चेतन वा दर्पणावच्छिन्न चेतन है; औ मुखका ज्ञान वा दर्पणका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है; तिसतैं उत्तर

कालमेंभी प्रतिबिंबकी प्रतीति सर्वके अनुभवसिद्ध है; यातें मुखावच्छिन्न चेतनका वा दर्पणावच्छिन्नचेतनका आवरक अवस्थाज्ञानभी प्रतिबिंबाध्यासका उपादान संभवै नहीं.

उक्त शंकाका कोईक ग्रंथकारकी रीतिसें समाधान ॥ ४० ॥

या स्थानमें कोई ग्रंथकार इसरीतिसें समाधान करें हैं:—यद्यपि शुक्तिरजतादिक अध्यासमें अधिष्ठानके विशेष ज्ञानतें आवरणशक्ति औ विक्षेपशक्ति रूप अज्ञानके दोनूं अंशनकी निवृत्ति होवैहै; तथापि अनुभवके अनुसारतें प्रतिबिंबाध्यासके अधिष्ठानज्ञानतें अज्ञानके आवरणशक्तिअंशकीही निवृत्ति होवैहै, यातें अधिष्ठानज्ञानतें आवरणशक्तिरूप अंशकी निवृत्ति हुयेंभी प्रतिबिम्बादिक औ तिनका ज्ञानरूप विक्षेपका हेतु अज्ञानका अंश रहनेतें अधिष्ठानज्ञानतें उत्तरकालमें भी प्रतिबिम्बादिक प्रतीत होवैहैं. यातें **उपाधिअवच्छिन्न चेतनस्थ तूलाज्ञानका कार्य प्रतिबिंबाध्यास है** यह पक्ष संभवै है.

उक्त शंकाका अन्यग्रंथकारोंकी रीतिसें समाधान ॥ ४१ ॥

अन्य ग्रंथकारोंका यह मत है—दर्पणादिकनका उपादान मूलाज्ञान हीं प्रतिबिम्बाध्यासका उपादान है, यातें दर्पणादिकनके ज्ञान हुयेंभी प्रतिबिम्ब की प्रतीति होवैहै. ब्रह्मके ज्ञानतें ब्रह्मचेतनके आवरक अज्ञानकी औ ताके कार्यकी निवृत्ति होवैहै दर्पणादिकनके ज्ञानतें दर्पणादिक अवच्छिन्न चेतनके आवरक अज्ञानकी निवृत्ति हुयेंभी ब्रह्मस्वरूप आवरक अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. ब्रह्मात्मस्वरूपके आच्छादक अज्ञानकूं **मूलाज्ञान** कहैहैं, उपाधिअवच्छिन्नचेतनके आच्छादक अज्ञानकूं **अवस्थाज्ञान** कहैं हैं, ताहीकूं **तूलाज्ञान** कहैं हैं; मूलाज्ञानसें तूलाज्ञानका भेद है वा अभेद है, यह विचार आगे लिखैंगे.

मूलाज्ञान औ तूलाज्ञानके भेदविषै किंचित् विचार ॥ ४२ ॥

यद्यपि मूलाज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासकी उपादानता मानैं तौ दर्पणादिकन

की नाई व्यावहारिकही प्रतिबिम्बादिकभी हुये चाहियें; औ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मनमैं तथा प्रतिबिम्बमैं मिथ्यात्व बुद्धि होनेतैं प्रातिभासिक हैं. मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ प्रातिभासिकता संभवै नहीं, तथापि ब्रह्मज्ञानसैं निवर्तनीय अज्ञानका कार्य व्यावहारिक है, औ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही निवर्तनीय अज्ञानका कार्य प्रातिभासिक है. इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहै तौ उक्त शंका होवैहै. औ अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य नहीं होवै; किंतु केवल अज्ञानजन्य होवै ताकूं व्यावहारिक कहैहैं. अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य होवै ताकूं प्रातिभासिक कहैहैं. इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहे उक्त शंका संभवै नहीं. काहेतैं? दर्पणादिक उपाधिसैं मुखादिकनका संबन्ध हुयें ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानका प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मरूप वा प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मीरूप परिणाम होवैहै. औ दोनूं पक्षमें अधिष्ठान ब्रह्मचेतन है.

आभासवाद औ प्रतिबिंबवादमें धर्मी वा धर्मके अध्यासकी उत्पत्तिका उपादान तूलाज्ञानकूं मानिके अधिष्ठानका भेद ४३॥

पूर्व जो कह्या है:—विद्यारण्यस्वामीके मतमें प्रतिबिम्बकी उत्पत्ति मानैं तौ दर्पणादिक अवच्छिन्नचेतन अधिष्ठान है, औ दर्पणादिक अवच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञान उपादान है. तैसें विवरणकारके मतमें प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मनकी ही उत्पत्ति मानें बिम्बावच्छिन्नचेतन अधिष्ठान है औ बिंबावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञान उपादान है; इसरीतिसैं धर्माध्यासपक्ष औ धर्मीअध्यास पक्षमैं अधिष्ठानका औ उपादानका भेद है; सो अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानिके कह्या है.

दोनूं पक्षनमैं मूलाज्ञानकी उपादानता मानैं तौ अधिष्ठानका भेद और मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादानताकी योग्यता ॥ ४४ ॥

मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ दोनूं मतनमैं अधिष्ठानका भेद संभवै

नहीं औ मूलाज्ञानकूंही उक्त अध्यासकी उपादानता माननी चाहिये. काहेतें? अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ दर्पणादिकनके ज्ञानतें वा मुखादिकनके ज्ञानतें अज्ञानकी आवरणशक्त्यंशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपशक्त्यंशकी स्थिति मानैं तौ ब्रह्मज्ञानसैं ब्रह्मस्वरूपका आवरक मूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा; तैसैं शुक्त्यादिकनके ज्ञानमैं शुक्त्याद्यवच्छिन्नचेतनका आवरक तूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा औ व्यावहारिकप्रातिभासिक विक्षेपका हेतु द्विविध अज्ञानांशके शेष रहनेतें विदेहकैवल्यमैंभी व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपके सद्भावतें सर्व संसारका अनुच्छेद होवैगा, यातैं आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष कहना संभवै नहीं.

तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानताके वादीका मत ॥ ४९ ॥

औ तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता वादी ऐसें कहैः—आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष स्वाभाविक नहीं है, किंतु विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिका प्रतिबंधक होवै तहां विक्षेप हेतु अज्ञानांशका शेष रहैहै. ब्रह्मज्ञानसैं आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां भी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधक प्रारब्धकर्म रहै, उतने काल विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष रहै है. प्रारब्धरूप प्रतिबंधकके अभाव हुयां, विक्षेपहेतु अज्ञानांशकीभी निवृत्ति होवै है परंतु इतना भेद हैः—आवरकअज्ञानांशकी निवृत्ति तौ महावाक्यजन्य अंतःकरणकी प्रमारूप वृत्तिसैं होवै है. प्रारब्धबलसैं कितने वर्ष जीवै तबपर्यंत पूर्ववृत्ति तौ रहै नहीं औ विक्षेपनिवृत्तिके अर्थ मरणके अव्यवहित पूर्व कालमैं महावाक्यविचारका विद्वान्कूं विधान नहीं औ मरण मूर्च्छाकालमैं महावाक्य विचारका संभवभी नहीं; यातैं विक्षेपशक्तिके नाशका हेतु तत्त्वज्ञानके संस्कारसहित चेतन है औ आवरणशक्तिके नाशका हेतु तत्त्वज्ञान है.

जैसैं मूलाज्ञानकी विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधक प्रारब्धकर्म है, तैसैं प्रतिबिंबाध्यासमैं विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमैं सुखादिकबिंबसैं दर्पणादिक उपाधिका संबंधही प्रतिबंधक है; ताके सद्भावमैं आवरणांशकी निवृत्ति हुयांभी प्रतिबिंबादिक विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं. बिंबउपाधिका संबन्ध रूप प्रतिबन्धककी निवृत्ति हुयां विक्षेपकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिरजतादिक अध्यास होवै तहां आवरणके नाशतैं अनंतर विक्षेपकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधक के अभावतैं विक्षेप शेष रहै नहीं. इसरीतिसैं विक्षेपनिवृत्तिमैं प्रतिबन्धका भावसहित अधिष्ठानज्ञानकूं हेतुता होनेतैं औ मोक्षदशामैं प्रारब्धरूप प्रतिबन्धकके अभावतैं संसारका उपलंभ संभवै नहीं, यातैं आवरणशक्तिके नाशतैं उत्तरभी विक्षेपशक्तिका सद्भाव मानैं तौ उक्त दोषके अभावतैं अवस्थाज्ञानकूं भी प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना उचित है.

उक्तमतके निषेधपूर्वक मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता ॥ ४६ ॥

यह कथनभी अयुक्त है. काहेतैं ? जहां देवदत्तके मुखका औ दर्पणादिक उपाधिका यज्ञदत्तकूं यथार्थ साक्षात्कार होवै, तिसतैं उत्तरकालमैं भी देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध हुयां यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखसैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका अध्यास विवरणके मतमैं होवैहै, तैसैं विद्यारण्यस्वामीके मतमैं देवदत्तमुखके प्रतिबिंबका अध्यास दर्पणमैं होवैहै सो नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्त अध्यासकी निवृत्तिमैं बिंबउपाधिका संबंधही प्रतिबन्धक है, मुख वा दर्पणरूप अधिष्ठानके ज्ञानकालमैं तिस प्रतिबंधकका अभाव होनेतैं प्रतिबंधकका अभावसहित अधिष्ठान होवै है. विवरणकारके मतमैं "देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वादिकं नास्ति" ऐसा ज्ञान अध्यासका विरोधी है. औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं "दर्पणे देवदत्तमुखं नास्ति" ऐसा ज्ञान उक्त अध्यासका विरोधी है. काहेतैं? दोनूं मतनमैं क्रमतैं "देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वं दर्पणे देवदत्तमुखम्" इसरीतिसैं अध्यासके आकारका भेद है. ताकी

हेतु विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकीभी निवृत्ति हुईहै; यातैं उपादानके अभावतैं उक्त स्थलमैं यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखका प्रतिबिंबभ्रम नहीं हुया चाहिये औ ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिम्बाध्यासकी उपादानता मानैं तौ उक्त उदाहरणमैं देवदत्तके मुखका औ दर्पणका ज्ञान हुयेंभी ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं उपादानके सद्भावतैं उक्त अध्यास संभवै है. यातैं **मूलाज्ञानही प्रतिबिम्बाध्यासका उपादान** है यह पक्षही समीचीन है.

मूलाज्ञानकी उपादानताके पक्षमें शङ्का ॥ ४७ ॥

परंतु या पक्षमैं यह शंका है:—ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिम्बभ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा भ्रमकी निवृत्ति होवैहै. औ प्रतिबिम्बाध्यासका अधिष्ठान उक्त पक्षमैं ब्रह्म चेतन है, दर्पणावच्छिन्न चेतन वा मुखावच्छिन्न चेतन अधिष्ठान नहीं मुखदर्पणादिज्ञानतैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति मानैं तौ उपादानके नाशतैं मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थनकाभी अभाव हुया चाहिये; यातैं मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ मुखादिकनतैं बिम्बउपाधिके वियोगकालमैंभी प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ४८ ॥

या शंकाका यह समाधान है:—आवरण शक्ति औ विक्षेपशक्तिके भेदतैं **दो अंशवाला अज्ञान** है. प्रतिबन्धकरहित अधिष्ठानज्ञानतैं अशेष अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक होतें ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञान हुयें भी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति होवै नहीं, औ घटादिक अनात्मपदार्थगोचर ज्ञान होवै तिनतैं अज्ञानकी निवृत्ति तौ होवै नहीं परंतु जितनेकाल घटादिकनका स्फुरण रहै उतनेकाल अन्धकारसैं आवृत गृहके एकदेशमैं प्रभाप्रकाशतैं अंधकारके संकोचकीनांई अज्ञान-

जन्य आवरणका संकोच होवै है; तैसैं मुखदर्पणादिकनके साक्षात्कारतैं ब्रह्मके आच्छादक मूलाज्ञानकी निवृत्ति तौ यद्यपि नहीं होवै है, तथापि अज्ञानजन्यप्रतिबिम्बाध्यासरूप विक्षेपका मुखदर्पणादिज्ञानतैं उपादानमैं विलयरूप संकोच होवै है. उपादानमैं विलयकूं ही कार्यकी सूक्ष्म अवस्था कहैं हैं. इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं अज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिम्बाध्यासकी बाधरूप निवृत्तिका यद्यपि संभव नहीं है, तथापि मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं प्रतिबन्धकका अभाव हुयां कार्यका उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति होवै है.

एकदेशीकी रीतिसैं बाधका लक्षण ॥ ४९ ॥

इसरीतिसैं संसारदशामैं प्रतिबिम्बाध्यासका बाध होवै नहीं: यह कोई एकदेशी मानैं हैं. या मतमैं अभावनिश्चयकूं बाध नहीं कहैं हैं. काहेतैं ? "मुखे दर्पणस्थत्वं नास्ति, दर्पणे मुखं नास्ति" इसरीतिसैं विवरणकार विद्यारण्यस्वामीके मतभेदसैं उभयविध अध्यासका अभावनिश्चय सर्व अविद्वानकेभी अनुभवसिद्ध है. ताका संसारदशामैं अभाव कहना संभवै नहीं यातैं ब्रह्मज्ञानविना प्रतिबिम्बाध्यासका बाध नहीं मानै ताके मतमैं केवल अधिष्ठानशेषकूं बाध कहैं हैं. प्रतिबिम्बाध्यासका अभावनिश्चय उक्तरीतिसैं हुयांभी संसारदशामैं अज्ञानकी सत्ता होनेतैं केवल अधिष्ठान शेष नहीं है; किन्तु अज्ञानविशिष्ट अधिष्ठान है. इसरीतिसैं प्रतिबन्धकरहित मुखदर्पणादिक साक्षात्कारतैं अधिष्ठानज्ञानविना बाधरूप अज्ञाननिवृत्तिका अभाव हुयांभी अपने उपादानमैं विलयरूप कार्यका संकोच होवैहै उपादानरूपमैं कार्यकी स्थितिकूंही सूक्ष्मावस्था कहैं हैं.

बहुत ग्रंथकारनकी रीतिसैं बाधका लक्षण औ ब्रह्मज्ञानविनाप्रतिबिंबाध्यासके बाधकी सिद्धि ॥ ५० ॥

बहुत ग्रन्थकारोंके मतमैं ब्रह्मज्ञानसैं विना मूलाज्ञानके नाशविनाभी मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिम्बाध्यासका बाध होवैहै, यह तिनका अभिप्राय है.

मिथ्यात्वनिश्चय वा अभावनिश्चय बाध कहिये है; यह सर्व ग्रंथनका निष्कर्ष है. बहुत स्थानमैं मिथ्यात्वनिश्चयभी अभावनिश्चय पदार्थ होवै, तहां अधिष्ठानमात्र शेष रहैहै; अज्ञान शेष रहै नहीं. इस अभिप्रायतैं किसी ग्रंथकारनैं अधिष्ठानमात्रका शेषही बाधका स्वरूप कह्या है; औ अधिष्ठानमात्रका शेष बाधका लक्षण नहीं.जो बाधका यही लक्षण होवै तौ स्फटिकमैं लौहित्यभ्रमादिक सोपाधिक अध्यास होवैं, तहां अधिष्ठानज्ञानमैं उत्तरकालमैंभी जपाकुसुम औ स्फटिकका परस्परसंबन्धरूप प्रतिबन्धक होनेतैं लौहित्यअध्यासकी निवृत्ति नहीं होवै है. तैसैं विद्वानकूं प्रारब्धकर्म प्रतिबन्धक होनेतैं शरीरादिकनकी निवृत्ति नहीं होवै है, यातैं अज्ञानकार्य-विशिष्ट अधिष्ठान. दोनूं स्थानमैं होनेतैं केवल अधिष्ठानशेषके अभावतैं बाधव्यवहार नहीं हुया चाहिये. औ श्वेत स्फटिकके साक्षात्कारतैं लौहित्य-अध्यासका बाध होवैहै. ब्रह्मसाक्षात्कारतैं जीवन्मुक्त विद्वानकूं संसारका बाध होवैहै; इसरीतिसैं विक्षेपसहित अधिष्ठानमैं बाधव्यवहार सकल ग्रंथकारोंनैं लिख्याहै, तहां अध्यस्त पदार्थमैं मिथ्यात्वनिश्चय वा ताका आभावनिश्चयही **बाधका स्वरूप** संभवै है, औ प्रतिबन्धकरहित मुखदर्पणादिकनके ज्ञाननैं मुखमैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका तथा दर्पणमैं प्रतिबिम्बादिक धर्मीका मिथ्यात्वनिश्चय होवैहै, तैसैं अभावनिश्चय होवैहै, यातैं ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिम्बाध्यासका बाध होवै नहीं, यह कथन अयुक्त है,

मुखदर्पणादि अधिष्ठानके ज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्तिकी हेतुता ॥ ९१ ॥

जैसैं अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी बाधरूप निवृत्ति होवै, तैसैं मुखदर्पणा-दिकनके अपरोक्षज्ञानतैं भी प्रतिबन्धकरहितकालमैं प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है; यातैं प्रतिबन्धकाभावसहित मुखदर्पणादि ज्ञानभी अधिष्ठानकी नाईं अध्यासनिवृत्तिका हेतु है इसरीतिसैं मानना योग्य है; औ मुखदर्पणादि ज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासनिवृत्तिभी कारणता संभवै भी

है. काहेतें ? समानविषयक ज्ञानतें अज्ञानका विरोध है. भिन्नविषयक ज्ञान अज्ञानका विरोध नहीं; यातें मुखदर्पणादिक ज्ञानका मुखदर्पणादिक अवच्छिन्नचेतनस्थ अवस्थाज्ञानसैंही विरोध है. ब्रह्माच्छादक मूलाज्ञानसें ब्रह्मज्ञानविना अन्यज्ञानका विरोध नहीं, यातें ब्रह्मज्ञानविरोधी मूलाज्ञानसें दर्पणादिकज्ञानके विरोधाभावतें प्रतिबिंबाध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी निवृत्ति तौ यद्यपि नहीं होवैहै; तथापि अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाभी विरोधी-ज्ञानसें पूर्वज्ञानकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है.

मुखदर्पणादिकके ज्ञानकूं मूलाज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिम्बाध्यासकी नाशकता ॥ ८२ ॥

जहां रज्जुके अज्ञानतें सर्पभ्रमतें उत्तर दंडभ्रम होवै तहां दंडज्ञानतें सर्पके उपादान अवस्थाज्ञानकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेतें ? अधिष्ठानके तत्त्व-ज्ञानतैंही अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, यातें रज्जुज्ञानविना रज्जुचेतनस्थ अज्ञा-नकी निवृत्ति संभवै नहीं. औ दंडभ्रमसैंही रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै तौ उपादानके अभावतें दंडअध्यासका स्वरूपही सिद्ध नहीं होवेगा; यातें दंडज्ञानतें अज्ञाननिवृत्तिविना जैसें सर्पाध्यासकी निवृत्ति होवैहै, तैसें "मुखे प्रतिबिम्बत्वं नास्ति । दर्पणे मुखं नास्ति" इसप्रकारसैं मुखदर्पणका ज्ञान प्रतिबिंबाध्यासका विरोधी होनेतें तासैंभी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै है. औ प्रतिबिंबका अध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी उक्त ज्ञानसें निवृत्ति संभवै नहीं. जो उक्त ज्ञानसें मूलाज्ञानकी निवृत्ति कहै, तौ मूलाज्ञानके कार्य मुखद-र्पणादिक व्यावहारिक पदार्थभी नष्ट हुये चाहियें; यातें मुखदर्पणादिकज्ञानकूं विरोधिविषयक होनेतें अज्ञाननिवृत्तिविनाभी प्रतिबिंबाध्यासकी नाशकता है. भावअभावका परस्पर विरोध होवै है, यातें तिनके ज्ञानभी परस्पर विरोधी होवैं हैं. जहां स्थाणुमैं स्थाणुत्वज्ञानतैं उत्तर पुरुषत्वभ्रम होवै तहां, "स्थाणुत्वं नास्ति" ऐसे विरोधी भ्रमज्ञानतैं पूर्व प्रमाज्ञानकी निवृत्ति होवै है. घटवाले भूतलमैं घटाभावके भ्रमज्ञानतैं उत्तर घटसैं इंद्रियके संयोग हुयां "घटवद्भूतलम्"

ऐसें विरोधी प्रमाज्ञानतें पूर्व भ्रमज्ञानकी निवृत्ति होवै है. जहां रज्जुमैं सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै तहां दंडभ्रमतैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं कहूं भ्रमज्ञानतैं प्रमाज्ञानकी निवृत्ति, कहूं प्रमाज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति, कहूं भ्रमज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. जहां भ्रमतैं प्रमाकी निवृत्ति औ भ्रमतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै तहां भ्रमका उपादान अज्ञानके सद्भावमैं ही पूर्व ज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. जहां प्रमाज्ञानतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै तहां अधिष्ठानका यथार्थ ज्ञान प्रमा होनेतैं अज्ञानसहित भ्रमकी निवृत्ति होवैहै; या प्रकारतैं अधिष्ठानज्ञानविना मूलाज्ञानकी निवृत्तिविनाभी मुखदर्पणादिज्ञानतैं प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्ति संभवै है.

विरोधी ज्ञानतैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै **यह नियम** है, और अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं ही पूर्व भ्रमकी निवृत्ति होवै, यह नियम नहीं; परंतु अधिष्ठानके यथार्थज्ञानविना अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; यातैं अज्ञानकी निवृत्ति केवल अधिष्ठानकी विशेष प्रमातैं होवैहै, **यह नियम** है. विवरणकारके मतमैं "मुखे प्रतिबिम्बत्वं दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वम्" ऐसा अध्यास होवैहै; ताका विरोधी "मुखे प्रतिबिम्बत्वादिकं नास्ति" ऐसा ज्ञान है. औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं "दर्पणे मुखम्" ऐसा अध्यास होवैहै; "दर्पणे मुखं नास्ति" ऐसा ज्ञान ताका विरोधी है. नैयायिकमतनमैंभी भावअभावका परस्पर विरोध मानिकै तिनके ज्ञानोंकाभी विषयविरोधमैं विरोध मान्याहै; या प्रकारतैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासकी उपादानता मानैं तौ बिम्बउपाधिका सन्निधानरूप प्रतिबंधकरहित कालमैं मुखदर्पणादिक ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी उक्त अध्यासकी निवृत्ति संभवै है.

उक्त पक्षमैं पद्मपादाचार्यकृत पंचपादिकाकी रीतिसैं तूलाज्ञानकूं अध्यासकी हेतुताके वादीकी शंका ॥ ९३ ॥

या पक्षमैं यह शंका है:—शारीरकभाष्यकी टीका पंचपादिका नाम पद्मपादाचार्यनैं किया है, ताकूं भाष्यकारके वचनतैं सर्वज्ञता हुई है, तिस

सर्वज्ञवचन पंचपादिकामैं यह लिख्याहै:—जहां सर्परजतादिक भ्रम होवै तहां रज्जुशुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतादिकनके उपादान अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, औ अज्ञानकी निवृत्तिमैं सर्परजतादिक अध्यासकी निवृत्ति होवैहै रज्जु शुक्ति आदिकनके ज्ञानकूं सर्परजतादिकनकी निवृत्तिमैं साक्षात्कारण मानैं तौ उपादानके नाशतैं भावकार्यका नाश होवै है. या नियमकी हानि होवैगी, औ अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानका नाश होवैहै. अज्ञाननाशतैं अध्यासका नाश होवैहै. इसरीतिसैं मानैं तौ उक्त नियमका व्यभिचार होवै नहीं। यद्यपि अंधकारकी नाईं अज्ञानभी भावरूप है; तथापि अज्ञान अनादि होनेतैं कार्य नहीं, यातैं अज्ञानकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतैं भी संभवै है, परंतु भावकार्य सर्पादिक अध्यासकी निवृत्ति उपादानके नाशविना होवै नहीं. घटध्वंसकी निवृत्तिभी वेदांतमतमैं होवैहै औ अभाव पदार्थका उपादानकारण होवै नहीं. यातैं उपादानके नाशविनाभी घटध्वंसरूप कार्यका नाश होवै है, परंतु घटध्वंस भाव नहीं; यातैं उपादान नाशकूं भावकार्यके नाशमैं नियत हेतुताके संरक्षणकूं पंचपादिकामैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी हेतुता कही है. अज्ञाननिवृत्तिकूं त्यागिके अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी साक्षात् हेतुताका निषेध कर्‌याहै; औ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ उक्त रीतिसैं अज्ञान निवृत्तिसैं विनाही प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति माननी होवैहै; यातैं पंचपादिकावचनतैं विरोध होवैगा. अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ विरोध नहीं.काहेतैं?अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता कहै ताके मतमैं विवरणकारकी रीतिसैं मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं धर्माध्यासकी उपादानता सिद्ध होवैहै. विद्यारण्यस्वामीकी रीतिमैं दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं धर्मीअध्यासकी हेतुता सिद्ध होवै है औ प्रतिबंधकरहितकालमैं मुखज्ञानतैं वा दर्पणज्ञानतैं तिन अज्ञानोंकी क्रमतैं निवृत्ति होवै है. अज्ञाननिवृत्तिद्वारा प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्ति होवै है, यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रति-

बिंबाध्यासकी उपादानता मानना पंचपादिकावचनके अनुकूल है. औ मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता कहना पंचपादिकावचनसैं विरुद्ध है.इस रीतिसैं उक्त अध्यासकी हेतुता अवस्थाज्ञानकूं मानैं तौ ताका यह पूर्वपक्ष है.

उक्तशंकाकी अयुक्तता ॥ ५४ ॥

परंतु अवस्थाज्ञानकूं हेतुता मानेंभी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं. तथाहिः—जहां दर्पणसंबंधरहित देवदत्तमुखका वा देवदत्तमुखवियुक्त दर्पणका यज्ञदत्तकूं साक्षात्कार होवै, औ उक्त रक्षणमैं देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबन्ध होवै है, तहांभी प्रतिबिम्बाध्यास होवै है. मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादि साक्षात्कारसैं ताकी निवृत्ति होवै नहीं. औ मुखज्ञानतैं मुखावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी तैसैं दर्पणज्ञानतैं दर्पणावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति अवश्य होवै है. औ मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं उत्तरकालमैंभी मुखदर्पणसन्निधानसैं प्रतिबिम्बाध्यास होवै है; यातैं मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं अवस्था अज्ञानके आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका नाश नहीं होनेतैं विशेषरूपतैं ज्ञानाधिष्ठानमैंभी अध्यास संभवै है; तहां दर्पणमुखका परस्पर वियोग हुयां प्रतिबन्धका भावसहित अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति कहना अवस्थाज्ञानवादीकूंभी संभवै नहीं; किन्तु ज्ञानतैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति कहनाही संभवै है. काहेतैं ? रज्जुज्ञानतैं शुक्तिके अज्ञानका नाश नहीं होवै है, यातैं ज्ञानतैं अज्ञानमात्रका नाश नहीं होवै है; किन्तु समानविषयक अज्ञानका ज्ञानतैं नाश होवै है. ज्ञानतैं जाका प्रकाश होवै सो **ज्ञानका विषय** कहिये है. अज्ञानसैं आवृत होवै सो **अज्ञानका विषय** कहिये है. यज्ञदत्तकूं अध्यासतैं पूर्वकालमैं हुया जो मुखदर्पणका साक्षात्कार तासैं आवरणका नाश होनेतैं अज्ञानकृत आवरणरूप अज्ञानके विषयका मुखदर्पणमैं अभाव है, यातैं ज्ञान अज्ञानके विरोधका संपादक समानविषयत्वके भंगतैं उक्तस्थलमैं अज्ञाननिवृत्तिविना अध्यासमात्रकी निवृत्ति अवस्था ज्ञानवादीकूंभी

माननी होवै है, इसरीतिसैं अवस्थाऽज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानेंभी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं.

तूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानैं तौ पंचपादिकाके वचनसैं विरोध औ मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं तौ अविरोध ॥ ५५ ॥

औ सूक्ष्मविचार करै तौ अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानैं तौ पंचपादिकावचनसैं विरोध है, मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं तौ विरोध नहीं तथाहि:—ज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, औ अज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिसैं अज्ञानकार्यकी निवृत्ति होवै है; इसरीतिसैं पंचपादिकावचन है; ताका यह अभिप्राय नहीं. भावकार्यके नाशमैं उपादानका नाश नियतहेतु होनेतैं ज्ञानतैं अध्यासनिवृत्ति संभवै नहीं.काहेतैं ? उपादानके नाश विना भावकार्यका नाश होवै नहीं तौ भावकार्यके नाशमैं उपादानके नाश नियतहेतु होवै; औ भावकार्य द्व्यणुक है, ताके उपादान परमाणु हैं, तिनकूं नित्यता होनेतैं नाश संभवै नहीं; यातैं परमाणुसंयोगके नाशतैं द्व्यणुकका नाश होवे है, तहां भावकार्यके नाशमैं उपादान नाशकी हेतुताका व्यभिचार है; यातैं भावकार्यके नाशमैं उपादान नाशकी हेतुता नियमके संरक्षण अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहीं है; औ केवल आग्रहतैं पंचपादिकावचनका उक्त नियमसंरक्षणमैं अभिप्राय कहै तौ दंडभ्रमसैं सर्पाध्यासकी निवृत्ति नहीं होवैगी;औ नैयायिक मतमैंभी द्व्यणुकभिन्नद्रव्यके नाशमैं उपादानके नाशकूं हेतुता मानी है. सकल भावकार्यके नाशमैं उपादान नाशकूं हेतुता कहै तौ परमाणु औ मन नित्य हैं, तिनके नाशके असंभवतैं तिनकी क्रियाका नाश नहीं होवैगा, तैसें नित्यआत्माके ज्ञानादिगुणका औ नित्य आकाशके शब्दादिगुणका नाश नहीं होवैगा; यातैं भावकार्यके नाशमैं उपादानका नाश नियतहेतु है, यह कथन असंगत है, परंतु किसी स्थानमैं आश्रयका नाश हुयां कार्यकी स्थिति होवै नहीं, तहां उपादानका नाशभी कार्यनाशका हेतु है, तथापि कार्यनाशमैं उपादानका

नाश नियत हेतु नहीं. उपादानके सद्भावमैं अन्यकारणतैं भी कार्यका नाश होवै है. इसरीतिसैं उक्त नियम संरक्षणमैं अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहीं है; किंतु अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिमैं कारणता नहीं है, अधिष्ठानज्ञान तौ अज्ञाननिवृत्तिका कारण है. औ अज्ञाननिवृत्ति अध्यासनिवृत्तिका कारण है. जैसैं कुलालका जनक घटमैं अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं तैसैं अध्यासनिवृत्तिमैं अधिष्ठानका ज्ञान अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानमैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां ज्ञानसैं अज्ञानमात्रकी ज्ञान निवृत्ति होवैहै. अध्यासकी निवृत्ति उपादान अज्ञानके नाशतैं होवैहै; यह पंचपादिकावचनका अभिप्राय है. औ सर्वत्र अध्यासकी निवृत्तिमैं अज्ञाननिवृत्तिकूं हेतुता है; इस अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति होवै तौ दंडभ्रमसैं अज्ञाननिवृत्तिके अभावतैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये, यातैं अधिष्ठानके यथार्थ ज्ञानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै है.तहां अज्ञानकी निवृत्तिही अध्यासनिवृत्तिका हेतु है; यह नियम पंचपादिकाग्रंथमैं विवक्षित है; औ अवस्थाऽज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी हेतुता मानै ताके मतमैं मुखदर्पणादिक ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है, तामैं अज्ञान निवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति मानना पंचपादिकानुसार है, औ यज्ञदत्तकूं पूर्वज्ञानमैं आवरणनाशस्थलमैं देवदत्तमुखका उपाधिसन्निधान हुयां प्रतिबिंबाध्यास होवै है. उपाधिवियोगकालमैं अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासनिवृत्ति होवै, तहां अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं; किंतु अधिष्ठानज्ञानसैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति होवै है; यातैं पंचपादिकासैं विरुद्ध है. औ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादिक ज्ञानतैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै, तहां मुखदर्पणादिकनकूं या पक्षमैं अधिष्ठानताके अभावतैं अधिष्ठानज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति नहीं है, किंतु विरोधी विषयके ज्ञानकूं विरोधी

होनेतें मुखदर्पणादिकनके ज्ञानकूं अध्यासनिवर्तकता है. औ पंचपादिकामैं अधिष्ठानजन्य अध्यासकी निवृत्तिही अज्ञाननिवृत्तिद्वारा विवक्षित है; औ अधिष्ठानज्ञानविना प्रकारान्तरसैं अध्यासकी निवृत्तिमें अज्ञान निवृत्तिकूं द्वारता विवक्षित नहीं है इसरीतिसैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादिज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्य नहीं, औ अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादान मानैं तौ मुखदर्पणादिज्ञान-जन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्य है, औ अधिष्ठानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै सो अज्ञाननिवृत्तिद्वाराही पंचपादिकामें विवक्षित है, औ पूर्वज्ञात अधिष्ठानमैं अध्यास होयके निवृत्ति होवै, तहां उक्तरीतिसैं अज्ञान-निवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं; यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रति-बिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ पंचपादिका वचनमें विरोध है. मूला-ज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानें तौ विरोध नहीं.

प्रतिबिम्बाध्यासकी व्यावहारिकता औ प्रातिभासिकताके विचारपूर्वक स्वप्नाध्यासके उपादानके विचारकी प्रतिज्ञा ॥५६॥

इसरीतिसैं आकाशादि प्रपंचकी नाईं मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यास है, परंतु एकदेशीकी रीतिमैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी बाधरूप निवृत्ति नहीं होनेतैं प्रतिबिम्बाध्यासमैं व्यावहारिकत्व शंका होवैहै, तथापि बिंबउपाधिका संबन्ध रूप आगंतुक दोषजन्य है, यातैं प्रातिभासिक है. आकाशादिक प्रपंचका अध्यास है, सो अविद्यामात्रजन्य है, यातैं व्यावहारिक है. औ अनंतर उक्तरीतिसैं तौ अधिष्ठानज्ञानविना विरोधीज्ञानसैं बाधरूपनिवृत्तिका संभव होनेतैं संसारदशामैं बाध्यत्वरूप प्रातिभासिकत्वभी संभवै है; जैसैं प्रतिबिंबा-ध्यासमैं मतभेदसैं अवस्थाऽज्ञान औ मूलाज्ञान उपादान कह्या तैसैं स्वप्नाध्या-सभी किसीके मतमैं अवस्थाज्ञानजन्य है, औ मतांतरमैं मूलाज्ञानजन्य है.

स्वप्नविषै विचार

मूलाज्ञानकूं स्वप्नके उपादानताकी रीति ॥ ५७ ॥

अवस्थाज्ञानकूं स्वप्नकी उपादानता इसरीतिसैं कहैं हैं:—अज्ञानकी अव-

स्थाविशेष निद्रा है. काहेतैं? आवरणविक्षेपशक्तियुक्तता अज्ञानका लक्षण है. औ स्वप्नकालमैं जाग्रत द्रष्टा दृश्यका आवरण अनुभवसिद्ध है. देवदत्त-नाम ब्राह्मणजाति जाग्रतकालमैं पितापितामहादिकनके मरणतैं उत्तर दाह श्राद्धादि करिके धनपुत्रादिसंपदासहित सो बना हुआ आत्माकूं यज्ञदत्त नाम क्षत्रिय जाति बाल्यावस्थाविशिष्ट अन्नवस्त्रके अलाभतैं क्षुधाशीतसैं पीडित-हुवा स्वपितापितामहके अंकमैं रोदनकर्ता अनुभव करै है. तहां जाग्रत कालके व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका मूलाज्ञानसैं आवरणकहैं तौ जाग्रतकालमैंभी तिनका आवरण हुया चाहिये, अन्य कोई आवरणकर्ता प्रतीत होवै नहीं; यातैं स्वप्नकालमैं निद्राही आवरण करै है. औ स्वप्नके पदार्थाकार परिणामभी निद्राकाही होवै है. इसरीतिसैं आवरणविक्षेपशक्तिविशिष्ट निद्रा है, यातैं अज्ञान लक्षण निद्रामैं होनेतैं अज्ञानकी अवस्थाविशेष निद्रा है, परंतु अवस्थाज्ञान सादि है. काहेतैं? मूलाज्ञानही आगंतुक आकारविशिष्ट हुवा किंचित उपाध्यवच्छिन्न चेतनका आवरण करै ताकूं अवस्था अज्ञान और तूला अज्ञान कहैं हैं. इसीरीतिसैं आगंतुक आकार-विशिष्ट होनेतैं अवस्थाज्ञान सादि है; ताकी उत्पत्तिमैं निमित्तकारण जाग्र-द्भोगहेतु कर्मनका उपराम है, औ मूलाज्ञानकाही आकार विशेष होनेतैं मूलाज्ञान उपादानकारण है निद्रारूप अवस्थाज्ञानमैं आवृत व्यावहारिक द्रष्टामैं प्रातिभासिक द्रष्टा अध्यस्त है. तिस निद्रामैं आवृत्त व्यावहारिक दृश्यमैं प्रातिभासिक दृश्य अध्यस्त है; यातैं प्रातिभासिक द्रष्टाका अधिष्ठान व्यावहारिक द्रष्टा है, औ प्रातिभासिक दृश्यका अधिष्ठान व्यावहारिक दृश्य-है; भोगके अभिमुख कर्म होवै तब जाग्रत होवै है, तिसकालमैं ब्रह्मज्ञान रहित पुरुषनकूं भी व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है, तासैं अवस्थाज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिद्वारा प्रातिभासिक द्रष्टादृश्यकी निवृत्ति होवैहै. व्यावहारिक द्रष्टाके ज्ञानतैं प्रातिभासिक द्रष्टाकी औ व्या-वहारिक दृश्यके ज्ञानतैं प्रातिभासिक दृश्यकी निवृत्ति होवै है.

उक्तपक्षमें शंका ॥ ५८ ॥

या पक्षमें यह शंका है:—उक्तरीतिसें जाग्रतद्रष्टाका औ स्वप्नद्रष्टाका भेद है. औ अन्यद्रष्टाके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै तौ देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृति हुई चाहिये; यातैं स्वप्नके अनुभूतकी जाग्रत्-कालमें स्मृति होवैहै, द्रष्टाका भेद मानै तौ स्मृतिका असंभव होवैगा.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ५९ ॥

ताका यह समाधान है:—यद्यपि अन्यके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै नहीं, तथापि स्वानुभूतकी स्वकूं स्मृति होवैहै, तैसें स्वतादात्म्यवालेके अनुभूतकीभी स्वकूं स्मृति होवैहै, यातैं देवदत्तयज्ञदत्तका परस्पर तादात्म्य नहीं है, औ जाग्रत्के द्रष्टामें स्वप्नद्रष्टाकूं अध्यस्तता होनेतें तामें ताका तादात्म्य है, अध्यस्तपदार्थका अधिष्ठानमें तादात्म्य होवैहै. इस रीतिसें जाग्रत्द्रष्टाके तादात्म्यवाला स्वप्नद्रष्टा है, ताके अनुभूतकी जाग्रत्-द्रष्टाकूं स्मृति होवै है. यज्ञदत्तमें देवदत्तके तादात्म्यके अभावतें देवदत्तके अनु-भूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृतिकी आपत्ति नहीं; इसरीतिसें स्वप्नाध्यासका उपादान निद्रारूप अवस्था अज्ञान है.

व्यावहारिक जीव औ जगत्कूं स्वप्नके प्रातिभासिक जीव औ जगत्का अधिष्ठानपना ॥ ६० ॥

स्वप्नकालमें दृश्यमात्रकी अज्ञानसें उत्पत्ति मानै औ व्यावहारिक जाग्रत्कालके जीवकूं द्रष्टा मानै तौ संभवै नहीं. काहेतें ? व्यावहारिक जीवका स्वरूप निद्रारूप अज्ञानसें आवृत है. औ अज्ञानावृत जीवके संबंधसें विषयका अपरोक्ष होवैहै, यातैं स्वप्नप्रपंचके अपरोक्षज्ञानका असंभव होवैगा, यातैं दृश्यकी नाईं द्रष्टाभी व्यावहारिक जीवमें अध्यस्त है; सो अनावृत है, ताके संबन्धसें प्रातिभासिक दृश्यका अपरोक्षज्ञान संभवै है. इसरीतिसें पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसें

जीवत्रिविधवादी ग्रंथकारोंनैं स्वप्नका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव जगत् कह्या है, परंतु—

उक्तपक्षकी अयुक्ततापूर्वकचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठानपना ॥ ६१ ॥

यह मत अयुक्त है. काहेतैं ? व्यावहारिक द्रष्टाभी दृश्यकी नाईं अनात्मा होनेतैं जड है यातैं सत्तास्फूर्तिप्रदानरूप अधिष्ठानता व्यावहारिक द्रष्टादृश्यमैं संभवै नहीं, किंतु चेतनकूं स्वप्नप्रपंचकी अधिष्ठानता कहना उचित है, इसीवास्तै रज्जुशुक्तिकूं सर्परूप्यकी अधिष्ठानतावचनका रज्ज्ववच्छिन्नचेतन अधिष्ठानमैं तात्पर्य कह्या है, बहुत ग्रंथनमैंभी चेतनही स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान कह्या है, यातैं अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, यह दो मत समीचीन हैं.

अहंकारावच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिकै तूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता औ जाग्रत्‌के बोधसैं ताकी निवृत्ति ॥ ६२ ॥

तिनमैं अहंकारावच्छिन्न चेतनकूं अधिष्ठानता मानैं तौ मूलाज्ञानसैं ताका आवरण संभवै नहीं, यातैं अहंकारावच्छिन्नका आच्छादक अवस्था अज्ञानही स्वप्नका उपादान संभवै है. जाग्रत्‌के बोधसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी निवृत्ति भी संभवै है.

अहंकाराऽनवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिकै मूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता औ उपादानमैं विलयरूपताकी निवृत्ति ॥ ६३ ॥

अविद्यामैं प्रतिबिंबचेतन वा बिंबरूपईश्वरचेतन अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतन है, ताकूं अधिष्ठानतामैं तो ताका आच्छादक मूलाज्ञानही स्वप्नका उपादान मानना होवै है. जाग्रत्‌बोधसैं ताकी बाधरूप निवृत्ति होवै नहीं. किंतु उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति स्वप्नकी जाग्रतमैं होवै है.

अहंकारानवच्छिन्नचेतनकूंही अधिष्ठानमानिकै विरोधीज्ञानतैं अज्ञानकी एक विक्षेपहेतुशक्तिके नाशका अंगीकार ॥ ६४ ॥

अथवा प्रतिबिम्बाध्यासनिरूपणमैं उक्तरीतिसैं जाग्रत्बोधविरोधीज्ञान होनेतैं स्वप्नाध्यासकी निवृत्ति कहैं, परंतु विरोधीज्ञानतैं आवरणहेतु अज्ञान अंशकी निवृत्ति होवै नहीं; किन्तु विक्षेपहेतु अंशकी निवृत्ति होवै है. विरोधी ज्ञानसैं अशेष अज्ञानकी निवृत्ति कहैं, तौ दंडभ्रमसैं सर्पभ्रमकी निवृत्तिस्थलमैं उपादान हेतुके अभावतैं दंडभ्रमकाही असंभव होवैगा. विक्षेप अंशभी अशेष निवृत्ति होवै तौ दंडभी विक्षेपरूप है; ताका उपलंभ नहीं हुया चाहिये, यातैं इसरीतिमैं मानना उचित है:—एक अज्ञानमैं अनंतविक्षेपकी हेतु अनन्तशक्ति हैं. विरोधीज्ञानतैं एक विक्षेपकी हेतु शक्तिका नाश होवै है, अपर विक्षेपहेतु शक्ति रहैं हैं, यातैं कालांतरमैं तिसी अधिष्ठानमैं फेरि अध्यास होवै है; इसीवास्तै अतीतस्वप्नका जाग्रत्बोधसैं बाध हुये भी आगामी स्वप्नरूपविक्षेपकी हेतु शक्तिका अवशेष होनेतैं दिनांतरमैं स्वप्नाध्यास होवै है, यातैं अहंकारानवच्छिन्नचेतनता स्वप्नकी अधिष्ठानताभी संभवैहै, परन्तुः-

उक्तचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानवादमैंभी शरीरके अन्तर्देशस्थचेतनकूंही अधिष्ठानताका संभव ॥ ६५ ॥

उक्त चेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानकूं वादमैंभी शरीरके अंतर्देशस्थ चेतनही अधिष्ठान संभवै है बाह्य देशस्थकूं अधिष्ठान मानैं तौ घटादिकनकी-नाईं एक एक स्वप्नकी प्रतीति सर्वकूं हुई चाहिये. औ घटादिकनकी अपरोक्षतामैं सर्परजतादिकनकी अपरोक्षतामैं जैसैं इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा है, तैसैं स्वप्नकी अपरोक्षतामैंभी इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा चाहिये. औ शरीरके अन्तर्देशस्थचेतनमैं स्वप्नका अध्यास मानैं तौ प्रमातासैं संबन्धी होनेतैं सुखादिकनकी नाईं इंद्रियव्यापारसैं विनाही अपरोक्षता संभवै है. इसरीतिसैं अहंकारावच्छिन्न वा अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतनही स्वप्नका अधिष्ठान है ये दोनूं मत प्रामाणिक हैं.

शरीरके अंतर्देशस्थ अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताकी योग्यता ॥ ६६ ॥

अहंकाराऽनवच्छिन्नकूं कहैं, तामैंभी दो भेद हैं. अविद्यामैं प्रतिबिम्ब जीव चेतन वा अविद्यामैं बिम्ब ईश्वरचेतन दोनूं अहंकारानवच्छिन्न हैं औ दोनूं व्यापक होनेतें शरीरके अंतर हैं. काहेतें ? चेतनमैं बिम्बप्रति· बिंब भेद स्वाभाविक होवै तौ विरुद्धधर्माश्रयता अंतरदेशस्थ एकचेतनमैं संभवै नहीं. सो बिंबप्रतिबिंबतारूप ईश्वरजीवता उपाधिकृत है; एकही चेतनमैं अज्ञानसंबंधसैं बिंबता प्रतिबिंबता कल्पित है; यातैं शरीरस्थ एकचेतनमैं ही उभयविध व्यवहार होवैहै, तैसैं अंतरदेशस्थमैं ही स्वप्नाध्यासकी अधिष्ठानताका अन्तःकरणकूं अवच्छेदक मानैं तौ अहंकारावच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवैहै. तिसी चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताका अन्तः-करणकूं अवच्छेदक नहीं मानैं तौ अहंकारानवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है, एकही देवदत्तमैं पुत्रदृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पिता कहैं हैं; देवद-त्तके जनककी दृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पुत्र कहैं हैं. विवक्षाभेदसैं एक देवदत्तमैं पितृता पुत्रतारूप विरुद्ध धर्मके व्यवहारकी नाईं शरीरके अन्त-र्देशस्थ एक चेतनमैं अवच्छिन्नत्व अनवच्छिन्नत्व बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्वरूप विरुद्ध धर्मके व्यवहारका असंभव नहीं. इसरीतिसैं अविद्या जीवचेतनमैं वा बिम्बरूप ईश्वरचेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानता मानिकै अहंकारानव-च्छिन्नमैं स्वप्नाध्यास मानैंभी शरीरदेशस्थ अन्तरचेतनप्रदेशमैंही स्वप्नकी अधिष्ठानता उचित है.

बाह्यांतरसाधारणदेशस्थ चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताके कथनमैं गौडपाद औ भाष्यकारआदिकनके वचनसैं विरोध ॥ ६७ ॥

बाह्यांतरसाधारण देशस्थमैं स्वप्नकी अधिष्ठानता कहै तौ गौडपादाचा-र्यके वचनतैं औ भाष्यकारादिकनके वचनसैं विरोध होवैगा. काहेतैं ? मांडूक्यकारिकाके वैतथ्य प्रकरणमैं गौडपादाचार्यनैं यह कह्याहैः—स्वप्नके

हस्ती पर्वतादिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकालका अभाव होनेतैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. इस प्रकारसैं गौडपादाचार्यकी उक्तिके व्याख्यानमैं भाष्यकारादिकोंनैं यह कह्याहै, क्षणघटिकादिकालमैं औ सूक्ष्म नाडीदेशमैं व्यावहारिक हस्ती आदिकनकी उत्पत्ति संभवै नहीं, यातैं स्वप्नके पदार्थ वितथ हैं; इसरीतिसैं शरीरके अंतरदेशमैं स्वप्नकी उत्पत्ति कहीहै. साधारणचेतनमैं अधिष्ठानता मानैं तौ सूक्ष्मदेशमैं उत्पत्तिकथन असंगत होवैगा. यातैं शरीरके अंतरदेशस्थ अहंकारानवच्छिन्न चेतनमैं स्वप्नाध्यास है

अहंकारनवच्छिन्न चेतनभी अविद्यामैं प्रतिबिंब औ बिंब दोनूं हैं तिनमैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानताका संभव ॥ ६८॥

अहंकारानवच्छिन्नचेतनभी अविद्याप्रतिबिंब औ बिंब दोनूं हैं.औ मत-भेदमैं दोनूंकूं स्वप्नकी अधिष्ठानता है, तथापि अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानता कहना ही समीचीन है. काहेतैं? अपरोक्ष अधि-ष्ठानमैं अपरोक्ष अध्यास होवैहै, औ शुद्धब्रह्मकी नाईं ईश्वरचेतनका ज्ञान केवल शास्त्रसैं होवै है. स्वप्नाध्यासका ईश्वरचेतनकूं अधिष्ठान मानैं तौ शास्त्ररूप प्रमाणके अभावतैं अधिष्ठानकी अपरोक्षता विना अध्यासकी अप-रोक्षताका असंभव होवैगा, औ अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवचेतन अहंकाराव-च्छिन्न तौ अहमाकारवृत्तिका गोचर होवैहै. औ अहंकारानच्छिन्न अवि-द्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनभी अहमाकारवृत्तिका गोचर तौ नहीं है, परंतु जीवचेतन आवृत नहीं; यातैं स्वतः अपरोक्षतामैं अपरोक्ष अध्यास संभवै है.

उक्त पक्षविषै संक्षेपशारीरकमैं उक्त अध्यासकी अपरोक्ष-तावास्तै अधिष्ठानकी त्रिविध अपरोक्षता ॥ ६९ ॥

संक्षेपशारीरकमैं अध्यासकी अपरोक्षतावास्तै **अधिष्ठानकी अपरो-क्षता तीनि प्रकारसैं** कहीहै, सर्प रजतादिकनकी अपरोक्षताका उपयो-गी रज्जुशुक्ति आदिकनकी अपरोक्षता इंद्रियसैं होवैहै,गगनमैं नीलतादिक अध्यासकी अपरोक्षताका उपयोगी गगनकी अपरोक्षता मनसैं होवै है; स्व-

प्नकी अपरोक्षताकी उपयोगी अधिष्ठानकी अपरोक्षता स्वभावसिद्ध है; इस रीतिसैं संक्षेपशारीरकमैं सर्वज्ञात्ममुनिनैं स्वतः अपरोक्षमैं स्वप्नाध्यास कह्याहै यातैं जीवचेतनही स्वप्नका अधिष्ठान है.

उक्त पक्षमैं शंकासमाधानपूर्वक जीवचेतनरूप अधिष्ठानके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश ॥ ७० ॥

यद्यपि जीवचेतनकूं अनावृत होनेतैं स्वतः प्रकाशस्वभाव मानैं तौ अविद्याकूं व्यापकता होनेतैं तिसमैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतन भी व्यापक है; ताका घटादिकनसैं सदा संबंध है, यातैं नेत्रादिजन्यवृत्तिकी अपेक्षा विनाहीं घटादिकनकी अपरोक्षता हुई चाहिये औ जीवचेतनसैं संबंधीकी अपरोक्षतामैं भी वृत्तिकी अपेक्षा मानै तौ स्वतः अपरोक्ष जीवचेतनसैं स्वप्नाध्यासकी अपरोक्षता कही असंगत होवैगी, तथापि स्वप्नाध्यासका जीवचेतन अधिष्ठान है औ घटादिकनका अधिष्ठान जीवचेतन नहीं; किंतु ब्रह्मचेतन है, यातैं स्वप्नके पदार्थनका तौ अपने अधिष्ठान जीवचेतनमैं तादात्म्य संबंध है. औ घटादिकनका अधिष्ठान ब्रह्मचेतन होनेतैं तिनका तादात्म्यसंबंध ब्रह्मचेतनसैं है, जीवचेतनसैं नहीं. नेत्रादिजन्य वृत्तिद्वारा जीवचेतनका घटादिकनसैं संबंध होवैहै, वृत्तिसैं पूर्वकालमैं जो घटादिकनका संबंध सो अपरोक्षताका संपादक नहीं;यातैं घटादिकनमैं जीवचेतनके विलक्षण संबंधकी हेतु वृत्तिकी अपेक्षातैं अपरोक्षता होवै है; औ स्वप्नाध्यासमैं अधिष्ठानतारूप संबंधसैं जीवचेतनके सदासंबंधी पदार्थनका वृत्तिविनाही प्रकाश होवै है.इसरीतिसैं प्रकाशात्मश्रीचरण नाम आचार्यनैं कह्याहै;औ मतभेदसैं वृत्तिका प्रयोजन आगे कहैंगे. या प्रकारतैं अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है औ ताके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश होवै है, परंतुः—

अद्वैतदीपिकामैं नृसिंहाश्रमाचार्योक्त आकाशगोचर चाक्षुषवृत्तिके निरूपणपूर्वक संक्षेपशारीरकोक्त आकाशगोचर मानसवृत्तिका अभिप्राय ॥ ७१ ॥

या प्रसंगमैं आकाशगोचर मानसवृत्ति कही. तहां नृसिंहाश्रम आचार्यनैं अद्वैतदीपिकामैं यह कह्याहैः—यद्यपि नीरूप आकाशगोचर चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं, तथापि आकाशमैं प्रसृत आलोकरूपवाला होनेतैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्ति होवैहै. औ आलोकावच्छिन्नचेतनका जैसैं वृत्तिद्वारा प्रमातासैं अभेद होवैहै, तैसैं आलोकदेश वृत्ति आकाशावच्छिन्न चेतनकाभी अभेद होवैहै. इसरीतिसैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिका विषय होनेतैं आकाशकी अपरोक्षताभी नेत्रइंद्रियजन्यही कहीहै. औ संक्षेपशारीरकमैं मानस अपरोक्षता कही ताका यह अभिप्राय हैः—आकाश तौ नीरूप है, यातैं आकाशाकार तौ वृत्ति संभवै नहीं; अन्याकारवृत्तिसैं समान देशस्थ अन्यका प्रत्यक्ष मानैं तौ घटके रूपाकार वृत्तिसैं घटके ह्रस्व दीर्घ परिमाणका प्रत्यक्ष हुया चाहिये;औ आलोकाकारवृत्तिसैं आलोकदेशस्थवायुकाभी चाक्षुष प्रत्यक्ष हुया चाहिये, यातैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिसैं आकाशकी अपरोक्षताके असंभवतैं मानस अपरोक्षताही संभवै है.

उभयमतके अंगीकारपूर्वक अद्वैतदीपिकोक्त रीतिकी समीचीनता ॥ ७२ ॥

सूक्ष्मविचार करैं तौ अद्वैतदीपिकाकी रीतिसैं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता अप्रसिद्ध है, ताका अंगीकार दोष है, तथापि फलबलतैं कहूं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता मानैं तौ उक्त दोषका उद्धार होवै है औ संक्षेपशारीरक रीतिसैं बाह्यपदार्थमैं अंतःकरणगोचरता अप्रसिद्धहै,ताका अंगीकार दोष है, औ फलबलतैं अन्याकार नेत्रकी वृत्ति सहकृत अंतःकरणकी वृत्तिकी गोचरता बाह्यपदार्थमैं मानैं तौ केवल अंतःकरणकूं बाह्यपदार्थगोचरता नहीं; या नियमका भंगरूप दोष नहीं इस प्रकारसैं उभयथालेख संभवै है, तथापि अद्वैतदीपिकारीतिही समीचीन है. काहेतैं? आलोकाकार वृत्तिकूं सहकारितारूप कारणता मानिकै अंतःकरणमैं बाह्यपदार्थगोचरसाक्षात्कारकी करणता अधिक माननी होवै है, अद्वैतदीपिकारीतिसैं अंतः

करणकूं बाह्यसाक्षात्कारकी करणता नहीं माननी होवै है. यातैं लाघव है, औ नेत्रकूं सहकारिता नहीं मानिकै केवल अंतःकरणकूं आकाशप्रत्यक्षका हेतु मानैं तौ निमीलित नेत्रकूं भी आकाशका मानसप्रत्यक्ष हुया चाहिये. औ अंतःकरणकूं ज्ञानकी उपादानता होनेतैं करणताकथन सर्वथा अयुक्त है, यातैं संक्षेपशारीरकमैं आकाशके प्रत्यक्षकूं मानसता कथन प्रौढिवाद है. इसरीतिसैं अध्यासकी अपरोक्षताका हेतु अधिष्ठानकी अपरोक्षता इंद्रियसैं अथवा स्वरूपप्रकाशतैं होवै है, इतनाही कहना उचित है.इसरीतिमें मतभेदसैं स्वप्नका उपादान अवस्थाज्ञान है अथवा मूलाज्ञान है.

रज्जुसर्पादिकनकी सर्वमतमैं तूलाज्ञानकूंही उपादानता ॥ ७३ ॥

रज्जु सर्पादिकनका तौ सर्वमतमैं अवस्थाज्ञानही उपादान कारण है.औ रज्जु आदिकनके ज्ञानतैं तिनकी निवृत्ति होवै है, रज्जुके ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा सर्पकी निवृत्ति होवै है यातैं एकबार ज्ञात रज्जुमैं कालांतरमैं उपादानके अभावतैं सर्पभ्रम नहीं हुया चाहिये. या शंकाका समाधान वृत्तिके प्रयोजननिरूपणमैं कहैंगे.

स्वप्नके अधिष्ठान आत्माकी स्वयंप्रकाशतामें प्रमाणभूत बृहदारण्यककी श्रुतिका अभिप्राय ॥ ७४ ॥

स्वप्नके अधिष्ठानकूं स्वतः अपरोक्षतासैं स्वप्नकी अपरोक्षता पूर्व कही है औ स्वयंज्योतिर्ब्राह्मणवाक्यमैं भी "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति" इसरीतिसैं स्वप्नके प्रसंगमैं कह्या है, ताका यह अभिप्राय है:--यद्यपि तीनों अवस्थामैं आत्मा स्वयंप्रकाश है, तथापि अपने प्रकाशमैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित जो सकलका प्रकाशक ताकूं स्वयंप्रकाश कहैं हैं,जाग्रत्अवस्थामैं सूर्यादिक औ नेत्रादिक प्रकाशक होनेतैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित ता आत्मामैं निर्द्धारित होवै नहीं; औ स्थूलदर्शीकूं सुषुप्तिमैं कोई ज्ञान प्रतीत होवै नहीं; इसीवास्तै सुषुप्तिमैं ज्ञानसामान्यका अभाव नैयायिक मानैं हैं; यातैं आत्मप्रकाशका सुषुप्तिमैंभी निर्द्धार होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं श्रुतिनैं स्वप्नअवस्थामैं आत्माकूं स्वयंप्रकाश कह्या है.

स्वप्नमें इंद्रिय औ अंतःकरणकूं ज्ञानकी असाधनता कहिके स्वतः अपरोक्ष आत्मासें स्वप्नकी अपरोक्षता ॥ ७५ ॥

स्वप्नअवस्थामें भी नेत्रादिक इंद्रियका संचार होवै, तौ स्वप्नमैंभी आत्माकूं प्रकाशांतर निरपेक्षताके अभावतें स्वयंप्रकाशताका निर्द्धार अशक्य होवैगा. इसरीतिसें इंद्रियव्यापारतें विना स्वप्नमैं आत्मप्रकाश है, स्वप्नमैं हस्तमें दंडकूं लेके उष्ट्रमहिषादिकनकूं ताडनकर्ता नेत्रसें आम्रादिकनकूं देखता भ्रमण करै है; औ हस्तनेत्रपादके गोलक निश्चल प्रतीत होवैं हैं, यातैं स्वप्नमें व्यावहारिक इंद्रियका व्यापार नहीं, औ प्रातिभासिक इंद्रियका अंगीकार नहीं. जो स्वप्नमैं प्रातिभासिक इंद्रिय होवै तौ स्वप्नमें प्रकाशांतरके अभावतें स्वयंप्रकाशता श्रुतिमें कहीहै ताका बाध होवैगा. औ विचारसागरमें स्वप्नमें इंद्रिय प्रातिभासिक कहेहैं सो प्रौढिवाद है. स्वप्नमें प्रातिभासिक इंद्रिय मानिके भी ज्ञानके समानकालमैं तिनकी उत्पत्ति होनेतें ज्ञानकी साधनता तिनकूं संभवै नहीं.इसरीतिसें अपना उत्कर्ष बोधन करनेकूं पूर्ववादीकी उक्ति मानिके समाधान है, यातें स्वप्नमें ज्ञानके साधन इंद्रिय नहीं. औ इंद्रियव्यापार विना केवल अंतःकरणकूं ज्ञानसाधनताके अभावतें औ तत्त्वदीपिकाके मतमें अंतःकरणका स्वप्नमें गजादिरूप परिणाम होनेतें ज्ञानकर्मकूं ज्ञानसाधनताके असंभवतें अंतःकरणव्यापारविना आत्मप्रकाश है. यातें स्वतः अपरोक्ष आत्मामें स्वप्नकी अपरोक्षता होवैहै, औ स्वप्नअवस्थामें गजादिकनमैं चाक्षुषता प्रतीत होवैहै,सोभी गजादिकनकी नाईं अध्यस्त है, जाग्रतमें घटादिकनकी चाक्षुषता व्यावहारिक है औ रज्जुसर्पादिकनकी चाक्षुषता अध्यस्त होनेतें प्रातिभासिक है.

दृष्टिसृष्टि औ सृष्टिदृष्टिवादका भेद दृष्टिसृष्टिवादमें सकल अनात्माकी ज्ञातसत्ता (साक्षीभास्यता) कहिके दृष्टिसृष्टिपदके दो अर्थ ७६॥

दृष्टिसृष्टिवादमैं तौ किसी अनात्मपदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं किंतु ज्ञातसत्ता है, यातें रज्जुसर्पकी नाईं सकल अनात्मवस्तु साक्षिभास्य हैं.

तिनमैं इंद्रियजन्यज्ञानकी विषयता प्रतीत होवै है, सो अध्यस्त है. **दृष्टिसृष्टिवादमैं दो भेद** हैः—सिद्धांतमुक्तावली आदिग्रंथनमैं तौ यह कह्या हैः—दृष्टि कहिये ज्ञानस्वरूपही सृष्टि है, ज्ञानतैं पृथक् सृष्टि नहीं. औ आकरग्रंथनमैं यह कह्या हैः—दृष्टिसृष्टिज्ञानमय अनात्मपदार्थकी सृष्टि है, ज्ञानतैं पूर्व अनात्मपदार्थ होवै नहीं; यातैं सकलदृश्यकी ज्ञातसत्ता है अज्ञातसत्ता नहीं; इसरीतिसैं द्विविध दृष्टिसृष्टिवाद है सकल अद्वैत शास्त्रकूं यही अभिमत है.

सृष्टिदृष्टिवाद (व्यावहारिकपक्ष) का कथन ॥ ७७ ॥

कितने ग्रंथकारोंनें स्थूलदर्शी पुरुषनके अनुसारतैं **सृष्टिदृष्टिवाद** मान्या है. प्रथम सृष्टि होवैहै उत्तरकालमैं प्रमाणके संबंधतैं दृष्टि होवैहै. सृष्टिसैं उत्तर दृष्टि होवै यह सृष्टिदृष्टिपदका अर्थ है. यापक्षमैं अनात्मपदार्थ कीभी अज्ञातसत्ता है. औ अनात्म घटादिकनकी रज्जुसर्पादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिकसत्ता है औ दृष्टिसृष्टिवादमैं कोई अनात्मवस्तु प्रमाणका विषय नहीं किंतु ब्रह्मही वेदांतरूप शब्दप्रमाणका विषय है. अचेतन पदार्थ सारे साक्षीभास्य हैं, तिनमैं चाक्षुषतादिकप्रतीति भ्रमरूप है. प्रमाणप्रमेयविभागभी स्वप्नकी नाईं अध्यस्त है. औ सृष्टिदृष्टिवादमैं अनात्मपदार्थ घटादिक प्रमाणके विषय हैं. तैसैं गुरुशास्त्रादिकभी व्यावहारिक हैं. शुक्तिरजतादिकनतैं विलक्षण हैं व्यावहारिक रजतादिक पदार्थनसैं कट-कादिरूप प्रयोजनसिद्धि होवै है, प्रातिभासिकसैं प्रयोजनसिद्धि होवै नहीं, तथापि अधिष्ठानज्ञानमैं निवृत्ति दोनूंकी समान होवैहै, औ सदसद्विलक्षण-त्वरूप अनिर्वचनीयत्वभी दोनूंमैं समान है, तैसैं स्वाधिकरणमैं त्रैकालिक अभावभी दोनूंका समान है, यातैं प्रातिभासिककी नाईं व्यावहारिक पदार्थभी मिथ्या है, यातैं सृष्टिदृष्टिवादमैंभी अद्वैतकी हानि नहीं.

मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्वमैं शंकासमाधान. उक्त दोनूं पक्षविषे मिथ्यापदार्थनके मिथ्यात्व धर्ममैं द्वैतवादिनका आक्षेप ॥ ७८ ॥

या प्रसंगमैं यह शंका है:-दृष्टिसृष्टिवादमैं तथा सृष्टिदृष्टिवादमैं सकल अनात्म मिथ्या हैं, यामैं विवाद नहीं, परंतु मिथ्या पदार्थनमैं मिथ्यात्वधर्म है, तामैं द्वैतवादी यह आक्षेप करैहै:-प्रपंचमैं मिथ्यात्वधर्म सत्य है अथवा मिथ्याहै ? सत्य कहै तौ चेतनभिन्न अनात्म धर्मकूं सत्यता होनेतैं अद्वैतकी हानि होवैगी. औ मिथ्यात्वकूं मिथ्या कहै तौ भी अद्वैतकी हानि होवैगी. तथाहि:-मिथ्या पदार्थकूं स्वविरोधी पदार्थकी प्रतिक्षेपकता होनेतैं प्रपंचके मिथ्याभूत मिथ्यात्वतैं ताकी सत्यताका प्रतिक्षेप नहीं होवैगा, जैसें एकही ब्रह्ममैं सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व धर्म है. मिथ्याभूतसप्रपंचत्व धर्मतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; किन्तु सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनूं धर्मवाला ब्रह्म है. कल्पित सप्रपंचत्व है और पारमार्थिक निष्प्रपंचत्व है, तैसें प्रपंचमैं कल्पित मिथ्यात्व है औ पारमार्थिक सत्यत्व है; इसरीतिसें प्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वधर्मके सद्भावतैं अद्वैतकी हानि होवैगी.

उक्त आक्षेपका अद्वैत दीपिकोक्त समाधान ॥ ७९ ॥

इस आक्षेपका अद्वैतदीपिकामैं यह समाधान लिख्या है:-"सन् घटः" इसरीतिसें घटादिकनमैं सत्यता प्रतीत होवैहै, औ अधिष्ठानगत सत्यताका घटादिकनमैं भान होवै है अथवा अधिष्ठानगत सत्यताका घटादिकनमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. घटादिकनमैं सदसद्विलक्षणतारूप मिथ्यात्व धर्म श्रुतिसिद्ध है. सद्विलक्षणमैं मिथ्यात्व होनेतैं मिथ्यात्वका सत्यत्वसैं विरोध है, यातैं घटादिकनमैं अपनी सत्यता नहीं. ताका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै. और जो द्वैतवादी कहैं हैं, मिथ्यात्वधर्मकूं सत्यता मानें विना मिथ्याभूत मिथ्यात्वसैं प्रपंचकी सत्यताका प्रतिक्षेप संभवै नहीं. जो मिथ्याभूत धर्मसैं भी स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप कहैं तौ मिथ्याभूत सप्रपंचत्वतैं ब्रह्मकी निष्प्रपंचताकाभी प्रतिक्षेप हुया चाहिये. यह कथन अयुक्त है. काहेतैं ? यह नियम है:-प्रमाणसिद्ध एक धर्मतैं स्वसमानसत्तावाले धर्मीके स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै. जहां धर्मीकी

विषमसत्ता होवै ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं, ब्रह्मका सप्रपंचत्व व्यावहारिक है. औ ब्रह्म पारमार्थिक है, यातैं सप्रपंचत्वके समानसत्तावाला धर्मी ब्रह्म नहीं. ताके निष्प्रपंचत्वका सप्रपंचत्वसैं प्रतिक्षेप होवै नहीं. औ व्यावहारिक प्रपंचमैं मिथ्यात्वभी व्यावहारिक है. काहेतें? आगंतुक दोषरहित केवल अविद्याजन्य प्रपंच औ मिथ्यात्व हैं. यातैं दोनूं व्यावहारिक होनेतैं मिथ्यात्वके समानसत्तावाला प्रपंच है, ताके सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै. औ सत्यधर्मतैं ही विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप मानैं तौ "रजतं सत्" इसरीतिसैं शुक्तिरजतमैं सत्यत्व प्रतीत हुयेका रजतके मिथ्यात्वमैं प्रतिक्षेप नहीं हुया चाहिये. काहेतें? कल्पितरजतमैं मिथ्यात्व धर्मभी कल्पित है. सत्य नहीं. यातैं विरोधी धर्मके प्रतिक्षेपमैं प्रतिक्षेपक धर्मकी सत्यता अपेक्षित नहीं; किन्तु जा धर्मीके धर्म विरोधी होवैं सो धर्मी प्रतिक्षेपक धर्मके समानसत्तावाला चाहिये यातैं ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वके प्रतिक्षेपकी आपत्ति नहीं. औ प्रपंचके व्यावहारिक मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवै है.

मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्व धर्ममें प्रकारांतरसैं द्वैतवादिनका आक्षेप ॥ ८० ॥

औ प्रकारांतरसैं द्वैतवादी आक्षेप करै है, तथाहि:—प्रपंचमैं मिथ्यात्व धर्मकूं मिथ्या मानैं तौभी प्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं. काहेतें? समानसत्तावाले धर्मनका विरोध होवैहै, विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै नहीं . जो विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै तौ शुक्तिमैं प्रातिभासिक रजततादात्म्यतैं व्यावहारिक रजतभेदका प्रतिक्षेप हुया चाहिये. इसप्रकारतैं प्रपंचके व्यावहारिक मिथ्यात्वतैं पारमार्थिक सत्यत्वके प्रतिक्षेपका असंभव होनेतैं प्रपंच सत्य है, यातैं अद्वैतका असंभव है.

उक्त आक्षेपके उक्तही समाधानकी घटता ॥ ८१ ॥

या शंकाकाभी उक्तही समाधान है. काहेतें ? पूर्वोक्त रीतिसें सर्परजतादिकनके मिथ्यात्वतें तिनके सत्यत्वका प्रतिक्षेप नहीं हुया चाहिये; यातें प्रमाणनिर्णीत धर्मनें विरोधी धर्मकी प्रतिक्षेपकतामें प्रमाणनिर्णीतत्व प्रयोजक है.रजतका मिथ्यात्व प्रमाणनिर्णीत है, ताके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेपक है तैसें प्रपंचका मिथ्यात्वभी श्रुत्यादि प्रमाणोंतें निर्णीतहै तासें प्रपंचसत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै, शुक्तिमें रजतका तादात्म्य भ्रमसिद्ध है, प्रमाणनिर्णीत नहीं; तामें रजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं, उलटा शुक्तिमें रजतभेदही प्रमाणनिर्णीत है; तासें रजततादात्म्यका प्रतिक्षेप होवै है. औ प्रपंचके मिथ्यात्वके मिथ्यात्वकूं व्यावहारिक मानिके ताके धर्मी प्रपंचकूं सत्य कहना सर्वथा विरुद्ध है. काहेतें? व्यावहारिक धर्मका आश्रय व्यावहारिक ही संभवै है. यातें द्वैतवादीका द्वितीय आक्षेपभी असंगत है.

अद्वैतदीपिकोक्त समाधानका सत्ताके भेद मानैं तौ संभव औ एकसत्ता मानैं तौ असंभव ॥ ८२ ॥

इसरीतिसें अद्वैतदीपिका ग्रंथकी रीतिमें प्रतिक्षेपक धर्मके समान सत्तावाला धर्मी होवै, ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै ऐसा नियम मानैं तौ प्रपंचके मिथ्याभूतमिथ्यात्वतें प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवै है, औ ब्रह्मके सप्रपंचत्वतें निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; परंतु सत्ताभेद मानैं तौ अद्वैतदीपिकोक्त समाधान संभवै है. औ ब्रह्मरूपसत्ताकाही घटादिकनमैं भान होवैहै, व्यावहारिक प्रातिभासिक पदार्थनमें भिन्नसत्ता नहीं. या पक्षमें एक सत्ता मानैं तौ उक्तसमाधान संभवै नहीं.

उक्त आक्षेपका निश्चलदासोक्त समाधान ॥ ८३ ॥

किंतु अस्मद्भावनासैं यह समाधान है:—प्रमाणनिर्णीतधर्मसें स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै है औ दोनूं धर्म प्रमाणनिर्णीत होवैं; तहां अपरधर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं.प्रपंचका मिथ्यात्व श्रुत्यादिप्रमाणसैं निर्णीत है.औ प्रपंचके

सत्यत्वमें कोई श्रुतिवचन प्रमाण नहीं. उलटा श्रुतिवाक्यनतें सत्यत्वका अभाव प्रतीत होवैहै,यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका बाध होवैहै. "घटः सन्" इस रीतिसैं प्रत्यक्ष प्रमाणतैं यद्यपि प्रपंचमैं सत्यत्व प्रतीत होवैहै, तथापि अपौरुषेय श्रुतिवचनतैं पुरुषप्रत्यक्ष दुर्बलहै,यातैं प्रपंचका सत्यत्व प्रमाणसिद्ध नहीं. औ ब्रह्मका सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनूं प्रमाणसिद्ध हैं, यातैं एकधर्मसैं अपरका बाध होवै नहीं,परंतु निष्प्रपंचत्वज्ञानतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवैहै, यातैं निष्प्रपंचत्व प्रतिपादनमैं श्रुतिका तात्पर्य है. औ अद्वैत निष्प्रपंच ब्रह्मके बोधका उपयोगी सप्रपंचका निरूपण है; यातैं सप्रपंचत्वनिरूपणमैं श्रुतितात्पर्यके अभावतैं सप्रपंचत्व पारमार्थिक नहीं; किंतु कल्पित है, परंतु दोषादिकरहित केवल अविद्याजन्य होनेतैं प्रातिभासिक नहीं,व्यावहारिक है. इसरीतिसैं निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाध सिद्ध होवै है. काहेतैं? सप्रपंचत्वप्रतिपादक वचनका व्यावहारिक सप्रपंचत्वमैं तात्पर्य कहनेतैं सप्रपंचत्वका संकोच होवैहै ब्रह्मका सप्रपंचत्व सदा नहीं, किंतु विद्यासैं पूर्व अविद्याकालमैं है, यातैं निष्प्रपंचत्वधर्मसैं बाध्य प्रपंचत्व है; तासैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप संभवै नहीं, यातैं द्वैतवादीका आक्षेप असंगत है.

उक्त आक्षेपका अन्य ग्रंथकारोक्त समाधान ॥ ८४ ॥

औ नृसिंहाश्रमाचार्यसैं अन्यग्रंथकारोंनैं उक्त आक्षेपका यह समाधान कह्याहैः—स्वाश्रयगोचर तत्त्वसाक्षात्कारतैं जिस धर्मका बाध नहीं होवै, तिसधर्मतैं विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै. औ स्वाश्रयगोचरतत्त्वसाक्षात्कारतैं जिसधर्मका बाध होवै तिसतैं स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं. मिथ्यात्वका आश्रय जो प्रपंच ताके अधिष्ठान ब्रह्मगोचर तत्त्वसाक्षात्कारतैं प्रपंचके मिथ्यात्वका बाध होवै नहीं, उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारतैं प्रपंचमैं दृढतरमिथ्यात्वबुद्धि होवैहै; यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वसैं तिसके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै; औ सप्रपंचत्वका आश्रय ब्रह्म है; ताके साक्षात्कारतैं सप्रपंचत्वका बाध होवै है; यातैं ब्रह्मके निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाध हो-

वैहै. जैसैं शुक्तिमैं स्वतादात्म्य है,कल्पितकाभी स्वाधिष्ठानमें तादात्म्य होनेतें रजततादात्म्य है,तहां शुक्तिसाक्षात्कारतें शुक्तितादात्म्यका बाध होवै नहीं; यातैं शुक्तितादात्म्यसैं स्वविरोधी शुक्तिभेदका प्रतिक्षेप होवै है. शुक्तिसाक्षात्कारतैं रजततादात्म्यका बाध होवैहै; यातें रजततादात्म्यसैं स्वविरोधि रजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं. तैसैं प्रपंचके मिथ्याभूत मिथ्यात्वतें सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै औ ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं. इसरीतिमैं द्वैतवादीके आक्षेपके अनेक समाधान हैं. तिनके वचनोंसैं जिज्ञासुकूं विमुखता करनी योग्य है.

मतभेदसैं पांच प्रकारका प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप (तिरस्कार) ॥ ८९ ॥

तत्त्वशुद्धिकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

प्रपंचके मिथ्यात्वतैं ताके सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै यह कह्याः—तहां सत्यत्वका **प्रतिक्षेप मतभेदसैं पांच प्रकारका** है, तत्त्वशुद्धिकारके मतमैं "घटः सन्" इत्यादिक प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय घटादिकनका अधिष्ठान सतरूप चेतन है. औ सद्रूपचेतनमैं अध्यस्त घटादिक अपन अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके भ्रमवृत्तिके विषय होवैं हैं. जैसैं शुक्तिरज्जुआदिकनकूं विषय करनेवाली इदमाकार चाक्षुष वृत्ति होवैहै, औ रजत सर्पादिक चाक्षुष वृत्तिके विषय नहीं, किंतु भ्रमवृत्तिके विषय हैं, तैसैं नेत्रादि प्रमाणजन्य सकल ज्ञानोंका विषय अधिष्ठानसत्ता है, घटादिगोचर प्रमाणजन्यवृत्ति होवै नहीं; काहेतैं ? अज्ञातगोचर प्रमाण होवै है औ जडपदार्थकूं अज्ञानकृत आवरणके असंभवतैं अज्ञातत्वके अभावतें प्रमाणगोचरता संभवै नहीं; यातैं रजतसर्पादिकनकी नाईं भ्रमके विषय घटादिक हैं, तिनका अधिष्ठान सतरूप है, सोई नेत्रादिप्रमाणजन्यवृत्तिका विषय है. इसरीतिसैं सकल प्रमाणका विषय सतरूप चेतन है. सतरूपचेतनमैं तादात्म्यसैं अनेक भेदविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति भ्रमरूप है, यातैं घटादिकनमें सत्ता किसी

प्रमाणका विषय नहीं. इसीवास्तै घटादिकनके मिथ्यात्वकूं अनेक श्रुतिस्मृति अनुवाद करैं हैं. तत्त्वशुद्धिकारनैं इसरीतिसैं नेत्रादिप्रमाणका गोचरअधिष्ठान सत्ता कही है,घटादिकनकी सत्ता नेत्रादिप्रमाणका गोचर नहीं; यातैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप कह्या है.

अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८६ ॥

औ कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं:—"घटोस्ति" इत्यादिक प्रतीतिका गोचर घटादिकनका सत्त्व है, औ श्रुतियुक्तिज्ञानीके अनुभवतैं घटादिकनमैं मिथ्यात्व है, तहां अबाधितत्वरूप सत्त्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं घटादिकनमैं जातिरूप सत्त्व है.जैसैं सकल घटनमैं अनुगत धर्म घटत्व है, तैसैं " सन् घटः सन् पटः " इस एकाकार प्रतीतिका गोचर सकल पदार्थनमैं अनुगत धर्म जातिरूप सत्त्व है;अथवा देशकालके संबंधविना तौ घटादिकनकी प्रतीति होवै नहीं, देशकालके संबंधविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति होवै है " इह घटोऽस्ति " " इदानीं घटोस्ति" इसरीतिसैं देशसंबंधकूं औ कालसंबंधकूं घटादिगोचरप्रतीति विषय करैहै, सो देशसंबंधरूप वा कालसंबन्धरूपही घटादिकनमैं सत्त्व है,अथवा घटादिकनका स्वरूपही"घटोस्ति" या प्रतीतिका विषय है.घटादिकनसैं पृथक् सत्त्वकूं उक्त प्रतीति विषय करै नहीं. काहेतैं ? नशब्दरहितवाक्यसैं जाकी प्रतीति होवै नशब्दसहितवाक्यसैं ताका निषेध होवै है; और"घटोऽस्ति" या वाक्यतैं घटके स्वरूपका निषेध होवैहै, यह सर्वकूं संमत है; यातैं "घटोऽस्ति" या नशब्दरहितवाक्यतैं घटके स्वरूपमात्रका बोधही मानना उचित है; इसरीतिसैं "घटोऽस्ति" इसप्रतीतिका गोचर घटका स्वरूप है, यातैं स्वरूपमैं अतिरिक्त घटादिकनमैं सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहैं हैं.

न्यायसुधाकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८७ ॥

औ न्यायसुधाकारके मतमैं अधिष्ठानगत सत्ताका संबंध घटादिकनमैं उक्त प्रतीतिका गोचर है, तत्त्वशुद्धिकारके मतमैं तौ घटादिक अनात्मगोचर

प्रतीति प्रमाणजन्य नहीं; केवल अधिष्ठानसत्ता गोचरप्रमाण है. औ या मतमैं अधिष्ठानसत्ताका संबंधविशिष्ट घटादिक प्रमाणके विषय हैं, इतना भेद है. इसरीतिसैं घटादिकनमैं अधिष्ठानसत्ताका संबंध होनेतैं घटादिकनमैं सत्त्व प्रतीत होवैहै. औ घटादिकनमैं सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहियेहै. औ अधिष्ठानसत्ताकी प्रतीति घटादिकनमैं मानैं तौ अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवै है; यातैं अधिष्ठानसत्ताका अनिर्वचनीयसंबंध घटादिकतैं उपजैहै, यह कहनाही उचित है.

अन्यआचार्यकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८८॥

औ कोई आचार्य इसरीतिसैं सत्त्वका प्रतिक्षेप कहैं हैं:-श्रुतिमैं यह कह्याहै: "प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्" प्राण शब्दका अर्थ हिरण्यगर्भ है, प्राण कहिये हिरण्यगर्भ सत्य है, ताकी अपेक्षातैं परमात्मा उत्कृष्ट सत्य है; यह श्रुतिका अर्थ है. "सत्यस्य सत्यम्" इसरीतिसैं अन्य श्रुति है, अनात्मसत्यतासैं आत्मसत्यता उत्कृष्ट है; यह श्रुतिका अर्थ है. जैसैं अन्यराजाकी अपेक्षातैं उत्कृष्टराजाकूं राजराज कहैं हैं, तैसैं उत्कृष्ट सत्यकूं "सत्यका सत्य" कह्या है. इसरीतिसैं श्रुतिवाक्यनमैं सत्यके उत्कर्ष अपकर्ष कहैं हैं; तहां अन्यविध उत्कर्ष अपकर्ष तौ संभवै नहीं. सर्वदा अबाध्यत्व औ किंचित्काल अबाध्यत्वरूपही सत्यत्वमैं उत्कर्ष अपकर्ष है. अनात्मपदार्थनमैं ज्ञानतैं पूर्वकालमैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्व है औ परमात्मवस्तुमैं सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्व है, यातैं हिरण्यगर्भ तौ अपकृष्ट सत्य है औ परमात्मा उत्कृष्ट सत्य है.इसरीतिसैं द्विविध सत्यत्व श्रुतिसंमत है; तिनमैं किंचित्काल अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध नहीं; किंतु सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं ताका प्रपंचके मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवै है.

संक्षेप शारीरककी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥८९॥

औ संक्षेप शारीरकमैं यह कह्याहैः—यद्यपि प्रत्यक्षादिप्रमाणसैं घटा-

दिकनमैं सत्यत्व प्रतीत होवै है तथापि ब्रह्मबोधका वाक्यनमैंही प्रमाणताहै अनात्मग्राहक प्रत्यक्षादिक प्रमाणाभास हैं; प्रमाण नहीं. काहेतें ? अज्ञात अर्थके बोधका जनक प्रमाण होवै है. अज्ञानकृत आवरणका जडपदार्थमैं असंभव होनेतें चेतनभिन्नमैं अज्ञातत्वके अभावतें तिनके बोधक प्रत्यक्षादिकनकूं प्रमाणता संभवै नहीं. इसरीतिसैं प्रमाणाभासतैं घटादिकनमैं सत्यत्वकी सिद्धि होवैहै. औ श्रुतिरूप प्रमाणतें घटादिकनमैं मिथ्यात्वकी सिद्धि होवैहै. मुख्यप्रमाणतें प्रमाणाभासके बाधद्वारा सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै. इसरीतिसैं प्रपंचमैं अत्यंत अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका पंचप्रकारसैं प्रतिक्षेप कह्याहै यातें प्रपंच मिथ्याहै.

कर्मकूं ज्ञानकी साधनता विषै विचार

मिथ्या प्रपंचकी निवृत्तिमैं कर्मके अनुपयोगके अनुवादपूर्वक सिद्धांतके द्विविध समुच्चयका निर्द्धार ॥ ९० ॥

मिथ्याकी निवृत्तिमैं कर्मका उपयोग नहीं, यातें केवल कर्मतें वा कर्म समुच्चितज्ञानतें अनर्थनिवृत्ति संभवै नहीं, केवल ज्ञानतें अनर्थनिवृत्ति होवै है; यह अर्थ अद्वैतवादके ग्रन्थनमैं अतिप्रसिद्ध है, औ भाषामैंभी विचारसागरके षष्ठतरंगमैं स्पष्ट है; यातें लिख्या नहीं. या स्थानमैं यह सिद्धांत है:—अनेक श्रुतिस्मृतिमैं कर्म समुच्चित ज्ञानसैं मोक्षप्राप्ति कही है. औ भाष्यकारनैं बहुत स्थानमैं समुच्चयवादका निषेध प्रतिपादन कर्‌या है तहां यह निर्द्धार है:—समसमुच्चय औ क्रमसमुच्चय भेदसैं **समुच्चय दो प्रकारका** होवैहै. ज्ञान औ कर्म दोनूं परस्पर मिलिकै मोक्षके साधन जानिकै एक कालसैं दोनूंका अनुष्ठान **समुच्चय** कहिये है. औ एकही अधिकारीकूं पूर्व कर्मानुष्ठान औ उत्तरकालमैं सकल कर्म त्यागिकै ज्ञानहेतु श्रवणादिकनका अनुष्ठान **क्रमसमुच्चय** कहिये है; तिनमैं समसमुच्चयका तौ निषेध है औ श्रुतिस्मृतिमैं ज्ञानकर्मका जहां समुच्चय लिख्या है, ताका पूर्व उक्त क्रमसमुच्चयमैं तात्पर्य है.

भाष्यकारोक्तिकी साधनता ॥ ९१ ॥

भाष्यकारका यह सिद्धांत है:—मोक्षका साक्षात्साधन कर्म नहीं; किंतु मोक्षका साक्षात्साधन ज्ञान है, औ ज्ञानका साधन कर्म है; परंतुः-

वाचस्पत्युक्तजिज्ञासाकी साधनता ॥ ९२ ॥

भामतीनिबंधमैं वाचस्पतिनैं तौ यह कह्याहैः-ज्ञानके साक्षात्साधन कर्म नहीं;किंतु जिज्ञासाके साधन कर्म हैं, काहेतें ? कैवल्यशाखामैं सकल आश्रमकर्म विविदिषाके साधन स्पष्ट कहेहैं. वेदनकी इच्छाकूं **विविदिषा** कहैंहैं औ तृतीयाध्यायमैं सर्व कर्मनकी अपेक्षा ज्ञानमैं सूत्रकारनें कहीहै. तहां सूत्रके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं यह कह्याहै:—शमदमादिक साधन तौ ज्ञानके साधन हैं; यातैं ज्ञानके समीप हैं, औ जिज्ञासाके साधन कर्म हैं; यातैं शमदमादिकनकी अपेक्षातैं ज्ञानके दूर हैं. इसरीतिसैं श्रुतिवचनतैं औ भाष्यवचननैं जिज्ञासाके साक्षात्साधन कर्म हैं. औ जिज्ञासाद्वारा ज्ञानके साधन हैं. जो ज्ञानके साक्षात्साधनही कर्म कहैं, तौ ज्ञानके उदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी प्राप्ति होनेतैं ज्ञानसहित कर्मत्यागरूप संन्यासका लोप होवैगा, यातैं जिज्ञासाके साधन कर्म हैं यह वाचस्पतिका मत है.

विवरणकारोक्त कर्मकूं ज्ञानकी साधनता ॥ ९३ ॥

औ विवरणकारका यह मत है:—यद्यपि "वेदानुवचनेन विविदिषंति" इसरीतिसैं श्रुतिमैं कह्या है; तहां अक्षरमर्यादासैं वेदाध्ययनादिक धर्मनकूं विविदिषाकी साधनता प्रतीत होवैहै, तथापि इच्छाके विषयज्ञानकी साधनतामैंही श्रुतिका तात्पर्य है. कर्मनकूं इच्छाकी साधनतामैं श्रुतिका तात्पर्य नहीं. जैसैं "अश्वेन जिगमिषति" इसवाक्यतैं अक्षरमर्यादासैं गमनगोचर इच्छाकी साधनता अश्वकूं प्रतीत होवैहै, औ "शस्त्रेण जिघांसति" इसवाक्यतैं हननगोचर इच्छाकी साधनता शस्त्रकूं प्रतीत होवै है; तहां इच्छाका गोचर जो गमन ताकी साधनता अश्वमैं अभिप्रेत है. औ इच्छाका विषय हननकी साधनता शस्त्रमैं अभिप्रेत है; तैसैं इच्छाके विषयज्ञानकी साधनता

कर्मनकूं अभिप्रेत है. औ या पक्षमैं दोष कह्याहैः -कर्मनकूं ज्ञानकी साधनता मानैं तौ ज्ञानउदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी आपत्ति होनेतैं संन्यासका लोप होवेगा; ताका यह साधन हैः--जैसैं बीजप्रक्षेपतैं पूर्व तौ भूमिका कर्षण होवै है, औ बीजप्रक्षेपतैं उत्तरकालमैं भूमिका आकर्षण होयकै व्रीहि आदिकनकी सिद्धि कर्षण आकर्षणतैं होवैहै. तैसैं कर्म औ कर्मसंन्यासतैं ज्ञानकी सिद्धि होवैहै. अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा प्रत्यक्तत्त्वकी तीव्र जिज्ञासा वैराग्यसहित होवै तबपर्यंत कर्म कर्तव्य है; औ वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासाके उत्तरकालमैं साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्य है. इसरीतिसैं ज्ञानके साधन कर्म हैं, तथापि तीव्र जिज्ञासातैं पूर्वही कर्तव्य हैं. तीव्र जिज्ञासातैं उत्तरकालमैं संन्यासके अंग शमादिक ही कर्तव्य हैं. कर्म नहीं; यातैं कर्मकी अपेक्षातैं शमादिकनकूं अंतरंगताप्रतिपादक तृतीयाध्यायस्थ भाष्यवचनसैं विरोध नहीं. इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं ज्ञानके साधन कर्म हैं औ वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाके साधन हैं.

औ दोनूं मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैं कर्मका अनुष्ठान औ उत्तरकालमैं शमादिसहित संन्यासपूर्वक श्रवणादिकनका अनुष्ठान है; विविदिषातैं उत्तरकालमैं किसीके मतमैं कर्म कर्तव्य नहीं.

वाचस्पति औ विवरणकारके मतकी विलक्षणतामैं शंका ॥ ९४ ॥

या स्थानमैं यह शंका होवै है, दोनूं मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैंही कर्म कर्तव्य होवै तौ मतभेदनिरूपण निष्फल होवैगा. काहेतैं ? वाचस्पतिके मतमैं कर्मका फल विविदिषा है औ विवरणकारके मतमैं कर्मका फल ज्ञान है. फलकी सिद्धि हुयां साधनका त्याग होवैहै; यातैं वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं औ विविरणकारके मतमैं विविदिषातैं उरत्तरकालमैंभी ज्ञानकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं तौ दोनूं मतनमैं विलक्षणता संभवै. वाचस्पतिके मतानुसारी जिज्ञासु कर्मका त्याग करैं औ विवरणकारके मतानुसारी जिज्ञासु ज्ञानसैं पूर्व कर्मका

अनुष्ठान करैं तौ मतभेदनिरूपण सफल होवै औ पूर्वोक्तरीतिसैं दोनूं मतमैं विविदिषाकी सिद्धिसैं कर्मका त्याग मानैं तौ परस्पर विलक्षणता प्रतीत होवै नहीं, यातैं मतभेद निरूपण निष्फल है.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ९६ ॥

ताका यह समाधान है:--यद्यपि दोनूं मतमैं विविदिषापर्यंतही कर्मका अनुष्ठान है, तथापि मतभेदसैं कर्मके फलमैं विलक्षणता है. तथाहि:—वाचस्पतिके मतमैं कर्मका फल विविदिषा है, विविदिषाकी उत्पत्ति हुयां कर्मजन्यअपूर्वका नाश होवै है, विविदिषा हुयांभी उत्तमगुरुलाभादिक सामग्री होवै तौ ज्ञान होवै, किसी साधनकी विकलता हुयां ज्ञान होवै नहीं, कर्मका व्यापार विविदिषाकी उत्पत्तिमैं है, औ तत्त्वज्ञान कर्मका फल नहीं; यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिमैं कर्मका व्यापार नहीं. इसरीतिसैं वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाहेतु कर्मका अनुष्ठान करेभी ज्ञानकी सिद्धि नियमतैं होवै नहीं; किंतु उत्तम भाग्यतैं सकल सामग्रीकी सिद्धि होवै तौ ज्ञान होवै है; यातैं ज्ञानकी प्राप्ति अनियत है. औ विवरणकारके मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैं अनुष्ठित कर्मकाभी ज्ञान फल है; यातैं फलकी उत्पत्तिविना कर्मजन्य अपूर्वका नाश नहीं होनेतैं ज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत कर्मजन्य अपूर्व रहैहै; जितनी सामग्री विना कर्मका फल ज्ञान होवै नहीं उतनी सामग्रीकूं कर्म संपादन करैहै. इसरीतिसैं या पक्षमैं ज्ञानहेतु कर्मका अनुष्ठान करैं तौ वर्तमान शरीरमैं वा भाविशरीरमैं अवश्यज्ञान होवैहै, यातैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियत है. याप्रकारतैं वाचस्पतिके मतमैं शुभकर्मतैं विविदिषा नियमतैं होवैहै; औ ज्ञानकी सिद्धि अनियत है. विवरणकारके मतमैं तिसी कर्मसैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियमतैं होवैहै, यातैं दोनूं मतका परस्पर भेद है संकर नहीं. विविदिषाके हेतु कर्म होवैं अथवा ज्ञानके हेतु होवैं, दोनूं रीतिसैं वेदाध्ययन यज्ञदान कृच्छ्रचांद्रायणादिक आश्रम कर्मनकाही वियामैं उपयोग है.

कोई आचार्यकी रीतिसैं वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामैं उपयोग ९६॥

वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामैं उपयोग नहीं, इसरीतिसैं कोई आचार्य कहैहैं

कल्पतरुकारकी रीतिसैं सकल नित्यकर्मका विद्यामैं उपयोग ॥ ९७ ॥

औ कल्पतरुकारका यह मत है:—सकल नित्यकर्मनका विद्यामैं उपयोग है. काहेतैं ? सूत्रकारनैं औ भाष्यकारनैं आश्रमरहित पुरुषनकाभी विद्याहेतु कर्ममें तथा श्रवणादिकनमैं अधिकार कह्याहै, तैसैं रैक्व वाचक्नवी आदिक आश्रमरहितनमैंभी ब्रह्मविद्या श्रुतिमैं कहीहै. वाचक्नवीपुत्री गार्गीकूं वाचक्नवी कहैहैं;जो आश्रमधर्मनकाही विद्यामैं उपयोग होवै तौ आश्रमरहित पुरुषनमैं ज्ञानसंपादक कर्मके अभावतैं ज्ञान नहीं चाहिये; यातैं जपगंगास्नान देवताध्यानादिसहित सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोग है; यह कल्पतरुकारका मत है, परंतु कल्पतरुकारके मतमैंभी काम्यकर्मका विद्यामैं उपयोग नहीं; किंतु नित्यकर्मकाही विद्यामैं उपयोग है. काहेतैं? अन्यप्रकारसैं तौ विद्यामैं कर्मका उपयोग संभवै नहीं. विद्याके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वाराही विद्यामैं कर्मका उपयोग होवैहै, औ काम्यकर्मतैं स्वर्गपुत्रादिकनकी प्राप्तिरूप फल होवैहै. तिनतैं पापकी निवृत्ति होवै नहीं, नित्यकर्मतैं ही पापकी निवृत्ति होवै है, यातैं सकल नित्यकर्मका विद्यामैं उपयोग है.

संक्षेपशारीरककर्ताकी रीतिसैं काम्य औ नित्य सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोग ॥ ९८ ॥

औ संक्षेपशारीरककर्तानैं यह कह्या है:—काम्य औ नित्य सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोग है. काहेतैं? "यज्ञेन विविदिषंति" इसरीतिसैं कैवल्यशाखामैं कह्याहै, तहां नित्यकाम्यसाधारण यज्ञशब्द है. "धर्मेण पापमपनुदति" इत्यादिक वाक्यनतैं सकलशुभकर्मकूं पापकी नाशकता प्रतीत हो-

वैहै, यातैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मकी नाईं काम्य-कर्मका भी विद्यामैं उपयोग है यह संक्षेपशारीरककर्ता सर्वज्ञात्ममुनिका मतहै.

संन्यासकी ज्ञानसाधनताविषै विचार

पापनिवृत्तिद्वारा ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रम करि कर्म औ संन्यास दोनूंकी कर्तव्यता ॥ ९९ ॥

यातैं तीव्र जिज्ञासापर्यंत सकल शुभकर्म कर्तव्य हैं. दृढतर वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासा हुयां साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्य है, जैसें शुभकर्मतैं पापकी निवृत्ति होवै, तैसें संन्यासतैंभी ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति होवैहै. ज्ञानके प्रतिबंधक पाप अनेकविध होवैं हैं, तिनमैं किसी पापकी निवृत्ति कर्मतैं औ किसीकी निवृत्ति संन्यासतैं होवैहै; यातैं ज्ञानप्र-तिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा कर्म औ संन्यास दोनूं ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रमतैं कर्तव्य हैं.

किसी आचार्यके मतमें संन्यासकूं प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति औ पुण्यकी उत्पत्तिद्वारा श्रवणकी साधनता ॥ १०० ॥

औ किसी आचार्यका यह मत है:—केवल पापनिवृत्तिद्वाराही संन्या-सकूं ज्ञानकी साधनता नहीं है; किंतु संन्यासजन्य अपूर्वसहित पुरुषकूं ही श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवैहै, यातैं श्रवणका अंग संन्यास होनेतैं सर्वथा निष्पापकूंभी संन्यास कर्तव्य है.

विवरणकारके मतमैं संन्यासकूं ज्ञानप्रतिबंधक विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलकी हेतुता ॥ १०१ ॥

औ विवरणकारका यह मत है:—संन्यासविना विक्षेपका अभाव होवै नहीं यातैं ज्ञानप्रतिबंधक विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलही संन्यासका है. यातैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्ति वा ज्ञानहेतु धर्मकी उत्पत्तिरूप अदृष्ट फलका हेतु संन्यास है, यह कथन अयोग्य है. जहां दृष्टफल नहीं संभवै

तहां अदृष्टफलकी कल्पना होवैहै. औ विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफल संन्यासका संभवै है, ताका अदृष्टफल कथन संभवै नहीं. औ किसी प्रधान पुरुषकूं आश्रमांतरमैंभी कामक्रोधादिरूप विक्षेपका अभाव होवै तौ कर्मछिद्रनमैं वेदांतका विचार संभवै तौ यद्यपि उक्त रीतिसैं संन्यास व्यर्थ है तथापि " आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया " इस गौडपादीयवचनतैं "तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्" इस भगवद्वचनतैं, " ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " इस श्रुतिवचनतैं, निरंतर क्रियमाण ब्रह्मश्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै है. जिसकी ब्रह्मविषै संस्था कहिये अनन्यव्यापारतासैं स्थिति होवै सो पुरुष ज्ञानद्वारा अमृतभावकूं प्राप्त होवै है, यह श्रुतिका अर्थ है. कर्म छिद्रकालमैं कदाचित् क्रियमाण श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै नहीं, औ निरंतर श्रवणादिकनके अभ्यासका हेतु संन्यास है. यातैं अदृष्टविनाही दृष्टफल का हेतु संन्यास है; तौभी व्यर्थ नहीं.

क्षत्रिय औ वैश्यके संन्यास औ श्रवणमैं अधिकारका विचार

क्षत्रिय औ वैश्यके संन्यास औ श्रवणमैं अधिकारके विचारकी प्रतिज्ञा ॥ १०२ ॥

या प्रसंगमैं क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं औ श्रवणमैं अधिकार है अथवा नहीं, यह विचार मतभेदसैं लिखैं हैंः-

कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं संन्यासमैं तथा ब्रह्मश्रवणमैं ब्राह्मणकाही अधिकार औ क्षत्रिय वैश्यका अनधिकार ॥ १०३ ॥

कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैंः-संन्यासविधायक बहुवाक्यनमैं ब्राह्मणपद होनेतैं ब्राह्मणमात्रका संन्यासमैं अधिकार है औ संन्यासविना गृहस्थादिकनकूं ब्रह्मविचारका अवकाश नहीं;यातैं संन्यासमैं तथा ब्रह्मश्रवणमैं क्षत्रियवैश्यका अधिकार नहीं.

अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं संन्यासमैं केवल ब्राह्मणका अधिकार; क्षत्रिय और वैश्यका संन्यासकूं छोडिकै केवल ब्रह्मश्रवणमें अधिकार ॥ १०४ ॥

अन्य ग्रंथकार इसरीतिसें कहैं हैंः—यद्यपि संन्यासमैं केवल ब्राह्मणका अधिकार है, तथापि ब्रह्मश्रवणमैं क्षत्रिय वैश्यकाभी अधिकार है; परंतु जन्मांतरसंस्कारतैं जिस उत्तम पूरुषकूं विषयनमैं दीनतादिक दोष नहीं होवै, ऐसे शुद्धबुद्धिवालेकूं संन्यासविना ज्ञान होवैहै; इसीवास्ते गृहस्थाश्रममैंही अनेक राजर्षि ब्रह्मवित् कहेहैं.

तिनसें अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं क्षत्रिय वैश्यका ब्रह्मश्रवणादिककी नाईं विद्वत्संन्यासमैंभी अधिकार ॥ १०५ ॥

तिनसैं अन्यग्रंथकार इसरीतिसें कहैं हैंः-जैसें ब्रह्मश्रवणादिकनमैं क्षत्रियवैश्यका अधिकार है; तैसैं संन्यासमैंभी क्षत्रियवैश्यकूं निषेध नहीं, औ ज्ञानके उदयसैं कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धिका तथा जातिआश्रमअभिमानका अभाव होवै है. कर्तृत्वभोक्तृत्वबुद्धिविना औ जाति आश्रमके अभिमान विना कर्माधिकारके असंभवतैं सर्वकर्मपरित्यागपूर्वक अक्रिय असंग आत्मारूपसैं स्थितिरूप विद्वत्संन्यासमें भी क्षत्रियवैश्यका अधिकार है, केवल विविदिषा संन्यासमैं तिनका अधिकार नहीं.

वार्तिककारके मतमें विविदिषासंन्यासमैंभी क्षत्रिय वैश्यका अधिकार ॥ १०६ ॥

औ वार्तिककारका यह मत हैः—विविदिषासंन्यासमैंभी क्षत्रियवैश्यका अधिकार है, औ बहुत श्रुतिवाक्यनमैं यद्यपि ब्राह्मणकूं संन्यास कह्या है; तथापि संन्यासविधायक जाबालश्रुतिमैं ब्राह्मणपद नहीं है; केवल वैराग्यसंपत्तिसैं संन्यास कह्या है, यातैं अनेक श्रुतिवाक्यनमैं द्विजका उपलक्षण ब्राह्मणपद है. औ स्मृतिमैं यह कह्या हैः—"ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो

वा प्रव्रजेद् गृहात ॥ त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः" इसप्रकारके स्मृतिवचनतैंभी क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं अधिकार है, यह वार्तिककार सुरेश्वराचार्यका मत है.

औ कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं ब्राह्मणके ज्ञानमैं संन्यासकी अपेक्षा औ क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासमैं अनधिकार औ विद्याके उपयोगी कर्ममैं अरु वेदांतश्रवणमैं अधिकार॥ १०७ ॥

और कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैं:—संन्यासविधायक श्रुतिवाक्यनमैं ब्राह्मणपद है, ताकूं द्विजमात्रका उपलक्षण कहनेमैं प्रमाण नहीं. जाबाल-श्रुतिमैं यद्यपि ब्राह्मणपद नहीं है, तथापि बहुतश्रुतिके अनुसारतैं तहांभी ब्राह्मणकर्ताका अध्याहार है, यातैं क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं अधिकार नहीं, परंतु अनेक स्थानमैं "गृहस्थराजा ज्ञानवान्" कहेहैं; यातैं यह मानना चाहियेः—ब्राह्मणकूं ब्रह्मविचारका अंग संन्यास है, संन्यास विना गृहस्थादिक आश्रमस्थ ब्राह्मणका ब्रह्मविचारमैं अधिकार नहींसंन्यासी ब्राह्मणकाही ब्रह्मविचारमैंअधिकारहै, औ क्षत्रियवैश्यका संन्यासविनाही ब्रह्मविचारमैं अधिकार है. काहेतैं ? संन्यासविधायक वचनमैं ब्राह्मणपद होनेतैं क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासकी विधि नहीं. औ आत्मकामकूं आत्मश्रवणका अभाव कहना संभवै नहीं, यातैं क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञानका उपयोगी अदृष्ट केवल कर्मतैं ही होवैहै; संन्यासजन्य अदृष्टकी क्षत्रिय वैश्यके ज्ञानमैं अपेक्षा नहीं; इसीवास्तै गीतामैं "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" इसरीतिसैं परमेश्वरनैं कह्याहै या वाक्यमैं अंतःकरणकी शुद्धि अथवा ज्ञानसंसिद्धिशब्दका अर्थ है; यह भाष्यकारनैं लिख्या है. संन्यासरहित केवल कर्मतैं अंतःकरणकी शुद्धिकूं जनकादिक प्राप्त हुये अथवा संन्यासरहित केवल कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक निवृत्तिद्वारा श्रवणतैं ज्ञानकूं प्राप्त हुये, यह गीतावाक्यका अर्थ है. दोनूं रीतिसैं क्षत्रिय वैश्यकूं संन्यास निरपेक्ष केवल कर्मही ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्तिका हेतु है. औ ब्राह्मणकूं संन्याससहित कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक

ापकी निवृत्ति होवैहै, औ श्रवणका अंग संन्यास है; यापक्षमैंभी ब्राह्मणके श्रवणका अंग सन्यास है, क्षत्रियवैश्यके श्रवणका अंग नहीं; किंतु फलाभिलाषारहित क्रोधादि दोषरहित ईश्वरार्पण बुद्धिसैं स्ववर्णाश्रमधर्मके अनुष्ठान सहित कर्मके अवकाशकालमैं श्रवणतैंही क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञान होवैहै. सर्वथा विद्याके उपयोगी कर्ममैं औ श्रवणमैं क्षत्रियवैश्यकाभी अधिकार है. काहतैं—ब्राह्मणकी नाईं ज्ञानार्थित्व क्षत्रियवैश्यकूंभी सम है, औ फलार्थीका साधनमैं अधिकार होवैहै, यातैं आत्मकाम क्षत्रियवैश्यका वेदांतश्रवणमैं अधिकार है.

किसी ग्रंथकारके मतमैं शूद्रकूं श्रवणमैं अधिकार ॥ १०८ ॥

यद्यपि मनुष्यमात्रकूं आत्मकामनाका संभव होनेतैं क्षत्रियवैश्यकी नाईं ज्ञानार्थित्वके सद्भावतैं शूद्रकूंभी उक्तरीतिसैं वेदांतश्रवणका अधिकार हुया चाहियेः—तथापि "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इत्यादिक वचनतैं शूद्रकूं उपदेशका निषेध है और सर्वथा उपदेशरहित पुरुषकूं विवेकादिकनका असंभव होनेतैं ज्ञानार्थित्व संभवै नहीं. तैसैं शूद्रकूं यज्ञादिकर्मकाभी निषेध होनेतैं विद्योपयोगिकर्मके अभावतैं ताका ज्ञानहेतु श्रवणमैं अधिकार नहीं यह किसी ग्रंथकारका मत है.

अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं शूद्रकाभी वेदभिन्नपुराणइतिहासादिरूप अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकमैं अधिकार ॥ १०९ ॥

अन्य ग्रंथकारोंका यह मत हैः—उपनयनपूर्वक वेदका अध्यन कह्या है औ शूद्रका उपनयन कह्या नहीं; यातैं वेदश्रवणमैं तौ शूद्रका अधिकार नहीं है, तथापि "श्रावयेच्चतुरो वर्णान्" इत्यादिक वचनतैं इतिहासपुराणादिकनके श्रवणमैं शूद्रकाभी अधिकार है. औ पूर्व उक्त वचनमैं शूद्रकूं उपदेशका निषेध कह्या है ताका यह अभिप्राय हैः—वैदिक मंत्रसहित यज्ञादिक कर्मोपदेश शूद्रकूं नहीं करै, तैसैं वेदोक्त प्राणादिक सगुणउपासनाका

शूद्रकूं उपदेश नहीं करै, उपदेशमात्रका निषेध नहीं. जो उपदेशमात्रका निषेध होवै तौ धर्मशास्त्रमैं शूद्रजातिके धर्मका निरूपण निष्फल होवैगा. औ विद्योपयोगि कर्मके अभावतैं जो विद्यामैं अनधिकार कहैं हैं. ताका यह समाधान है:—साधारण असाधारण सकल शुभकर्मनका विद्यामैं उपयोग है. औ सत्य, अस्तेय, क्षमा, शौच, दान, विषयतैं विमुखता, भगवत्नामोच्चारण, तीर्थस्नान, पंचाक्षरमंत्रराजादिकनका जप, इत्यादिक सकल वर्णके साधारण धर्मनमैं तथा शूद्रकमलाकरोक्त चतुर्वर्णके असाधारण धर्मनमैं शूद्रका अधिकार है, तिनकर्मनके अनुष्ठानतैं अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा विद्याकी प्राप्ति संभवै है; यातैं इतिहास पुराणादिकनके श्रवणतैं विवेकादिकनके संभवतैं शूद्रकूंभी ज्ञानार्थित्व होनेतैं वेदभिन्न अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकनमैं शूद्रकाभी अधिकार है. औ भाष्यकारनैंभी प्रथमाध्यायके तृतीयपादमैं यह कह्या है:—उपनयनपूर्वक वेदका अध्ययन कह्या है; औ शूद्रकूं उपनयनके अभावतैं यद्यपि वेदमैं अधिकार नहीं, है, तथापि पुराणादिक श्रवणतैं शूद्रकूंभी ज्ञान होय जावै तौ ज्ञानसमकालही शूद्रकाभी प्रतिबंधरहित मोक्ष होवैहै. इसरीतिसैं भाष्यकारके वचनतैंभी वेदभिन्न ज्ञानहेतु अध्यात्मग्रंथनके श्रवणमैं शूद्रका अधिकार है.

मनुष्यमात्रकूं भक्ति औ ज्ञानका अधिकार

अंत्यजादिमनुष्यनकूं तत्त्वज्ञानका अधिकार ॥ ११० ॥

जन्मांतर संस्कारतैं अंत्यजादिकनकूंभी जिज्ञासा होय जावै तौ पौरुषेयवचनतैं तिनकोभी ज्ञान होयके कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै है, यातैं देवअसुरनकी नाईं **सकलमनुष्यनकूं तत्त्वज्ञानका अधिकार है.** आत्मस्वरूपके यथार्थ ज्ञानकूं **तत्त्वज्ञान** कहैं हैं. आत्महीन कोई शरीर होवै तौ ज्ञानका अनधिकार होवै, यातैं आत्मज्ञानकी सामर्थ्य मनुष्यमात्रमैं है, परन्तुः—

तत्त्वज्ञानमैं दैवीसंपदाकूं अपेक्षा पूर्वक मनुष्यमात्रकूं भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानके अधिकारका निर्द्धार ॥१११॥

जा शरीरमें दैवीसंपदा होवै ताकूं तत्त्वज्ञान होवैहै, आसुरीसंपदामें तत्त्वज्ञान होवै नहीं. औ सर्वभूतनमैं दया, क्षमा, सत्य, आर्जव, संतोषादिक दैवी संपदाका संभव ब्राह्मणमैं है, औ क्षत्रियका प्रजापालनार्थ प्रवृत्ति धर्म होनेतैं ब्राह्मणसैं किंचित् न्यून दैवीसम्पदा संभवै है; धर्मबुद्धिसैं प्रजासंरक्षणके अर्थ दुष्टप्राणीकी हिंसाभी अहिंसा है, यातैं दैवीसंपदाका असंभव नहीं. तथा वैश्यकाभी कृषिवाणिज्यादिक शारीरव्यापार क्षत्रियसैं अधिक होनेतैं, आत्मविचारमैं अवकाशका असंभव होनेतैं, ताकूं सामर्थ्यका असंभव है, तथापि कितने भाग्यशाली वैश्यनकूं शारीरव्यापारविनाही सकल व्यवहारका निर्वाह होवैहै; तिनकूं दैवीसंपदाका लाभरूप सामर्थ्य संभवैहै, औ जिन आचार्यके मतमैं क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका अधिकार है; तिनके मतमैं तौ अनायासतैं ही दैवी संपदा संभवैहै; औ चतुर्थ वर्णमैं तथा अंत्यजादिकनमैं यद्यपि दैवी संपदा दुर्लभ है; तथापि कर्मका फल अनंतविध है; किसीकूं जन्मांतरके कर्मतैं दैवीसंपदाका लाभ होय जावै तौ पुराणादिकनके विचारतैं चतुर्थवर्णकूं औ भाषाप्रबंधादिकनके श्रवणतैं अंत्यजादिकनकूंभी भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानके लाभद्वारा मोक्षका लाभ निर्विघ्न होवैहै, इसरीतिसैं **भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानका अधिकार सकल मनुष्यकूं** है, यह शास्त्रका निर्धार है.

तत्त्वज्ञानतैं स्वहेतु अज्ञानकी निवृत्तिविषै शंकासमाधान

अज्ञानके कार्य अन्तःकरणकी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञानतैं ताके कारण अज्ञानकी निवृत्तिमैं शंका ॥ ११२ ॥

तत्त्वज्ञानतैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, यह अद्वैतग्रन्थनका **सिद्धांत** है. औ जीवब्रह्मके अभेदगोचर अन्तःकरणकी वृत्तिकूं तत्त्व-

ज्ञान कहैं हैं. अंतःकरणकूं अज्ञानकार्यता होनेतैं वृत्तिरूपतत्त्वज्ञानभी अज्ञानका कार्य है; औ कार्यकारणका परस्पर अविरोधही लोकमें प्रसिद्ध है. यातैं तत्त्वज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति कहना संभवै नहीं.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ११३ ॥

या शंकाका यह समाधान हैः—कार्यकारणका परस्पर अविरोध है; यह नियम सामान्य है. औ समानविषयक ज्ञानाज्ञानका परस्पर विरोध है; यह विशेष नियम है. यातैं विशेष नियमतैं सामान्य नियमका बाध होवै है. औ पटअग्निसंयोगतैं पटका नाश होवैहै, तहां संयोगका उपादानकारण दो होवैंहैं, यातैं पटभी उपादान कारण है, तथापि अग्निसंयोगका औ पटका परस्पर नाश्यनाशकभावरूप विरोध है, अविरोध नहीं; यातैं कार्यकारणका परस्पर अविरोध है, यह नियम संभवै नहीं. यद्यपि वैशेषिक शास्त्रकी रीतिसैं अग्निसंयोगतैं पटका नाश होवै नहीं. काहेतैं ? अग्निसंयोगतैं पटारंभकतंतुवोंमैं क्रिया होवैहै, क्रियातैं तंतुविभागतैं पटके असमवायिकारण तंतुसंयोगका नाश होवै है, तंतुसंयोगके नाशतैं पटका नाश होवैहै. इसरीतिसैं वैशेषिकमतमैं असमवायिकारणके नाशतैं द्रव्यका नाश होवैहै. यातैं पटके नाशमें तंतुसंयोगके नाशकूं हेतुता है. पटअग्निके संयोगकूं पट नाशमैं हेतुता नहीं; तथापि पूर्वोक्त क्रमतैं पटका नाश होवै तौ अग्निसंयोगतैं पंचमक्षणमैं पटका नाश संभवै है; औ अग्निसंयोगतैं अव्यवहित उत्तर कालमैं पटका नाश प्रतीत होवैहै, यातैं वैशेषिकमत असंगतहै. औ अग्निसंयोगतैं भस्मीभूतपटके अवयव संश्लिष्टही प्रतीत होवै है, तैसैं मुद्गरसैं चूर्णीभूत घटका कपालविभागजन्य संयोगनाशविनाही नाश होवैहै, यातैं अवयव संयोगके नाशकूं अवयवीके नाशमैं कारणताका असंभव होनेतैं तंतुसंयोगके नाशकूं पटनाशमैं कारणता नहीं; किंतु पटअग्निका संयोगही पटके नाशमैं कारण है. औ पटअग्निके संयोगका अग्निसहित पट उपादान कारण है, यातैं कार्यकारणकाभी नाश्यनाशकभावविरोध प्रसिद्ध होनेतैं

तिनका परस्पर अविरोध है; यह नियम संभवै नहीं. इसरीतिसें अविद्याजन्य वृत्तिज्ञानतैं कार्यसहित अविद्याका नाश होवै है; परंतुः—

अविद्यालेशसंबन्धी विचार ।

तत्त्वज्ञानसैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुये जीवन्मुक्ति विद्वान्के देहके स्थितकी शंका ॥ ११४ ॥

सकल अविद्याका तत्त्वज्ञानमैं नाश होवै तौ जीवन्मुक्त विद्वान्के देह का तत्त्वज्ञानकालमैं अभाव हुया चाहिये. काहेतैं? उपादान कारण अविद्याका नाश हुये कार्यकी स्थिति संभवै नहीं.

उक्त शंकाका कोईक आचार्यकी रीतिसैं समाधान ॥ ११५ ॥

और कोई यह समाधान कहैहैं:—जैसैं धनुषका नाश हुयेभी प्रक्षिप्त बाणके वेगकी स्थिति रहैहै, तैसैं विद्वान्के शरीरकी स्थिति कारणका नाश हुयेभी संभवै है.

उक्त समाधानका असंभव ॥ ११६ ॥

यह समाधानभी संभवै नहीं. काहेतैं? निमित्तकारणका नाश हुये कार्यकी स्थिति रहैहै. उपादानका नाश हुये कार्यकी स्थित संभवै नहीं. बाणके वेगका उपादानकारण बाण है औ ताका निमित्तकारण धनुष है; ताके नाशतैं बाणके वेगकी स्थिति संभवै है, यातैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुयेभी विद्वान्के शरीरकी स्थितिका असंभव होनेतैं, तत्त्वज्ञान हुयेभी अविद्याका लेश रहैहै; यह ग्रंथकारोंनैं लिख्या है.

अविद्यालेशके तीन प्रकार ॥ ११७ ॥

तहां मतभेदसैं **अविद्यालेशका स्वरूप तीनिप्रकारका** है. जैसैं प्रक्षालित लशुनभांडमैं गंध रहैहै; तैसैं अविद्याके संस्कारकूं **अविद्यालेश** कहैहैं, अथवा अग्निदग्ध पटकी नाईं स्वकार्यमैं असमर्थज्ञान बाधित अविद्याकूं **अविद्यालेश** कहैं हैं, यद्वा आवरणशक्तिविक्षेपशक्तिरूप अंशद्वयवती **अविद्या** है. तत्त्वज्ञानसैं आवरणशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवै

है, औ प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंध होनेतैं विक्षेपशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवै नहीं. तत्त्वज्ञानतैं उत्तरकालभी देहादिक विक्षेपका उपादान अविद्याअंशका शेष रहैहै; तासैं स्वरूपका आवरण होवै नहीं, ताहीकूं **अविद्यालेश** कहैहैं.

प्रकृत अर्थमें सर्वज्ञात्ममुनिका मत ॥ ११८ ॥

सर्वज्ञात्ममुनिका तौ यह मत हैः—तत्त्वज्ञानसैं उत्तरकालमैं शरीरादि-प्रतिभास होवै नहीं. जीवन्मुक्तिप्रतिपादक श्रुतिवचनका स्वार्थमैं तात्पर्य नहीं. काहेतैं ? श्रवणविधिका अर्थवादरूप जीवन्मुक्तिप्रतिपादक वचन हैं; जिस श्रवणके प्रतापतैं जीवते पुरुषकी मुक्ति होवैहै. ऐसा उत्तम आत्म-श्रवण है. इसरीतिसैं आत्मश्रवणकी स्तुतिमैं तात्पर्य होनेतैं जीवन्मुक्ति-प्रतिपादक वचनोंमैं ज्ञानीकूं देहादिकनका प्रतिभास कहना संभवै नहीं. इसरीतिसैं तत्त्वज्ञानसैं अव्यवहित उत्तर कालमैंही विदेहमोक्ष होवैहै, या मतमैं ज्ञानसैं उत्तर अविद्याका लेश रहै नहीं. परंतुः—

उक्त मतकाज्ञानीके अनुभवमै विरोध ॥ ११९ ॥

यह मत ज्ञानीके अनुभवसैं विरुद्ध है. जिस तत्त्वज्ञानसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, तिस तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिका प्रकार कहैं हैंः— तत्त्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति हुयां तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति उत्तरकालमैं होवै है; याक्रमतैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं ? तत्त्वज्ञानसैं इतर अनात्मवस्तुका तौ शेष रहै नहीं. केवल चेतनकूं असंगता होनेतैं नाश-कता संभवै नहीं. तत्त्वज्ञानकूं स्वनाशकताभी संभवै नहीं; यातैं तत्त्वज्ञा-नका नाश नहीं होवैगा.

अविद्याकी निवृत्तिकालमै तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिकी रीति॥१२०॥

इसरीतिसैं अविद्यानिवृत्तिसैं उत्तरकालमैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिके असं-भवतैं अविद्याकी निवृत्तिकालमैं ही तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति या रीतिसैं होवैहैः—जैसैं जलमैं प्रक्षिप्त कतकरजतैं जलगत पंकका विश्लेष होवै,

ताके साथिही कतकरजकाभी विश्लेष होवैहै. कतकरजके विश्लेषमैं साधनांतरकी अपेक्षा नहीं; औ तृणकूटमैं अंगारके प्रक्षेपतैं तृणकूटका भस्म होवै, ताके साथिही अंगारकाभी भस्म होवैहै; तैसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवै, ताके साथिही तत्त्वज्ञानकीभी निवृत्ति होवैहै, यातैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिमैं साधनांतरकी अपेक्षा नहीं है.

प्रकृतअर्थमैं पंचपादिकाकारका मत ॥ १२१ ॥

पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्यका यह मत है:—ज्ञानका अज्ञानमात्रसैं विरोध है, अज्ञानके कार्यसैं ज्ञानका विरोध नहीं होनेतैं तत्त्वज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, अज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरकालमैं उपादानके अभावतैं कार्यकी निवृत्ति होवैहै, परंतु देहादिक कार्यकी निवृत्तिमैं प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक है; यातैं उक्तरीतिसैं अविद्यालेश रहै जितने जीवन्मुक्तकूं देहादिकनकी प्रतीतिभी संभवै है तितनेकूं प्रारब्धरूप प्रतिबंधका अभाव हूयां देहादिक औ तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै; या मतमैं प्रारब्धके अभावसहित अविद्याकी निवृत्तिही तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है.

तत्त्वज्ञानके करण औ सहकारी साधनविषै विचार
उत्तम औ मध्यम अधिकारीके भेदतैं तत्त्वज्ञानके दो साधनोंका कथन ॥ १२२ ॥

जा तत्त्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, सो तत्त्वज्ञानके दो साधन हैं. उत्तम अधिकारीकूं तौ श्रवणादिक साधन हैं औ मध्यम अधिकारीकूं निर्गुण ब्रह्मका अहंग्रह उपासनही तत्त्वज्ञानका साधन है. यह सकल अद्वैतशास्त्रका सिद्धांत है. परंतुः—

उक्त दोनूं पक्षमैं प्रसंख्यानकूं तत्त्वज्ञानकी करणतारूप प्रमाणता ॥ १२३ ॥

दोनूं पक्षमैं तत्त्वज्ञानका करणरूप प्रमाण प्रसंख्यान है; यह कितने

ग्रन्थकारोंका मत है. वृत्तिके प्रवाहकूं **प्रसंख्यान** कहैं हैं. जैसैं मध्यम अधिकारीकूं निर्गुणब्रह्माकार निरंतर वृत्तिरूप उपासना कर्तव्य है, सोई प्रसंख्यान है, तैसें उत्तम अधिकारीकूंभी मननसैं उत्तर निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानही ब्रह्मसाक्षात्कारका करण है. यद्यपि षड्विधप्रमाणमैं प्रसंख्यानके अभावतैं ताकूं प्रमाकी करणता संभवै नहीं; तथापि सगुणब्रह्मके ध्यानकूं सगुण ब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता औ निर्गुण ब्रह्मके ध्यानकूं निर्गुण ब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता सकल श्रुतिस्मृतिमैं प्रसिद्ध है. तैसैं व्यवहितकामिनीके प्रसंख्यानकूं कामिनीके साक्षात्कारकी करणता लोकमैं प्रसिद्ध है; यातैं निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानभी ब्रह्मसाक्षात्कारका करण संभवै है, यद्यपि प्रसंख्यानजन्य ब्रह्मज्ञानकूं प्रमाणजन्यताके अभावतैं प्रमात्वका संभव है, तथापि संवादिभ्रमकी नाईं विषयके अबाधतैं प्रमात्व संभवै है. औ निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानका मूल शब्दप्रमाण है; यातैं भी ब्रह्मज्ञानकूं प्रमात्व संभवै है.

भामतीकार वाचस्पतिके मतमैं प्रसंख्यानकूं मनकी सहकारिता औ मनकूं ब्रह्मज्ञानकी कारणता ॥ १२४ ॥

भामतीकार वाचस्पतिका यह मत है:—मनका सहकारी प्रसंख्यान है, ब्रह्मज्ञानका करण मन है, प्रसंख्यानकूं ज्ञानकी करणता अप्रसिद्ध है, सगुण निर्गुण ब्रह्मका ध्यानभी मनका सहकारी है, तिनके साक्षात्कारका करण ध्यान नहीं; किंतु मनही करण है, तैसैं व्यवहित कामिनीका ध्यानभी कामिनी साक्षात्कारका करण नहीं; किंतु कामिनीचिंतनसहित मनही ताके साक्षात्कारका करण है, याप्रकारतैं मनही ब्रह्मज्ञानका करण है.

अद्वैतग्रंथका मुख्यमत (एकाग्रतासहित मनकूं सहकारिता और वेदांतवाक्यरूप शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता) ॥ १२५ ॥

औ **अद्वैतग्रंथनका मुख्य मत यह है**:-वाक्यजन्य ज्ञानतैं अनंतर प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहीं; किंतु महावाक्यतैं ही अद्वैत ब्रह्मका साक्षा-

त्कार होवैहै. औ सकल ज्ञानमैं सहकारी मन है, यातैं निदिध्यासन जन्य एकाग्रतासहित मन सहकारी है. औ वेदांतवाक्यरूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करण है, मन नहीं. काहेतैं? वृत्तिरूप ज्ञानका उपादान होनेतैं आश्रय अंतःकरण है, यातैं ज्ञानका कर्ता मन है. ताकूं ज्ञानकी करणता संभवै नहीं. औ ज्ञानांतरमैं मनकूं करणता माने भी ब्रह्मज्ञानकी करणता सर्वथा विरुद्ध है. काहेतैं? "यन्मनसा न मनुते" इत्यादिक श्रुतिमैं ब्रह्मकूं मानस ज्ञानकी विषयताका निषेध कर्‍या है, औ ब्रह्मकूं औपनिषदत्व कह्या है, यातैं उपनिषद्रूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करण है, यत कहिये जिस ब्रह्मकूं मन करिकै लोक नहीं जानैं हैं, यह श्रुतिका अर्थ है. यद्यपि कैवल्यशाखामैं जहां मनकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कर्‍या है, तिसी स्थानमैं वाक्‌कूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कर्‍या है, यातै शब्दकूंभी ब्रह्मज्ञानकी करणता श्रुतिविरुद्ध है, तथापि शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहीं, इस अर्थमैं श्रुतिका तात्पर्य होवै तौ ब्रह्मकूं उपनिषद्वेद्यत्वरूप औपनिषदत्वकथन असंग होवैगा. यातैं शब्द-की लक्षणावृत्तिसैं ब्रह्मगोचर ज्ञान होवैहै शक्तिवृत्तिसैं ज्ञान ब्रह्मका शब्दसैं होवै नहीं; इसरीतिसैं श्रुतिका तात्पर्य है; यातैं शक्तिवृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध है, औ लक्षणावृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता होनेतैं ब्रह्मकूं औपनिषदत्व संभवै है. ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मानस मानैं हैं; तिनके मतमैंभी ब्रह्मका परोक्षज्ञान शब्दसैंही मान्या है यातैं ब्रह्मज्ञानमैं शब्दकूं करणता दोनूं मतमैं आवश्यक होनेतैं ब्रह्मसाक्षात्कारका करण शब्द है, मन नहीं. इसरीतिसैं ब्रह्मसाक्षात्कारका करण शब्द है.

शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञानका उत्पत्तिमैं शंकासमाधान ॥ १२६ ॥

यद्यपि शब्दमैं परोक्षज्ञानकी उत्पादनका सामर्थ्य है, शब्दसैं अपरोक्ष-ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं, तथापि शास्त्रोक्त श्रवणमननपूर्वक सो ब्रह्मगोचर परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवैहै

जैसें प्रतिबिंब औ बिंबके अभेदवादमैं जलपात्र औ दर्पणादिक सहकृत नेत्रसैं सूर्यादिकनका साक्षात्कार होवैहै, तहां केवल नेत्रका सूर्यादिकनके साक्षात्कारमैं सामर्थ्य नहीं है. चंचल वा मलिन उपाधिके सन्निधानसैं भी सामर्थ्य नहीं है; औ निश्चल निर्मल उपाधिसहकृत नेत्रमैं सूर्यादिकनके साक्षात्कारका सामर्थ्य है, तैसैं संस्कारविशिष्ट निर्मल निश्चल चित्तरूपी दर्पणके सहकारतैं शब्दसैंभी ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान संभवै है. अन्य दृष्टांतः–जैसें लौकिक अग्निमैं होमतैं स्वर्गहेतु अपूर्वकी उत्पत्ति नहीं होवैहै औ वैदिक संस्कारसहित अग्निमैं होमतैं स्वर्गजनक अपूर्वकी उत्पत्ति होवैहै. होमकूं स्वर्गसाधनता श्रुतिमैं कही है, द्वितीय क्षणमैं विनाशी होमकूं कालांतरभावि स्वर्गकी साधनता संभवै नहीं; यातैं स्वर्गसाधनताकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं जैसैं अपूर्वकी सिद्धि होवैहै; तैसैं ब्रह्मज्ञानतैं अध्यासरूप सकल दुःखकी निवृत्ति श्रुतिमैं कही है; औ कर्तृत्वादिक अध्यास अपरोक्ष हैं; तिस अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति परोक्षज्ञानतैं संभवै नहीं. अपरोक्ष ज्ञानतैं ही अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति होवैहै; यातैं ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षअध्यासकी निवृत्तिकी अनुपपत्तिसैं प्रमाणांतरके अगोचर ब्रह्मका शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञान सिद्ध होवैहै. जैसैं श्रुतार्थापत्तिसैं अपूर्वकी सिद्धि होवै है, तैसैं शब्दजन्य ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानकी सिद्धि भी श्रुतार्थापत्तिसैं होवैहै.

अन्यग्रंथकी रीतिसैं शब्दकूं अपरोक्ष ज्ञानकी जनकता ॥ १२७ ॥

अन्यग्रंथमैं शब्दकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता या दृष्टांतसैं कहीहैः–जैसैं बाह्यपदार्थके साक्षात्कारमैं असमर्थ मन है तथापि भावनासहित मनसैं नष्टवनिताका साक्षात्कार होवैहै, तैसैं केवल शब्द तौ अपरोक्ष ज्ञानमैं असमर्थ है, परंतु पूर्व उक्त मनसहित शब्दसैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवैहै.

विषय औ ज्ञानकी अपरोक्षताविषैं विचार.

अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं ज्ञान औ विषय दोनूंमैं अपरोक्षत्वव्यवहारका कथन ॥ १२८ ॥

अन्यग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं--ज्ञान औ विषय दोनूंमैं, अपरोक्षत्व व्यवहार होवैहै. काहेतैं? नेत्रादिक इंद्रियतैं ज्ञात घट होवै, तहां घटका प्रत्यक्ष ज्ञान है औ घट प्रत्यक्ष है. इसरीतिसैं उभयविध व्यवहार अनुभवसिद्ध है, तहां ज्ञानमैं अपरोक्षता करणके अधीन नहीं है. काहेतैं? इंद्रियजन्य ज्ञान अपरोक्ष होवै औ अनुमानादिजन्य ज्ञान परोक्ष होवै, तौ ज्ञानमैं परोक्षता औ अपरोक्षता करणके अधीन होवै, सो इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षता ग्रंथकारोंनैं खंडन करीहै, यातैं अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान अपरोक्ष कहियेहै. इसरीतिसैं ज्ञानमैं अपरोक्षता विषयके अधीन है, यातैं अपरोक्ष विषयका ज्ञान अपरोक्षही होवैहै. इंद्रियजन्य होवै अथवा प्रमाणांतरजन्य होवै, यामैं अभिनिवेश नहीं. इसीवास्तै सुखादिज्ञान, ईश्वरज्ञान, स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं है, तथापि प्रत्यक्ष है; यातैं ज्ञानमैं इंद्रियजन्यत्वरूप अपरोक्षज्ञानही है; किंतु अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान होवै सो अपरोक्ष ज्ञान कहियेहै.

उक्त अर्थमैं शंका समाधान ॥ १२९ ॥

यद्यपि अपरोक्ष ज्ञानके विषयकूं अपरोक्ष कहैं हैं, यातैं अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षता कहनेमैं अन्योन्याश्रय दोष होवैहै. काहेतैं? ज्ञानगत अपरोक्षत्वनिरूपणमैं विषयगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतु है. औ विषयगत अपरोक्षत्वनिरूपणमैं ज्ञानगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतु है, तथापि विषयमैं अपरोक्षता अपरोक्षज्ञानकी विषयतारूप मानैं तौ अन्योन्याश्रय दोष होवै यातैं विषयकी अपरोक्षता उक्तस्वरूप नहीं; किंतु प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयकी अपरोक्षता है, यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वनिरूपणमैं विषयके अपरोक्षत्वज्ञानकी अपेक्षा हुयांभी विषयके अपरोक्षत्व निरूपणमैं ज्ञानगत अपरोक्षत्वके ज्ञानका अनुपयोग होनेतैं अन्योन्याश्रय दोष नहीं.

विषयमैं परोक्षत्व अपरोक्षत्वके संपादक प्रमातृचेतनके भेद

औ अभेदसहितविषयगतपरोक्षत्व अपरोक्षत्वके अधीनही ज्ञानके परोक्षत्व अपरोक्षत्वका निरूपण ॥ १३० ॥

सुखादिक अंतःकरणके धर्म साक्षिचेतनमैं अध्यस्त हैं; औ अधिष्ठानसैं पृथक् सत्ता अध्यस्तकी होवै नहीं, यातैं सुखादिकनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं तिनमैं सदा अपरोक्षत्व है. औ अपरोक्ष सुखादिगोचर ज्ञानभी अपरोक्षही होवै है. बाह्य घटादिक यद्यपि बाह्यचेतनमैं अध्यस्त होनेतैं प्रमातृचेतनसैं तिनका सर्वदा अभेद नहीं है; तथापि वृत्तिद्वारा बाह्यचेतनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै, तिसकालमैं प्रमातृचेतनही घटादिकनका अधिष्ठान होवै है, यातैं इंद्रियजन्य घटादिगोचर वृत्ति होवै, तिसकालमैंही घटादिकनमैं अपरोक्षत्व धर्म होवै है. अपरोक्षत्वविशिष्ट घटादिकनका ज्ञानभी अपरोक्ष कहिये है. औ घटादिगोचर अनुमित्यादिक वृत्ति होवै तिसकालमैं प्रमातृचेतनसैं घटादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमैं अपरोक्षत्व धर्म होवै नहीं यातैं घटादिकनके अनुमित्यादि ज्ञानकूं अपरोक्ष नहीं कहैं हैं; किंतु परोक्ष कहैं हैं. औ ब्रह्मचेतनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं ब्रह्मचेतन सदा अपरोक्ष है, यातैं महावाक्यरूप शब्दप्रमाणजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्षही कहिये है. इस प्रकारसैं ज्ञानके परोक्षत्व औ अपरोक्षत्व प्रमाणाधीन नहीं, किंतु विषयगत परोक्षत्व अपरोक्षत्वके अधीनही ज्ञानके परोक्षत्व अपरोक्षत्व हैं. औ विषयमैं परोक्षत्व अपरोक्षत्वका संपादक प्रमातृचेतनका भेद औ अभेद है; यातैं शब्दजन्यब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष है, यह कथन संभवै है.

उक्तमतमें अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानके अपरोक्षताकी प्राप्तिरूप दोष ॥ १३१ ॥

परंतु या मतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्तरीतिसैं प्रमातृचेतनस्वरूप होनेतैं ब्रह्म सदा अपरोक्ष है,औ अप-

रोक्षवस्तुगोचर ज्ञान अपरोक्षही होवैहै, यातैं नित्य अपरोक्षस्वभाव ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान संभवै नहीं.औ अवांतरवाक्यसैं सकल ग्रंथकारोंनैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान मान्या है. तैसैं "दशमोऽस्ति" या वाक्यतैं दशमका परोक्ष ज्ञानही होवैहै औ पंचदशी आदिक ग्रंथनमैंभी उक्त वाक्यसैं दशमका परोक्ष ज्ञानही कह्या है. औ प्रमातृचेतनसैं अभिन्न दशम है, यातैं दशम विषयकूं अपरोक्षता होनेतैं ताका ज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये.

उक्त दोषसैं अपरोक्षताका अन्य लक्षण ॥ १३२ ॥

यातैं इसरीतिसैं मानना चाहियेः–जैसैं सुखादिक प्रमातृचेतनमैं अध्यस्त हैं; तैसैं धर्म अधर्मभी प्रमातृचेतनमैं अध्यस्त हैं यातैं सुखादिकनकी नाईं धर्मादिकभी प्रमातृचेतनसैं अभिन्न होनेतैं अपरोक्ष हुये चाहियें, तथापि योग्यविषयका प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयगत अपरोक्षताका संपादक है; धर्मादिक योग्य नहीं. यातैं तिनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होनेतैंभी तिनमैं अपरोक्षता नहीं. जैसैं विषयगत योग्यता विषयगत अपरोक्षतामैं अपेक्षित है तैसैं प्रमाणगत योग्यताज्ञानकी अपरोक्षतामैं अपेक्षित है. अवांतर वाक्यमैं औ "दशमोस्ति" या वाक्यमैं अपरोक्षज्ञानजननकी योग्यता नहीं; किंतु महावाक्यमैं औ "त्वं दशमः" या वाक्यमैं अपरोक्ष ज्ञानके जननकी योग्यता है. जैसैं विषयकी योग्यतादिक प्रत्यक्षादिव्यवहारसैं जानिये हैं जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होतैं प्रत्यक्षव्यवहार होवै, सो **विषय योग्य** कहियेहै. औ जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होतैं भी प्रत्यक्ष व्यवहार होवै नहीं, सो **विषय अयोग्य** कहिये है. जैसैं धर्म अधर्म संस्कार अयोग्य हैं, विषयकी नाईं प्रमाणमैं भी योग्यतादिक अनुभवके अनुसार जाननां. बाह्य इंद्रियनमैं प्रत्यक्ष ज्ञानजननकी योग्यता है, औ अनुमानादिकनमैं परोक्षज्ञान जननकी योग्यता है, अनुपलब्धिमैं औ शब्दमैं उभयविध ज्ञानजननकी योग्यता है; परंतु–

अपरोक्ष ज्ञानमें सर्वज्ञात्ममुनिके मतका अनुवाद ॥ १३३ ॥

इतना विशेष है:—प्रमातासैं असंबंधी पदार्थका शब्दसैं केवल परोक्ष ज्ञान होवैहै, औ जिस पदार्थका प्रमातासैं तादात्म्य संबंध होवै तिसमैं योग्यता हुयांभी प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द नहीं होवै, तौ शब्दसैं परोक्ष-ज्ञानही होवैहै, अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसैं "दशमोऽस्ति" इत्यादिक वाक्यनमैं प्रमातासैं अभेदबोधक शब्दके अभावतैं उक्त वाक्यनके श्रोताकूं स्वाभिन्न दशम ब्रह्मका भी परोक्ष ज्ञानही होवैहै, अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं. औ जिस वाक्यमैं प्रमातासैं अभिन्न योग्य विषयका प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द होवै, तिस वाक्यसैं परोक्ष ज्ञान होवै नहीं; किंतु अपरोक्ष ज्ञानही होवै है. यह मत सर्वज्ञात्ममुनिका है, या मतमैं केवल शब्दही अपरोक्षज्ञानका हेतु है, औ परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञान होवैहै; यह मत प्रथम कह्याहै.

नेडेहीं दूषित विषयगत अपरोक्षताके अधीन ज्ञानगत अपरोक्षता है या मतका अनुवाद ॥ १३४ ॥

अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षत्व मानिकै ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षता संभवै है, यह मध्यमैं तृतीय मत कह्या . यामतमैं नित्याऽपरोक्ष ब्रह्मगोचर अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये, यह दूषण कह्या.

अद्वैत विद्याचार्यकी रीतिसैं विषयगत औ ज्ञानगत अपरोक्षत्वका प्रकारांतरसैं कथन औ दूषित उक्तमतमैं दूषणांतरका कथन ॥ १३५ ॥

अद्वैत विद्याचार्यनैं अर्थगत अपरोक्षत्व औ ज्ञानगत अपरोक्षत्व प्रकारांतरसैं कह्याहै. औ दूषित उक्त मतसैं दूषणांतर कह्याहै. तथाहि:—प्रमातासैं अभिन्न अर्थकूं अपरोक्षस्वरूप मानिकै अपरोक्षअर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षत्व कहैं तौ स्वप्रकाश आत्मसुखरूप ज्ञानमैं अपरोक्ष ज्ञानके लक्ष-

णकी अव्याप्ति होवैगी. काहेतैं ? अपरोक्ष अथ है गोचर कहिये विषय जिसका तिस ज्ञानकूं अपरोक्ष कहैं तौ ज्ञानका औ विषयका परस्पर भेदसापेक्ष विषयविषयिभाव संबंध है; तिसी स्थानमैं ज्ञानगत अपरोक्षलक्षण होवैगा. औ स्वप्रकाश सुखका ज्ञानसैं अभेद होनेतैं विषयविषयिभावके असंभवतैं तामैं उक्त लक्षण संभवै नहीं. यद्यपि प्रभाकरमतमैं ज्ञानकूं स्वप्रकाश कहैं हैं, औ अपने स्वरूपकूं तथा ज्ञाताकूं तैसैं ज्ञेय घटादिकनकूं ज्ञान विषय करै है, यातैं सकल ज्ञान त्रिपुटीगोचर होवै है; यह प्रभाकरका मत है. ताके मतमैं अभेद हुयांभी विषयविषयिभावका अंगीकार है, यातैं स्वप्रकाश ज्ञानरूप सुखमैं विषयविषयिभाव असंगत नहीं, स्वकहिये अपना स्वरूप है, प्रकाश कहिये विषयी जिसका सो स्वप्रकाश कहिये है; इसरीतिसैं स्वप्रकाशपदके अर्थसैंभी अभेदमैं विषयविषयिभाव संभवै है, तथापि प्रकाश्यप्रकाशकका भेदानुभव सिद्ध होनेतैं भेदविना प्रभाकरका विषयविषयिभाव कथन असंगत है, यातैं स्वप्रकाशपदका उक्त अर्थ नहीं; किंतु स्वकहिये अपनी सत्तासैं प्रकाश कहिये संशयादिराहित्यही स्वप्रकाश पदका अर्थ अद्वैतग्रन्थनमैं कह्या है.

अपरोक्षके उक्तलक्षणके असंभवका अनुवाद ॥ १३६ ॥

इसरीतिसैं स्वप्रकाशज्ञानतैं अभिन्नस्वरूप सुखमैं विषयविषयिभावके असंभवतैं अपरोक्षका उक्त लक्षण तामैं संभवै नहीं.

उक्तदोषसैं रहित अपरोक्षका लक्षण ॥ १३७ ॥

अपरोक्षका यह लक्षण है:-स्वव्यवहारके अनुकूल चैतन्यसैं अभेद अपरोक्षविषयका लक्षण है. अन्तःकरण औ सुखादिक साक्षिचेतनमैं अध्यस्त होनेतैं धर्मसहित अन्तःकरणका साक्षिचेतनसैं अभेद है. औ साक्षिचेतनसैं तिनका प्रकाश होनेतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन है; यातैं स्वकहिये अन्तःकरण औ सुखादिकनके व्यवहारके अनुकूल जो

साक्षिचेतन तासैं अभेदरूप अपरोक्षका लक्षण सुखादिसहित अन्तःकरणमैं संभवै है. औ धर्मादिकनका साक्षिचेतनसें अभेद तौ है, परन्तु तिनमैं योग्यताके अभावतें तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन नहीं; यातैं स्वव्यवहारानुकूल चैतन्यसैं धर्मादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमैं अपरोक्षत्व नहीं, तैसैं घटादिगोचर वृत्तिकालमैं घटादिकनके अधिष्ठान चेतनका वृत्त्युपहित चेतनसैं अभेद होवैहै; यातैं घटादिगोचरवृत्तिकालमैं घटादिचेतन घटादि व्यवहारके अनुकूल है; तासैं अभिन्न घटादिक अपरोक्ष कहियेहैं. घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमैं भी अपनें अधिष्ठान चेतनमैं घटादिक अभिन्न है; परंतु तिसकालमैं तिनके व्यवहारके अनुकूल अधिष्ठानचेतन नहीं. काहेतें ? वृत्त्युपहितमैं अभिन्न होयके व्यवहारके अनुकूल होवैहै; यातैं घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमैं घटादिक अपरोक्ष नहीं. तैसैं ब्रह्मगोचर वृत्त्युपहित साक्षिचेतनही ब्रह्मके व्यवहारके अनुकूल है, तासैं अभिन्न ब्रह्मकूं अपरोक्षता संभवै है. जैसैं व्यवहारानुकूल चैतन्यसें विषयका अभेद विषयगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है, तैसैं घटादिक विषयतैं घटादिक व्यवहारानुकूल चैतन्यका अभेद ज्ञानगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है.

वृत्तिरूपप्रत्यक्षज्ञानमैं उक्त अपरोक्षके लक्षणकी अव्याप्ति १२८॥

यद्यपि चेतनमैं घटादिक अध्यस्त हैं, औ विषयाकार वृत्तिकालमैं वृत्तिचेतनसैं विषयचेतनकी एकता होनेतैं स्वाधिष्ठान विषयचेतनसैं अभिन्न घटादिकनका वृत्तिचेतनसैं अभेद हुयेभी वृत्तिसैं घटादिकनका अभेद संभवै नहीं जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्प दंडमालाका रज्जुसैं अभेद हुयेभी सर्पदंडमालाका परस्पर भेदही होवै है अभेद होवै नहीं. औ ब्रह्ममैं कल्पित सकल द्वैतका ब्रह्मसैं अभेद हुयेभी परस्पर अभेद होवै नहीं. तैसैं वृत्तिचेतनसैं तौ वृत्तिका औ घटादिकनका अभेद संभवै है, वृत्तिका औ घटादिक विषयका परस्पर अभेद संभवै नहीं; यातैं वृत्तिरूप प्रत्यक्षज्ञानमैं उक्त लक्षणकी अव्याप्ति है.

उक्त अव्याप्तिका अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं उद्धार ॥ १३९ ॥

तथापि अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनका है वृत्तिका नहीं. जैसैं अनुमितित्व इच्छात्व आदिक अंतःकरण वृत्तिके धर्म हैं तैसैं अपरोक्षत्व धर्म वृत्तिमैं नहीं है, किंतु विषयाकार वृत्त्युपहितचेतनका अपरोक्षत्व धर्म होनेतैं चेतनके अपरोक्षत्वका उपाधिवृत्ति है, यातैं वृत्तिमैं अपरोक्षत्वका आरोप करिकै वृत्तिज्ञान अपरोक्ष है; यह व्यवहार करै है. इसरीतिसैं वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं. यातैं अव्याप्ति नहीं जो वृत्तिज्ञानमैं अपरोक्षत्व धर्म इष्ट होवै औ अपरोक्षका लक्षण नहीं जावै तौ अव्याप्ति होवै; वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं, किंतु वृत्त्युपहित चेतनही लक्ष्य है; यातैं अव्याप्तिशंका नहीं. चेतनका धर्म अपरोक्षत्व माननेमैं ही सुखादिक ज्ञानमैं अपरोक्षत्व संभवै है. वृत्तिका धर्म अपरोक्षत्व मानैं तौ सुखादिगोचरवृत्तिके अनंगीकार पक्षमैं साक्षिरूप सुखादिज्ञानमैं अपरोक्षत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये; यातैं अपरोक्षत्व धर्म चेतनका है वृत्तिका नहीं.

उक्त पक्षमैं शंका ॥ १४० ॥

या पक्षमैं यह शंका हैः—संसारदशामैं भी जीवका ब्रह्मसैं अभेद होनेतैं सर्वपुरुषनकूं ब्रह्म अपरोक्ष है. ऐसा व्यवहार हुया चाहिये. औ अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये. काहेतैं? अवांतर वाक्यजन्य वृत्त्युपहित साक्षिचेतनका ब्रह्मरूप विषयतैं अभेद है; तथापिः—

उक्त शंकाका समाधान ॥ १४१ ॥

यह समाधान हैः स्वव्यवहारानुकूल चेतनसैं अनावृत विषयका अभेद तौ **अपरोक्ष विषयका लक्षण** है; औ अनावृत विषयमैं स्वव्यवहारानुकूल चेतनका अभेद **अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण** है. संसारदशामैं आवृत ब्रह्मका स्वव्यवहारानुकूल चेतनसैं अभेद हुयेभी अनावृत विषयका अभेद होनेतैं ब्रह्ममैं अपरोक्षत्व नहीं. तैसैं अवांतर वाक्यजन्य ज्ञानकाभी आवृत विषयतैं अभेद होनेतैं तिस ज्ञानकूं अपरोक्षत्व नहीं; यातैं उक्त शंका संभवै नहीं.

उक्त पक्षमैं अन्यशंका ॥ १४२ ॥

अन्यशंकाः—उक्त रीतिसैं अनावृत विषयके अभेदसैं अपरोक्षत्व मानैं तौ अन्योन्याश्रय दोष होवैगा. काहेतैं ? समानगोचरज्ञानमात्रकूं आवरण-निवर्तकता मानैं तौ परोक्षज्ञानसैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये औ सिद्धांतमैं असत्त्वापादक अज्ञानशक्तिका तिरोधान वा नाश तौ परोक्ष ज्ञानसैं होवै है. अभानापादकशक्तिविशिष्ट अज्ञानका परोक्षज्ञानसैं नाश होवै नहीं अपरोक्षज्ञानसैंही अज्ञानका नाश होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धिके अधीन अज्ञानकी निवृत्ति है.औ अनावृत्त विषयतैं स्वव्यवहारानुकूलचेतनका अभेद हुयां ज्ञानका अपरोक्षत्व लक्षण कहनेतैं अज्ञाननिवृत्तिके अधीन ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धि कही यातैं अन्योन्याश्रय दोष है.

उक्त शंकाका समाधान ॥ १४३ ॥

ताका यह समाधान हैः—यद्यपि पूर्व उक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिकी ज्ञानके अपरोक्षत्वमैं अपेक्षा है, तथापि अज्ञानकी निवृत्तिमैं अपरोक्षत्वकी अपेक्षा नहीं. काहेतैं? ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति मानें तौ परोक्षज्ञानसैं भी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये इस दोषके परिहारके अर्थ अपरोक्ष ज्ञानसैं अज्ञान निवृत्ति कही है, तामैं अन्योन्याश्रय दोष होवैहै. यातैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति औ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति नहीं कहैं हैं; किंतु प्रमाणकी महिमातैं जहां विषयतैं ज्ञानका तादात्म्य संबंध होवै, तिसज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. प्रमाणमहिमातैं बाह्य इंद्रियजन्य घटादिकनका ज्ञान विषयतैं तादात्म्यसंबंधवाला होवै है. औ शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानभी महावाक्य रूप प्रमाणकी महिमातैं विषयसैं तादात्म्यसंबंधवाला होवै है. यातैं उक्त उभयज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. यद्यपि सर्वका उपादान ब्रह्म होनेतैं ब्रह्मगोचर सकल ज्ञानोंका तादात्म्यसंबंध है; यातैं अनुमितिरूप ब्रह्मज्ञानतैं औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये,

तथापि उक्त ज्ञानका विषयतैं तादात्म्यसंबंध है, सो विषयकी महिमातैं है, प्रमाणकी महिमातैं नहीं. काहेतैं ? महावाक्यतैं जीवब्रह्मके अभेद गोचर ज्ञान होवै, ताका विषयसैं तादात्म्यसंबंध तौ प्रमाणकी महिमातैं कहैं हैं. अन्यज्ञानका ब्रह्मसैं तादात्म्य संबंध है सो ब्रह्मकूं व्यापकता होनेतैं औ सकलकी उपादानता होनेतैं विषयकी महिमातैं कहैंहैं. इसरीतिसैं विलक्षण प्रमाणजन्य विषयसंबंधी ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. या कहनेमैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञाननिवृत्तिकी आपत्ति नहीं, औ ज्ञानके अपरोक्षत्वकी अज्ञाननिवृत्तिमैं अपेक्षाके अभावतैं अन्योन्याश्रय दोषभी नहीं. इसरीतिसैं स्वव्यवहारानुकूल अनावृत चैतन्यसैं विषयका अभेद अपरोक्षविषयका लक्षण है. उक्त चैतन्यका विषयतैं अभेद अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण है, यातैं शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानविषैभी अपरोक्षता संभवै है.

शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमें कथन किये तीन मत विषै प्रथम मतकी समीचीनता ॥ १४४ ॥

या प्रकारतैं शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं तीनि मत कहे, तिनमें आद्य मतही समीचीन है. काहेतैं? ज्ञानगत परोक्षत्व अपरोक्षत्व प्रमाणाधीन है. औ सहकारिसाधनविशिष्ट शब्दमैंभी अपरोक्ष ज्ञानके जननकी योग्यता है, यह प्रथम मत है. औ विषयके अधीन ही ज्ञानके अपरोक्षत्वादिक धर्म हैं. प्रमाणके अधीन नहीं. इस अभिप्रायतैं द्वितीय मत औ अद्वैत विद्याचार्यका तृतीयमत है. तिन दोनूं मतमैं भी केवल विषयके अधीन ही अपरोक्षत्वादिकनकूं मानैं तौ अवांतर वाक्यसैं भी ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान हुया चाहिये यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वमैं प्रमाणके अधीनता अवश्यकही चाहिये, यातैं प्रथममतही समीचीन है.

वृत्तिके प्रयोजनका कथन ग्रंथके आरंभमैं उक्त तीन प्रश्नोंका औ तिनमैं कथन किये दोनूंके उत्तरका अनुवाद ॥ १४५ ॥

ग्रंथके आरंभमैं वृत्तिका स्वरूप, कारण, फल, इन तीनिका प्रश्न है,

तिनमैं अंतःकरण औ विद्याका प्रकाशरूप परिणाम वृत्ति कहियेहै. या कहनेतैं वृत्तिका सामान्यरूप कह्या, तिसतैं अनंतर यथार्थत्व अयथार्थत्वादिक भेदकथनतैं वृत्तिका विशेष रूप कह्या, औ प्रमाणनिरूपणतैं वृत्तिके कारणका स्वरूप कह्या.

वृत्तिके प्रयोजनसंबंधि तृतीयप्रश्नके उत्तरका आरंभ ॥ १४६ ॥

वृत्तिके प्रयोजनका प्रश्न करयाथा, सो **वृत्तिका प्रयोजन** यह है: जीवकूं अवस्थात्रयका संबंध वृत्तिसैं होवै है, औ पुरुषार्थप्राप्तिभी वृत्तिसैं होवै है, यातैं संसारप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है औ मोक्षप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है. काहेतैं ? अवस्थात्रयके संबंधसैं जीवकूं संसार है.

वृत्तिप्रयोजनके कथनावसरमैं जाग्रतका लक्षण ॥ १४७ ॥

तहां इंद्रियजन्य ज्ञानकी अवस्थाकूं जाग्रत अवस्था कहैं हैं. अवस्था शब्द कालका वाचक है. यद्यपि सुखादिकनका ज्ञानकाल औ उदासीनकालभी **जाग्रत् अवस्था** कहिये है औ सुखादिक ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं जैसैं सुखादिज्ञानकालमैं अन्यविषयका ज्ञानभी इंद्रियजन्य होवै नहीं; तैसैं उदासीनकालमैं इंद्रियजन्यज्ञान है नहीं, तथापि वक्ष्यमाण स्वप्नावस्था औ सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्न जो इंद्रियजन्यज्ञानका आधारकाल सो **जाग्रत् अवस्था** कहिये है सुखादिज्ञानकालमैं औ उदासीनकालमैं यद्यपि इंद्रियजन्य ज्ञान नहीं है, तथापि ताके संस्कार हैं औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कार स्वप्नावस्था सुषुप्ति अवस्थामैंभी हैं; यातैं स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्न काल कह्या. इसरीतिसैं जाग्रत अवस्था यह व्यवहार इंद्रियजन्य ज्ञानके अधीन है, सो इंद्रियजन्यज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप है, अंतःकरणकी वृत्तिके मतभेदसैं ये प्रयोजन हैं.

कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन ॥ १४८ ॥

कोई तौ आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन कहैं हैं. यद्यपि आवरणा-

भिभवमैंभी नानामत हैं. जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके एकदेशका नाश होवै है, तैसैं अज्ञानके एक देशका नाश आवरणाभिभव शब्दका अर्थ है; यह सांप्रदायिक मत है.

समष्टिअज्ञानकूं जीवकी उपाधिताके पक्षमें ब्रह्म वा ईश्वर वा जीवचेतनके संबंधसैं आवरणके अभिभवका संभव ॥ १४९ ॥

समष्टि अज्ञान जीवकी उपाधि है, या पक्षमैं घटादिकन विषयतैं चेतनका सदा संबंध है, यातैं चेतनसंबंधसैं तौ आवरणका अभिभव संभवै नहीं. काहेतैं? ब्रह्मचेतन तौ आवरणका साधक है विरोधी नहीं. औ ईश्वरचेतनसैं आवरणका अभिभव होवै तौ "इदं मयावगतम्" ऐसा व्यवहार जीवनकूं नहीं हुया चाहिये; किंतु "ईश्वरेणावगतम्" ऐसा व्यवहार हुया चाहिये. काहेतैं? ईश्वर जीवका व्यावहारिक भेद है; यातैं ईश्वरावगत वस्तु जीवका अवगत होवै नहीं यातैं जीवचेतनके संबंधसैं आवरणका अभिभव कहै तौ या पक्षमैं जीवचेतनका घटादिकनसैं सदा संबंध है. काहेतैं ? जीवचेतनकी उपाधि मूलाज्ञान है, तामैं आरोपित प्रतिबिंबत्वविशिष्टचेतनकूं जीव कहैं हैं. मूलाज्ञानका घटादिकनसैं सदा संबंध होनेतैं जीवचेतनका सदा संबंध है. यातैं घटादिकनके अवरणका सदा अभिभव चाहिये. यातैं वृत्तिसैं आवरणका अभिभव कहै तौ परोक्षवृत्तिसभी आवरणका अभिभव हुया चाहिये.

या पक्षमैं अपरोक्षवृत्तिसैं वा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणके अभिभवका संभव ॥ १५० ॥

अपरोक्षवृत्तिसैं आवरणका अभिभव होवैहै अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणका अभिभव होवैहै. जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके एकदेशका नाश होवै है, खद्योतके अभावकालमैं महांधकारका फेरि विस्तार होवैहै. तैसैं अपरोक्षवृत्तिसंबंधसैं अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनके संबंधसैं मूलाज्ञानके अंशका नाश होवै है, वृत्तिके अभावदशामैं अज्ञानका प्रसरण होवैहै, यह सांप्रदायके अनुसारी मत है.

उक्तपक्षकी रीतिसैं आवरणनाशरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १५१ ॥

तिसतैं अज्ञानके अंशका नाश अपरोक्षवृत्तिका प्रयोजन है, औ असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश परोक्षापरोक्षवृत्तिका प्रयोजन है; इसरीतिसैं आवरणनाश वृत्तिका प्रयोजन है यह पक्ष कह्या.

द्वितीयपक्षकी रीतिसैं जीवचेतनसैं विषयके संबंधरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १५२ ॥

जीवचेतनसैं विषयका संबंध वृत्तिका प्रयोजन है, यह दूसरा पक्ष है. याकूं कहैहैं:—समष्टि अज्ञानसैं प्रतिबिंब जीव है, या पक्षमैं जीवचेतनका घटादिकनसैं सर्वदा संबंध है, परंतु जीवके सामान्य संबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं; यातैं विषयके प्रकाशका हेतु जीवसैं विजातीय संबंध वृत्तिका प्रयोजन है. जीव चेतनका विषयतैं संबंध सर्वदा है, परंतु वह संबंध विषय प्रकाश हेतु नहीं. वृत्तिविशिष्ट जीवका विषयतैं संबंध होवै तौ विषयका प्रकाश होवैहै, यातैं प्रकाशहेतु संबंधवृत्तिके अधीन है.सो प्रकाशहेतु जीवका विषयतैं संबंध अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभावहै. विषयमैं अभिव्यंजकता है, जीवचेतनमैं अभिव्यंग्यता है. जामैं प्रतिबिंब होवै ताकूं अभिव्यंजक कहैहैं, जाका प्रतिबिंब होवै सो अभिव्यंग्य कहियेहै. जैसैं दर्पणमैं मुखका प्रतिबिंब होवै तहां दर्पण अभिव्यंजक है मुख अभिव्यंग्य है; तैसैं घटादिक विषयनमैं चेतनका प्रतिबिंब होवैहै, यातैं घटादिक अभिव्यंजक हैं, चेतन अभिव्यंग्य है.इस रीतिसैं प्रतिबिम्बग्रहणरूप व्यंजकता घटादिक विषयमैं है. प्रतिबिम्बसमर्पणरूप व्यंग्यता चेतनमैं है, घटादिकनमैं स्वभावसैं प्रतिबिम्बग्रहणकी सामर्थ्य नहीं. किंतु स्वाकारवृत्तिसंबंधसैं चेतनप्रतिबिम्बके ग्रहण योग्य होवै है. जैसैं दर्पणसंबंध विना कुड्यमैं सूर्यका प्रतिबिम्ब होवै नहीं. औ दर्पण सम्बंधसैं होवै है; यातैं सूर्यप्रतिबिम्बग्रहणकी योग्यता कुड्यमैं दर्पणसंबंधसैं होवैहै. जैसैं दृष्टांतमैं सूर्यप्रभाका कुड्यसैं सर्वदा सामान्य संबंध है, औ

अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभावसंबंध दर्पणाधीन है. तैसैं जीवचेतनका विषयतैं सर्वदा सम्बन्ध है, परंतु वृत्तिसम्बन्धसैं घटादिकनमैं जीवचेतनके प्रतिबिंबकी ग्रहणयोग्यता होवै है; यातैं जीवचेतनका घटादिकनसैं अभिव्यंजक अभिव्यंग्यभावसंबंध वृत्तिके अधीन है. इसरीतिसैं जीवचेतनसैं घटादिकनके विलक्षण संबंधकी हेतु वृत्ति है; यातैं विषयसम्बन्धार्थ वृत्ति है, ता सम्बंधसैं विषयका प्रकाश होवै है. जीवचेतन विभु है; या पक्षमैं विलक्षण सम्बंधकी जनक वृत्ति है. औ—

अन्तःकरणविशिष्ट चेतनजीव है या पक्षमें विषयसम्बधार्थ वृत्तिकी अपेक्षा ॥ १५३ ॥

अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीव है; या पक्षमें तौ वृत्तिविना जीवचेतनतैं घटादिकनका सर्वथा सम्बंध नहीं. इंद्रियविषयके संबंधसैं अंतःकरणकी वृत्ति घटादिदेशमैं जावै, तब जीवचेतनका घटादिकनतैं सम्बंध होवै है. वृत्तिके बाह्यगमनविना अंतर जीवका बाह्य घटादिकनतैं सम्बंध होवै नहीं. इसरीतिसैं अंतःकरणावच्छिन्न परिच्छिन्न जीव है, या पक्षमैं विषयसम्बंधार्थ वृत्ति है; यह अर्थ स्पष्टही है.

उक्त दोनूं पक्षनकी विलक्षणता ॥ १५४ ॥

इसरीतिसैं अज्ञानोपाधिक जीव है, या पक्षमैं जीवचेतनका विषयतैं सम्बंध तौ सदा है, अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभाव सम्बंध सदा नहीं है, तिसके अर्थ वृत्ति है. औ अंतःकरणावच्छिन्न जीव है, या पक्षमैं जीवका विषयतैं सर्वथा सम्बंध नहीं है, ताके अर्थ वृत्ति है. इसरीतिसैं वृत्तिके फल सम्बंधमैं विलक्षणता ग्रंथकारोंनैं कही है; परंतुः—

मतभेदसैं संबंधमैं विलक्षणताके कथनकी असंगतता ॥ १५५ ॥

मतभेदसैं सम्बधमैं विलक्षणताका कथन असंगत है. काहेतैं? अंतःकरण जीवकी उपाधि है. या पक्षमैं भी अज्ञान तौ जीवभावकी उपाधि अवश्य

इष्ट है अन्यथा प्राज्ञरूप जीवका अभाव होवै है; यातैं जीवभावकी उपाधि सर्वके मतमैं अज्ञान है. कर्तृत्वादिक अभिमान अंतःकरणविशिष्टमैं होवै है, यातैं अंतःकरणावच्छिन्नकूं जीव कहैं हैं. औ अज्ञानमैं प्रतिबिंबजीव है, या पक्षमैं भी अज्ञानविशिष्ट प्रमाता नहीं है, किंतु अंतःकरणविशिष्टही प्रमाता है. औ जीवचेतनका तौ विषयतैं सम्बंध सर्वदा है, परंतु प्रमातृचेतनका विषयतैं संबंध नहीं. औ प्रमातृचेतनके सम्बंधसैं ही विषयका प्रकाश होवै है. जीव चेतनके संबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं; जैसैं ब्रह्मचेतन ईश्वरचेतन अज्ञानके साधक हैं, तैसैं अविद्योपाधिक जीवचेतन है, ताके संबंधसैं विषयमैं ज्ञाततादिक व्यवहार होवै नहीं औ जीवचेतनकूं ज्ञाततादिकका अभिमान भी होवै नहीं. प्रमाताके संबंधसैं ही विषयमैं ज्ञाततादिक व्यवहार होवैहै. औ व्यवहारका अभिमानभी प्रमाताकूं होवैहै, सो प्रमाता विषयतैं भिन्नदेशमैं है; यातैं प्रमाताका विषयतैं सदा संबंध नहीं. प्रमातासैं विषयका सम्बंध वृत्तिके अधीन है. इसरीतिसैं जीवकी उपाधिकूं व्यापक मानैं अथवा परिच्छिन्न मानैं तौ दोनूं पक्षमैं प्रमातासैं विषयसम्बंध वृत्तिके अधीन समाधान है. तामैं विलक्षणता कथन केवल बुद्धिप्रवीणताख्यापनके अर्थ है औ प्रमाताका विषयतैं सम्बंध नहीं; इसी वास्तै अप्रवीणताका साधक है.

च्यारि चेतनके कथनपूर्वक उक्त अर्थकी सिद्धि ॥ १५६ ॥

प्रमातृचेतन, प्रमाणचेतन, विषयचेतन औ फलचेतन भेदसैं च्यारि **प्रकारका चेतन** कह्या है. जो प्रमाताका विषयतैं सम्बंध होवै तौ प्रमातृचेतनसैं विषयचेतनका विभाग कथन असंगत होवैगा. अंतःकरणविशिष्ट चेतन **प्रमातृचेतन** है, वृत्त्यवच्छिन्नचेतन **प्रमाणचेतन** है, घटाद्यवच्छिन्नचेतन **विषयचेतन** है औ वृत्तिसम्बंधसैं घटादिकनमैं चेतनका प्रतिबिंब होवै ताकूं **फलचेतन** कहैं हैं. औ कोई ऐसैं कहैं हैं, घटावच्छि-

न्नचेतनही अज्ञात होवै तब विषयचेतन कहिये है, औ ज्ञात होवै तब घटावच्छिन्नचेतनकूं ही फलचेतन कहैं हैं ताहीकूं **प्रमेयचेतन** कहैं हैं. परंतु विद्यारण्यस्वामीनैं औ वार्तिककारनैं प्रमाणवृत्तिसैं उत्तरकालमैं जो घटादिकनमैं चेतनका आभास होवै सोई **फलचेतन** कह्या है. इसरीतिसैं प्रमातृचेतन परिच्छिन्न है,औ ताके सम्बंधसैं ही विषयका प्रकाश होवैहै. जीवचेतनकूं विभु मानैं तौभी प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिकृत है, यातैं दोनूं मतमैं विषयसंबंधमैं विलक्षणता नहीं.

जाग्रत्‌मैं होनेवाली वृत्तिके अनुवादपूर्वक स्वप्नावस्थाका लक्षण ॥ १५७ ॥

उक्त प्रयोजनवाली इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति जाग्रत् अवस्थामैं होवैहै; इंद्रियसैं अजन्य जो विषयगोचर अंतःकरणकी अपरोक्षवृत्ति ताकी अवस्थाकूं **स्वप्नावस्था** कहैं हैं. स्वप्नमैं ज्ञेय औ ज्ञान अंतःकरणका परिणाम है.

सुषुप्तिअवस्थाका लक्षण ॥ १५८ ॥

सुखगोचर अविद्यागोचर अज्ञानका साक्षात्परिणामरूप वृत्तिकी अवस्थाकूं **सुषुप्ति अवस्था** कहैं हैं. सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्ति सुखगोचर औ अज्ञानगोचर होवै है.यद्यपि अविद्यागोचरवृत्ति जाग्रत्‌मैं"अहं न जानामि" इसरीतिसैं होवैहै, तथापि वह वृत्ति अंतःकरणकी है, अविद्याकी नहीं. यातैं सुषुप्तिलक्षणकी जाग्रत्‌मैं अतिव्याप्ति नहीं. तैसैं प्रातिभासिक रजताकार वृत्ति जाग्रत्‌मैं अविद्याका परिणाम है, सो अविद्यागोचर नहीं, तैसैं सुखाकार वृत्ति जाग्रत्‌मैं है सो अविद्याका परिणाम नहीं है. इसरीतिसैं सुखगोचर औ अविद्यागोचर अविद्यावृत्तिकी अवस्थाकूं **सुषुप्ति अवस्था** कहैं हैं.

सुषुप्तिसंबंधी अर्थका कथन ॥ १५९ ॥

सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्तिमैं आरूढ साक्षी अविद्याकूं प्रकाशै है, औ स्वरूप सुखकूं प्रकाशै है सुषुप्तिअवस्थामैं सुखाकार अविद्याकार परिणाम जिस अज्ञानांशका हुया है, तिस अज्ञानांशमैं तिसपुरुषका अंतःकरण लीन है. जाग्रत् कालमैं तिस अज्ञानांशका परिणाम अंतःकरण होवै है, यातैं अज्ञानकी वृत्तिमैं अनुभूत सुखकी जाग्रतमैं स्मृति होवै है. उपादानका औ कार्यका भेद नहीं होनेतैं अनुभवस्मरणकूं व्यधिकरणता नहीं. इसरीतिमैं तीनि अवस्था हैं. मरणका औ मूर्छाकाभी कोई सुषुप्तिमैं अंतरभाव कहैं हैं कोई पृथक् कहैंहैं.

उक्त अवस्था भेदकूं वृत्तिकी अधीनता ॥ १६० ॥

यह अवस्थाभेद वृत्तिके अधीन है. जाग्रत् स्वप्नमैं तौ अंतःकरणकी वृत्ति है, जाग्रत्मैं इंद्रियजन्य है, स्वप्नमैं इंद्रियअजन्य है. सुषुप्तिमैं अज्ञानकी वृत्ति है.

वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १६१॥

अवस्थाका अभिमानही बंध है, भ्रमज्ञानकूं अभिमान कहैं हैं, सोभी वृत्तिविशेष है; यातैं वृत्तिकृत बंधही संसार है. औ वेदांतवाक्यसैं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवै तासैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै सोई मोक्ष है; यातैं वृत्तिका संसारदशामैं तौ व्यवहारसिद्धि प्रयोजन है औ परमप्रयोजन मोक्ष है.

कल्पितकी निवृत्तिविषै विचार

कल्पितकी निवृत्तिकूं अधिष्ठानरूपतापूर्वक मोक्षमैं द्वैतापत्तिदोषके कथनकी अयुक्तता ॥ १६२ ॥

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातैं संसारनिवृत्ति मोक्ष है. या कहनेतैं ब्रह्मरूप मोक्ष है, यह सिद्ध होवै है, यातैं कल्पितकी निवृत्तिकूं कल्पितका ध्वंस मानिकै मोक्षमैं द्वैतापत्ति दोषका कथन अज्ञानप्रयुक्त है

न्यायमकरंदकारोक्त अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिपक्षमैं दूषण ॥ १६३ ॥

न्यायमकरंदकारनैं कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानी औ द्वैतापत्तिकाभी सामाधान कह्याहै, परंतु तिनका लेख अनुभवके अनुसार नहीं. काहेतैं ? यह तिनका लेख है:-कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है जो अधिष्ठानरूप कहै तौ अधिष्ठान औ कल्पितनिवृत्ति एकही पदार्थ है. दो पदार्थ नहीं; यह सिद्ध होवै है. तहां यह पूछैं हैं:—अधिष्ठानमैं अंतर्भाव मानिकै कल्पितनिवृत्तिका लोप इष्ट है अथवा कल्पितनिवृत्तिमैं अंतर्भाव मानिकै पृथक् अधिष्ठानका लोप इष्ट है?अन्यप्रकार संभवै नहीं एकमैं अपकार अंतर्भावही कहना होवैगा. जो प्रथम पक्ष कहै तौ संभवै नहीं.काहेतैं? संसारका अधिष्ठान ब्रह्म है, औ संसारकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं होवै तौ संसारनिवृत्तिके साधनमैं प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न तौ है नहीं औ ब्रह्म सिद्ध है. व्यापारसाध्यके अर्थ प्रवृत्ति होवै है, स्वभावसिद्ध ब्रह्मके अर्थ ज्ञानसाधन श्रवणादिकनमैं प्रवृत्ति संभवै नहीं यातैं संसारनिवृत्तिका नित्यसिद्ध ब्रह्ममैं अंतर्भाव संभवै नहीं. औ जो निवृत्तिमैं ब्रह्मका अंतर्भाव कहै तौभी संसारभ्रमका असंभव होनेतैं ताकी निवृत्तिजनक ज्ञानके साधन श्रवणादिकनमैं प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? संसारकी निवृत्ति तौ ज्ञानसैं उत्तरकालमैं होवैहै, ज्ञानसैं प्रथम कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं, यह अनुभवसिद्ध है. औ संसारनिवृत्तिसैं पृथक् ब्रह्म है नहीं, यातैं ज्ञानतैं पूर्व ब्रह्मरूप अधिष्ठानके अभावतैं संसारभ्रम संभवै नहीं; यातैं अनुभवसिद्ध संसारका अभाव तौ कह्या जावै नहीं. सत्य कहना होवैगा. ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं, यातैं संसारनिवृत्तिमैं ब्रह्मका अंतर्भाव संभवै नहीं, औ संसारनिवृत्ति ज्ञानसैं पूर्वकालमैं है नहीं; ज्ञानसैं उत्तरकालमैं होनेतैं सादि है औ ब्रह्म अनादि है. सादि पदार्थमैं अनादि पदार्थका

अंतर्भाव कथन अयुक्त है. इसरीतिसैं दोनूंका परस्पर अंतर्भाव संभवै नहीं यातैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूप है, यह पक्ष संभवै नहीं. औ जो ऐसैं कहै, परस्पर अंतर्भाव किसीका नहीं कहैहैं; तथापि कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं पृथक् नहीं, अधिष्ठानकी अवस्थाविशेष कल्पितनिवृत्ति है. अज्ञात औ ज्ञात दो अवस्था अधिष्ठानकी होवैहैं ज्ञानसैं पूर्व अज्ञात अवस्था है, औ ज्ञानसैं उत्तरकालमैं ज्ञात अवस्था होवै है. ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति है, ज्ञात अधिष्ठान सादि है; यातैं ज्ञानसाधन श्रवणादिक निष्फल नहीं. औ संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं पृथक् नहीं, इसरीतिसैं ज्ञात अधिष्ठानरूपही कल्पित निवृत्तिकूं मानैं सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानके विषयकूं ज्ञात कहैहैं, अज्ञानके विषयकूं अज्ञात कहैहैं, अज्ञानकृत आवरणही **अज्ञानकी विषयता** कहियेहै. जब ज्ञानसैं अज्ञानका अभाव होवै, तब अज्ञात व्यवहार होवै नहीं; तैसैं विदेहदशामैं देहादिकनके अभावतैं ज्ञानका अभाव होनेतैं ज्ञातताका अभाव होवै है, यातैं विदेहदशामैं अज्ञात अवस्थाकी नाई ज्ञात अवस्थाकाभी अभाव होनेतैं ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पित निवृत्तिका मोक्षमैं अभाव हुया चाहिये. जो मोक्षमैं अभाव मानैं तौ कल्पितनिवृत्तिकूं अनंतताके अभावतैं औषधजन्य रोगनिवृत्तिकी नाई परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा. यातैं—

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका निरूपण ॥ १६४ ॥

कल्पित निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं, तासैं भिन्न है. और अधिष्ठान भिन्नभी कल्पितकी निवृत्ति द्वैतकी संपादक नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठानसैं भिन्न सत्य होवै तौ द्वैत होवै. सत्यसैं विलक्षणपदार्थ द्वैतका हेतु होवै तौ सिद्धांतमैं सदा अद्वैत है, या अर्थका बाध होवैगा. यातैं सत्यपदार्थका भेदही द्वैतका साधक है कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है और सत्य नहीं; यातैं द्वैतसिद्धि होवै नहीं.

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं कल्पितनिवृत्तिके स्वरूप निर्णयवास्तै अनेक विकल्पनका लेख ॥ १६५ ॥

कल्पितनिवृत्तिके स्वरूपनिर्णयवास्तैं इसरीतिसैं विकल्प लिखेहैंः—अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्ति सत्‌रूप है वा असत्‌रूप है वा सदसत्‌रूप है वा सदसत्‌विलक्षण है ? जो सत्‌रूप कहै तौ व्यावहारिक सत् है अथवा पारमार्थिक सत् है ? जो व्यावहारिक सत् कहै तौ ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक सत्‌का संभव नहीं होनेतैं ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर संसारनिवृत्तिका अभाव चाहिये. काहेतैं ? ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम जाका बाध होवै नहीं औ ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर जाकी सत्तास्फूर्ति होवै नहीं सो व्यावहारिक सत्‌कहिये है; यातैं कल्पित निवृत्तिकूं व्यावहारिक सत् मानें तौ ज्ञानसैं उत्तर ताका संभव होवै नहीं. यातैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्तिकूं पारमार्थिक सत्‌रूप कहै तौ द्वैत होवैगा. इसरीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति सत्‌रूप नहीं. जो अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्तिकूं असत् कहै तौ असत् शब्दका अर्थ अनिर्वचनीय-है अथवा तुच्छ है ? जो अनिर्वचनीय कहै तौ दोष आगे चतुर्थ विकल्पके खंडनमैं कहैंगे. तुच्छ कहै तौ संसारनिवृत्तिकूं पुरुषार्थता नहीं होवैगी, यातैं द्वितीय विकल्प संभवै नहीं औ अधिष्ठानसैं भिन्नकूं सदसत्‌-रूप कहै तौ एकपदार्थकूं सत्‌स्वरूपता औ असत्‌स्वरूपता विरोधी होनेतैं संभवै नहीं. औ सदसत्‌रूप मानें पूर्वउक्त सत्‌पक्षका दोष होवैगा औ असत्‌पक्षका दोष होवैगा. काहेतैं ? कल्पितनिवृत्तिमैं सत् अंश है यातैं द्वैत होवैगा औ असत् अंशतैं पुरुषार्थता होवैगी. औ सदसत्‌शब्दका ऐसा अर्थ करे सत् कहिये व्यावहारिक सत्ताका आश्रय है औ असत् कहिये पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न है, यातैं सत् असत्‌का विरोध नहीं. काहेतैं ? घटादिक व्यावहारिक सत्ताके आश्रय औ पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न प्रसिद्ध हैं; यातैं उक्त विरोध नहीं. औ पारमार्थिक सत्ताका निषेध करनेतैं द्वैत नहीं. व्यावहारिक सत्ता है तुच्छ नहीं; यातैं अपुरुषार्थभी नहीं. इस

रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्ति पारमार्थिकसत्ताशून्य व्यावहारिक सत्तावाली है इसअभिप्रायतैं सत्असत्‌रूप कहै तौ प्रथम विकल्पमैं व्यावहारिक सत् मानैं तौ जो दोष कह्या "ज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक पदार्थका असंभव होवैहै" तिस दोषतैं यह अर्थभी संभवै नहीं; यातैं तृतीय विकल्प भी संभवै नहीं. औ अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्ति सदसत् विलक्षण है यह चतुर्थ पक्ष कहै तौ सद्विलक्षण कहनेसैं द्वैत नहीं; औ असत् विलक्षण कहनेसैं अपुरुषार्थताभी नहीं, तथापि संभवै नहीं, काहेतैं? सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय होवैहै, यातैं कल्पितकी निवृत्ति अनिर्वचनीय है, यह सिद्ध होवैगा. औ माया अथवा ताका कार्य अनिर्वचनीय होवै है, यातैं अज्ञान सहित संसारकी निवृत्तिभी अनिर्वचनीय होवै तौ मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप अज्ञान सहित प्रपंचकी निवृत्ति माननी होवैगी. मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप उक्त निवृत्तिकूं कहै तौ घटरूप घटकी निवृत्ति है, इस कथनकी नाईं उक्त कथन हास्यका आस्पद है. औ ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति होवै तिसतैं अनंतर पुरुषार्थ-साधन सामग्री कोई रहै नहीं यह सिद्धांत है. ब्रह्मज्ञानका फल कल्पितकी निवृत्ति मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप होवै ताका निवर्तक कोई रह्या नहीं,यातैं मोक्षदशामैं भी माया वा ताके कार्यका नित्यसंबंध रहनेतैं निर्विशेष ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षका अभाव होवैगा. यातैं चतुर्थ पक्षभी संभवै नहीं. इसरीतिसैं अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है सत्‌रूप नहीं, यातैं द्वैत नहीं. असत् नहीं, यातैं पुरुषार्थता नहीं. सदसद्रूप नहीं, यातैं उभयपक्षउक्त दोष नहीं.अनिर्वचनीय नहीं, यातैं मोक्षदशामैं अज्ञान तत्कार्यका शेष नहीं. यातैं उक्त चतुर्विधप्रकारसैं विलक्षण अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है.

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं उक्त च्यारि प्रकारसैं विलक्षण औ ब्रह्मसैं भिन्न पंचमप्रकाररूप कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप १६६॥

पंचमप्रकार ताकूं कहैं हैं. जैसैं सदसतसैं विलक्षण पदार्थकी अद्वैतमतमैं अनिर्वचनीय परिभाषा है, तैसैं सत्‌रूप १, असत्‌रूप २, सदसतरूप ३, सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय ४ इन च्यारिप्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति है. चतुर्विधप्रकारसैं विलक्षणप्रकारका नाम पंचम प्रकार है, यातैं अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है, ता निवृत्तिमैं पंच प्रकार हैं; यह न्यायमकरंदमैं लिख्या है:—

न्यायमकरंदकारके मतकी असमीचीनता ॥ १६७ ॥

सो समीचीन नहीं. काहेतैं? व्यावहारिक सत पदार्थ तौ लोकमैं प्रसिद्ध है औ अनिर्वचनीय पदार्थभी इंद्रजालकृत लोकमैं प्रसिद्ध हैं; तैसैं पारमार्थिक सत्‌पदार्थ शास्त्रमैं ब्रह्म प्रसिद्ध है. औ विद्वानोंके अनुभवसिद्ध ब्रह्मात्मा है इस सर्वसैं विलक्षण कोई वस्तु लोकशास्त्रमैं प्रसिद्ध नहीं. अत्यंत अप्रसिद्धरूप अज्ञानसहित संसारकी निवृत्ति मानैं तौ पुरुषार्थताका अभाव होवैगा. काहेतैं? पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहियेहै. अत्यंत अप्रसिद्धमैं पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं; किंतु प्रसिद्धमैं अभिलाषा होवैहै, यातैं प्रसिद्धपदार्थनसैं विलक्षण कल्पितनिवृत्ति नहीं. यद्यपि कल्पितनिवृत्तिकूं अधिष्ठानरूप मानै तौभी संसारका अधिष्ठान ब्रह्म प्रसिद्ध नहीं, तथापि पूर्व अनुभूतमैं अभिलाषा होवै है, यह नियम नहीं है; किंतु अनुभूतके सजातीयमैं अभिलाषा होवैहै. जैसैं भयरूप अनर्थहेतु सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूप है; तैसैं जन्ममरणादिरूप अनर्थहेतु संसारकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, इसरीतिसैं अधिष्ठानत्व धर्मसैं ब्रह्मरूप संसारकी निवृत्ति अनुभूतके सजातीय होनेतैं पुरुषकी अभिलाषा संभवै है. औ पंचम प्रकारवादीके मतमैं अनुभूत सजातीय नहीं होनेतैं प्रवृत्ति संभवै नहीं; औ अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं तौ भाष्यकारके वचनसैं विरोध होवैगा. भाष्यकारनैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूपही कही है.

न्यायमकरंदकारोक्त ज्ञात अधिष्ठानरूपकल्पितकी निवृत्तिपक्षमैं दोषका उद्धार औ प्रसंगमैं विशेषण उपाधि और उपलक्षणका लक्षण ॥ १६८ ॥

ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति माननेमैं जो दोष कह्या है:-- मोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं कल्पितनिवृत्तिका अभाव होनेतैं कल्पितका उज्जीवन होवैगा, ताका यह समाधान है:--ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित ब्रह्म तौ मोक्षकालमैं नहीं है. काहेतैं ? ज्ञातत्वविशेषणवालेकूं **ज्ञातत्वविशिष्ट** कहैं हैं. औ ज्ञातत्वउपाधिवालेकूं **ज्ञातत्वउपहित** कहैं हैं. कार्यमैं सम्बंधी जो वर्तमानव्यावर्तक सो विशेषण कहिये है. जैसें नीलरूपवाला घट उपजैहै, या स्थानमैं नीलरूप विशेषण है काहेतैं ? उत्पत्तिरूपकार्यसैं संबंधी है. औ घटमैं वर्तमान हुवा पीत घटसैं व्यावर्तक है. औ कार्यमैं असंबंधी वर्तमान व्यावर्तक **उपाधि** कहिये है. जैसें भेरी उपहित आकाशमैं शब्द है इस स्थानमैं भेरी उपाधि है. काहेतैं ? शब्दकी अधिकरणतामैं भेरीका सम्बंध नहीं औ वर्तमान भेरी बाह्याकाशतैं व्यावर्तक है. औ कार्यमैं असम्बंधी व्यावर्तक होवै सो **उपलक्षण** कहियेहै. उपलक्षणमैं वर्तमानताकी अपेक्षा नहीं. अतीतभी उपलक्षण होवै है. औ उपाधि तौ विशेष्यके सर्वदेशमैं होवैहै. उपलक्षण एकदेशमैं होवैहै. जैसैं "काकवद् गृहं गच्छ" ऐसा कहैं, जिस गृहमैं काकसंयोग देख्या है, तिस गृहसैं काक चल्या जावै तौभी गमन करैहै. इहां गृहका काक उपलक्षण है. काहेतैं ? गमनरूप कार्यमैं असम्बंधी है औ गृहके एक देशमैं है; तैसैं वर्तमान औ अतीत काक अन्यगृहतैं व्यावर्तक है. इसरीतिसैं विशेषण औ उपाधि तौ वर्तमान होवैहै, यातैं विशेष्यके सर्वदेशमैं औ सर्वकालमैं होवैहै. विशेष्यके जा देशमैं जा कालमैं नहीं होवै ता देशमैं ता कालमैं विशिष्ट व्यवहार नहीं होवै है औ उपहित व्यवहारभी नहीं होवैहै.

किंतु जितने कालमैं जितने देशमैं व्यावर्तक होवै उतने देशमैं औ कालमैं विशिष्ट व्यवहार औ उपहित व्यवहार होवैहै, सो मोक्षदशामैं ज्ञातत्वका संबंध नहीं, किंतु पूर्वज्ञातत्व हुयाहै, यातैं ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित तौ अधिष्ठान नहीं है, औ व्यावर्तक मात्रकूं **उपलक्षण** कहैं हैं, वर्तमानमैं आग्रह नहीं; यातैं विशेष्यके एक देशमैं सम्बंध हुये औ एककालमैं सम्बंध हुयेभी व्यावर्तककूं **उपलक्षण** कहैं हैं. इतर पदार्थसैं भेदज्ञानकूं **व्यावृत्ति** कहैं हैं. विशेषण, उपाधि, उपलक्षण ये तीनूं इतरसैं व्यावृत्ति करैंहैं तिनमैं **विशेषण** तौ यावत देशकालमैं आप होवै, तिस देश कालस्थ स्वविशिष्ट विशेष्यकी व्यावृत्ति करैहै. जाकी व्यावृत्ति विशेषणसैं होवै सो **विशिष्ट** कहियेहै, औ जिस देशकालमैं व्यावर्तक होवै तिस देशकालस्थ व्यावर्तनीयकी व्यावृत्ति करै, आप बहिर्भूत रहै सो **उपाधि** कहिये है. जाकी व्यावृत्ति उपाधिसैं होवै; सो **उपहित** कहियेहै; औ व्यावर्तनीयके एकदेशमैं कदाचित् होयके व्यावृत्ति करै तौ उपाधिकी-नाईं आप बहिर्भूत रहै सो उपलक्षण कहिये है; जाकी व्यावृत्ति उपलक्ष-णसैं होवै सो **उपलक्षित** कहियेहै. यातैं यह निष्कर्ष हुया:—व्यावर्तक व्यावर्तनीय इन दोनूंमैं **विशिष्ट** व्यवहार होवैहै. जितने देशमैं व्यावर्तक होवै, उतने देशमैं स्थित व्यावर्तनीय मात्रमैं उपहित व्यवहार होवै है, परंतु व्यावर्तक सद्भावकालमैं व्यावर्तककूं त्यागिकै उपहित व्यवहार होवैहै. औ व्यावर्तनीयके एक देशमैं कदाचित् व्यावर्तक होवै, तहां व्यावर्तनीय मात्रमैं उपलक्षित व्यवहार होवैहै इहां व्यावर्तक सद्भावकी अपेक्षा नहीं. इसरीतिसैं विशेषणादिकनके भेदतैं अंतःकरणविशिष्ट **प्रमाता** है, अंतःकरणोपहित **जीव साक्षी** है औ अंतःकरणोपलक्षित ईश्वर **साक्षी** है. इहां प्रसंग यह है: मोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वोपहित तौ अधिष्ठान संभवै नहीं,तथापि ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान मोक्षदशामैंभीहैऔ-

अधिष्ठानरूपनिवृत्तिके पक्षमें पंचमप्रकारवादीकी शंका ॥१६९॥

जो पंचमप्रकारवादी यह शंका करैः जामैं कदाचित् ज्ञातत्व होवै तामैं ज्ञातत्वके अभावकालमैं भी ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ ज्ञातत्वसैं पूर्वकालमैंभी भावी ज्ञातत्वकूं मानिकै ज्ञातत्वोपलक्षित कह्या चाहिये. जो पूर्वकालमैं ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ संसारकालमैंभी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप संसार निवृत्तिके होनेतैं आनायासतैं पुरुषार्थप्राप्ति होवैगी; यातैं ज्ञातत्वके अभावकालमैं ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप कल्पितनिवृत्ति कहना योग्य नहीं

उक्त शंकाका समाधान ॥ १७० ॥

ताका यह समाधान हैः—व्यावर्तक संबंधसैं उत्तरकालमैं उपलक्षित व्यवहार होवै है, पूर्वकालमैं नहीं होवै है.जैसें काकसंबंधसैं उत्तरकालमैं काकोपलक्षित व्यवहार होवै है. तैसैं ज्ञातत्वकी उत्पत्तिसैं पूर्व संसारदशामैं ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान नहीं, किंतु उत्तरकालमैं ज्ञातत्वके असद्भावकालमैं भी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान है, ताका स्वरूपही संसारनिवृत्ति है.

न्यायमकरंदतैं अन्यरीतिसैं अधिष्ठानतैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप ॥ १७१ ॥

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है; या पक्षमैं आग्रह होवै तौ न्यायमकरंदग्रंथमैं उक्तरीतिसैं अत्यंत अप्रसिद्ध पंचमप्रकार मानना निष्फल है. काहेतैं? अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीय है. निवृत्ति नाम ध्वंसका है, तिस ध्वंसकूं अनंत अभावरूप मानैं औ अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं तौ मोक्षदशामैं द्वैत होवै, सो ध्वंस अनंत अभावरूप नहीं; किंतु क्षणिक भावविकार है. यास्कनाम मुनिनैं वेदका अंग निरुक्त कर्‌या है; तामैं जन्म, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाश ये **षट्भावविकार** कहे हैं. भाव कहिये अनिर्वचनीय वस्तु ताके विकार हैं, अवस्थाविशेष हैं. अनिर्वचनी-

यकी अवस्था विशेष होनेतैं जन्मादिक नाशपर्यंत अनिर्वचनीय हैं. जैसे जन्म क्षणिक है. काहेतैं? आद्यक्षणसंबंधकूं जन्म कहैहैं; प्रथम क्षणमैं "जायते" ऐसा व्यवहार होवैहै, द्वितीयादिक्षणमै "जातः" ऐसा व्यवहार होवैहै "जायते" ऐसा व्यवहार होवै नहीं. तैसें मुद्गरादिकनतैं घटका चूर्णादिभाव होवै तब एक क्षणमैं "घटो नश्यति" ऐसा व्यवहार होवै है, द्वितीयादिक्षणमैं "नष्टो घटः" ऐसा व्यवहार होवै है. "नश्यति" यह व्यवहार होवै नहीं; यातैं जन्मनाश क्षणिक है, वर्तमान जन्म घटका है, यह "जायते घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है. अतीत जन्म घटका है; यह "जातो घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है. जैसैं घटका वर्तमान नाश है, यह "नश्यति घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है औ "नष्टो घटः" या वाक्यसैं घटका अतीत नाश प्रतीत होवै है. जो ध्वंसरूप नाश अनंत होवै तौ नाशमैं अतीतत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये; यातैं नाश अनंत नहीं किंतु क्षणिक है औ भावविकार है; यातैं अभावरूप नहीं. औ अनुपलब्धिनिरूपणमैं अनंत अभाव ध्वंस कह्या, सो न्यायकी रीतिसैं कह्याहै. वेदांतमतमैं एक अत्यंताभावही अभावपदार्थ है; इसरीतिसैं कल्पितकी निवृत्ति क्षणिक है. जैसैं विद्वान्‌के अनिर्वचनीय शरीरादिक ज्ञानसैं उत्तरभी प्रारब्धबलतैं किंचित्काल रहैहै, द्वैतके साधक नहीं. तैसैं ज्ञानसैं उत्तरकाल कल्पितकी निवृत्ति एक क्षण रहैहै; यातैं द्वैतकी साधन नहीं. एक क्षणतैं उत्तर कल्पित निवृत्तिका अत्यंताभाव है सो ब्रह्मरूप है.

उक्तमतमैं पुरुषार्थका स्वरूप. (दुःखाभाव वा केवल सुख) ॥ १७२ ॥

या मतमैं दुःखनिवृत्ति क्षणिकभाव होनेतैं पुरुषार्थ नहीं; किंतु दुःखाभाव पुरुषार्थ है, अथवा दुःखाभावभी पुरुषार्थ नहीं; किंतु केवल सुखही पुरुषार्थ है. काहेतैं? अनंत दुःखसहित ग्राम्यधर्मादिकनका सुख है; तामैं स्वभावसैं सकल जीवनकी प्रवृत्ति होवै है. जो दुःखाभावभी पुरुषकी

अभिलाषाका विषय होवै तौ सर्वथा दुःखग्रसित सुखमैं पुरुषकी अभिलाषा नहीं हुई चाहिये; औ जहां दुःखाभावमैं अभिलाषा होवैहै, तहां भी स्वरूपसुखानुभवका प्रतिबंधक दुःख है, ताके अभावकालमैं स्वरूप-सुखका प्रादुर्भाव होवै है, यातैं दुःखाभावमैं पुरुषकी अभिलाषास्वरूप सुखके निमित्त है. इसरीतिसैं मुख्य पुरुषार्थ सुख है, दुःखाभाव नहीं, यातैं दुःखात्यन्ताभावकूंभी ब्रह्मरूप नहीं मानैं औ अनिर्वचनीय मानैं तौ ताका भी बाध संभवै है, परंतु अनिर्वचनीयका बाधरूप अभाव तौ अधिष्ठान-रूप अनुभवसिद्ध है,यातैं अज्ञानसहित भावाभावरूप प्रपंच औ ताकी निवृत्ति सकल अनिर्वचनीय है, तिन सर्वका अधिष्ठानरूप बाध होयके निर्द्वैत-स्वरूप परमानंदरूप परमपुरुषार्थ मोक्ष है.

इति श्रीमन्निश्चलदाससंज्ञकसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे जीवेश्वर-स्वरूपनिरूपणपूर्वकवृत्तिप्रयोजननिरूपणसहितकल्पित निवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमः प्रकाशः ॥ ८ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, ७ वीं गली खेतवाडी-बंबई

क्रय्यपुस्तकें–(वेदान्तग्रंथ–भाषा.)

नाम	की रु आ.
आत्मपुराण--भाषामें दशोपनिषदोंका भावार्थ चिद्घनानंद स्वामिकृत	१२–०
योगवासिष्ठ—बडा भाषा छः प्रकरणोंमें श्रीगुरुवसिष्ठजी और श्रीरामचंद्रजीका संवादोक्त अपूर्व ग्रंथ है खुला पत्रा ...	९–०
" बडा संपूर्ण ६ प्रकरण २ जिल्दोंमें ...	९–०
स्वरूपानुसंधान--वेदान्तियोंको अवश्य लेने योग्य ...	२–०
योगवासिष्ठ--भाषामें वैराग्य और मुमुक्षु प्रकरण बडाअक्षर ग्लेज कागज	०–१०
" तथा छोटागुटका पाकिटबुक अतिउत्तम संग्रह करनेयोग्य है	०–४
ज्ञानवैराग्यप्रकाश–(भाषा वेदान्त)–इसके देखनेसे विषयी पुरुषोंकाभी चित्त संसारसे उपरामको प्राप्त होजाता है फिर विरक्तोंकी कौन कथा है	०–१२
योगवासिष्ठसार–भाषा	२–०
पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश–(कामलीवाले बाबाजी कृत) इसमें चारवेद, षट्शास्त्रका सार और अठारह पुराणोंकी कथा आदिका अध्यात्मविद्यापर अर्थ लिखागया है आत्मज्ञानियोंको अत्यंत दुर्लभहै	२–८
अभिलाषसागर–भाषामें स्वामी अभिलाषदास उदासी कृत–इसमें वंदनविचार, ग्रंथविचार, मार्गविचार, भजन-विचार, जडब्रह्मविचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकार ब्रह्म-विचार, मिथ्याब्रह्मविचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार	